卐 अनुक्रमणिका 卐

द्वितीय श्रुतस्कन्ध धर्मकथा



❀ प्रस्तावना ❀

यह 'ज्ञाता-धर्म-कथा' नाम का आगम है। जैन आगमों का प्रसिद्ध आख्यासूत्र है। जैनधर्म के विशाल प्रागण मे साहित्य का क्षेत्र बहुत बडा विस्तृत है। परन्तु यहाँ आगमो को ही सर्वतोऽधिक उच्च आसन दिया गया है। जैनधर्मावलम्बियो के अन्तर्हृदय मे अपने आगमो के प्रति अगाध आस्था बनी हुई है। अगर कही पर कुछ भी चर्चा का विषय उपस्थित हो जाता है और वहाँ पर किसी विषय पर चर्चा चल पडती है तो वादी-प्रतिवादी दोनो अपनी-अपनी बात को आगम-सम्मत होने की दुहाई देने मे ही लगे रहते है।

जैन-न्याय मे दो प्रमाण माने गये है। प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष-प्रमाण के पाँच भेद है। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। यहाँ पर भी अन्तिम प्रमाण आगम ही माना गया है। कहने का आशय यह है कि जिस बात का निर्णय आगम मे आ जाता है, वहाँ फिर तर्क आदि को कुछ भी स्थान नही है।

ज्ञान के पाँच भेद हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल। यहाँ द्वितीय ज्ञान श्रुतज्ञान है। आगमिक ज्ञान को ही श्रुतज्ञान कहते हैं।

यहाँ एक प्रश्न होता है। आगमो को इतना महत्त्व क्यो दिया गया है ? इसका समाधान स्पष्ट है। आगमो मे वीतराग की वाणी का सकलन किया गया है। जो वीतराग होता है, वही सर्वज्ञ होता है। सर्वज्ञ की वाणी विश्वसनीय होती है। जब कि आगमो मे वीतराग की वाणी का अवतरण है, फिर उनके महत्त्व के विषय मे शङ्का ही क्या ?

एक बात है, जिस प्रकार वैदिक धर्म मे वेद एकान्ततया अनादि-निधन शाश्वत सम्पत्ति के रूप में माने गये हैं, वैसी मान्यता जैन धर्म में अपने आगमो के लिए नही है। जैनधर्म मे आगम अनादि अनन्त और सादि सान्त भी माने गये हैं। वैदिक धर्म मे वेद अपौरुषेय भी माने गये है। वेदो को अपौरुषेय मानने का कारण यह है कि वेदो को किसी पुरुष-विशेष द्वारा प्रमाणित मान लेने पर उनकी नित्यता मे बाधा पहुँचती है। क्योकि अगर वे किसी पुरुष-विशेष द्वारा कहे गये हो तो, उनके कहने के पहले वे नही थे। सम्भवत. उनकी मान्यता के अनुसार यह अनित्यता वेदो को प्रामाणिकता से दूर ले जाती है।

जैनधर्म भाव-रूप में अपने आगमो को अनादि अनन्त स्वीकार करता है। जो भाव आगमो मे आये हैं, वे आज भी हैं, पहले भी थे और आगे भी रहेंगे।

अनादि अनन्त इस काल-चक्र में क्षेत्र विशेष पर जब शासन-विच्छेद का समय आता है, तब वहाँ शब्द-रूप मे आगमो का भी विच्छेद हो जाता है। इसलिये आगम स-अन्त हैं।

जब शासन के अभ्युदय का अवसर आता है, उस समय धर्म-तीर्थङ्कर महापुरुषो के जो प्रवचन होते हैं और उनका जो संकलन किया जाता है उसी संकलन को आगम की संज्ञा दी जाती है। इस दृष्टि से आगम स-आदि हैं।

अभी वर्तमान मे आगमो मे भगवान् महावीर की वाणी का अवतरण है। भगवान् के प्रवचन अर्धमागधी भाषा में होते थे। इसलिये आगमों की भाषा भी अर्ध-मागधी है।

आगमो की सख्या चौरासी भी है, पैंतालीस भी है और बत्तीस भी। जो परपरा आगमो की संख्या बत्तीस मानती है, उस सख्या वाले आगम श्वेताम्बर जैन-शाखा के सभी विभागों में पूर्णतया मान्य हैं।

ग्यारह अंग, बारह उपांग चार मूल, चार छेद और एक आवश्यक इस प्रकार ये ३२ आगम हैं।

ये सब आगम अंग और अग-बाह्य इन दो विभागोमे विभक्त हो जाते है। तीर्थङ्करो द्वारा प्रभाषित और स्वयं गणधरो द्वारा ग्रथित जो हैं, वे अग कहलाते है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वे सब अग-बाह्य हैं।

प्रस्तुत आगम 'ज्ञाता-धर्मकथा' अंग आगम है। यह षष्ठ अग सूत्र है। इस आगम का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है।

इस आगममें भगवान् महावीरकी धर्मकथाओका अभिवर्णन है। इन आख्यायिकाओ का आख्यान साधनोके उद्बोधन के लिए किया गया है।

कथा, साहित्य का एक बहुत बडा अग है। उपदेशको के लिए तो कथा एक उपयोगी अस्त्र है। अपने उपदेशके प्रसग पर कथा-कहानी रूपक आदिका सहारा लेकर वक्ता अपने श्रोताओको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए अधिक सफल होता है।

'ज्ञाता धर्मकथा' सूत्र की कथाओं से प्रेरणा पा कर साधक सोच सकता है कि एक साधक को कितना सजग, सदय, सहज सेवाभावी अनासक्त, अविचल और आत्मनिष्ठ होना चाहिये।

ज्ञाता धर्मकथा सूत्रके दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में उन्नीस अध्ययन है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध के दश वर्ग है और उनमे २१६ अध्ययन हैं।

प्रथम श्रुत-स्कध के अध्ययनो में विस्तृत वर्णन है। प्रत्येक कथा के अतमें उपनय द्वारा साधकोको उनकी साधु-चर्याके विपयमे सावधान रहने के लिए सावचेत किया गया है।

द्वितीय श्रुत-स्कध मे देवियोका वर्णन है। वे पूर्व भव मे कौन थी, कुत्रत्या थी, यह सव सक्षेप मे वताया गया है।

प्रस्तुत सूत्र शुद्ध राष्ट्रभाषा के अनुवादके साथ प्रकाशमे आ रहा है। सम्भवतः ऐसा यह प्रयास प्रथम ही है।

इसके सम्पादक जैन समाजके प्रख्यात-नामा विद्वद्वर पण्डित शोभा-चन्द्रजी भारिल्ल हैं। श्रीयुत भारिल्लजीका क्या परिचय दिया जाय? वे तो स्वयमेव परिचय हैं। लेखन और अध्यापन पण्डितजी के जीवन के मुख्यतम कार्य हैं। भाषा पर आपका अधिकार है। शतशः ग्रन्थो का सम्पादन आपने किया है। जवाहर जैन किरणावली, दिवाकर दिव्यज्योति आदिक ग्रन्थावलियाँ श्रीयुत भारिल्लजी की सुललित लेखनी की ही अमर देन है।

प्रस्तुत अनुवाद है तो सक्षिप्त, परंतु मूल के भावो को स्पष्ट-तया समझानेवाला है। श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी ही हमारे समाज की एकमात्र सजीव शिक्षा-संस्था है और उसी की ओर से यह ग्रन्थ प्रकाशन में आ रहा है। उसे भी श्रेयस्कर ही कहना चाहिये।

यह प्रकाशन अधिक से अधिक जनोपयोगी वने—इसी आशा के साथ विराम।

माघ पूर्णिमा स २०१५
जैन-स्थानक
पिपलिया बाजार, ब्यावर

मधुकर मुनि

卐 प्रकाशकीय 卐



प्रस्तुत ज्ञातासूत्र श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की 'श्री जैन सिद्धान्त प्रभाकर' परीक्षा में (शब्दार्थ रूप) निर्द्धारित होनेसे परीक्षार्थी गण किसी ऐसे सस्करणकी अपेक्षा रखते थे, जिससे मूल पाठो के शब्दानुलक्षी अर्थ का ज्ञान किया जा सके।

इसके पूर्व अनेक ग्रंथो के निर्माता शास्त्रोद्धारक बालब्रह्मचारी पूज्यश्री १००८ श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने अपने ३२ आगमों की अनुवाद-शृखला मे श्री ज्ञाताजीका भी अनुवाद कर हिन्दी जगत् को एक अनूठी भेट दी थी। यद्यपि वह कार्य बहुत शीघ्रता के साथ होने से पाठकोकी अपेक्षा का पर्याप्त पूरक नही हो पाया, तथापि उनकी वह कृति ही वर्तमान अनुवाद मे मूल आधार मानी गई है। इस लिए हम परमश्रद्धेय उक्त पूज्य श्री जी के हृदय से- ऋणी हैं। पूज्य श्री अमोलकऋषिजी म के तत्कालीन पाटानुपाट विराजित (वर्तमान मे श्रमण सघ के आचार्यसम्राट्) परमश्रद्धेय बालब्रह्मचारी प्रसिद्ध वक्ता पूज्य श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज और शास्त्रोद्धारक पूज्य श्रीजी के सुशिष्य प रत्न मुनिश्री कल्याणऋषिजी म ने पारस्परिक विचार-विमर्श मे यह निर्णय किया कि पूज्यश्री द्वारा किये गये हिन्दी आगमानुवाद के द्वितीय सस्करण और अधिक परिमार्जित भाषा में निकाले जाएँ। इस विचारणा के फल-स्वरूप समाज के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् लेखक परमपण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल से उक्त अनुवाद का परिमार्जन करवाया गया। हमे विश्वास है कि प्रस्तुत सस्करण छात्रो की जिज्ञासा को पूर्ण करने में पर्याप्त सहायक होगा।

जामनगर (हाल जालना) निवासी दानवीर शाह केशवजी जवेरचन्द का ध्यान धार्मिक सस्थावो के सिचन, सरक्षण और संवर्द्धन मे विशेष रहता है। आपके आर्थिक आश्रय से अनेक सस्थावो के

संचालन मे महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुवा है। श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की महत्त्वपूर्ण धार्मिक सेवा से आकृष्ट होकर आपने इसके अनेक विभागों मे अपना विशिष्ट आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। इस व्यापक संस्था द्वारा जो समाज-सेवा हो रही है, उसमे आदरणीय शाह केशवजी का वहुत वडा हाथ मानना चाहिए।

जिस समय परीक्षा बोर्ड के सचालको का ध्यान श्री ज्ञाताजी जैसे धर्मकथाग के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन की ओर आकृष्ट हुआ, उस समय सहज ही श्री केशवजी भाई की तरफ दृष्टि गई। लिखते हुए हर्ष हो रहा है कि श्री केशवजी भाई ने इस कार्य की महत्ता और पवित्रता को समझकर पुस्तक-प्रकाशन ध्रुवफड मे एतदर्थ एक मुश्त ५००० पाँच हजार रुपये प्रदानकर सस्था-सचालको के उत्साह को सवर्द्धित किया। उनकी इस सहायता का आधार लेकर प्रस्तुत प्रकाशन का निर्णय कर लिया गया। इस महत्त्वपूर्ण सहयोग के लिये श्री केशवजीभाई के हम अत्यन्त आभारी है।

पाथर्डी बोर्ड की तरफ से आगम-प्रकाशन का यह पहला ही अवसर था और सस्था के पास उस समय निजी मुद्रणालय भी नही था, अत. इसके प्रकाशन का कार्य श्री जैनोदय प्रिंटिग प्रेस रतलाम के विद्वान् व्यवस्थापक प श्री बसन्तीलालजी नलवाया को सुपुर्द किया गया।

प. नलवाया जी ने प्रूफ सशोधन के साथ मुद्रण का कार्य किया। यद्यपि बोर्ड सचालकों की अपेक्षानुसार मुद्रण का कार्य किसी दृष्टि से समाधानकारक नही हो पाया, अर्थात् कागज और स्याही के बडे दोष इस मुद्रण मे स्पष्ट रूप से आ गये। तथापि भाषा-शुद्धि का हेतु बहुताश साध्य होने से सचालको ने प्रस्तुत सस्करण की प्रतियाँ छात्रो एव सामान्य जिज्ञासुओ के करकमलो मे पहुँचाने का निर्णय किया। उक्त दोष के कारण ही पुस्तक का मूल्य कम रखना पडा है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि इसका द्वितीय सस्करण सुन्दर बनाने के लिए हमारा प्रयास होगा।

इस पुस्तक की प्रस्तावना प्रकाशकीय आदि एवं परिशिष्ट तथा आवरण पृष्ठ का मुद्रण श्री सुधर्मा मुद्रणालय, पाथर्डी में हुआ है। पुस्तक की बाइंडिंग भी उक्त मुद्रणालय मे ही हुई है। इसके लिये दोनो ही मुद्रणालयो के व्यवस्थापक धन्यवाद के पात्र है।

प्रस्तुत शास्त्र की प्रस्तावना श्रमण संघ के मरुधर मन्त्री प. मुनि श्री मिश्रीलाल जी म० "मधुकर" ने लिखकर हमारे उत्साह की अभिवृद्धि के साथ पाठको को प्रस्तुत पुस्तक की विशेषता बताने की कृपा की है। अत: उक्त महाराजश्री के हम हृदय से आभारी हैं।

प्रस्तुत सस्करण का सपादन श्रमण संघ के श्रद्धेय आचार्य वाल-ब्रह्मचारी प. रत्न पूज्यश्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म० श्री के तत्त्वावधान में प. भारिल्लजी ने सपन्न करके जो एक महती आवश्यकता की पूर्ति की है, इसके लिए परमश्रद्धेय पूज्यश्रीजी के आभार के साथ प. जी को शतश. धन्यवाद देते है।

बदरीनारायण शुक्ल
श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड,
पाथर्डी, (अहमदनगर)

॥ श्रीमद् ज्ञाताधर्मकथांगम् ॥

उत्क्षिप्त नामक प्रथम अध्ययन ।



ते णं काले णं ते णं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था, वण्णओ ॥१॥

उस काल में अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में और उस समय में अर्थात् कूणिक राजा के समय में चम्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए ॥१॥

तीसे णं चम्पाए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था, वण्णओ ॥२॥

उस चम्पा नगरी के बाहर, उत्तरपूर्व दिक्कोण में अर्थात् ईशान भाग में पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उसका भी वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए ॥२॥

तत्थ णं चम्पाए णयरीए कोणिओ नामं राया होत्था, वण्णओ ॥३॥

उस चम्पा नगरी में कूणिक नामक राजा था। उसका भी वर्णन उववाई सूत्र से जान लेना चाहिए ॥३॥

ते णं काले णं ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नामं थेरे जाइसंपन्ने, कुलसंपन्ने, बल-रूव-विणय-णाण-दंसण-चरित्त-लाघव-संपन्ने, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी जसंसी जियकोहे, जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जियइंदिए, जियनिद्दे, जियपरिसहे, जीवियासमरणभयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे, एवं करण-चरण-निग्गह-णिच्छय-अज्जव-मद्दव-लाघव-खंति-गुत्ति-मुत्ति-विज्जा-मंत बंभ-वेय नय-नियम-सच्च सोय-णाण-दंसण-चरित्तप्पहाणे, ओराले, घोरे, घोरव्वए घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, संखित्त-विउलतेउलेस्से चोद्दसपुव्वी, चउनाणोवगए, पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहं-सुहेणं विहरमाणे, जेणेव चम्पा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हइ; ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति ॥४॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य आर्य सुधर्मा नामक स्थविर थे। वे जातिसम्पन्न-उत्तम मातृपक्ष वाले थे, कुलसम्पन्न-उत्तम पितृपक्ष वाले थे, उत्तम संहनन से उत्पन्न बल से युक्त थे, अनुत्तर विमानवासी देवों की अपेक्षा भी अधिक रूपवान थे, विनयवान्, चार ज्ञानवान्, क्षायिक सम्यक्त्ववान्, लाघववान्, (द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से ऋद्धि रस एवं साता रूप तीन गारवों से रहित) थे, ओजस्वी अर्थात् मानसिक तेज से सम्पन्न या चढ़ते परिणाम वाले, तेजस्वी अर्थात् शारीरिक कान्ति से देदीप्यमान, वचस्वी-सगुण वचन वाले, यशस्वी, क्रोध को जीतने वाले, मान को जीतने वाले, माया को जीतने वाले, लोभ को जीतने वाले, पाँचों इन्द्रियों को जीतने वाले, निद्रा को जीतने वाले, परीषहों को जीतने वाले, जीवित रहने की कामना और मृत्यु के भय से रहित, तपःप्रधान अर्थात् अन्य मुनियों की अपेक्षा अधिक तप करने वाले या उत्कृष्ट तप करने वाले, गुण प्रधान अर्थात् गुणों के कारण उत्कृष्ट या उत्कृष्ट संयम-गुण वाले, करणप्रधान-पिण्ड-विशुद्धि आदि करणसत्तरी में प्रधान, चरणप्रधान-महाव्रत आदि चरणसत्तरी में प्रधान, निग्रहप्रधान-अनाचार में प्रवृत्ति न करने के कारण उत्तम, तत्त्व का

निश्चय करने मे प्रधान, इसी प्रकार आर्जवप्रधान, मार्दवप्रधान, लाघवप्रधान अर्थात क्रिया करने के कौशल मे प्रधान, क्षमाप्रधान, गुप्तिप्रधान, मुक्ति (निर्लोभता) मे प्रधान, देवता-अधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्याओ मे प्रधान, मंत्र-प्रधान† अर्थात् हरिणगमेषी आदि देवो से अधिष्ठित विद्याओ मे प्रधान, ब्रह्मचर्य अथवा समस्त कुशल अनुष्ठानो मे प्रधान, वेदप्रधान अर्थात् लौकिक एवं लोकोत्तर आगमों मे निष्णात, नयप्रधान, नियमप्रधान-भॉति-भॉति के अभिग्रह धारण करने मे कुशल, सत्यप्रधान, शौचप्रधान, ज्ञानप्रधान, दर्शनप्रधान, चारित्रप्रधान, उदार अर्थात् अपनी उग्र तपश्चर्या से समीपवर्ती अल्पसत्व वाले मनुष्यो को भय उत्पन्न करने वाले, घोर अर्थात परीषहो, इन्द्रियों और कषायों आदि आन्तरिक शत्रुओ का निग्रह करने मे कठोर, घोरव्रती अर्थात् महाव्रतों को अनन्य सामान्य पालन करने वाले, घोर तपस्वी, उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीरसस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में ही समाविष्ट करके रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, चार ज्ञानो के धनी, पाँच सौ साधुओ के साथ परिवृत, अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे विचरण करते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहॉ चम्पा नगरी थी और जहॉ पूर्णभद्र चैत्य था, उसी जगह आये। आकर यथोचित्त अवग्रह को ग्रहण किया, अर्थात् उपाश्रय की याचना करके उसमे स्थित हुए। अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥४॥

तए णं चंपाए नयरीए परिसा निग्गया। कोणिओ निग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसं पाउब्भूआ, तामेव दिसिं पडिगया।

तत्पश्चात चम्पा नगरी से परिषद् निकली। कूणिक राजा भी (वन्दना करने के लिए) निकला। सुधर्मा स्वामी ने धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुन कर परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

ते णं काले णं ते णं समए णं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स जेट्ठे अंतेवासी अज्जजंबूणामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव अज्ज-सुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति।

† विद्या और मन्त्र का अन्तर इस प्रकार भी बतलाया गया है—जो साधना से सिद्ध हो वह विद्या कहलाती है और जो साधना के बिना केवल पाठ करने से ही सिद्ध हो जाय वह मन्त्र है।



उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा अनगार के ज्येष्ठ शिष्य आर्य जम्बू नामक अनगार थे, जो काश्यप गोत्रीय और सात हाथ ऊँचे शरीर वाले, यावत आर्य सुधर्मा स्थविर से न बहुत दूर, न बहुत समीप अर्थात् उचित स्थान पर, ऊपर घुटने और नीचा मस्तक रखकर ध्यान रूपी कोष्ठ में स्थित होकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तए णं से अज्जजंबूणामे जायसड्ढे, जायसंसए, जायकोउहल्ले, संजातसड्ढे, संजातसंसए, संजातकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नसंसए, उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नसंसए, समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति। उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ। करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी।

अर्थात्–तत्पश्चात् आर्य जंबू नामक अनगार को तत्त्व के विषय मे श्रद्धा (जिज्ञासा) हुई, संशय हुआ, कुतूहल हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा हुई, विशेष रूप से संशय हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ, श्रद्धा उत्पन्न हुई, संशय उत्पन्न हुआ और कुतूहल उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा उत्पन्न हुई, विशेष रूप से संशय उत्पन्न हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ। तव वह उत्थान करके उठ खड़े हुए और उठ करके जहाँ आर्य सुधर्मा स्थविर थे, वहाँ आये। आकर आर्य सुधर्मा स्थविर की तीन बार दक्षिण दिशा से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वाणी से स्तुति की और काया से नमस्कार किया। स्तुति और नमस्कार करके आर्य सुधर्मा स्थविर से न बहुत दूर और न बहुत समीप–उचित स्थान पर स्थित होकर, सुनने की इच्छा करते हुए, सन्मुख दोनों हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले।

स्पष्टीकरण—श्रद्धा का अर्थ यहाँ इच्छा है। जम्बू स्वामी को तत्त्व जानने की इच्छा हुई, क्योंकि 'श्रीवर्धमान स्वामी ने जैसे पाँचवें अङ्ग का अर्थ कहा है, उसी प्रकार छठे अङ्ग का अर्थ कहा है या नहीं?' इस प्रकार का संशय उत्पन्न हुआ। संशय उत्पन्न होने का कारण यह था कि 'पंचम अङ्ग में समस्त पदार्थों का स्वरूप बतला दिया है तो फिर छठे अङ्ग में क्या कहा होगा?' इस प्रकार का कुतूहल हुआ। इस प्रकार श्रद्धा, संशय और कुतूहल मे कार्यकारणभाव है।

जात का अर्थ सामान्य रूप से होना, संजात का अर्थ विशेष रूप से होना, उत्पन्न का अर्थ सामान्य रूप से उत्पन्न होना और समुत्पन्न का अर्थ विशेष रूप से उत्पन्न होना है।

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं, तित्थयरेणं, सयंसंबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवरपुंडरीएणं, पुरिसवर–गंधहत्थिणा, लोगुत्तमेणं लोगनाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोग–पज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, बोहि–दएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मनायगेणं, धम्मसारहिणा, धम्म–वरचाउरंतचक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवरनाणदंसणधरेणं, वियट्टछउमेणं, जिणेणं, जावएणं, तिन्नेणं तारएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोअ-गेणं, सव्वन्नेणं, सव्वदरिसणेणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाह-मपुणरावित्तिअं सासयं ठाणमुवगएणं, पंचमस्स अंगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं अंगस्स णं भंते! णायाधम्मकहाणं के अट्ठे पन्नत्ते? ।

श्रीजम्बू स्वामी ने श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—भगवन्! यदि श्रुतधर्म की आदि करने वाले, गुरूपदेश के बिना स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म–शत्रु का विनाश करने में पराक्रमी होने के कारण पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में गंधहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गंधहस्ती की गंध से ही अन्य हस्ती भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक मे प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धा रूप नेत्र के दाता, धर्ममार्ग के दाता, बोधिदाता, देशविरति और सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्त्ती, कहीं भी प्रतिहत न होने वाले केवलज्ञान दर्शन के धारक, घातिकर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतने वाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियों को जिताने वाले, संसार सागर से स्वयं तिरे हुए और दूसरों को तारने वाले, स्वयं बोध प्राप्त और दूसरों को बोध देने वाले, स्वयं कर्म बन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरों को मुक्त करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव उपद्रवरहित, अचल-चलन आदि क्रिया से रहित, अरुज-शारी-

रिक मानसिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और अपुनरावृत्ति-पुनरागमन से रहित सिद्धिगति नामक शाश्वत स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पाँचवें अंग का यह (जो आपने कहा) अर्थ कहा है, तो भगवन्! छठे अंग ज्ञाताधर्म कथा का क्या अर्थ कहा है?

जंबु त्ति, तए णं अज्जसुहम्मे थेरे अज्जजंबूणामं अणगारं एवं वयासी—एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तंजहा—णायाणि य धम्मकहाओ य।

'हे जम्बू!' इस प्रकार संबोधन करके आर्य सुधर्मा स्थविर ने आर्य जम्बू नामक अनगार से इस प्रकार कहा—जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त ने छठे अंग ज्ञाताधर्मकथांग के दो श्रुतस्कन्ध प्ररूपण किये हैं। वे इस प्रकार—ज्ञात (उदाहरण) और धर्मकथा।

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तंजहा—णायाणि य धम्मकहाओ य, पढमस्स णं भंते! सुयक्खंधस्स समणेणं जाव संपत्तेणं णायाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?

जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं—भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त ने छठे अंग के दो श्रुतस्कन्ध प्ररूपित किये हैं, वह इस प्रकार ज्ञात और धर्मकथा, तो भगवन्! ज्ञात नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के श्रमण भगवान् यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त ने कितने अध्ययन कहे हैं?

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं णायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—उक्खित्तणाए, संघाडे, अंडे, कुम्मे य, सेलगे, तुंबे य, रोहिणी, मल्ली, माइंदी, चंदीमाई य, दावद्दवे, उदगणाए, मंडुक्के, तेयली, विय णंदिफले, अमरकंका, आइण्णे, सुसमाइ य, अवरे य पुंडरीए, णामा एगूणवीसइमे।

हे जम्बू! श्रमण यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त भगवान् महावीर ने ज्ञात नामक श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे हैं। वह इस प्रकार हैं—(१) उत्क्षिप्त

(२) संघाट (३) अंडक (४) कूर्म (५) शैलक (६) तुम्ब (७) रोहिणी (८) मल्ली (९) माकंदी (१०) चन्द्र (११) दावदववृक्ष (१२) उदक (१३) मंडूक (१४) तेतलीपुत्र (१५) नन्दी फल (१६) अमरकंका (द्रौपदी) (१७) आकीर्ण (१८) सुषमा (१९) पुण्डरीक-कुण्डरीक। यह उन्नीस अध्ययनों के नाम हुए।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं णायाणं एगूणवीसा अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—उक्खित्तणाए जाव पुंडरीए य, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् सिद्धिस्थान को प्राप्त भगवान् महावीर ने ज्ञात श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे हैं, यथा—उत्क्षिप्त ज्ञात यावत् पुण्डरीक, तो भगवन् प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं इहेव जंबुद्दीवे, भारहे वासे, दाहिणड्ढभरहे, रायगिहे णामं णयरे होत्था, वण्णओ। गुणसीले चेइए, वण्णओ।

हे जम्बू ! उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भरत में, राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन उववाई सूत्र में वर्णित चम्पा नगरी के समान जान लेना चाहिए। राजगृह के ईशान कोण में गुणशील नामक उद्यान था। उसका वर्णन भी जान लेना चाहिए।

तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए णामं राया होत्था महया हिमवंत० वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो णंदा णामं देवी होत्था सुकुमालपाणिपाया वण्णओ।

अर्थ—उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। वह महाहिमवंत के समान था, इत्यादि वर्णन जान लेना चाहिए। उस श्रेणिक राजा की नन्दा नामक देवी थी। वह सुकुमार हाथों-पैरों वाली थी इत्यादि जान लेना चाहिए।

तस्स णं सेणियस्स पुत्ते णंदा देवीए अत्तए अभए णामं कुमारे होत्था; अहीण जाव सुरूवे, साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-णीति सुप्पउत्त-णय-विहण्णू, ईहापोहमग्गणगवेसण अत्थसत्थमई, विसारए, उप्प-



त्तियाए, वेणइयाए, कम्मइयाए, पारिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेए, सेणियस्स रण्णो वहुसु कज्जेसु य, कुडुंवेसु य, मंतेसु य, गुज्झेसु य. रहस्सेसु य, णिच्छएसु य, आपुच्छणिज्जे. पडिपुच्छणिज्जे, मेढी, पमाणं, आहारे, आलंवणभूए. पमाणभूए, आहारभूए. चक्खु-भूए, सव्वकज्जेसु य, सव्वभूमियासु य लद्धपच्चए, विइण्णवियारे, रज्जधुरचिंतए यावि होत्था। सेणियस्स रण्णो रज्जं च, रट्ठं य, कोसं च, कोट्ठागारं च, वाहणं च, पुरं च, अंतेउरं च, सयमेव समुपेक्खमाणे-समुपेक्खमाणे विहरइ

उस श्रेणिक राजा का पुत्र और नन्दा देवी का आत्मज अभय नामक कुमार था। वह हीनतारहित परिपूर्ण इन्द्रियों वाला यावत् सुरूप था। शाम, दंड, भेद एवं उपप्रदान नीति मे तथा व्यापार नीति की विधि का ज्ञाता था। ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा तथा अर्थशास्त्र मे कुशल था। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियो से युक्त था। वह श्रेणिक राजा के लिए वहुत-से कार्यों में. कौटुम्बिक कार्यों में, मंत्रणा मे, गुह्य कार्यों में, रहस्यमय मामलों में, निश्चय करने में एक वार और वार-वार पूछने योग्य था, अर्थात् श्रेणिक राजा इन सब विषयो में अभयकुमार की सलाह लिया करता था। वह सब के लिए मेढी (खलिहान में गाड़ा हुआ स्तंभ, जिसके चारो ओर घूम-घूम कर वैल धान्य को कुचलते हैं) के समान था, प्रमाण था, आधार था, आलम्बन रूप था, प्रमाणभूत था, आधारभूत था, चक्षुभूत था, सव कार्यों और सव स्थानो मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला था, सब को विचार देने वाला था तथा राज्य की धुरा को धारण करने वाला था। वह स्वयं ही राज्य (शासन) राष्ट्र (देश), कोश, कोठार (अन्नभाण्डार), वल (सेना) और वाहन (सवारी के योग्य हाथी, अश्व आदि), पुर (नगर) और अन्तःपुर की देखभाल करता रहता था।

तस्स णं सेणियस्स रण्णो धारिणीणामं देवी होत्था, सेणियस्स रण्णो इट्ठा जाव विहरइ।

उस श्रेणिक राजा की धारिणी नामक देवी (रानी) थी, वह श्रेणिक राजा की वल्लभा थी, यावत् सुख भोगती हुई रहती थी।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि

छक्कट्ठकलट्ठमट्ठसंठियखंभुग्गयवरसालभंजियउज्जलमणिकणगरयण-थुभियविडंगजालद्धचदणिज्जूहकंतरकणयालिचंदसालियाविभत्तिकलिए, सरसच्छधाऊवलवण्णरइए, बाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे, अब्भिंतरओ पसत्तसुइलिहियचित्तकम्मे, णाणाविहपंचवण्णमणिरयणकोट्टिमतले, पउमलयाफुल्लवल्लिवरपुप्फजाइउल्लोयचित्तियतले, वंदणवरकणगकलस-सुविणिम्मियपडिपुंजियसरसपउमसोहंतदारभाए, पयरगालंबंतमणिमुत्त-दामसुविरइयदारसोहे, सुगंधवरकुसुममउयपम्हलसयणोवयारे, मणहियय-निव्वुइकरे, कप्पूरलवंगमलयचंदणकालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूव-डज्झंतसुरभिमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे, सुगंधवरगंधिए, गंधवट्टिभूए, मणिकिरणपणासियंधयारे, किं बहुणा ? जुइगुणेहिं सुरवरविमाण-वेलंबियवरघरए, तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि, सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बोयणे, दुहओ उन्नए, मज्जेण य गंभीरे, गंगापुलिणवालुयाउद्दाल-सालिसए, उयचियखोमदुगुल्लपट्टपडिच्छिन्ने, अच्छरयमलयनयतय-कुसत्तलिंवसीहकेसरपच्चुत्थए, सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए, सुरम्मे, आइणगरुयबूरणवणीयतुल्लफासे; पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्त-जागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी एगं, महं, सत्तुस्सेहं, रययकूडसन्निहं, नहयलंसि, सोमं, सोमाकारं लीलायंतं जंभायमाणं मुहमइगयं गयं पासित्ता णं पडिबुद्धा।

वह धारिणी देवी किसी समय अपने उत्तम भवन में शय्या पर सो रही थी। वह भवन कैसा था ? उसके बाह्य आलन्दक या द्वार पर तथा मनोज्ञ, चिकने, सुन्दर आकार वाले और ऊँचे खंभो पर अतीव उत्तम पुतलियाँ बनी हुई थीं। उज्ज्वल मणियों, कनक और कर्केतन आदि रत्नों के शिखर, कपोत-पाली, गवाक्ष, अर्धचंद्राकार सोपान, निर्यूहक (दरवाजे के दोनों ओर निकले हुए काष्ठ), अंतर या निर्यूहकों के बीच का भाग; कनकाली तथा चन्द्रसालिका (घर के ऊपर की शाला), आदि घर के विभागों की सुन्दर रचना से युक्त था। स्वच्छ गेरु से उसमें उत्तम रंग किया हुआ था। बाहर से उसमें सफेदी की गई थी, कोमल पाषाण से घिसाई की गई थी, अतएव वह चिकना था। उसके भीतरी भाग में उत्तम और शुचि चित्रों का आलेखन किया गया था। उसका फर्श तरह-तरह की पँचरंगी मणियों और रत्नों से जड़ा हुआ था। उसका

मस्तक के चारों ओर घूमती हुई अंजलि को मस्तक पर धारण करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहती है।

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए जाव नियगवयणमइवयंतं गयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं एयस्स णं देवाणुप्पिया ! उरालस्स जाव सुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?।

अर्थ—देवानुप्रिय ! आज मैं उस पूर्ववर्णित शरीरप्रमाण तकिया वाली शय्या मे सो रही थी, तब यावत् अपने मुख मे प्रवेश करते हुए हाथी को स्वप्न मे देख कर जागी हूँ। हे देवानुप्रिय ! इस उदार यावत् स्वप्न का क्या फल—विशेष होगा ?

तए णं सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव हियए धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयतणू ऊससियरोमकूवे तं सुमिणं उग्गिण्हइ। उग्गिण्हित्ता ईहं पविसति, पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गहं करेइ। करित्ता धारिणिं देविं ताहिं जाव हियय-पल्हायणिज्जाहिं मिउमहुररिभियगंभीरसस्सिरियाहिं वग्गूहिं अणुवूहे-माणे एवं वयासी।

अर्थ—तत्पश्चात् श्रेणिक राजा धारिणी देवी से इस अर्थ को सुन कर तथा हृदय में धारण करके हर्षित हृदय हुआ, मेघ की धाराओ से आहत कदंब वृक्ष के सुगंधित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा। उसे रोमांच हो आया। उसने स्वप्न का अवग्रहण किया—सामान्य रूप से विचार किया। अव-ग्रहण करके विशेष अर्थ के विचार रूप ईहा में प्रवेश किया। ईहा मे प्रवेश करके अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धिविज्ञान से अर्थात् औत्पत्तिकी आदि बुद्धियो से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया। निश्चय करके धारिणी देवी से हृदय को आह्लाद उत्पन्न करने वाली मृदु, मधुर, रिभित, गंभीर और सश्रीक वाणी से प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा।

उराले णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे दिट्ठे, कल्लाणे णं तुमे देवा-णुप्पिए सुमिणे दिट्ठे, सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए णं तुमे देवाणुप्पिए !

सुमिणे दिट्ठे, आरोग्गतुट्ठिदीहाउयकल्लाणमंगल्लकारए णं तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए, पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए रज्जलाभो भोगसोक्खलाभो ते देवाणुप्पिए, एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाण विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसयं कुलतिलकं कुलकित्तिकरं, कुलवित्तिकरं कुलणंदिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं जाव दारयं पयाहिसि।

अर्थ—हे देवानुप्रिये! तुमने उदार—प्रधान स्वप्न देखा है, हे देवानुप्रिये! तुमने कल्याणकर स्वप्न देखा है, हे देवानुप्रिये! तुमने शिव—उपद्रवविनाशक, धन्य—धन की प्राप्ति कराने वाला, मंगलमय—सुखकारी और सश्रीक—सुशोभन स्वप्न देखा है। देवी! आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल करने वाला स्वप्न तुमने देखा है। देवानुप्रिये! इस स्वप्न को देखने से तुम्हे अर्थ का लाभ होगा, देवानुप्रिये! तुम्हें पुत्र का लाभ होगा, देवानुप्रिये! तुम्हे राज्य का लाभ होगा, भोग का तथा सुख का लाभ होगा। निश्चय ही, देवानुप्रिये! तुम पूरे नव मास और साढ़े सात रात्रि—दिन व्यतीत होने पर हमारे कुल की ध्वजा के समान, कुल के लिए दीपक के सामन, कुल मे पर्वत के समान किसी से पराभूत न होने वाला, कुल का भूषण, कुल का तिलक, कुल की कीर्त्ति बढ़ाने वाला, कुल की आजीविका बढ़ाने वाला, कुल को आनन्द प्रदान करने वाला, कुल का यश बढ़ाने वाला, कुल का आधार, कुल मे वृक्ष के समान आश्रयणीय, और कुल की वृद्धि करने वाला तथा सुकोमल हाथ—पैर वाला पुत्र यावत् प्रसव करोगी।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिन्नविपुलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ। तं उराले णं तुमे देवीए सुमिणे दिट्ठे, जाव आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणकारए णं तुमे देवी! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवूहेइ।

वह बालक बाल्यावस्था को पार करके, कला आदि के ज्ञान में परिपक्व होकर, यौवन को प्राप्त होकर शूर, वीर और पराक्रमी होगा। वह विस्तीर्ण और विपुल सेना वाला तथा वाहनो वाला होगा। राज्य का अधिपति राजा



होगा। अतएव, देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है। देवी! तुमने आरोग्यकारी, तुष्टिकारी, दीर्घायुष्यकारी और कल्याणकारी स्वप्न देखा है। इस प्रकार कह कर राजा बार-बार उसकी प्रशंसा करने लगा।

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रएणा एवं वुत्ता समाणी हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहियं जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई। उसका हृदय आनन्दित हो गया। वह दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली—

एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेयं अवितहमेयं असंदिद्धमेयं इच्छि-यमेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं इच्छियपडिच्छियमेयं, सच्चे णं एसमट्ठे जं णं तुब्भे वयह त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ। पडि-च्छित्ता सेणिएणं रएणा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणिकणग-रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसी-अइ। निसीइत्ता एवं वयासी—

देवानुप्रिय! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है। आपका कथन सत्य है, असत्य नहीं है, यह कथन संशय रहित है। देवानुप्रिय! आपका कथन मुझे इष्ट है, अत्यन्त इष्ट है, और इष्ट तथा अत्यन्त इष्ट है। आपने मुझ से जो कहा है सो यह अर्थ सत्य है। इस प्रकार कह कर धारिणी देवी स्वप्न को भली-भाँति अंगीकार करती है। अंगीकार करके राजा श्रेणिक की आज्ञा पाकर नाना प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन से उठती है। उठ कर जिस जगह अपनी शय्या थी, वहीं आती है। आकर शय्या पर बैठती है और बैठ कर इस प्रकार (मन ही मन) कहती है—सोचती है—

मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुमिणे अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडि-हम्मिहि त्ति कट्टु देवयगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी विहरइ।

'मेरा यह स्वरूप से उत्तम और फल से प्रधान तथा मंगलमय स्वप्न अन्य अशुभ स्वप्नों से नष्ट न हो जाय' ऐसा सोच कर धारिणी देवी, देव और

गुरुजन संबंधी प्रशस्त धार्मिक कथाओं द्वारा अपने शुभ स्वप्न की रक्षा करने के लिए जागरण करती हुई विचरने लगी।

तए णं सेणिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बाहिरियं उवट्ठाणसालं अज्ज सविसेसं परमरम्मं गंधोदगसित्तसुइयसंमज्जिओवलित्तं पंचवन्नसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह कारवेह य; करित्ता य कारवित्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने प्रभात काल के समय कौटुम्बिक* पुरुषों को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! आज बाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) को शीघ्र ही विशेष रूप से परम रमणीय, गंधोदक से सिंचित, साफ-सुथरी, लीपी हुई, पांच वर्णों के सरस सुगंधित एवं बिखरे हुए फूलों के समूह रूप उपचार से युक्त, कालागुरु, कुंदुरुक्क, तुरुष्क (लोभान) तथा धूप के जलाने से महकती हुई गंध से व्याप्त होने के कारण मनोहर, श्रेष्ठ सुगंध के चूर्ण से सुगंधित तथा सुगंध की गुटिका (वट्टी) के समान करो और कराओ। ऐसी करके तथा करवा करके मेरी यह आज्ञा वापिस सौंपो, अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दो।

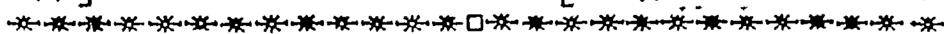
तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित और सन्तुष्ट हुए। (उन्होंने आज्ञानुसार कार्य करके) आज्ञा वापिस सौंपी।

तए णं सेणिए राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि, अह पंडुरे पभाए, रत्तासोगपगास-किंसुय-

---

*प्राचीन काल में सेवकों को समाज में कितना सन्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था, यह बात जैनशास्त्रों से भलीभाँति विदित होती है। उन्हें 'कौटुम्बिक पुरुष' अर्थात् परिवार का सदस्य समझा जाता था और महामहिम मगधसम्राट् श्रेणिक जैसे पुरुष भी उन्हें 'देवानुप्रिय' कह कर सम्बोधन करते थे। यह ध्यान देने योग्य है। —अनुवादक



सुयमुह-गुंजद्धराग-बंधुजीवग-पारावयचलणनयण-परहुयसुरत्तलोयण-जासुमिणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलस-हिंगुलयनियररूवाइरेगरेहन्तसस्सिरीए दिवागरे अहकमेण उदिए, तस्स दिणकरपरंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे, बालातवकुंकुमेणं खइए व्व जीवलोए, लोयणविसआणुआसविगसंतविसददंसियम्मि लोए, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयणिज्जाओ उट्ठेति ।

तत्पश्चात स्वप्न वाली रात्रि के बाद दूसरे दिन रात्रि प्रकाशमान प्रभात रूप हुई । प्रफुल्लित कमलों के पत्ते विकसित हुए, काले मृग के नेत्र निद्रारहित होने से विकस्वर हुए । फिर वह प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण वाला हुआ । लाल अशोक की कान्ति, पलाश के पुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के अर्द्धभाग, दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर और नेत्र, कोकिला के नेत्र, जामोद के फूल, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश तथा हिंगलू के समूह की लालिमा से भी अधिक लालिमा से जिसकी श्री सुशोभित हो रही है, ऐसा सूर्य क्रमशः उदित हुआ । सूर्य की किरणों का समूह नीचे उतर कर अंधकार का विनाश करने लगा । बाल-सूर्य रूपी कुंकुम से मानो जीव लोक व्याप्त हो गया । नेत्रों के विषय का प्रचार होने से विकसित होने वाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा । सरोवरों में स्थित कमलों के वन को विकसित करने वाला, तथा सहस्र किरणों वाला दिवाकर तेज से जाज्वल्यमान हो गया । ऐसा होने पर राजा श्रेणिक शय्या से उठा ।

उट्ठित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अणेगवायामजोगवग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहि संते परिस्सन्ते, सयपागेहिं सहस्सपागेहिं सुगंधवरतेल्लमाइएहिं पीणणिज्जेहिं दीवणिज्जेहि दप्पणिज्जेहिं मदणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं, सव्विंदियगायपल्हायणिज्जेहि अब्भंगएहिं अब्भंगिए समाणे, तेल्लचम्मंसि पडिपुण्णपाणिपायसुकुमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहि निउणेहि निउणसिप्पोवगएहिं जियपरिस्समेहिं अब्भंगणपरिमद्दणुव्वट्टणकरणगुणनिम्माएहि अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए संबाहणाए संबाहिए समाणे अवगयपरिस्समे नरिंदे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ ।

शय्या से उठ कर राजा श्रेणिक जहाँ व्यायामशाला थी, वहीं आता है। आकर व्यायामशाला मे प्रवेश करता है, प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम, योग्य (भारी पदार्थों को उठाना), वल्गन (कूदना), व्यामर्दन (भुजा आदि अङ्गो को परस्पर मरोड़ना), कुश्ती तथा करण (बाहुओं को विशेष प्रकार से मोड़ना), रूप कसरत से श्रेणिक राजा ने श्रम किया और खूब श्रम किया, अर्थात् सामान्यतः शरीर का और विशेषतः प्रत्येक अङ्गोपाङ्ग का व्यायाम किया। तत्पश्चात् शतपाक तथा सहस्रपाक आदि श्रेष्ठ सुगंधित तेल आदि अभ्यंगनों से जो प्रीति उत्पन्न करने वाले अर्थात् रुधिर आदि धातुओ को सम करने वाले, जठराग्नि को दीप्त करने वाले, दर्पणीय अर्थात् शरीर का बल बढ़ाने वाले, मदनीय (कामवर्धक) बृंहणीय (मांसवर्धक) तथा समस्त इन्द्रियों को एवं शरीर को आह्लादित करने वाले थे, राजा श्रेणिक ने अभ्यंगन कराया। फिर मालिश किये शरीर के चर्म को, परिपूर्ण हाथ-पैर वाले तथा कोमल तल वाले, छेक (अवसर के ज्ञाता), दक्ष (चटपट कार्य करने वाले), पट्ठे, कुशल (मर्दन करने मे चतुर), मेधावी (नवीन कला को ग्रहण करने मे समर्थ), निपुण (क्रीड़ा करने मे कुशल), निपुण (मर्दन के सूक्ष्म रहस्यो के ज्ञाता), परिश्रम को जीतने वाले, अभ्यंगन मर्दन और उद्वर्त्तन करने के गुण में पूर्ण पुरुषों द्वारा अस्थियों को सुखकारी, मांस को सुखकारी, त्वचा को सुखकारी तथा रोमो को सुखकारी-इस प्रकार चार तरह की संबाधना से (मर्दन से) श्रेणिक के शरीर का मर्दन किया गया। इस मालिश और मर्दन से राजा का परिश्रम दूर हो गया-थकावट मिट गई। वह व्यायामशाला से बाहर निकला।

पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता समंतजालाभिरामे विचित्तमणिरयणकोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसन्ने, सुहोदगेहिं पुप्फोदगेहिं गंधोदएहिं, सुद्धोदएहिं य पुणो पुणो कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए, तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे अहतसुमहग्घदूसरयणसुसंवुए सरससुरभिगोसीस चंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावन्नगविलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहारतिसरपालंबपलंबमाणकडिसुत्तसुकयसोहे पिणद्धगेविज्जे अगुलेज्जगललियंगललियकयाभरणे णाणामणिकडगतुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुज्जोइयाणणे मउडदित्तसिरए हारोत्थयसुकयरइय-

वच्छे पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलंगुलीए णाणामणि-कणगरयणविमलमहरिहनिउणोवियमिसिमिसंतविरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठ-लट्ठसंठियपसत्थआविद्धवीरवलए, किं बहुणा ? कप्परुक्खए चेव सुअलंकियविभूसिए नरिंदे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं उभओ चउचामरवालवीइयंगे मंगलजयसद्दकयालोए अणेगगणनायग-दंडनायग-राईसर--तलवर--माडंबिय--कोडंबिय-मंति-महामंति--गणग--दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि--सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए विव गहगणदिप्पंतरिक्ख-तारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे संनिसन्ने।

व्यायामशाला से बाहर निकल कर श्रेणिक राजा जहाँ मज्जनगृह (स्नानागार) था, वहाँ आता है। आकर मज्जनगृह में प्रवेश करता है। प्रवेश करके चारो ओर जालियों से मनोहर, चित्र-विचित्र मणियों और रत्नो के फर्श वाले तथा रमणीय स्नानमंडप के भीतर विविध प्रकार के मणियों और रत्नों की रचना से चित्र-विचित्र स्नान करने के पीठ-बाजौठ-पर सुखपूर्वक बैठा। उसने पवित्र स्थान से लाये हुए शुभ जल से, पुष्पमिश्रित जल से, सुगंधमिश्रित जल से और शुद्ध जल से बार-बार कल्याणकारी और उत्तम स्नान विधि से स्नान किया। उस कल्याणकारी और उत्तम स्नान के अन्त मे रक्षापोटली आदि सैकड़ों कौतुक किये गये। तत्पश्चात् पक्षी के पंख के समान अत्यन्त कोमल, सुगंधित और कषाय रंग से रंगे हुए वस्त्र से शरीर को पोंछा। कोरा बहुमूल्य और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किया। सरस और सुगंधित गोशीर्ष चन्दन से उसके शरीर पर विलेपन किया गया। शुचि पुष्पों की माला पहनी। केसर आदि का लेपन किया गया। मणियों के और स्वर्ण के अलंकार धारण किये। अठारह लड़ों के हार, नौ लड़ों के अर्धहार, तीन लड़ो के छोटे हार तथा लम्बे लटकते हुए कटिसूत्र से शरीर की सुन्दर शोभा बढ़ाई। कंठ में कंठा पहना। उंगलियों मे अंगूठियाँ धारण की। सुन्दर अंग पर अन्यान्य सुन्दर आभरण धारण किये। अनेक मणियों के बने कटक और त्रुटिक नामक आभूषणों से उसके हाथ स्तंभित से प्रतीत होने लगे। अतिशय रूप के कारण राजा अत्यन्त सुशोभित हो उठा। कुंडलों के कारण उसका मुखमंडल उद्दीप्त हो गया। मुकुट से मस्तक प्रकाशित होने लगा। वक्ष-हार से आच्छादित होने के कारण अतिशय प्रीति उत्पन्न करने लगा।

लम्बे लटकते हुए दुपट्टे से उसने सुन्दर उत्तरासंग किया। मुद्रिकाओं से उसकी उंगलियाँ पीली दीखने लगी। नाना भाँति की मणियों सुवर्ण और रत्नो से निर्मल, महामूल्यवान्, निपुण कलाकारो द्वारा निर्मित, चमचमाते हुए, सुरचित, भलीभाँति मिली हुई सन्धियो वाले, विशिष्ट प्रकार के, मनोहर, सुन्दर आकार वाले और प्रशस्त वीरवलय धारण किये। अधिक कहने से क्या लाभ? भलीभांति मुकुट आदि आभूषणो से अलंकृत और वस्त्रो से विभूपित राजा श्रेणिक कल्पवृक्ष के समान दिखाई देने लगा। कोरंट वृक्ष के पुष्पो की माला वाला छत्र उसके मस्तक पर धारण किया गया। आजू-बाजू चार चामरो से उसका शरीर वींजा जाने लगा। राजा पर दृष्टि पड़ते ही लोग 'जय-जय' का मांगलिक घोष करने लगे। अनेक गणनायक (प्रजा मे वड़े), दंडनायक (कटक के अधिपति), राजा (मांडलिक राजा), ईश्वर (युवराज अथवा ऐश्वर्यशाली), तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त पट्ट वाले), मांडलिक (कतिपय ग्रामो के अधिपति), कौटुम्बिक (कतिपय कुटुम्बो के स्वामी), मंत्री, महामन्त्री, ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य, चेट (पैरों के पास रहने वाले सेवक) पीठमर्द (सभा से समीप रहने वाले सेवक मित्र), नागरिक लोग, व्यापारी, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपाल—इन सब के साथ घिरा हुआ, ग्रहो के समूह में देदीप्यमान तथा नक्षत्रों और ताराओं में चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन वाला राजा श्रेणिक मज्जनगृह से इस प्रकार निकाला जैसे उज्ज्वल महामेघों मे से चन्द्रमा निकाला हो। मज्जनगृह से निकल कर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (सभा) थी, वहीं आया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ।

तए णं से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामंते उत्तरपुरच्छिमे दिसिभागे अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थपच्चुत्थुयाइं सिद्धत्थमंगलोवयारकयसंतिकम्माइं रयावेइ। रयावित्ता णाणामणिरयणमंडियं अहियपेच्छणिज्जरूवं महग्घवरपट्टणुग्गयं सण्हबहुभत्तिसयचित्तट्ठाणं ईहामियउसभतुरयणर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्तं सुखचियवरकणगपवर-पेरंतदेसभागं अब्भिंतरियं जवणियं अंछावेइ, अंछावेत्ता अच्छरगमउअमसूरगउच्छइयं धवलवत्थपच्चत्थुयं विसिट्ठं अंगसुहफासयं सुमउयं धारिणीए देवीए भद्दासणं रयावेइ। रयावेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ। सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अपने समीप ईशान कोण में श्वेत वस्त्र से आच्छादित तथा सरसो के मांगलिक उपचार से जिनमें शान्ति कर्म किया गया



है ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है। रखवा करके नाना मणियों और रत्नों से मंडित, अतिशय दर्शनीय, बहुमूल्य और श्रेष्ठ नगर में बनी हुई, कोमल एवं सैकड़ो प्रकार की रचना वाले चित्रों का स्थानभूत, ईहामृग (भेड़िया), वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु जाति के मृग, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता और पद्मलता आदि के चित्रो से युक्त, श्रेष्ठ स्वर्ण के तारों से भरे हुए सुशोभित किनारों वाली जवनिका (पर्दा) सभा के भीतरी भाग में बँधवाई। जवनिका बँधवा कर उसके भीतरी भाग में धारिणी देवी के लिए एक भद्रासन रखवाया। वह भद्रासन आस्तरक (खोली) और कोमल तकिया से ढँका था। श्वेत वस्त्र उस पर बिछा हुआ था। सुन्दर था। स्पर्श से अंगो को सुख उत्पन्न करने वाला था और अतिशय मृदु था। इस प्रकार आसन बिछवा कर राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया। बुलवा कर इस प्रकार कहा—

देवानुप्रियो! अष्टांग महानिमित्त-ज्योतिष के सूत्र और अर्थ के पाठक तथा विविध शास्त्रो में कुशल स्वप्न पाठको को शीघ्र ही बुलाओ, और बुला कर शीघ्र ही इस आज्ञा को वापिस लौटाओ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवो तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमंति। पडिनिक्खमित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुमिणपाढगगिहाणि तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सद्दावेंति।

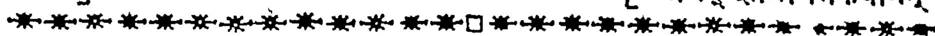
तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित यावत् आनन्दित-हृदय हुए। दोनों हाथ जोड़ कर दसों नखो को इकट्ठा करके मस्तक पर घुमा कर अंजलि जोड़ कर 'हे देव! ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर विनय के साथ आज्ञा के वचनो को स्वीकार करते हैं और स्वीकार करके श्रेणिक राजा के पास से निकलते हैं। निकल कर राजगृह के बीचोंबीच होकर जहाँ स्वप्नपाठकों के घर थे, वहाँ पहुँचते है और पहुँच कर स्वप्नपाठकों को बुलाते हैं।

तए णं ते सुमिणपाढगा, सेणियस्स रन्नो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा हरियालियसिद्धत्थयकयमुद्धाणा

सएहिं सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता रायगिहस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स रन्नो भवणवडेंसगदुवारे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता एगयओ मिलयन्ति। मिलित्ता सेणियस्स रन्नो भवणवडेंसगदुवारेणं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति। सेणिएणं रन्ना अच्चिय वंदिय पूइय माणिय सक्कारिया सम्माणिया समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति।

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुए। उन्होंने स्नान किया, कुल देवता का पूजन किया, यावत् कौतुक (मसी तिलक आदि) और मंगल प्रायश्चित (सरसों, दही चावल आदि का प्रयोग) किया। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत किया, मस्तक पर दूर्वा तथा सरसो मंगलनिमित्त धारण किये। फिर अपने-अपने घरों से निकले। निकल कर राजगृह के बीचोबीच होकर जहाँ श्रेणिक राजा के मुख्य महल का द्वार था, वहाँ आये। आकर सब एक साथ मिले। एक साथ मिल कर श्रेणिक राजा के मुख्य महल के द्वार से भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी और जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आये। आकर श्रेणिक राजा को जय और विजय शब्दों से वधाया। श्रेणिक राजा ने चन्दनादि से उनकी अर्चना की, गुणों की प्रशंसा करके वन्दन किया, पुष्पों द्वारा पूजा की, आदरपूर्ण दृष्टि से देख कर एवं नमस्कार करके मान किया, फल-वस्त्र आदि देकर सत्कार किया और अनेक प्रकार की भक्ति करके सन्मान किया। फिर वे स्वप्नपाठक पहले से बिछाए हुए भद्रासनों पर अलग-अलग बैठे।

तए णं सेणिए राया जवणियंतरियं धारिणिं देविं ठवेइ, ठवेत्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणपाढए एवं वयासी — एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जसि जाव महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं एयस्स णं देवाणुप्पिया! उरालस्स जाव सस्सिरीयस्स महासुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?



तत्पश्चात श्रेणिक राजा ने जवनिका के पीछे धारिणी देवी को बिठलाया। फिर हाथों मे पुष्प और फल लेकर अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! आज उस प्रकार की उस (पूर्ववर्णित) शय्या पर सोई हुई धारिणी देवी यावत् महास्वप्न देख कर जागी है। तो देवानुप्रियो ! इस उदार यावत् सश्रीक महास्वप्न का क्या कल्याणकारी फल-विशेष होगा ?

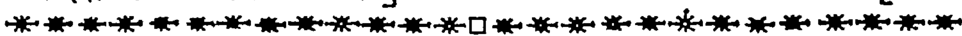
तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियया तं सुमिणं सम्मं ओगिण्हंति। ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालेंति, संचालित्ता तस्स सुमिणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं वयासी—

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा से इस अर्थ को सुन कर और हृदय मे धारण करके हृष्ट, तुष्ट आनन्दितहृदय हुए। उन्होंने उस स्वप्न का सम्यक् प्रकार से अवग्रहण किया, अवग्रहण करके ईहा (विचारणा) में प्रवेश किया; प्रवेश करके परस्पर एक-दूसरे के साथ विचार-विमर्श किया। विचार-विमर्श करके स्वप्न का अपने आपसे अर्थ समझा, दूसरों का अभिप्राय जान कर विशेष अर्थ समझा, आपस में उस अर्थ को पूछा, अर्थ का निश्चय किया और फिर तथ्य अर्थ का निश्चय किया वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के सामने स्वप्नशास्त्रों का बार-बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—

एवं खलु अम्हं सामी ! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा, तीसं महासुमिणा बावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा। तत्थ णं सामी ! अरहंतमायरो वा, चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतंसि वा चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झन्तिः—

तंजहा—गयउसभसीहअभिसेय—दामससिदिणयरं झयं कुंभं।
पउमसरसागरविमाण—भवणरयणुच्चयसिहिं च ॥

हे स्वामिन् ! इस प्रकार हमारे स्वप्नशास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न—कुल मिलाकर ७२ स्वप्न हमने देखे है। अरिहंत की माता और



चक्रवर्त्ती की माता अरिहन्त और चक्रवर्त्ती के गर्भ में आने पर इन तीस महा-स्वप्नों में से चौदह स्वप्न देख कर जागती हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) हाथी (२) वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पों की माला (६) चन्द्र (७) सूर्य (८) ध्वजा (६) पूर्ण कुंभ (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) क्षीरसागर (१२) विमान अथवा भवन* (१३) रत्नों की राशि और (१४) अग्नि।

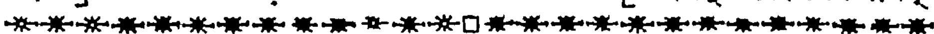
वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नतरे सत्त महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झन्ति। बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अण्णयरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झन्ति। मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरं एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झन्ति।

जब वासुदेव गर्भ मे आते हैं तो वासुदेव की माता इन चौदह महा-स्वप्नों में से किन्हीं भी सात महास्वप्नों को देखकर जागृत होती हैं। जब बल-देव गर्भ में आते हैं तो बलदेव की माता इन चौदह स्वप्नों में से किन्हीं चार स्वप्नों को देखकर जागृत होती है। जब मांडलिक राजा गर्भ में आता है तो मांडलिक राजा की माता इन चौदह स्वप्नो में से कोई एक महास्वप्न देख कर जागृत होती है।

इमे य णं सामी! धारिणीए देवीए एगे महासुमिणे दिट्ठे। तं उराले णं स्वामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे, जाव आरोग्गतुट्ठि-दीहाउकल्लाणमंगल्लकारए णं स्वामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो सामी! सोक्खलाभो सामी! भोगलाभो सामी! पुत्तलाभो रज्जलाभो, एवं खलु सामी! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं जाव दारगं पयाहिसि। से वि य णं दारए उम्मुक्कबाल-भावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्न-विउलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा। तं उराले णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि जाव दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवूहेंति।

---

*देवलोक से च्युत होकर आवें तो विमान और नरक से उद्वर्त्तन करके आवें तो भवन स्वप्न में दिखाई देता है।



स्वामिन् ! धारिणी देवी ने इन महास्वप्नों में से एक महास्वप्न देखा है; अतएव स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है, यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी, स्वामिन् ! धारिणी देवी ने स्वप्न देखा है। स्वामिन् ! इससे आपको अर्थ का लाभ होगा। स्वामिन् ! सुख का लाभ होगा। स्वामिन् ! भोग का लाभ होगा, पुत्र का लाभ होगा। स्वामिन् ! इस प्रकार स्वामिन् ! धारिणी देवी पूरे नौ मास व्यतीत होने पर यावत् पुत्र को जन्म देगी वह पुत्र भी बाल-वय को पार करके, गुरु की साक्षी मात्र से अपने ही बुद्धिवैभव से समस्त कलाओं का ज्ञाता होकर, युवावस्था को प्राप्त करके संग्राम में शूर, आक्रमण करने में वीर और पराक्रमी होगा। विस्तीर्ण और विपुल बल-वाहन वाला होगा। राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा अपनी आत्मा को भावित करने वाला अनगार होगा। अतएव हे स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है, यावत् आरोग्यकारक, तुष्टिकारक आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाला स्वप्न देखा है। इस प्रकार कह कर स्वप्नपाठक बार-बार उस स्वप्न की सराहना करने लगे।

तए णं सेणिए राया तेसिं सुमिणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए करयल जाव एवं वयासी—

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा उन स्वप्नपाठकों से इस अर्थ को सुन कर और हृदय में धारण करके हृष्ट तुष्ट एवं आनन्दितहृदय हो गया और हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला—

एवमेयं देवाणुप्पिया ! जाव जन्नं तुब्भे वदह त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ। पडिच्छित्ता ते सुमिणपाढए विपुलेणं असणपाण खाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेण य सक्कारेइ संमाणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीतिदाणं दलयइ। दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

हे देवानुप्रियो ! जो तुम कहते हो सो वैसा ही है—सत्य है; इस प्रकार कह कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करके उन स्वप्न-पाठकों को विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, और वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारों से सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य प्रीतिदान देता है और दान देकर विदा करता है।

तए णं से सेणिए राया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिए! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा जाव एगं महासुमिणं जाव भुज्जो भुज्जो अणुवूहइ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा सिंहासन से उठा और जहाँ धारिणी देवी थी, वहीं आया। आकर धारिणी देवी से इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न कहे हैं, उनमें से तुमने एक महास्वप्न देखा है। इत्यादि स्वप्नपाठकों के कथनानुसार सब कहता है और बार-बार उसकी अनुमोदना करता है।

तए णं धारिणी देवी सेणियस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियया तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ। पडिच्छित्ता जेणेव सए वासघरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलि-कम्मा जाव विपुलाहिं जाव विहरइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी, श्रेणिक राजा से इस अर्थ को सुन कर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुई, यावत् आनन्दित हृदय हुई। उसने उस स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया। अंगीकार करके जहाँ अपना वासगृह था वहाँ आई। आकर स्नान करके तथा बलिकर्म अर्थात् कुलदेवता की पूजा करके यावत् विपुल भोग भोगती हुई विचरने लगी।

तए णं तीसे धारिणीए देवीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गब्भस्स दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे अकाल-मेहेसु दोहले पाउब्भवित्था।

तत्पश्चात् धारिणी देवी के दो मास व्यतीत हो जाने पर जब तीसरा मास चल रहा था तब उस गर्भ के दोहदकाल के अवसर पर इस प्रकार का अकाल मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ।

धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, सपुन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ, कयपुन्नाओ, कयलक्खणाओ, कयविहवाओ, सुलद्धे णं तासिं माणुस्सए जम्मजीवियफले, जाओ णं मेहेसु अब्भुग्ग-

एसु अब्भुज्ञएसु अब्भुन्नएसु अब्भुट्ठिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सफुसिएसु सथणिएसु धंतधोतरुप्पपट्ट-अंक-संख-चंद-कुंद-सालि-पिट्ठरासिसमप्पभेसु चिउर-हरियालभेय-चंपग-सण-कोरंट-सरिसयपउमरयसमप्पभेसु. लक्खारस-सरसरत्तकिसुय-जासुमणरत्तबंधुजीवगजातिहिंगुलयसरसकुंकुम-उरब्भससरुहिर-इंदगोवगसमप्पभेसु, वरहिणनील-गुलियमुग-चास-पिच्छ भिंगपत्त-सासग-नीलुप्पलनियर-नवसिरीसकुसुमणवसद्दलसमप्पभेसु, जच्चंजण-भिगभेयरिट्ठग-भमरावलि-गवल गुलिय-कज्जलसमप्पभेसु, फुरंतविज्जुयसगज्जिएसु वायवस-विपुलगगणचवलपरिसक्किरेसु निम्मलवरवारिधारापगलिय-पयंडमारुयसमाहयसमोत्थरंतउवरिउवरितुरियवासं पवासिएसु. धारापहकरणिवायनिव्वावियमेइणितले हरियगणकंचुए, पल्लवियपायवगणेसु, वल्लिवियाणेसु पसरिएसु, उन्नएसु सोभग्गमुवागएसु. नगेसु नएसु वा, वेभारगिरिप्पवायतडकडगविमुक्केसु उज्झरेसु, तुरियपहावियपलोट्टफेणाउलं सकलुसं जलं वहंतीसु गिरिनदीसु, सज्जज्जुणनीवकुडयकंदलसिलिंधकलिएसु उववणेसु, मेहरसियहट्ठतुट्ठचिट्ठियहरिसवसपमुक्ककंठकेकारवं मुयंतेसु वरहिणेसु, उउवसमयजणियतरुणसहयरिपणच्चिएसु, नवसुरभिसिलिंधकुडयकंदलकलंवगंधद्धणिं मुयंतेसु उववणेसु, परहुयरुयरिभितसंकुलेसु उद्दायंतरत्तइंदगोवयथोवयकारुन्नविलवितेसु ओणयतणमंडिएसु दद्दुरपयंपिएसु संपिंडियदरियभमरमहुकरिपहकरपरिलिंतमत्तछप्पयकुसुमासवलोलमधुरगुंजंतदेसभाएसु उववणेसु, परिसामियचंदसूरगहगणपणट्ठनक्खत्ततारगपहे इंदाउहबद्धचिंधपट्टंसि अंबरतले उड्डीणवलागपंतिसोभंतमेहविंदे, कारंडगचक्कवायकलहंसउस्सुयकरे संपत्ते पाउसम्मि काले, ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ताओ, किं ते ? वरपायपत्तणेउरमणिमेहलहाररइयउचियकडगखुड्डयविचित्तवरवलयथंभियभुयाओ, कुंडलउज्जोवियाणणाओ, रयणभूसियंगाओ, नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिससंजुत्तं हयलालापेलवाइरेयं धवलकणयखचियन्तकम्मं आगासफलिहसरिसप्पभं अंसुअं पवरपरि-

हियाओ, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जाओ, सव्वोउयसुरभिकुसुमपवरमल्ल-सोभितसिराओ, कालागरुधूवधूवियाओ, सिरिसमाणवेसाओ, सेयणाग-गंधहत्थिरयणं दुरूढाओ समाणीओ, सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंडसंखकुंददगरयअमयमहिय-फेणपुंजसंनिगासचउचामरवालवीजियंगीओ, सेणिएणं रन्ना सद्धिं हत्थिखंधवरगएणं, पिट्ठओ समणुगच्छमाणीओ चउरंगिणीए सेणाए, महया हयाणीएणं, गयाणीएणं, रहाणीएणं, पायत्ताणीएणं, सव्वड्-ढीए सव्वज्जुइए जाव निग्घोसणादियरवेणं रायगिहं नगरं सिंघाडग-तियचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु आसित्तसित्तसुचियसंमज्जिओव-लित्तं जाव सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं अवलोएमाणीओ, नागरजणेणं अभिणंदिज्जमाणीओ, गुच्छलया-रुक्ख-गुम्म-वल्लि-गुच्छओच्छाइयं सुरम्मं वेभारगिरिकडगपायमूलं सव्वओ समंता आहिंडेमाणीओ आहिंडेमाणीओ दोहलं विणियंति । तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुव-गएसु जाव दोहलं विणिज्जामि ।

जो माताएँ अपने अकाल-मेघ के दोहद को पूर्ण करती हैं, वे माताएँ धन्य हैं, वे पुण्यवती हैं, वे कृतार्थ हैं, उन्होंने पूर्वजन्म मे पुण्य का उपार्जन किया है, वे कृतलक्षण हैं, अर्थात् उनके शरीर के लक्षण सफल हैं, उनका वैभव सफल है, उन्हें मनुष्य संबंधी जन्म और जीवन का फल प्राप्त हुआ है, अर्थात् उनका जन्म और जीवन सफल है। आकाश में मेघ उत्पन्न होने पर, क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होने पर, उन्नति को प्राप्त होने पर, वरसने की तैयारी में होने पर, गर्जना युक्त होने पर, विद्युत् से युक्त होने पर, छोटी-छोटी बरसती हुई बूंदो से युक्त होने पर, मंद-मंद ध्वनि से युक्त होने पर, अग्नि जला कर शुद्ध की हुई चांदी के पतरे के समान, अंक नामक रत्न, शंख, चन्द्रमा, कुन्दपुष्प और चावल के आटे के समान शुक्ल वर्ण वाले, चिकुर नामक रंग, हरताल के टुकड़े, चम्पा के फूल, सन के फूल (अथवा सुवर्ण), कोरंट-पुष्प, सरसों के फूल और कमल के रज के समान पीत वर्ण वाले, लाख के रस, सरस रक्तवर्ण किंशुक के पुष्प, जासु के पुष्प, लाल रंग के बंधुजीवक के पुष्प, उत्तम जाति के हिंगलू, सरस कंकु, बकरा और खरगोश के रक्त और इन्द्रगोप (सावन की डोकरी) के समान लाल वर्ण वाले, मयूर, नीलम मणि, गुलिका (गोली) तोते के पख, चाष पक्षी के पंख, भ्रमर के पख, सासक नामक वृक्ष, या प्रियंगुलता.

नील कमलो के समूह, ताजा शिरीष कुसुम और घास के समान नील वर्ण वाले, उत्तम अंजन, काले भ्रमर या कोयला, रिष्टरत्न, भ्रमरसमूह, भैंसे के सींग की गोली और कज्जल के समान काले वर्ण वाले, इस प्रकार पाँचों वर्णों वाले मेघ हों, बिजली चमक रही हो, गर्जना की ध्वनि हो रही हो, विस्तीर्ण आकाश में वायु के कारण चपल बने हुए बादल इधर-उधर चल रहे हो, निर्मल श्रेष्ठ जल धाराओं से गलित, प्रचंड वायु से आहत, पृथ्वीतल को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर बरस रही हो, जल धारा के समूह से भूतल शीतल हो गया हो, पृथ्वी रूपी रमणी ने घास रूपी कंचुक को धारण किया हो, वृक्षों का समूह नवीन पल्लवो से सुशोभित हो गया हो, वेलों के समूह विस्तार को प्राप्त हुआ हो, उन्नत भूप्रदेश सौभाग्य को प्राप्त हुए हो, अर्थात् पानी से धुल कर साफ सुथरे हो गये हों, अथवा पर्वत और कुण्ड सौभाग्य को प्राप्त हुए हो, वैभारगिरि के प्रपात तट और कटक से निर्झर निकल कर बह रहे हों, पर्वतीय नदियो मे तेज बहाव के कारण उत्पन्न हुए फेनो से युक्त जल बह रहा हो, उद्यान सर्ज, अर्जुन, नीप और कुटज नामक वृक्षो के अंकुरों से और छत्राकार (कुकुरमुत्ता) से युक्त हो गया हो, मेघ की गर्जना के कारण हृष्ट-तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हर्ष के कारण मुक्त कंठ से केकारव कर रहे हो, और वर्षा ऋतु के कारण उत्पन्न हुए मद से तरुण मयूरियाँ नृत्य कर रही हो, उपवन (घर के समीप वर्त्ती बाग) शिलिंध्र, कुटज, कंदल और कदंब वृक्षो के पुष्पों की नवीन एवं सौरभ युक्त गंध की तृप्ति धारण कर रहे हो अर्थात् उत्कट सुगंध से सम्पन्न हो रहे हो, नगर के बाहर के उद्यान कोकिलाओं के स्वरघोलना वाले शब्दों से व्याप्त हों और रक्तवर्ण इन्द्रगोप नामक कीड़ों से शोभायमान हो रहे हो, उनके चातक करुण स्वर से बोल रहे हो, वे नमे हुए तृणो (वनस्पति) से सुशोभित हो, उनमे मेंढक उच्च स्वर से आवाज कर रहे हो, मदोन्मत्त भ्रमरों और भ्रमरियो के समूह एकत्र हो रहे हो, तथा उन उद्यान प्रदेशो मे पुष्प-रस के लोलुप एवं मधुर गुंजार करने वाले मदोन्मत्त भ्रमर लीन हो रहे हो, आकाश-तल मे चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहों का समूह मेघो से आच्छादित होने के कारण श्याम वर्ण का दृष्टिगोचर हो रहा हो, इन्द्रधनुष रूपी ध्वजपट फरफरा रहा हो, और उसमें रहा हुआ मेघसमूह बगुलो की, कतारो से शोभित हो रहा हो, इस भाँति कारंडक, चक्रवाक और राजहंस पक्षियों को मानस-सरोवर की ओर जाने के लिए उत्सुक बनाने वाला वर्षाऋतु का समय हो। ऐसे वर्षाकाल में जो माताएँ स्नान करके, बलिकर्म करके, कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त करके (वैभारगिरि के प्रदेशो में अपने पति के साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं।)

धारिणी देवी ने इसके पश्चात् क्या विचार किया, सो बतलाते हैं—वे माताएँ धन्य है जो पैरो मे उत्तम नूपुर धारण करती है, कमर मे करधनी पहनती हैं, वक्षस्थल पर हार पहरती है, हाथो मे कड़े तथा उंगलियो मे अंगूठियाँ पहनती हैं, अपने बाहुओ को विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबन्दो से स्तंभित करती हैं, जिनका मुख कुंडलो से चमक रहा है, अंग रत्नो से भूषित हो रहा है, जिन्होंने ऐसा वस्त्र पहना हो जो नासिका के निश्वास की वायु से भी उड़ जाय अर्थात् अत्यन्त बारीक हो, नेत्रों को हरण करने वाला हो, उत्तम वर्ण और स्पर्श वाला हो, घोड़े के मुख से निकलने वाले फेन से भी कोमल और हल्का हो, उज्ज्वल हो, जिसकी किनारियाँ सुवर्ण के तारो से बुनी गई हो, श्वेत होने के कारण जो आकाश स्फटिक के समान कान्ति वाला हो और श्रेष्ठ हो, जिनका मस्तक समस्त ऋतुओ संबंधी सुगंधी पुष्पो और श्रेष्ठ फूलमालाओ से सुशोभित हो, जो कालागुरु आदि की उत्तम धूप से धूपित हो और जो लक्ष्मी के समान वेष वाली हो। इस प्रकार सजधज करके जो सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर, कोरंट-पुष्पो की माला से सुशोभित छत्र को धारण करती हैं। चन्द्रप्रभ वज्र और वैडूर्य रत्न के निर्मल दड वाले एवं शंख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृत का मथन करने से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान उज्ज्वल चार चामर जिनके ऊपर ढोरे जा रहे है, जो हस्तीरत्न के स्कंध पर (महावत के रूप मे) राजा श्रेणिक के साथ बैठी हों। उनके पीछे-पीछे चतुरंगिणी सेना चल रही हो, अर्थात् विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना और पैदलसेना हो। छत्र-आदि राजचिह्न रूप समस्त ऋद्धि के साथ, आभूषणो आदि की कान्ति के साथ, यावत् वाद्यो के निर्घोषशब्द के साथ, राजगृह नगर के शृंगाटक (सिंघाड़े के आकार के मार्ग), त्रिक (जहाँ तीन मार्ग मिलें), चतुष्क (चौक), चत्वर (चबूतरा), चतुर्मुख (चारो ओर द्वार वाले देवकुल आदि), महापथ (राजमार्ग) तथा सामान्य मार्ग में गधोदक एक बार छिडका हो, अनेक बार छिड़का हो, शृङ्गाटक आदि को शुचि किया हो, झाड़ा हो, गोबर आदि से लीपा हो, यावत् उत्तम गंध के चूर्ण से सुगंधित किया हो, और मानो गंध द्रव्यों की गुटिका ही हो, ऐसे राजगृह नगर को देखती जा रही हो। नागरिक अभिनन्दन कर रहे हों। गुच्छो, लताओ, वृक्षो, गुल्मो (झाड़ियो) एव वेलो के समूहो से व्याप्त, मनोहर वैभार पर्वत के निचले भागो के समीप, चारो ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। तो मैं भी इसी प्रकार मेघो का उदय आदि होने पर यावत् अपने दोहद को पूर्ण करूं।

तए णं सा धारिणी देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि असंपन्नदोहला असंपुन्नदोहला असंमाणियदोहला सुक्का भुक्खा णिम्मंसा

ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा पमइलदुब्बला किलंता ओमंथियवयणनयण-कमला पंडुइयमुही करयलमलिय व्व चंपगमाला णित्तेया दीणविवण्ण-वयणा जहोचियपुप्फगंधमल्लालंकारहारं अणभिलसमाणी कीडारमण-किरियं च परिहावेमाणी दीणा दुम्मणा निराणंदा भूमिगयदिट्ठीया ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी उस दोहद के दूर (पूर्ण) न होने के कारण, दोहद के संपन्न न होने के कारण, दोहद के सम्पूर्ण न होने के कारण, मेघ आदि का अनुभव न होने से दोहद के सम्मानित न होने के कारण, मानसिक सताप द्वारा रक्त का शोषण हो जाने से शुष्क हो गई। भूख से व्याप्त हो गई। मास से रहित हो गई। जीर्ण एवं जीर्ण शरीर वाली, स्नान का त्याग करने से मलिन शरीर वाली, भोजन त्याग देने से दुबली तथा थकी हुई हो गई। उसने मुख और नयन रूपी कमल नीचे कर लिये। उसका मुख फीका पड गया। हथेलियों से मसली हुई चम्पक पुष्पों की माला के समान निस्तेज हो गई। उसका मुख दीन और विवर्ण हो गया। यथोचित पुष्प, गंध, माला, अलंकार और हार के विषय मे रुचिरहित हो गई, अर्थात् उसने इन सब का त्याग कर दिया। जल आदि की क्रीड़ा और चौपड आदि खेलों की क्रिया का परित्याग कर दिया। वह दीन, दुखी मन वाली, आनन्दहीन एवं भूमि की तरफ दृष्टि किये हुए बैठी। उसके मन का संकल्प नष्ट हो गया। वह यावत् आर्त्तध्यान करने लगी।

तए णं तीसे धारिणीए देवीए अंगपडियारियाओ अब्भिंतरियाओ दासचेडीयाओ धारिणीं देवीं ओलुग्ग जाव झियायमाणिं पासंति, पासित्ता एवं वयासी—'किं णं तुमे देवाणुप्पिये! ओलुग्गा ओलुग्ग-सरीरा जाव झियायसि?'

तत्पश्चात् उस धारिणी देवी की अंगपरिचारिका शरीर की सेवा-शुश्रूषा करने वाली आभ्यंतर दासियां धारिणी देवी को जीर्ण-सी एव जीर्ण शरीर वाली, यावत् आर्त्तध्यान करती हुई देखती हैं। देखकर इस प्रकार कहती हैं—'हे देवानुप्रिये! तुम जीर्ण जैसी तथा जीर्ण शरीर वाली क्यो हो? यावत् आर्त्तध्यान क्यों कर रही हो?'

तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडियारियाहिं अब्भिंतरि-

याहिं दासचेडियाहिं एवं वुत्ता समाणी नो आढाति, णो य परियाणाति, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी अंगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियों द्वारा इस प्रकार कहने पर (अन्यमनस्क होने से) उनका आदर नहीं करती और उन्हे जानती भी नहीं। नहीं आदर करती और नहीं जानती हुई वह मौन ही रहती है।

तए णं ताओ अंगपडियारियाओ अब्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणीं देवीं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—'किं णं तुमे देवाणुप्पिये! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि?'

तत्पश्चात् वह अंगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियाँ दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगीं—हे देवानुप्रिये! क्यो तुम जीर्ण-सी, जीर्ण शरीर वाली हो रही हो, यावत आर्त्तध्यान कर रही हो?

तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडियारियाहिं अब्भिंतरियाहिं दासचेडियाहिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी उन अंगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियों द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर न आदर करती है और न जानती है, अर्थात् उनकी बात पर ध्यान नहीं देती, तथा न आदर करती हुई और न जानती हुई मौन रहती है।

तए णं ताओ अंगपडियारियाओ अब्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ (अपरियाणमाणीओ) तहेव संभंताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेन्ति। वद्धावइत्ता एवं वयासी—"एवं खलु सामी! किं पि अज्ज धारिणी देवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायति।"

तत्पश्चात् वे अंगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियाँ धारिणी देवी द्वारा अनादृत एवं अपरिज्ञात की हुई, उसी प्रकार सम्भ्रान्त (व्याकुल) होती हुई धारिणी देवी के पास से निकलती हैं और निकल कर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आती हैं। आकर दोनो हाथों को इकट्ठा करके यावत् मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय से वधाती हैं और वधा कर इस प्रकार कहती हैं—'स्वामिन्! आज धारिणी देवी जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली होकर यावत् आर्त्तध्यान से युक्त होकर कुछ चिन्तित हो रही है।'

तए णं से सेणिए राया तासिं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तहेव संभंते समाणे सिग्घं तुरिअं चवलं वेइयं जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता धारिणीं देवीं ओलुग्गं ओलुग्गसरीरं जाव अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ। पासित्ता एवं वयासी—'किं णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्ग-सरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायसि?'

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा उन अंगपरिचारिकाओं से यह अर्थ सुनकर, मन में धारण करके, उसी प्रकार व्याकुल होता हुआ शीघ्र, त्वरा के साथ, एवं अत्यन्त शीघ्रता से जहाँ धारिणी देवी थी, वहाँ आता है। आकर धारिणी देवी को जीर्ण जैसी जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान से युक्त चिन्ता करती देखता है। देखकर इस प्रकार कहता है—हे'देवानुप्रिये! तुम जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्त्तध्यान से युक्त होकर चिन्ता कर रही हो?'

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ, जाव तुसिणीया संचिट्ठति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी, श्रेणिक राजा के द्वारा इस प्रकार कहने पर आदर नहीं करती—उत्तर नहीं देती, यावत् मौन रहती है।

तए णं से सेणिए राया धारिणीं देवीं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदासी—'किं णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा जाव झियायसि?'

तत्पश्चात श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी से दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम जीर्ण-सी होकर यावत् चिन्तित क्यों हो?

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी णो आढाति, णो परिजाणाति, तुसिणीया संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् धारिणी देवी, श्रेणिक राजा के द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर आदर नहीं करती और नहीं जानती। मौन रहती है।

तए णं सेणिए राया धारिणीं देविं सवहसावियं करेइ, करित्ता एवं वयासी—'किं णं तुमं देवाणुप्पिए! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए? ता णं तुमं ममं अयमेयारूवं मणोमाणसियं दुक्खं रहस्सीकरेसि?'

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा, धारिणी देवी को शपथ दिलाता है और शपथ दिलाकर कहता है—'देवानुप्रिये! क्या मैं तुम्हारे मन की बात सुनने के लिए अयोग्य हूँ? जिससे तुम अपने मन मे रहे हुए इस मानसिक दुःख को छिपाती हो?

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा सवहसाविया समाणी सेणियं रायं एवं वदासी—'एवं खलु सामी! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए—'धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, जाव वेभारगिरिपायमूलं आहिंडमाणीओ डोहलं विणिन्ति। तं जइ णं अहमवि जाव डोहलं विणिज्जामि। तए णं हं सामी! अयमेयारूवंसि अकालदोहलंसि अविणिज्जमाणंसि ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायामि। एएणं अहं कारणेणं सामी! ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायामि।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा द्वारा शपथ सुनकर धारिणी देवी ने श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—स्वामिन्! मुझे वह उदार आदि विशेषणों वाला महास्वप्न आया था। उसे आये तीन मास पूरे हो चुके हैं; अतएव इस प्रकार का अकाल-मेघ संबंधी दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य हैं और वे माताएँ कृतार्थ हैं, यावत् जो वैभार पर्वत की तलहटी मे भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। अगर मै भी अपने यावत् दोहद को पूर्ण करूँ तो धन्य

होऊँ। इस कारण हे स्वामिन ! मैं इस प्रकार के इस दोहद के पूर्ण न होने से जीर्ण जैसी, जीर्ण शरीर वाली हो गई हूं; यावत आर्त्तध्यान करती हुई चिन्तित हो रही हूं। स्वामिन ! जीर्ण-सी यावत् आर्त्तध्यान से युक्त होकर चिन्ताग्रस्त होने का यही कारण है।

तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म धारिणिं देविं एवं वदासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा जाव झियाहि, अहं णं तहा करिस्सामि जहा णं तुब्भं अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ' त्ति कट्टु धारिणीं देविं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ। समासासित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाहिमुहे सन्निसन्ने। धारिणीए देवीए एयं अकालदोहलं बहूहिं आएहि य उवाएहि य उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य परिणामियाहि य चउव्विहाहिं बुद्धीहिं अणुचिंतेमाणे अणुचिंतेमाणे तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं वा उप्पत्तिं वा अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी से यह बात सुनकर और समझ कर, धारिणी देवी से इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण शरीर वाली मत होओ, यावत चिन्ता मत करो। मैं वैसा करूंगा अर्थात् कोई ऐसा उपाय करूंगा जिससे तुम्हारे इस प्रकार के इस अकाल-दोहद की पूर्त्ति हो जायगी।' इस प्रकार कहकर धारिणी देवी को इष्ट (प्रिय) कान्त (इच्छित), प्रिय (प्रीति उत्पन्न करने वाली), मनोज्ञ (मनोहर) और मणाम (मन को प्रिय) वाणी से आश्वासन देता है। आश्वासन देकर जहाँ बाहर की उपस्थान-शाला थी, वहाँ आता है। आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठता है। धारिणी देवी के इस अकाल-दोहद की पूर्त्ति करने के लिए बहुतेरे आयों (लाभों), से, उपायों से, औत्पत्तिकी बुद्धि से, वैनयिक बुद्धि से, कार्मिक बुद्धि से, परिणामिक बुद्धि से–इस प्रकार चारों तरह की बुद्धि से बार-बार विचार करता है। परन्तु विचार करने पर भी उस दोहद के लाभ को, उपाय को, स्थिति को और उत्पत्ति को समझ नहीं पाता, अर्थात् दोहदपूर्त्ति का कोई उपाय नहीं सूझता। अतएव श्रेणिक राजा के मन का संकल्प नष्ट हो गया और वह यावत् चिन्ताग्रस्त हो जाता है।

तयाणंतरं अभए कुमारे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सव्वालंकार-विभूसिए पायवंदए पहारेत्थ गमणाए।

तदनन्तर अभयकुमार स्नान करके, बलिकर्म (गृहदेवता का पूजन) करके, यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के चरणों मे वन्दना करने के लिए जाने का विचार करता है—रवाना होता है।

तए णं से अभयकुमारे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छइत्ता सेणियं रायं ओहयमणसंकप्पं जाव पासइ। पासइत्ता अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए (पत्थिए) मणोगते संकप्पे समुप्पज्जित्था।

तत्पश्चात् अभयकुमार जहाँ श्रेणिक राजा हैं, वहीं आता है। आकर श्रेणिक राजा को देखता है कि इनके मन के संकल्प को आघात पहुँचा है। यह देखकर अभयकुमार के मन में इस प्रकार का यह आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा सम्बन्धी, चिन्तित, प्रार्थित (प्राप्त करने को इष्ट) और मनोगत—मन में ही रहा हुआ संकल्प उत्पन्न होता है।

अन्नया य ममं सेणिए राया एज्जमाणं पासति, पासइत्ता आढाति परिजाणाति, सक्कारेइ, सम्माणेइ, आलवति, संलवति, अद्धासणेणं उवणिमंतेति मत्थयंसि अग्घाति। इयाणिं ममं सेणिए राया णो आढाति, णो परियाणइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं ओरालाहिं वग्गूहिं आलवति, संलवति, नो अद्धासणेणं उवणिमंतेति, णो मत्थयंसि अग्घाति य, किं पि ओहय-मणसंकप्पे झियायति। तं भवियव्वं णं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु मे सेणियं रायं एयमट्ठं पुच्छित्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावइत्ता एवं वयासी—

अन्य समय श्रेणिक राजा मुझे आता देखते थे तो देखकर आदर करते, जानते, वस्त्रादि से सत्कार करते, आसनादि देकर सन्मान करते तथा आलाप संलाप करते थे, आधे आसन पर बैठने के लिए निमंत्रण करते और मेरे मस्तक

को सूंघते थे। किन्तु आज श्रेणिक राजा मुझे न आदर दे रहे हैं, न आया जान रहे हैं, न सत्कार करते हैं, न सन्मान करते हैं, न इष्ट कान्त प्रिय मनोज्ञ और उदार वचनों से आलाप-संलाप करते हैं, न अर्ध आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करते हैं और न मस्तक को सूंघते हैं। उनके मन के संकल्प को कुछ आघात पहुंचा है, अतएव चिन्तित हो रहे हैं। अतएव इस विषय में कोई कारण होना चाहिए। मुझे श्रेणिक राजा से यह बात पूछना श्रेय (योग्य) है। अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है और विचार कर जहाँ श्रेणिक राजा है, वहाँ आता है। आकर दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर आवर्त्त करके, अंजलि करके जय-विजय से वधाता है। वधाकर इस प्रकार कहता है।

तुब्भे णं ताओ! अन्नया ममं एज्जमाणं पासित्ता आढाह, परिजाणह, जाव मत्थयंसि अग्घायह, आसणेणं उवणिमंतेह, इयाणिं ताओ! तुब्भे ममं नो आढाह जाव नो आसणेणं उवणिमंतेह। किं पि ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह। तं भवियव्वं ताओ! एत्थ कारणेणं। तओ तुब्भे मम ताओ! एयं कारणं अगूहेमाणा असंकेमाणा अनिण्हवेमाणा अपच्छाएमाणा जहाभूतमवितहमसंदिद्धं एयमट्ठमाइक्खह। तए णं हं तस्स कारणस्स अंतगमणं गमिस्सामि।

हे तात! आप अन्य समय मुझे आता देखकर आदर करते, जानते, यावत् मेरे मस्तक को सूंघते थे और आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रण करते थे, किन्तु तात! आज आप मुझे आदर नहीं दे रहे हैं, यावत् आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रण नहीं कर रहे हैं और मन का संकल्प नष्ट होने के कारण कुछ चिन्ता कर रहे हैं। तो इस विषय में कोई कारण होना चाहिए। तो हे तात! आप इस कारण को छिपाये बिना, इष्ट प्राप्ति में शंका रक्खे बिना, अपलाप किये बिना, दबाये बिना, जैसा का तैसा, सत्य एवं संदेहरहित कहिए। तत्पश्चात् मैं उस कारण का पार पाने का प्रयत्न करूंगा।

तए णं सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे अभयकुमारं एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता! तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए तस्स गब्भस्स दोसु मासेसु अइक्कंतेसु तइयमासे वट्टमाणे दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था-धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव विणिंति। तए णं अहं पुत्ता

धारिणीए देवीए तस्स अकालदोहलस्स बहूहिं आएहि य उवाएहिं जाव उप्पत्तिं अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायामि, तुमं आगयं पि न याणामि। तं एतेणं कारणेणं अहं पुत्ता! ओहयमण-संकप्पा जाव झियामि।

तत्पश्चात् अभयकुमार के द्वारा इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से इस प्रकार कहा—पुत्र! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी को गर्भ स्थित हुए दो मास बीत गये और तीसरा मास चल रहा है। उसमें दोहद-काल के समय उसे इस प्रकार का यह दोहद उत्पन्न हुआ है—वे माताएँ धन्य हैं, इत्यादि सब पहले की भाँति ही कह लेना चाहिए, यावत अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। तब हे पुत्र! मैं धारिणी देवी के उस अकाल दोहद के आयों (लाभ), उपायों एव उत्पत्ति को अर्थात् उसकी पूर्त्ति के उपायों को नहीं जानता हूँ। इससे मेरे मन का संकल्प नष्ट हो गया है और मैं चिन्ता कर रहा हूँ। इसी से मैंने यह भी नहीं जाना कि तुम आये हो। अतएव पुत्र! मैं इसी कारण नष्ट हुए मनःसकल्प वाला होकर चिन्ता कर रहा हूँ।

तए णं से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए सेणियं रायं एवं वयासी—'मा णं तुब्भे ताओ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह। अहं णं तहा करिस्सामि, जहा णं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ' त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव समासासेइ।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार, श्रेणिक राजा से यह अर्थ सुन कर और समझ कर हृष्ट-पुष्ट और आनन्दित हृदय हुआ। उसने श्रेणिक राजा से इस भाँति कहा—हे तात! आप भग्न-मनोरथ होकर चिन्ता न करें। मैं वैसा (कोई उपाय) करूँगा, जिससे मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्त्ति होगी। इस प्रकार कह कर (अभय-कुमार ने) इष्ट कांत यावत् मनोहर वचनों से श्रेणिक राजा को सान्त्वना दी।

तए णं सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव अभयकुमारं सक्कारेति, संमाणेति, सक्कारित्ता संमाणित्ता पडि-विसज्जेति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा, अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह अभयकुमार का सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके विदा करता है।

तए णं से अभयकुमारे सक्कारियसम्माणिए पडिविसज्जिए समाणे सेणियस्स रन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमइ । पडिनिक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे निसन्ने।

तत्पश्चात (श्रेणिक राजा द्वारा) सत्कारित एवं सन्मानित होकर विदा किया हुआ वह अभयकुमार श्रेणिक राजा के पास से निकलता है। निकल कर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आता है। आकर सिंहासन पर बैठता है।

तए णं तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—नो खलु सक्का माणुस्सएणं उवाएणं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालडोहलमणोरहसंपत्तिं करेत्तए, णन्नत्थ दिव्वेणं उवाएणं। अत्थि णं मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसंगतिए देवे महिड्ढीए जाव महासोक्खे। तं सेयं खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्त-सत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता पुव्वसंगतियं देवं मणसि करेमाणस्स विहरित्तए । तते णं पुव्वसंगतिए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालमेहेसु डोहलं विणिहिइ।

तत्पश्चात् उस अभयकुमार को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक (आंतरिक) संकल्प उत्पन्न हुआ—दिव्य अर्थात देव सम्बन्धी उपाय के बिना, केवल मानवीय उपाय से मेरी छोटी माता धारिणी देवी के अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्त्ति होना शक्य नहीं है। सौधर्म कल्प में रहने वाला देव मेरा पूर्व का मित्र है, जो महान् ऋद्धिधारक यावत महान् सुख भोगने वाला है। तो मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि—मै पौषधशाला में पौषध ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य धारण करके, मणि-सुवर्ण आदि के अलंकारों का त्याग करके, माला वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र-मूसल आदि अर्थात् समस्त आरम्भ-समारम्भ को छोड़ कर एकाकी (राग-द्वेष से रहित) और अद्वितीय (सेवक

आदि की सहायता से रहित) होकर, डाभ के संथारे पर स्थित होकर, तेला की तपस्या ग्रहण करके, पहले के मित्र देव का मन में चिन्तन करता हुआ रहूँ। ऐसा करने से वह पूर्व का मित्र देव (यहाँ आकर) मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस अकाल-मेघों सम्बन्धी दोहद को पूर्ण कर देगा।

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरूहित्ता अट्ठमभत्तं परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव पुव्वसंगतियं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है। विचार करके जहाँ पौषधशाला है, वहाँ आता है। आकर पौषधशाला का प्रमार्जन करता है। करके उच्चार-प्रस्रवण की भूमि का प्रतिलेखन करता है। प्रतिलेखन करके डाभ के संथारे का प्रतिलेखन करता है। डाभ के संथारे का प्रतिलेखन करके उस पर आसीन होता है। आसीन होकर अष्टम भक्त तप ग्रहण करता है। ग्रहण करके पौषध-शाला में पौषधयुक्त होकर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके यावत् पहले के मित्र देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करता है।

तए णं तस्स अभयकुमारस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे पुव्वसंगतिअस्स देवस्स आसणं चलति। तते णं पुव्वसंगतिए सोहम्मकप्पवासी देवे आसणं चलियं पासति, पासित्ता, ओहिं पउंजति। तते णं तस्स पुव्वसंगतियस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु मम पुव्वसंगतिए जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे वासे रायगिहे नयरे पोसहसालाए अभए नामं कुमारे अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता णं मम मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठति। तं सेयं खलु मम अभयस्स कुमारयस्स अंतिए पाउब्भवित्तए।' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता विउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरति। तंजहा—

तत्पश्चात् अभयकुमार का अष्टमभक्त तप प्रायः पूर्ण होने आया, तब पूर्वभव के मित्र देव का आसन चलायमान हुआ। तब पूर्वभव का मित्र सौधर्मकल्पवासी देव अपने आसन को चलित हुआ देखता है और देखकर अवधिज्ञान का उपयोग लगाता है। तब पूर्वभव के मित्र देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—'इस प्रकार मेरा पूर्वभव का मित्र अभयकुमार जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भरत मे, राजगृह नगर मे, पोषधशाला में, अष्टमभक्त ग्रहण करके मन में वार-वार मेरा स्मरण कर रहा है। अतएव मुझे अभयकुमार के समीप प्रकट होना (जाना) योग्य है।' देव इस प्रकार विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में जाता है और वैक्रियसमुद्घात से समुद्घात करता है, अर्थात् उत्तरवैक्रिय शरीर बनाने के लिए जीव-प्रदेशों को बाहर निकालता है। जीव-प्रदेशों को बाहर निकाल कर संख्यात योजन का दंड बनाता है। वह इस प्रकार—

रयणाणं १ वइराणं २ वेरुलियाणं ३ लोहियक्खाणं ४ मसारगल्लाणं ५ हंसगब्भाणं ६ पुलगाणं ७ सोगंधियाणं ८ जोइरसाणं ९ अंकाणं १० अंजणाणं ११ रययाणं १२ जायरूवाणं १३ अंजणपुलयाणं १४ फलिहाणं १५ रिट्ठाणं १६ अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हति, परिगिण्हइत्ता अभयकुमारमणुकंपमाणे देवे पुव्वभवजणियनेहपीइबहुमाणजायसोगे, तओ विमाणवरपुण्डरियाओ रयणुत्तमाओ धरणियलगमणतुरियसंजणितगयणपयारो वाघुणितविमलकणगपयरगवडिंसगमउडुक्कडाडोवदंसणिज्जो, अणेगमणिकणगरयणपहकरपरिमंडितभत्तिचित्तविणिउत्तमणुगुणजणियहरिसे, पंखोलमाणवरललितकुंडलुज्जलियवयणगुणजनितसोमरूवे, उदितो विव कोमुदीनिसाए सणि च्छरंगारउज्जलियमज्झभागत्थे णयणाणंदो, सरयचंदो, दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदंसणाभिरामो उउलच्छिसमत्तजायसोहे पइट्ठगंधुद्धुयाभिरामो मेरूरिव नगवरो, विगुव्वियविचित्तवेसे, दीवसमुद्दाणं असंखपरिमाणनामधेज्जाणं मज्झंकारेणं वीइवयमाणो, उज्जोयंतो पभाए विमलाए जीवलोगं, रायगिहं पुरवरं च अभयस्स य तस्स पासं उवयति दिव्वरूवधारी।

(१) कर्केतन रत्न (२) वज्र रत्न (३) वैडूर्य रत्न (४) लोहिताक्ष रत्न

(५) मसारगल्ल रत्न (६) हंसगर्भ रत्न (७) पुलक रत्न (८) सौगंधिक रत्न (९) ज्योतिरस रत्न (१०) अंक रत्न (११) अंजन रत्न (१२) रजत रत्न (१३) जातरूप रत्न (१४) अंजनपुलक रत्न (१५) स्फटिक रत्न और (१६) रिष्ट रत्न— इन रत्नों के यथाबादर अर्थात असार पुद्गलो का परित्याग करता है, परित्याग करके यथासूक्ष्म अर्थात सारभूत पुद्गलो को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है।) फिर अभयकुमार पर अनुकम्पा करता हुआ, पूर्वभव मे उत्पन्न हुई स्नेह जनित प्रीति के कारण और गुणानुराग के कारण (वियोग का विचार करके) वह खेद करने लगा। फिर उस देव ने अपनी रचना अथवा रत्नो से उत्तम विमान से निकल कर पृथ्वीतल पर जाने के लिए शीघ्र ही गति का प्रचार किया, अर्थात वह शीघ्रतापूर्वक चल पडा। उस समय चलायमान होते हुए, निर्मल स्वर्ण के प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के उत्कट आडम्बर से वह दर्शनीय लग रहा था। अनेक मणियों, सुवर्ण और रत्नों के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्र से उसे हर्ष उत्पन्न हो रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुण्डलों से उज्ज्वल मुख की दीप्ति से उसका रूप बड़ा ही सौम्य हो गया। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में, शनि और मंगल के मध्य मे स्थित और उदय प्राप्त शारद निशाकर के समान वह देव दर्शकों के नयनो को आनन्द दे रहा था। तात्पर्य यह है कि शनि और मंगल ग्रह के समान चमकते हुए दोनो कुण्डलों के बीच मे उसका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य औषधियों (जड़ी-बूटियो) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान रूप से मनोहर, समस्त ऋतुओ की लक्ष्मी से वृद्धिगत शोभा वाले तथा प्रकृष्ट गंध के प्रसार से मनोहर मेरु पर्वत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव ने ऐसे विचित्र वेष की विक्रिया की। वह असंख्य-सख्यक और असख्य नामो वाले द्वीपों और समुद्रो के मध्य मे होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभा से जीव लोक को तथा नगरवर राजगृह को प्रकाशित करता हुआ दिव्य रूपधारी देव अभयकुमार के पास आ पहुँचा।

तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिंखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए—(एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो—) ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सीहाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतिए जेणामेव जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, जेणामेव दाहिणड्ढभरए रायगिहे नगरे पोसहसालाए अभयए कुमारे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अंतरिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिंखिणि-

याइं पवरवत्थाइं परिहिए—अभयं कुमारं एवं वयासी।

तत्पश्चात दस के आधे अर्थात् पाँच वर्ण वाले तथा घुंघरु वाले उत्तम वस्त्रों को धारण किया हुआ वह देव आकाश मे स्थित होकर (अभयकुमार से इस प्रकार बोला—)

यह एक प्रकार का गम-पाठ है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है। वह इस प्रकार है-

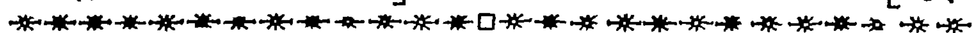
वह देव उत्कृष्ट, त्वरा वाली, कायिक चपलता वाली, अति उत्कर्ष के कारण चंड—भयानक दृढ़ता कारण सिंह जैसी, गर्व की प्रचुरता के कारण उद्धत, शत्रु को जीतने वाली होने से जय करने वाली, छेक अर्थात् निपुणता वाली और दिव्य देवगति से जहाँ जम्बू द्वीप था, भारत वर्ष था और जहाँ दक्षिणार्ध भरत था, उसमे भी राजगृह नगर था और जहाँ पौषधशाला में अभयकुमार था, वहीं आता है। आकरके आकाश में स्थित होकर पाँच वर्ण वाले एवं घुंघुरु वाले उत्तम वस्त्रो को धारण किये हुए वह देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा।

'अहं णं देवाणुप्पिया! पुव्वसंगतिए सोहम्मकप्पवासी देवे महड्ढिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता ण ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया! अहं इहं हव्वमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया! किं करेमि? किं दलामि? किं पयच्छामि? किं वा ते हिय-इच्छितं?'

हे देवानुप्रिय! मैं तुम्हारा पूर्वभव का मित्र सौधर्मकल्पवासी महान् ऋद्धि का धारक देव हूं। क्योंकि तुम पौषधशाला मे अष्टमभक्त तप ग्रहण करके मुझे मन मे रखकर स्थित हो, इसी कारण हे देवानुप्रिय! मैं शीघ्र यहाँ आया हूं। हे देवानुप्रिय! बताओ तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ? तुम्हे क्या दूं? तुम्हारे किसी सबधी को क्या दूं? तुम्हारा मनोवांछित क्या है?

तए णं से अभए कुमारे तं पुव्वसंगतियं देवं अंतलिक्खपडिवन्नं पासइ। पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारित्ता करयल० अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालडोहले पाउब्भूते—धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ!



तहेव पुव्वगमेणं जाव विणिज्जामि । तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालदोहलं विणेहि ।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने आकाश मे स्थित पूर्व भव के मित्र उस देव को देखा है। देखकर वह हृष्ट-तुष्ट हुआ। पौषध को पारा-पूर्ण किया। फिर दोनों हाथ मस्तक पर जोड़ कर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! मेरी छोटी माता धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल-दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य है यावत् मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूँ। इत्यादि पूर्व के समान सब कथन यहाँ समझ लेना चाहिए। तो हे देवानुप्रिय! तुम मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के दोहद को पूर्ण कर दो।

तए णं से देवे अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० अभय-कुमारं एवं वयासी—'तुमं णं देवाणुप्पिया ! सुणिव्वुयवीसत्थे अच्छाहि। अहं णं तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं डोहलं विणेमीति' कट्टु अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता उत्तरपुरच्छिमे णं वेभारपव्वए वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणइत्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरति, जाव दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणित्ता खिप्पामेव सगज्जियं सविज्जुयं सफुसियं तं पंचवण्णमेहणिणाओवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं विउव्वेइ। विउव्वेइत्ता जेणेव अभए कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभयं कुमारं एवं वयासी।

तत्पश्चात् वह देव अभयकुमार के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर अभय-कुमार से बोला—देवानुप्रिय! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वास रक्खो। मै तुम्हारी लघु माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस दोहद की पूर्त्ति किये देता हूं। ऐसा कह कर देव अभयकुमार के पास से निकलता है। निकल कर उत्तरपूर्व दिशा में, वैभार गिरि पर जाकर वैक्रिय समुद्घात करता है। समुद्घात करके संख्यात योजन प्रमाण वाला दंड निकालता है, यावत् दूसरी बार भी वैक्रियसमुद्घात करता है और गर्जना से युक्त, बिजली से युक्त और जल-बिन्दुओं से युक्त पाँच वर्ण वाले मेघों की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की लक्ष्मी की विक्रिया करता है। विक्रिया करके जहाँ अभयकुमार था, वहाँ आता है। आकर अभयकुमार से इस प्रकार कहता है।

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए तव पियट्ठयाए सगज्जिया सफुसिया सविज्जुया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया। तं विणेउ णं देवाणुप्पिया ! तव चुल्लमाउया धारिणी देवी अयमेयारूवं अकालडोहलं।

हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैं ने तुम्हारी प्रीति के लिए गर्जनायुक्त, बिन्दु-युक्त और विद्युतयुक्त दिव्य वर्षालक्ष्मी की विक्रिया की है। अतः हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी इस प्रकार के इस दोहद की पूर्त्ति करे।

तए णं से अभयकुमारे तस्स पुव्वसंगतियस्स देवस्स सोहम्मकप्प-वासिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवा-गच्छति उवागच्छित्ता करयल० अंजलिं कट्टु एवं वयासी।

तत्पश्चात् अभयकुमार उस सौधर्मकल्पवासी पूर्व के मित्र देव से यह बात सुन-समझ कर हृष्ट-तुष्ट होकर अपने भवन से बाहर निकलता है। निकल कर जहाँ श्रेणिक राजा बैठा था, वहाँ आता है। आकर मस्तक पर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहता है।

'एवं खलु ताओ ! मम पुव्वसंगतिएणं सोहम्मकप्पवासिणा देवेणं खिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया (सफुसिया) पंचवन्नमेहनिनाओव-सोहिआ दिव्वा पाउससिरी विउव्विया। तं विणेउ णं मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहलं।'

हे तात ! इस प्रकार मेरे पूर्वभव के मित्र सौधर्म कल्पवासी देव ने शीघ्र ही गर्जनायुक्त, बिजली से युक्त और (बूँदों सहित) पाँच रंगो के मेघों की ध्वनि से सुशोभित दिव्य वर्षा ऋतु की शोभा की विक्रिया की है। अतः मेरी लघु माता धारिणी देवी अपने अकालदोहद को पूर्ण करें।

तए णं से सेणिए राया अभयस्स कुमारस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावित्ता एवं वयासी-'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिहं नयरं सिंघाडगतियचउक्कचच्चर० आसित्तसित्त जाव सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह। करित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।' तते णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पि-णन्ति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा, अभयकुमार से यह बात सुन कर और हृदय मे धारण करके हर्षित और संतुष्ट हुआ। यावत् उसने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवकों) को बुलवाया। बुलवा कर इस भाँति कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजगृह नगर मे श्रृंगाटक (सिंघाड़े की आकृति के मार्ग), त्रिक (जहाँ तीन रास्ते मिले वह मार्ग), चतुष्क (चौक) और चबूतरे आदि को सींच कर, यावत् उत्तम सुगंध से सुगंधित करके और गंध की बट्टी के समान करो। ऐसा करके मेरी आज्ञा वापिस सौंपो। तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष आज्ञा का पालन करके यावत् उस आज्ञा को वापिस सौंपते हैं, अर्थात् आज्ञापूर्त्ति की सूचना देते हैं।

तए णं से सेणिए राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दाविता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! हयगयरहजोहपवरकलितं चाउरंगिणिं सेन्नं सन्नाहेह, सेयणयं च गंधहत्थिं परिकप्पेह।' ते वि तहेव जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाता है और बुलवा कर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही उत्तम अश्व, गज, रथ तथा योद्धाओ (पदातियो) सहित चतुरंगी सेना को तैयार करो और सेचनक नामक गंधहस्ती को भी तैयार करो।' वे कौटुम्बिक पुरुष भी आज्ञा-पालन करके यावत् आज्ञा वापिस सौंपते है।

तए णं से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता धारिणीं देवीं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिए! सगज्जिया जाव पाउससिरी पाउब्भूता, तं णं तुमं देवाणुप्पिए! एयं अकालदोहलं विणेहि।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा जहाँ धारिणी देवी थी, वहीं आया। आकर धारिणी देवी से इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिये! इस प्रकार गर्जना की ध्वनि से युक्त यावत् वर्षा की सुषमा प्रादुर्भूत हुई है। अतएव हे देवानुप्रिये! तुम अपने अकाल-दोहद की निवृत्ति करो।

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा, जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता अंतो अंतेउरंसि ण्हाया कयबलिकम्मा

कयकोउयमंगलपायच्छित्ता किं ते वरपायपत्तणेउर जाव आगासफलिहसमप्पभं अंसुयं नियत्था, सेयणयं गंध हत्थि दुरूढा समाणी अमयमहियफेणपुंजसण्णिगासाहिं सेयचामरवालवीयणीहिं वीइज्जमाणी वीइज्जमाणी संपत्थिया।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुई और जहाँ स्नानगृह था, उसी ओर आई। आकर स्नानगृह मे प्रवेश किया। प्रवेश करके अन्तःपुर के अन्दर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया। फिर क्या किया ? सो कहते हैं—पैरो में उत्तम नूपुर पहन कर यावत् आकाश स्फटिक मणि के समान प्रभा वाले वस्त्रों को धारण किया। वस्त्र धारण करके सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरुढ़ होकर, अमृतमन्थन से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान श्वेत चामर के बालो रूपी वीजने से विजाती हुई रवाना हुई।

तए णं से सेणिए राया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सस्सिरीए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामराहिं वीइज्जमाणे धारिणीं देवीं पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने स्नान किया, बलिकर्म किया, यावत् सुसज्जित होकर, श्रेष्ठ गंधहस्ती के स्कंध पर आरूढ़ होकर, कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाले छत्र को मस्तक पर धारण करके, चार चामरों से बिंजाते हुए धारिणी देवी का अनुगमन किया।

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठतो पिट्ठतो समणुगम्ममाणमग्गा, हयगयरहजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा (ए) महया भडचडगरवंदपरिक्खित्ता सव्विड्ढीए सव्वजुइए जाव दुंदुभिनिग्घोसनादितरवेणं रायगिहे नगरे सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर जाव महापहेसु नागरजणेणं अभिनंदिज्जमाणा अभिनंदिज्जमाणा जेणामेव वेभारगिरिपव्वए तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता वेभारगिरिकडगतडपायमूले आरामेसु य, उज्जाणेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंडेसु य, रुक्खेसु य, गुच्छेसु य, गुम्मेसु य, लयासु य, वल्लीसु य, कंदरासु य, दरीसु य, चुंढीसु य, दहेसु य,

कच्छेसु य, नदीसु य, संगमेसु य, विवरएसु य, अच्छमाणी य, पेच्छमाणी य, मज्जमाणी य, पत्ताणि य, पुप्फाणि य, फलाणि य, पल्लवाणि य, गिण्हमाणी य, माणेमाणी य, अग्घायमाणी य, परिभुंजमाणी य, परिभाएमाणी य, वेभारगिरिपायमूले दोहलं विणेमाणी सव्वओ समंता आहिंडति । तए णं धारिणी देवी विणीतदोहला संपुन्नदोहला संपन्नदोहला जाया यावि होत्था ।

श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर बैठे हुए श्रेणिक राजा धारिणी देवी के पीछे-पीछे चले। धारिणी देवी अश्व हाथी रथ और योद्धाओं रूप चतुरंगी सेना से परिवृत थी। उसके चारो ओर महान् सुभटों का समूह घिरा हुआ था। इस प्रकार सम्पूर्ण समृद्धि के साथ, सम्पूर्ण द्युति के साथ, यावत् दुंदुभि के निर्घोष के साथ राजगृह नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि में होकर यावत् राजमार्ग मे होकर निकली। नागरिक लोगो ने पुनः पुनः उसका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् वह जहाँ वैभारगिरि पर्वत था, उसी ओर आई। आकर वैभारगिरि के कटकतट मे और तलहटी में, दम्पतियों के क्रीडास्थान आरामों में, पुष्प-फल से सम्पन्न उद्यानों में, सामान्य वृक्षों से युक्त काननों मे, नगर से दूरवर्त्ती वनो में, एक जाति के वृक्षो के समूह वाले वनखंडों मे, वृक्षों मे, वृन्ताकी आदि के गुच्छाओ मे, बांस की झाड़ी आदि गुल्मों मे, आम्र आदि की लताओ अर्थात् पौधों में, नागरवेल आदि की वल्लियों मे, गुफाओं में, दरी (शृगाल आदि के रहने के गड़हो में,) चुण्ढी (बिना खोदे आप ही बने हुए जल की तलैया) में, ह्रदों-तालाबों मे, अल्प जल वाले कच्छों में,नदियो मे, नदियों के संगमों में और अन्य जलाशयो में, अर्थात् इन सब के आसपास खड़ी होती हुई, वहाँ के दृश्यो को देखती हुई, स्नान करती हुई, पत्रो पुष्पो फलों और पल्लवों (कौंपलो) को ग्रहण करती हुई, स्पर्श करके उनका मान करती हुई, पुष्पादिक को सूंघती हुई, फल आदि का भक्षण करती हुई और दूसरो को बाँटती हुई, वैभारगिरि के समीप की भूमि मे अपना दोहद पूर्ण करती हुई चारों ओर परिभ्रमण करने लगी। तत्पश्चात् धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद को सम्पन्न किया।

तए णं सा धारिणी देवी सेयणगगंधहत्थिं दुरूढा समाणी सेणिएणं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगम्ममाणमग्गा हयगय जाव रहेणं जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता

रायगिहं नगरं मज्भं मज्भेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता विउलाइं माणुस्साइं भोगभोगाइं जाव विहरति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ हुई। श्रेणिक राजा श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर बैठ कर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। अश्व हस्ती आदि से घिरी हुई वह जहाँ राजगृह नगर है, वहाँ आती है। राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आती है। वहाँ आकर मनुष्य संबंधी विपुल भोग भोगती हुई विचरती है।

तए णं से अभयकुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छइत्ता पुव्वसंगतियं देवं सक्कारेइ, सम्माणेइ। सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेति।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहाँ पौषधशाला है, वहीं आता है। आकर पूर्व के मित्र देव का सत्कार-सन्मान करता है। सत्कार-सन्मान करके उसे विदा करता है।

तए णं से देवे सगज्जियं पंचवण्णं मेहोवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं पडिसाहरति, पडिसाहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जना से युक्त पंचरंगी मेघो से सुशोभित दिव्य वर्षा-लक्ष्मी का प्रतिसंहरण करता है, अर्थात् उसे समेट लेता है और प्रतिसंहरण करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा में चला गया, अर्थात् अपने स्थान पर गया।

तए णं सा धारिणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणीयंसि संमाणियडोहला तस्स गब्भस्स अणुकंपणट्ठाए जयं चिट्ठति, जयं आसयति, जयं सुवति, आहारं पि य णं आहारेमाणी णाइतित्तं णातिकडुयं णातिकसायं णातिअंबिलं णातिमहुरं जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थयं देसे य काले य आहारं आहारेमाणी णाइचिंतं, णाइसोगं, णाइदेण्णं, णाइमोहं, णाइभयं, णाइपरित्तासं, ववगयचिंता-सोय-मोह भय-परित्तासा उदुभयमाणसुहेहिं भोयणच्छायणगंधमल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहति।

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने अपने उस अकाल दोहद के पूर्ण होने पर दोहद को सम्मानित किया। वह उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए, गर्भ को बाधा न पहुँचे इस प्रकार यतना-सावधानी से खड़ी होती, यतना से बैठती और यतना से शयन करती। आहार करती हुई ऐसा आहार करती जो अधिक तीखा न हो, अधिक कटुक न हो, अधिक कसैला न हो, अधिक खट्टा न हो, और अधिक मीठा भी न हो। देश और काल के अनुसार जो उस गर्भ के लिए हितकारक (बुद्धि-आयुष्य आदि का कारण) हो, मित (परिमित एवं इन्द्रियों को अनुकूल) हो, पथ्य (आरोग्यजनक) हो। वह अति चिन्ता न करती, अति शोक न करती, अति दैन्य न करती, अति मोह न करती, अति भय न करती और अति त्रास न करती। अर्थात् चिन्ता, शोक, मोह, भय और त्रास से रहित होकर सब ऋतुओं में सुखप्रद भोजन, वस्त्र, गंध, माला और अलंकार आदि से सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करती है।

तए णं सा धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण राइंदियाणं वीइक्कंताणं अद्धरत्तकालसमयंसि सुकुमालपाणिपायं जाव सव्वंगसुंदरंगं दारयं पयाया।

तत्पश्चात् धारिणी देवी ने नौ मास परिपूर्ण होने पर और साढ़े सात रात्रि-दिवस बीत जाने पर, अर्ध रात्रि के समय, अत्यन्त कोमल हाथ-पैर वाले यावत् सर्वांगसुन्दर शिशु का प्रसव किया।

तए णं ताओ अंगपडियारियाओ धारिणीं देवीं नवण्हं मासाणं जाव दारयं पयायं पासंति। पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं, जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति। वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी।

तत्पश्चात् दासियाँ धारिणी देवी को नौ मास पूर्ण हुए यावत् पुत्र उत्पन्न हुआ देखती हैं। देख कर हर्ष के कारण शीघ्र, मन से त्वरा वाली, काय से चपल एवं वेग वाली वे दासियाँ जहाँ श्रेणिक राजा है, वहीं आती हैं। आकर श्रेणिक राजा को जय-विजय शब्द कह कर बधाई देती हैं। बधाई देकर, दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर आवर्त्तन करके अंजलि करके इस प्रकार कहती हैं।

एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी णवण्हं मासाणं जाव

तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेन्ति, करित्ता बितियदिवसे जागरियं करेन्ति, करित्ता ततियदिवसे चंदसूरदंसणियं करेन्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असुइजातकम्मकरणे संपत्ते बारसाह-दिवसे विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावित्ता मित्त-णाइ-णियग-सयण संबंधि-परिजणं बलं च बहवे गणणायग-दंडणायग जाव आमंतेति।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन जातकर्म (नाल काटना आदि) किया। दूसरे दिन जागरिका (रात्रि जागरण) किया। तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य का दर्शन कराया। इस प्रकार अशुचि* जात कर्म की क्रिया सम्पन्न हुई। फिर बारहवाँ दिन आया तो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुएँ तैयार करवाई। तैयार करवा कर मित्र, बन्धु आदि ज्ञाति, पुत्र आदि निजक जन, काका आदि स्वजन, श्वसुर आदि संबंधी जन, दास आदि परिजन, सेना, और बहुत से गणनायक, दडनायक आदि को आमंत्रण दिया।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय० जाव सव्वालंकार-विभूसिया महइमहालयंसि भोयणमंडवंसि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ० गणणायग जाव सद्धिं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरइ।

उसके पश्चात् स्नान किया, बलिकर्म किया, मषितिलक आदि कौतुक किया, यावत् समस्त अलंकारो से विभूषित हुए। फिर बहुत विशाल भोजन-मंडप में, उस अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का मित्र, ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परस्पर विभाजन और परिभोग करते हुए विचरने लगे।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम-सुइभूया तं मित्तनाइनियगसयण संबंधिपरिजण० गणणायग० विपुलेणं पुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति, संमाणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—'जम्हा णं अम्हं इमस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव

* कहीं कहीं "सुइजातकम्मकरणे" पाठ है। इसका अर्थ है—शुचि जातकर्म की क्रिया।

समाणस्स अकालमेहेसु डोहले पाउब्भूए, तं होउ णं अम्हं दारए मेहे नामेणं मेहकुमारे।' तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेन्ति।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् बैठने के स्थान पर आये। शुद्ध जल से आचमन (कुल्ला) किया। हाथ-मुख धोकर स्वच्छ हुए, परम शुचि हुए। फिर उन मित्र, ज्ञाति निजक, स्वजन, संबंधीजन, परिजन आदि तथा गणनायक आदि का विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकार से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके इस प्रकार कहा—क्यो कि हमारा यह पुत्र जब गर्भ में स्थित था, तब इसे (इसकी माता को) अकाल-मेघ संबंधी दोहद प्रकट हुआ था। अतएव हमारे इस पुत्र का नाम 'मेघकुमार' होना चाहिए। इस प्रकार माता-पिता ने इस प्रकार का गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा।

तए णं से मेहकुमारे पंचधाईपरिग्गहिए। तंजहा-खीरधाईए, मंडणधाईए, मज्जणधाईए, कीलावणधाईए, अंकधाईए। अन्नाहि य बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणिवडभिबब्बरिवउसिजोणियाहिं पल्हवियईसिणियधोरुगिणिलासियलउसियदमिलिसिंहलिआरबिपुलिंदिपक्कणिबहलिमुरुंडिसबरिपारसीहिं णाणादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगित-चिंतिय-पत्थिय-वियाणियाहिं सदेसनेवत्थगहियवेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहि चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-कंचुइअ-महयरगवंदपरिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं संहरिज्जमाणे, अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे, परिगिज्जमाणे, चालिज्जमाणे, उवलालिज्जमाणे, रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परिमिज्जमाणे परिमिज्जमाणे णिव्वायणिव्वाघायंसि गिरिकन्दरमल्लीणे व चंपगपायवे सुहसुहेणं वड्ढइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार पाँच धायो द्वारा ग्रहण किया गया—पाँच धाएँ उसका पालन-पोषण करने लगी। वे इस प्रकार थीं—(१) क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली धाय, (२) मंडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय (३) मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय, (४) क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और (५) अंकधात्री—गोद में लेने वाली धाय। इनके अतिरिक्त वह मेघकुमार अन्यान्य कुब्जा (कुबड़ी) चिलातिका (चिलात-किरात नामक अनार्य देश में उत्पन्न), वामन (बौनी), वडभी (बड़े पेट वाली), बर्बरी (बर्बर देश में उत्पन्न), बकुश

देश की, योनक देश की, पल्हविक देश की, ईसिनिक, धोरुकिन ल्हासक देश की, लकुस देश की, द्रविड देश की, सिहल देश की, अरब देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, वहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की, इस प्रकार नाना देशों की, परदेश-अपने देश से भिन्न राजगृह, को सुशोभित करने वाली, इंगित (मुख आदि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देश के वेष को धारण करने वाली, निपुणो मे भी अतिनिपुण, विनययुक्त दासियों के द्वारा तथा स्वदेशीय दासियो द्वारा और वर्षधरों (प्रयोग द्वारा नपुंसक बनाये हुए पुरुषो), कंचुकियो और महत्तरको (अन्तःपुर के कार्य की चिन्ता रखने वालो) के समुदाय से घिरा रहने लगा। वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ मे जाता, एक की गोद से दूसरे की गोद में जाता, गा-गा कर बहलाया जाता, उंगली पकड़ कर चलाया जाता, क्रीड़ा आदि से लालन-पालन किया जाता एवं रमणीय मणि-जटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित गिरिगुफा में स्थित चम्पक वृक्ष के समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं नामकरणं च पज्जेमणं च एवं चंकम्मणगं च चोलोवणयं च महया महया इड्ढी-सक्कारसमुदएणं करिंसु।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार के माता-पिता अनुक्रम से नामकरण, पालने में सुलाना, पैरो से चलाना, चोटी रखना, आदि संस्कार बड़ी बडी ऋद्धि और सत्कार पूर्वक मानवसमूह के साथ करते हैं।

तए णं तं मेहकुमारं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायगं चेव गब्भट्ठमे वासे सोहणंसि तिहिकरणमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेन्ति। तते णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणितप्पहाणाओ सउण-रुतपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अ अत्थओ अ करणओ य सेहावेति, सिक्खावेति।

तत्पश्चात् कुछ अधिक आठ वर्ष के हुए, अर्थात् गर्भ से आठ वर्ष के हुए मेघकुमार को माता-पिता ने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त्त में कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्य ने मेघकुमार को गणित जिनमें प्रधान है ऐसी लेख आदि शकुनिरुत (पक्षियों के शब्द) तक की बहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध करवाई तथा सिखलाईं।

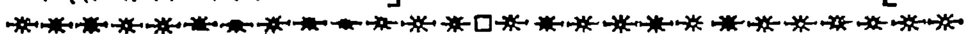
तंजहा–(१) लेहं (२) गणियं (३) रूवं (४) नट्टं (५) गीयं (६) वाइयं (७) सरगयं (८) पोक्खरगयं (९) समतालं (१०) जूयं (११) जणवायं (१२) पासयं (१३) अट्ठावयं (१४) पोरेकच्चं (१५) दगमट्टियं (१६) अन्नविहिं (१७) पाणविहिं (१८) वत्थविहिं (१९) विलेवणविहिं (२०) सयणविहिं (२१) अज्जं (२२) पहेलियं (२३) मागहियं (२४) गाहं (२५) गीइयं (२६) सिलोयं (२७) हिरण्णजुत्ति (२८) सुवन्नजुत्ति (२९) चुन्नजुत्ति (३० आभरणविहिं (३१) तरुणीपडिकम्मं (३२) इत्थिलक्खणं (३३) पुरिसलक्खणं (३४) हयलक्खणं (३५) गयलक्खणं (३६) गोणलक्खणं (३७) कुक्कुडलक्खणं (३८) छत्तलक्खणं (३९) डंडलक्खणं (४०) असिलक्खणं (४१) मणिलक्खणं (४२) कागणिलक्खणं (४३) वत्थुविज्जं (४४) खंधारमाणं (४५ नगरमाणं (४६) वूहं (४७) परिवूहं (४८) चारं (४९) परिचारं (५०) चक्कवूहं (५१) गरुलवूहं (५२) सगडवूहं (५३) जुद्धं (५४) निजुद्धं (५५) जुद्धातिजुद्धं (५६) अट्ठिजुद्धं (५७) मुट्ठिजुद्धं (५८) बाहुजुद्धं (५९) लयाजुद्धं (६०) ईसत्थं (६१) छरुप्पवायं (६२) धणुव्वेयं (६३) हिरन्नपागं (६४) सुवन्नपागं (६५) सुत्तखेडं (६६) वट्टखेडं (६७ नालियाखेडं (६८) पत्तच्छेज्जं (६९) कडगच्छेज्जं (७०) सज्जीवं (७१) निज्जीवं (७२) सउणरुअमिति।

वह कलाएँ इस प्रकार हैं—(१) लेखन (२) गणित (३) रूप बदलना (४) नाटक (५) गायन (६) वाद्य बजाना (७) स्वर जानना (८) वाद्य सुधारना (९) समान ताल जानना (१०) जुआ खेलना (११) लोगों के साथ वादविवाद करना (१२) पासों से खेलना (१३) चौपड़ खेलना (१४) नगर की रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को संस्कार करके शुद्ध करना एवं उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र बनाना, रंगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तु को पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या बनाना, शयन करने की विधि जानना आदि (२१) आर्या छंद को पहचानना और बनाना (२२) पहेलियाँ बनाना और बूझना (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा मे गाथा आदि बनाना (२४) प्राकृत भाषा में गाथा आदि

बनाना (२५) गीति छंद बनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप छंद) बनाना (२७) सुवर्ण बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि (२८) नई चांदी बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि (२९) चूर्ण-गुलाल अबीर आदि बनाना और उनका उपयोग करना (३०) गहने घड़ना, पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना-प्रसाधन करना (३२) स्त्री के लक्षण जानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण जानना (३६) गाय-बैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गा के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जानना (३९) दंड-लक्षण जानना (४०) खड्गलक्षण जानना (४१) मणि के लक्षण जानना (४२) काकणी रत्न के लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या-मकान दुकान आदि इमारतों की विद्या (४४) सेना के पड़ाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर बसाने आदि की कला (४६) व्यूह-मोर्चा बनाना (४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सैन्यसंचालन करना (४९) प्रतिचार-शत्रुसेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना (५०) चक्रव्यूह-चाक के आकार में मोर्चा बनाना (५१) गरुड़ के आकार का व्यूह बनाना (५२) शकट व्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि) से युद्ध करना (५७) मुष्टि युद्ध करना (५८) बाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०) बहुत को थोड़ा और थोड़े को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण संबंधी कौशल होना (६३) चांदी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र छेदन करना (६९) कड़ा कुंडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक घूक आदि की बोली पहचानना।

तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सिहावेति, सिक्खावेति, सिहावेत्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेति।

तए णं मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं मधुरेहिं वयणेहिं विपुलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति। दलइत्ता पडिविसज्जेन्ति।



तत्पश्चात् वह कलाचार्य, मेघकुमार को गणित प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाएँ सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है। सिद्ध करवा कर और सिखला कर माता-पिता के पास ले जाता है।

तब मेघकुमार के माता-पिता ने कलाचार्य का मधुर वचनो से तथा विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकारो से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विदा किया।

तए णं से मेहे कुमारे बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीइरई गंधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी अलं भोगसमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था।

तब मेघकुमार बहत्तर कलाओं मे पंडित हो गया। उसके नौ अंग-दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्था के कारण जो सोये-से थे-अव्यक्त चेतना वाले थे, वे जागृत से हो गये। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो गया। वह गीति मे प्रीति वाला, गीत और नृत्य में कुशल हो गया। वह अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया। अपनी बाहुओ से विपक्षी का मर्दन करने में समर्थ हो गया। भोग भोगने का सामर्थ्य उसमे आ गया। साहसी होने के कारण विकालचारी-आधी रात में भी चल पड़ने वाला बन गया।

तए णं तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं बावत्तरिकला-पंडितं जाव वियालचारीजायं पासंति। पासित्ता अट्ठ पासायवडिंसए करेन्ति अब्भुग्गयमुसियपहसिए विव मणिकणगरयणभत्तिचित्ते, वाउद्धूतविजयवेजयंतीपडागाछत्ताइच्छत्तकलिए, तुंगे, गगणतलमभि-लंघमाणसिहरे, जालंतररयणपंजरुम्मिल्लियव्व मणिकणगथूभियाए, वियसियसयपत्तपुंडरीए, तिलयरयणद्धयचंदच्चिए नानामणिमयदामालंकिए, अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्जरुइलवालुयापत्थरे, सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासादीए जाव पडिरूवे।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमार को बहत्तर कलाओं में पंडित यावत् विकालचारी हुआ देखा। देख कर आठ उत्तम प्रासाद बनवाये। वे प्रासाद बहुत ऊँचे उठे हुए थे। अपनी उज्ज्वल कान्ति के समूह से हँसते हुए से प्रतीत होते थे। मणि सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र थे। वायु से फहराती हुई और विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती-पताकाओं से तथा छत्रातिछत्रों (एक दूसरे के ऊपर रहे हुए छत्रों) से युक्त थे। वे इतने ऊँचे थे कि उनके शिखर आकाशतल को उल्लंघन करते थे। उनकी जालियों के मध्य में रत्नों के पंजर ऐसे प्रतीत होते थे, मानों उनके नेत्र हों। उनमें मणियों और कनक की थूभिकाएँ (स्तूपिकाएँ) थीं। उनमें साक्षात् अथवा चित्रित किये हुए शतपत्र और पुण्डरीक कमल विकसित हो रहे थे। वे तिलक रत्नों एवं अर्द्ध-चन्द्रों—एक प्रकार के सोपानों से युक्त थे, अथवा भित्तियों में चन्दन आदि के आलेख (हाथे) से चर्चित थे। नाना प्रकार की मणिमय मालाओं से अलंकृत थे। भीतर और बाहर से चिकने थे। उनके आंगन में सुवर्ण की रुचिर वालुका बिछी थी। उनका स्पर्श सुखप्रद था। रूप बड़ा ही शोभन था। उन्हें देखते ही चित्त में प्रसन्नता होती थी। यावत् वे महल प्रतिरूप थे—अत्यन्त मनोहर थे।

एगं च णं महं भवणं करेंति—अणेगखंभसयसंनिविट्ठं लीलट्ठियसाल-भंजियागं अब्भुग्गयसुकयवइरवेइयातोरणवररइयसालभंजिया सुसिलिट्ठ-विसिट्ठलट्ठसंठितपसत्थवेरुलियखंभनाणामणिकणगरयणखचितउज्जलं बहु-समसुविभत्तनिचियरमणिज्जभूमिभागं ईहामिय० जाव भत्तिचित्तं खंभुग्गय-वइरवेइयापरिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजुत्तं पिव अच्चीसहस्स-मालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचणरयणथूभियागं नाणाविहपंचवन्नघंटापडाग-परिमंडियग्गसिरं धवलमरीचिकवयं विणिम्मुयंतं लाउल्लोइयमहियं जाव गंधवट्टिभूयं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं।

और एक महान् भवन* (मेघकुमार के लिए) बनवाया। वह अनेक सैकड़ों स्तंभों से बना हुआ था। उसमें लीलायुक्त अनेक पुतलियाँ स्थापित की हुई थीं। उसमें ऊँची और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिका थी और तोरण थे। मनोहर निर्मित्त पुतलियों सहित उत्तम, मोटे एवं प्रशस्त वैडूर्य रत्न के स्तंभ थे,

* लम्बाई की अपेक्षा ऊँचाई कुछ कम हो तो वह महल भवन कहलाता है। लम्बाई से ऊँचाई दुगुनी हो तो प्रासाद कहलाता है।

वे विविध प्रकार के मणियों सुवर्ण तथा रत्नों से खचित होने के कारण उज्ज्वल दिखाई देते थे। उनका भूमिभाग बिलकुल सम, विशाल, पक्का और रमणीय था। उस भवन में ईहामृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर आदि के चित्र चित्रित किये हुए थे। स्तंभों पर बनी वज्ररत्न की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ता था। समान श्रेणी में स्थित विद्याधरो के युगल यंत्र द्वारा चलते दीख पड़ते थे। वह भवन हजारो किरणो से व्याप्त और हजारो चित्रों से युक्त होने से देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान था। उसे देखते ही दर्शक के नयन उसमें चिपक से जाते थे। उसका स्पर्श सुखप्रद था और रूप शोभासम्पन्न था। उसमे सुवर्ण, मणि एवं रत्नों की स्तूपिकाएँ बनी हुई थी। उसका प्रधान शिखर नाना प्रकार को, पाँच वर्णों की एवं घंटाओ सहित पताकाओ से सुशोभित था। वह चहुँ ओर देदीप्यमान किरणों के समूह को फैला रहा था। वह लिंपा था, धुला था और चंदोवे से युक्त था। यावत् वह भवन गंध की वर्त्ती जैसा जान पड़ता था। वह चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था—अतीव मनोहर था।

तए णं तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तमुहुत्तंसि सरिसियाणं सरिसव्वयाणं सरिसत्तयाणं सरिसलावन्नरूवजोव्वणगुणोववेयाणं सरिसएहिन्तो रायकुलेहिन्तो आणि-अल्लियाणं पसाहणट्ठंगअविहवबहुओवयणमंगलसुजंपियाहिं अट्ठहिं राय-वरकण्णाहिं सद्धिं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमार का शुभ तिथि करण नक्षत्र और मुहूर्त्त में, शरीर-परिमाण से सदृश, समान उम्र वाली, समान त्वचा (कान्ति) वाली, समान लावण्य वाली, समान रूप (आकृति) वाली, समान यौवन और गुणों वाली तथा अपने कुल के समान राजकुलो से लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ, एक ही दिन—एक ही साथ, आठों अंगों मे अलंकार धारण करने वाली सुहागिन स्त्रियो द्वारा किये हुए मंगलगान एवं दधि अक्षत आदि मांगलिक पदार्थों के प्रयोग द्वारा पाणिग्रहण करवाया।

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ-अट्ठहिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ, गाहानुसारेण भाणियव्वं जाव पेसणकारियाओ, अन्नं च विपुलं धणकणगरयणमणिमोत्तिय-संखसिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावतेज्जं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने (उन आठ कन्याओं को) इस प्रकार प्रीतिदान दिया-आठ करोड़ हिरण्य (चांदी), आठ करोड़ सुवर्ण, आदि गाथाओ के अनुसार समझ लेना चाहिए,† यावत् आठ-आठ प्रेक्षण कारिणी (नाटक करने वाली) अथवा पेषणकारिणी (पीसने वाली), तथा और भी विपुल धन. कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, मूंगा, रक्त रत्न (लाल) आदि उत्तम सारभूत द्रव्य दिया, जो सात पीढ़ी तक दान देने के लिए, भोगने के लिए, उपयोग करने के लिए और बँटवारा करके देने के लिए पर्याप्त था।

तए णं से मेहे कुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयति, एगमेगं सुवन्नकोडिं दलयति, जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयति, अन्नं च विपुलं धणकणग जाव परिभाएउं दलयति।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक करोड़ हिरण्य दिया एक-एक करोड़ सुवर्ण दिया। यावत् एक-एक प्रेक्षणकारिणी या पेषणकारिणी दी। इसके अतिरिक्त अन्य विपुल धन कनक आदि दिया, जो यावत् दान देने, भोगोपभोग करने और बँटवारा करने के लिए सात पीढ़ियों तक पर्याप्त था।

तए णं से मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वरतरुणिसंपउत्तेहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे सद्दफरिसरसरूवगंधविउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरति।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहा हुआ, मानो मृदगों के मुख फूट रहे हो, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा किये हुए बत्तीसबद्ध नाटकों द्वारा गायन किया जाता हुआ तथा क्रीड़ा करता हुआ, मनोज्ञ शब्द स्पर्श रस, रूप और गंध की विपुलता वाले मनुष्य संबधी कामभोगों को भोगता हुआ विचरता है।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए जाव विहरति।

---

† टीकाकार ने उल्लेख किया है कि ये गाथाएँ आजकल उपलब्ध नहीं है, तथापि अन्य ग्रंथों में उन वस्तुओं का उल्लेख है, जो इन कन्याओं को प्रदान की गई थीं।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से चलते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील नामक चैत्य था, यावत् वहीं आकर ठहरते है।

तए णं से रायगिहे नगरे सिंघाडग० महया बहुजणसद्देति वा जाव बहवे उग्गा भोगा जाव रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं एग-दिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति। इमं च णं मेहे कुमारे उप्पिं पासाय-वरगए फुट्टमाणेहिं मुयंगमत्थएहिं जाव माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे रायमग्गं च आलोएमाणे आलोएमाणे एवं च णं विहरति।

तत्पश्चात् राजगृह नगर में श्रृङ्गाटक–सिंघाड़े के आकार के मार्ग आदि में बहुत से लोगों का शोर होने लगा। यावत् बहुतेरे उग्र कुल के, भोग कुल के आदि सभी लोग यावत् राजगृह नगर के मध्य भाग में होकर एक ही दिशा में, एक ही ओर मुख करके निकलने लगे। उस समय मेघकुमार अपने प्रासाद पर था। मानों मृदंगों का मुख फूट रहा हो, इस प्रकार गायन किया जा रहा था। यावत् मनुष्य संबंधी कामभोग भोग रहा था और राजमार्ग का अवलोकन करता-करता विचर रहा था।

तए णं से मेहे कुमारे ते बहवे उग्गे भोगे जाव एगदिसाभिमुहे पासति पासित्ता कंचुइज्जपुरिसं सद्दावेति, सद्दावित्ता एवं वयासी–'किं णं भो देवाणुप्पिया! अज्ज रायगिहे नगरे इंदमहेति वा, खंदमहेति वा, एवं रुद्द-सिव-वेसमण-नाग-जक्ख-भूय-नई-तलाय-रुक्ख-चेतिय-पव्वय-उज्जाण-गिरिजत्ताइ वा? जओ णं बहवे उग्गा भोगा जाव एग-दिसिं एगाभिमुहा णिग्गच्छंति?'

तत्पश्चात् वह मेघकुमार उन बहुतेरे उग्रकुलीन भोग कुलीन यावत् सब लोगों को एक ही दिशा में मुख किये जाते देखता है। देखकर कंचुकी पुरुष को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—'हे देवानुप्रिय! क्या आज राजगृह नगर में इन्द्र महोत्सव है? स्कंद (कार्त्तिकेय) का महोत्सव है? या रुद्र, शिव, वैश्रमण (कुबेर), नाग, यक्ष, भूत, नदी, तडाग, वृक्ष, चैत्य, पर्वत, उद्यान या गिरि (पर्वत) की यात्रा है, जिससे बहुत से उग्र-कुल तथा भोग-कुल आदि के सब लोग एक ही दिशा में और एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं?'

तए णं से कंचुइज्जपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गहिया-

गमणपवित्तीए मेहं कुमारं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज रायगिहे नयरे इंदमहेतिवा जाव गिरिजत्ताओ वा, जं णं एए उग्गा जाव एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति, एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे इहमागते, इह संपत्ते, इह समोसढे, इह चेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए अहापडि० जाव विहरति ।

तत्पश्चात उस कंचुकी पुरुप ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन का वृत्तान्त जान कर मेघकुमार को इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगर में इन्द्र महोत्सव या यावत् गिरियात्रा आदि नहीं है कि जिसके निमित्त यह उग्रकुल के, भोगकुल के तथा अन्य सब लोग एक ही दिशा में, एकाभिमुख होकर जा रहे हैं। परन्तु देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर धर्म तीर्थ की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले यहाँ आये हैं. पधार चुके है, समवसृत हुए हैं और इसी राजगृह नगर में, गुणशील चैत्य में यथायोग्य अवग्रह की याचना करके यावत् विचर रहे हैं।

तए णं से मेहे कंचुइज्जपुरिसस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह ।' तह त्ति उवणेंति ।

तत्पश्चात् मेघकुमार कंचुकी पुरुष से यह बात सुन कर एवं हृदय में धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होता हुआ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाता है और बुलवा कर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घंटाओं वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित करो। वे कौटुम्बिक पुरुष 'बहुत अच्छा' कह कर रथ जोत लाते हैं।

तए णं से मेहे ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया। भडचडगरविंदपरियालसंपरिवुडे रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छति। निग्गच्छित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छति । उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्तातिछत्तं पडागातिपडागं विज्जाहरचारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासति । पासित्ता



चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहति। पच्चोरुहित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छति। तंजहा-(१) सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए (२) अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए (३) एगसाडियउत्तरासंगकरणेणं (४) चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं (५) मणसो एगत्तीकरणेणं। जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति। करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अंजलियउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्नान किया। सर्व अलंकारो से विभूषित हुआ। फिर चार घंटा वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ। कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाले छत्र को धारण किया। सुभटो के विपुल समूह वाले परिवार से घिरा हुआ, राजगृह नगर के बीचों बीच होकर निकला। निकल कर जहाँ गुणशील नामक चैत्य था, वहाँ आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओं पर पताका आदि अतिशयो को देखा तथा विद्याधरो, चारण मुनियो और ज भक देवों को नीचे उतरते एवं ऊपर उठते देखा। यह सब देखकर चार घण्टा वाले अश्वरथ से नीचे उतरा। उतर कर पाँच प्रकार के अभिगम करके श्रमण भगवान् महावीर के सन्मुख चला। वह पाँच अभिगम इस प्रकार है—(१) पुष्प पान आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग (२) वस्त्र, आभूषण आदि अचित्त द्रव्यो का अत्याग (३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासग (४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही दोनो हाथ जोड़ना और (५) मन को एकाग्र करना। यह अभिग्रह करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को दक्षिण दिशा से आरम्भ करके (तीन बार) प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान को स्तुति रूप वन्दन किया और काय से नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर के अत्यन्त समीप नहीं और अत्यन्त दूर भी नही ऐसे समुचित स्थान पर बैठ कर, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, दोनों हाथ जोड़े, सन्मुख रह कर, प्रभु की उपासना करने लगा।

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहकुमारस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ, जहा जीवा बज्झंति, मुच्चंति,

जह य संकिलिस्संति। धम्मकहा भाणियव्वा, जाव परिसा पडिगया।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को और उस महती परिषद् को, मध्य में स्थित होकर विचित्र प्रकार का श्रुतधर्म और चारित्र धर्म कहा। जिस प्रकार जीव कर्मों से बद्ध होते हैं, जिस प्रकार मुक्त होते हैं और जिस प्रकार संक्लेश को प्राप्त होते हैं, यह सब धर्मकथा औपपातिक सूत्र के अनुसार कह लेनी चाहिए। यावत् धर्मदेशना सुनकर परिषद् अर्थात् जनसमूह वापिस लौट गया।

तए णं मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी— 'सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं, एवं पत्तयामि णं, रोएमि णं, अब्भुट्ठेमि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं, एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! इच्छियमेयं, पडिच्छियमेयं भंते! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते! से जहेव तं तुब्भे वदह। जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं पव्वइस्सामि।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के पास से मेघकुमार ने धर्म श्रवण करके और उसे हृदय में धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से आरम्भ करके, प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूं। मैं उस पर प्रतीति करता हूं। मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है, अर्थात् जिन शासन के अनुसार आचरण करने की अभिलाषा करता हूं, भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अंगीकार करना चाहता हूं। भगवन्! यह ऐसा ही है (जैसा आप कहते हैं), यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है। भगवन्! मैंने इसकी इच्छा की है, पुनः पुनः इच्छा की है, भगवन्! यह इच्छित और पुनः पुनः इच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आप फरमाते हैं। विशेष बात यह है कि, हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा ले लूँ, तत्पश्चात् मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करूँगा।'

भगवान् ने कहा—'हे देवानुप्रिय ! जिससे तुझे सुख उपजे वह कर, परन्तु उसमें विलम्ब न करना।'

तए णं से मेहे कुमारे समणं भगवं महावीरं वंदति, नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता महया भडचडगरपहकरेणं रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ। पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ। करित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, अर्थात् उनकी स्तुति की, नमस्कार किया, स्तुति-नमस्कार करके जहाँ चार—घंटाओं वाला अश्व-रथ था, वहाँ आया। आकर चार घंटाओं वाले अश्व-रथ पर आरूढ़ हुआ। आरूढ़ होकर महान् सुभटों और विपुल समूह वाले परिवार के साथ राजगृह के बीचों-बीच होकर जहाँ अपना घर था, वहाँ आया। आकर चार घंटाओं वाले अश्व-रथ से उतरा। उतर कर जहाँ उसके माता-पिता थे, वहीं आया। आकर माता-पिता के पैरों में प्रणाम किया। प्रणाम करके इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के समीप इस प्रकार धर्म श्रवण किया है और मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है। वह मुझे रुचा है।

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एवं वयासी—'धन्नो सि तुमं जाया ! संपुन्नो सि तुमं जाया ! कयत्थो सि तुमं जाया ! जं णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।'

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—पुत्र ! तुम धन्य हो, पुत्र ! तुम पूरे पुण्यवान् हो, हे पुत्र ! तुम कृतार्थ हो, कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म श्रवण किया है और वह धर्म भी तुम्हें इष्ट, पुनः पुनः इष्ट और रुचिकर हुआ है।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी- एवं खलु अम्मयाओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते। से वि य णं मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए। तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तत्पश्चात् वह मेघकुमार माता-पिता से दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगा—हे माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण किया है। उस धर्म की मैंने इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रुचिकर हुआ है। अतएव हे माता-पिता! मैं तुम्हारी अनुमति पाकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

तए णं सा धारिणी देवी तमणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुन्नं अमणामं अस्सुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा णिसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूता समाणी सेयागयरोमकूवपगलंतविलीणगाया सोयभरपवेवियंगी णित्तेया दीणविमणवयणा करयलमलिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीरा लावन्नसुन्ननिच्छायगयसिरीया पसिढिलभूसणपडंतखुम्मियसंचुन्नियधवलवलयपब्भट्ठउत्तरिज्जा सूमालविकिन्नकेसहत्था मुच्छावसणट्ठचेयगरुई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहिम व्व इंदलट्ठी विमुक्कसंधिबंधणा कोट्टिमतलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिया।

तत्पश्चात् धारिणी देवी उस अनिष्ट (अनिच्छित) अप्रिय, अमनोज्ञ (अप्रशस्त) और अमणाम (मन को न रुचने वाली) पहले कभी न सुनी हुई, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय मे धारण करके, इस प्रकार के मन ही मन में रहे हुए महान् पुत्र वियोग के दुःख से पीड़ित हुई। उसके रोमकूपों में पसीना आने से अंगों से पसीना झरने लगा। शोक की अधिकता से उसके अंग काँपने लगे। वह निस्तेज हो गई। दीन और विमनस्क हो गई। हथेली से मली हुई कमल की माला के समान हो गई। 'मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं' यह शब्द सुनने के क्षण में ही वह दुखी और दुर्बल हो गई। वह

लावण्यरहित हो गई, कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई, शरीर दुर्बल होने से उसके पहने हुए अलंकार अत्यन्त ढीले हो गये, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पड़े और चूर-चूर हो गये। उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया। सुकुमार केशपाश बिखर गया। मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट होने के कारण शरीर भारी हो गया। परशु से काटी हुई चंपकलता के समान तथा महोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात इन्द्रध्वज के समान (शोभा-हीन) प्रतीत होने लगी। उसके शरीर के जोड़ ढीले पड़ गये। ऐसी वह धारिणी देवी सर्व अंगो से धस्-धड़ाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पड़ी।

तए णं सा धारिणी देवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगार-मुहविणिग्गयसीयलजलविमलधाराए परिसिंचमाणा निव्वावियगायलट्ठी उक्खेवणतालविंटवीयणगजणियवाएणं सफुसिएणं अंतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलिसन्निगासपवडंतअंसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे कलुणविमणदीना रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेहं कुमारं एवं वयासी।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी, संभ्रम के साथ शीघ्रता से, सुवर्णकलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचन की गई। अत-एव उसका शरीर शीतल हो गया। उत्क्षेपक (एक प्रकार के बांस के पंखे) से, तालवृन्त (ताड़ के पत्ते के पंखे) से तथा वीजनक (जिसकी डंडी अंदर से पकड़ी जाय, ऐसे बांस के पंखे) से उत्पन्न हुए तथा जलकणों से युक्त वायु से अन्तःपुर के परिजनों द्वारा उसे आश्वासन दिया गया। तब धारिणी देवी मोतियों की लड़ी के समान अश्रुधारा से अपने स्तनो को सींचने-भिगोने लगी। वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना एवं लार टपकाती हुई हृदय में शोक करती हुई और विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार कहने लगी।

तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुन्ने मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयण-भूए जीवियउस्सासए, हिययाणंदजणणे उंबरपुप्फं व दुल्लभे सवणयाए किमंग पुण पासणयाए? णो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं

परिणयवए वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैर्य और विश्वास का स्थान है। कार्य करने में सम्मत (माना हुआ) है, बहुत कार्यों में बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणों की पेटी के समान है। मनुष्य जाति में उत्तम होने के कारण रत्न है। रत्न रूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की तो बात ही क्या है। हे पुत्र ! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नहीं सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र ! प्रथम तो जब तक हम जीवित है, तब तक मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगो को भोग। फिर जब हम कालगत हो जाएँ और तू परिपक्व उम्र का हो जाय—तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, कुल-वंश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप तंतु का कार्य वृद्धि को प्राप्त हो जाय, जब सांसारिक कार्य की अपेक्षा न रहे, उस समय तू श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर, गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी—'तहेव णं तं अम्मयाओ ! जहेव णं तुम्हे ममं एवं वदह—तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते, तं चेव जाव निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि—एवं खलु अम्मयाओ माणुस्सए भवे अधुवे अणियए असासए वसणसउवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिन्दुसन्निभे संझब्भरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडणपडणविद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स विप्पजहणिज्जे से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

तत्पश्चात् माता-पिता के द्वारा इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! आप मुझ से यह जो कहते हैं कि—हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इत्यादि सब पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् सांसारिक कार्य से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान महावीर के समीप प्रव्रजित

होना—सो ठीक है, परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्यभव ध्रुव नहीं है अर्थात् सूर्योदय के समान नियमित समय पर पुनः पुनः प्राप्त होने वाला नहीं है, नियत नहीं है अर्थात् इस जीवन मे उलट-फेर होते रहते हैं, अशाश्वत है अर्थात् क्षण-विनश्वर है, सैकड़ो व्यसनों एवं उपद्रवों से व्याप्त है, बिजली की चमक के समान चंचल है, अनित्य है, जल के बुलबुले के समान है, दूब की नौंक पर लटकने वाले जल बिन्दु के समान है, सन्ध्यासमय के बादलो के सदृश है, स्वप्न दर्शन के समान है—अभी है और अभी नहीं है, कुष्ठ आदि से सड़ने, तलवार आदि से कटने और क्षीण होने के स्वभाव वाला है तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य हैं, हे माता-पिता ! कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा ? अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।'

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—'इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ सरिसत्तयाओ सरिसव्वयाओ सरिसलावन्नरूव-जोव्वणगुणोववेयाओ सरिसेहिन्तो रायकुलेहिन्तो आणियल्लियाओ भारियाओ, तं भुंजाहि णं जाया ! एताहि सद्धिं विपुले माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि।'

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! यह तुम्हारी भार्याएँ समान शरीर वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त तथा समान राजकुलो से लाई हुई हैं। अतएव हे पुत्र ! इनके साथ विपुल मनुष्य सबंधी कामभोगों को भोगो। तदन्तर भुक्त-भोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप यावत् दीक्षा ले लेना ।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—'तहेव णं अम्म-याओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—'इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स पव्वइस्ससि'—एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सासनीसासा दुरूयमुत्तपुरीसपूय-बहुपडिपुन्ना उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणगवंतपित्तसुक्कसोणित संभवा

अधुवा अणियया असासया सडणपडणविद्धंसणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जा। से के णं अम्मयाओ! जाणंति के पुव्विं गमणाए? के पच्छा गमणाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ! जाव पव्वइत्तए।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता! आप मुझे यह जो कहते हैं कि—'हे पुत्र! तेरी यह भार्याएँ समान शरीर वाली है, इत्यादि, यावत् इनके साथ भोग भोगकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ले लेना, सो ठीक है, किन्तु हे माता-पिता! मनुष्यो के यह कामभोग अर्थात् कामभोग के आधारभूत नर-नारियो के शरीर अशुचि है, अशाश्वत हैं, वमन को झराने वाले, पित्त को झराने वाले, कफ को झराने वाले, शुक्र को झराने वाले, तथा शोणित को झराने वाले है, गंदे उच्छ्वास-निःश्वास वाले है, खराब मूत्र, मल और पीव से अत्यन्त परिपूर्ण हैं, मल, मूत्र, कफ, नासिकामल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले है। यह ध्रुव नहीं, नियत नहीं, शाश्वत नहीं है, सड़ने पड़ने और विध्वंस होने के स्वभाव वाले है और पहले पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य हैं। हे माता-पिता! कौन जानता है कि पहले कौन जाएगा और पीछे कौन जाएगा? अतएव हे माता-पिता! मैं यावत् अभी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूं।

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—'इमे ते जाया! अज्जयपज्जयपिउपज्जयागए सुबहु हिरन्ने य सुवन्ने य कंसे य दूसे य मणिमोत्तिए य संखसिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावतिज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं, पगामं भोत्तुं, पगामं परिभाएउं, तं अणुहोहि ताव जाव जाया! विपुलं माणुस्सगं इड्डिसक्कारसमुदयं, तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पव्वइस्ससि।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यह बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांसा, दूष्य-वस्त्र, मणि, मोती, शंख, सिला, मूंगा, लाल रत्न आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान हैं। यह इतना है कि सात पीढ़ियो तक भी समाप्त न हो। इसका तुम खूब दान करो, स्वयं भोग करो और बँटवारा करो। हे पुत्र! यह जितना मनुष्य सम्बन्धी ऋद्धि-सत्कार का



समुदाय है, उतना सब तुम भोगो। उसके बाद अनुभूत-कल्याण होकर तुम श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेना।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—'तहेव णं अम्मयाओ! जं णं तं वदह—'इमे ते जाया! अज्जगपज्जगपिउपज्जगागए जाव तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे पव्वइस्ससि'—एवं खलु अम्मयाओ! हिरन्ने य सुवण्णे य जाव सावतेज्जे अग्गिसाहिए, चोरसाहिए, रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए अग्गिसामन्ने जाव मच्चुसामन्ने सडणपडणविद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे, से के णं जाणइ अम्मयाओ! के जाव गमणाए? तं इच्छामि णं जाव पव्वइत्तए।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने माता-पिता से कहा—हे माता-पिता! आप जो कहते हैं सो ठीक है कि—'हे पुत्र! यह दादा, पड़दादा और पिता के पड़दादा से आया हुआ यावत् उत्तम द्रव्य है, इसे भोगो और फिर अनुभूत कल्याण होकर दीक्षा ले लेना—'परन्तु हे माता-पिता! यह हिरण्य सुवर्ण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है-इसे अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बँटवारा करा सकते हैं और मृत्यु आने पर वह अपना नहीं रहता है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिए समान है, अर्थात् जैसे द्रव्य उसके स्वामी का है, उसी प्रकार अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिए भी सामान्य है। यह सड़ने पड़ने और विध्वस्त होने का स्वभाववाला है। (मरण के) पश्चात् या पहले अवश्य त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा? अतएव मैं यावत् दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूं।'

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएइ मेहं कुमारं बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा सन्नवित्तए वा, ताहे विसयपडिकूलाहिं संजमभउव्वेयकारियाहिं पन्नवणाहिं पन्नवेमाणा एवं वयासी।

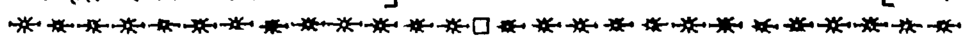
तत्पश्चात् उस मेघकुमार के माता-पिता जब मेघकुमार को विषयों के

अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, संज्ञापना (संबोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से समझाने, बुझाने, संबोधन करने और अनुनय करने मे समर्थ न हुए, तब विषयो के प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे।

एस णं जाया! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुन्ने णेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानदी पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं चंकमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधार व्व संचरियव्वं।

णो य खलु कप्पइ जाया! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा, उद्देसिए वा, कीयगडे वा, ठवियए वा, रइयए वा, दुब्भिक्खभत्ते वा, कंतारभत्ते वा, वद्दलियाभत्ते वा, गिलाणभत्ते वा, मूलभोयणे वा, कंदभोयणे वा, फलभोयणे वा, बीयभोयणे वा, हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा। तुमं च णं जाया! सुहसमुचिए णो चेव णं दुहसमुचिए। णालं सीयं, णालं उण्हं, णालं खुहं, णालं पिवासं, णालं वाइयपित्तियसिंभियसन्निवाइयविविहे रोगायंके उच्चावए गामकंटए बावीसं परीसहोवसग्गे उदिन्ने सम्मं अहियासित्तए। भुंजाहि ताव जाया! माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि।

हे पुत्र! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य (सत्पुरुषो के लिए हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक सर्वज्ञकथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणो से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, सशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्त्तन अर्थात् माया आदि शल्यों का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्तिमार्ग (पापों के नाश का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धि क्षेत्र का) मार्ग है,



निर्वाण का मार्ग है और समस्त दुःखों को पूर्ण रूपेण नष्ट करने का मार्ग है। जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने में निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन मे दृष्टि निश्चल रखनी पड़ती है। यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इसमे दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओं का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है-विषयसुख से रहित है। इसका पालन करना गंगा नामक महानदी के सामने पूर मे तिरने के समान कठिन है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है। महाशिला जैसी भारी वस्तुओं को गले मे बांधने के समान है। तलवार की धार पर चलने के समान है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों को आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोड़ा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुनः साधु के लिए मोदक रूप मे तैयार किया हुआ), दुर्भिक्ष-भक्त (साधु के लिए दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन), कान्तारभक्त (साधु के निमित्त अरण्य मे बनाया आहार), वर्दलिकाभक्त (वर्षा के समय उपाश्रय में आकर बनाया भोजन), ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कंद का भोजन, फल का भोजन, शालि आदि बीजों का भोजन अथवा हरित का भोजन करना भी नहीं कल्पता है।

इसके अतिरिक्त हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, दुःख सहने योग्य नहीं है। तू शीत सहने मे समर्थ नही है, उष्ण सहने मे समर्थ नहीं है,। भूख नहीं सह सकता, प्यास नहीं सह सकता, वात पित्त कफ और सन्निपात से होने वाले विविध रोगों (कोढ़ आदि को) तथा आतंकों (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊँचे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनो को, उत्पन्न हुए बाईस परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार सहन नहीं कर सकता। अतएव हे लाल ! तू मनुष्य सबधी कामभोगों को भोग। बाद में भुक्तभोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या अगीकार करना।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी—'तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—'एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे० पुणरवि तं चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइ-

स्ससि ।' एवं खलु अम्मयाओ ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगनिप्पिवासाणं दुरणुचरे पायय-जणस्स, णो चेव णं धीरस्स निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुकरं करण-याए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए ।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघ कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो कहते है सो ठीक है कि—'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, आदि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिए; यावत् बाद मे भुक्तभोगी होकर प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना ।' परन्तु हे माता-पिता ! इस प्रकार यह निर्ग्रन्थ प्रवचन क्लीव-हीन संहनन वाले. कायर-चित्त की स्थिरता से रहित, कुत्सित, इस लोक संबंधी विषयसुख की अभिलाषा करने वाले, परलोक के सुख की इच्छा न करने वाले सामान्य जन के लिए ही दुष्कर है । धीर एवं दृढ़ संकल्प वाले पुरुष को इसका पालन करना कठिन नहीं है । इसका पालन करने में कठिनाई क्या है ! अतएव हे माता-पिता ! आपकी अनुमति पाकर मैं श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं ।

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाइंति बहूहिं विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा, पन्नवित्तए वा, सन्न-वित्तए वा विन्नवित्तए वा, ताहे अकामए चेव मेहं कुमारं एवं वयासी— 'इच्छामो ताव जाया ! एगदिवसमवि ते रायसिरिं पासित्तए ।'

तत्पश्चात् जब माता-पिता मेघकुमार को विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत-सी आख्यापना, प्रज्ञापना, संज्ञापना और विज्ञापना से समझाने, बुझाने, संबोधन करने और विज्ञप्ति करने मे समर्थ न हुए, तब इच्छा के बिना भी मेघ कुमार से इस प्रकार बोले—हे पुत्र ! हम एक दिन भी तुम्हारी राज्यलक्ष्मी देखना चाहते हैं, अर्थात हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए भी राजा बन जाओ ।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार माता-पिता (की इच्छा) का अनुसरण करता हुआ मौन रह गया ।

तए णं सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव ते वि तहेव उवट्ठवेन्ति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों (सेवको) को बुलवाया और बुलवा कर कहा—'हे देवानुप्रियो! मेघकुमार का महान् अर्थ वाले, बहुमूल्य एवं महान् पुरुषों के योग्य राज्याभिषेक (के योग्य सामग्री) तैयार करो।' तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् उसी प्रकार सब सामग्री तैयार की।

तए णं सेणिए राया बहूहिं गणणायगदंडणायगेहि य जाव संपरिवुडे मेहं कुमारं अट्ठसएणं सोवन्नियाणं कलसाणं, एवं रुप्पमयाणं कलसाणं सुवण्णरुप्पमयाणं कलसाणं मणिमयाणं कलसाणं, सुवन्नमणिमयाणं कलसाणं, रुप्पमणिमयाणं कलसाणं, सुवन्नरुप्पमणिमयाणं कलसाणं भोमेज्जाणं कलसाणं, सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वपुप्फेहिं सव्वगंधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहिहि य, सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं जाव दुंदुभिनिग्घोसणादियरवेणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता करयल जाव कट्टु एवं वायसी।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बहुत-से गणनायकों एवं दंडनायकों आदि से परिवृत होकर मेघकुमार को, एक सौ आठ सुवर्ण-कलशो, इसी प्रकार एक सौ आठ चाँदी के कलशो, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत के कलशो, एक सौ आठ मणिमय कलशों, एक सौ आठ स्वर्ण-मणि के कलशों. एक सौ आठ रजत-मणि के कलशो, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणि के कलशों और एक सौ आठ मिट्टी के कलशों—इस प्रकार आठ सौ चौसठ कलशों मे सब प्रकार का जल भर कर तथा सब प्रकार की मृत्तिका से, सब प्रकार के पुष्पो से, सब प्रकार के गंधों से, सब प्रकार की मालाओं से, सब प्रकार की औषधियो से तथा सरसो से उन्हे परिपूर्ण करके, सर्वसमृद्धि, द्युति तथा सर्व सैन्य के साथ, दुंदुभि के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दों के साथ उच्चकोटि के राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके श्रेणिक राजा ने दोनो हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार कहा।

'जय जय णंदा! जय जय भद्दा! जय णंदा! भद्दं ते, अजियं

जिणेहि, जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि, अजियं जिणेहि सत्तु-पक्खं, जियं च पालेहि मित्तपक्खं, जाव भरहो इव मणुयाणं राय-गिहस्स नगरस्स अन्नेसिं च बहूणं गामागरनगर जाव संनिवेसाणं आहेवच्चं जाव विहराहि' त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति।

तए णं से मेहे राया जाए महया जाव विहरइ।

हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे जगन्नन्द (जगत् को आनन्द देने वाले) ! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। तुम न जीते हुए को जीतो और जीते हुए का पालन करो। जित–आचारवान्-के मध्य में निवास करो। नहीं जीते हुए शत्रुपक्ष को जीतो। जीते हुए मित्रपक्ष का पालन करो। यावत् मनुष्यों में भरत चक्री की भाँति राजगृह नगर का तथा दूसरे बहुतेरे ग्रामों, आकरों, नगरो यावत् सन्निवेशो का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करो। इस प्रकार कह कर श्रेणिक राजा ने जय-जय शब्द किया।

तत्पश्चात् वह मेघ राजा हो गया और पर्वतो मे महाहिमवन्त की तरह शोभा पाता हुआ विचरने लगा।

तए णं तस्स मेहस्स रण्णो अम्मापियरो एवं वयासी—'भण जाया ! किं दलयामो ? किं पयच्छामो ? किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे (मंते) ?

तत्पश्चात् माता-पिता ने राजा मेघ से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! बताओ, तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें अथवा तुम्हारे इष्ट जनों को क्या दें ? तुम्हे क्या दें ? तुम्हारे चित्त में क्या चाह-विचार है ?

तए णं से मेहे राया अम्मापियरो एवं वयासी—'इच्छामि णं अम्मयाओ ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, कासवयं च सद्दावेह।'

तत्पश्चात् राजा मेघ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा–'हे माता-पिता ! मैं चाहता हूं कि कुत्रिकापण (जिसमें सब जगह की सब वस्तुएँ मिलती हैं, उस अलौकिक दुकान) से रजोहरण और पात्र मँगवा दो और काश्यप-नापित-को बुलवा दो।

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ। सद्दावेत्ता एवं

वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिन्नि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहगं च उवणेह, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेह ।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सिरिघराओ तिन्नि सयसहस्साइं गहाय कुत्तियावणाओ दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेन्ति, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेन्ति ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ, श्रीगृह (खजाने) से तीन लाख स्वर्णमोहरें लेकर दो लाख से कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख देकर नाई को बुला लाओ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष, राजा श्रेणिक के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर श्रीगृह से तीन लाख मोहरें लेकर कुत्रिकापण से, दो लाख से रजोहरण और पात्र लाये और एक लाख मोहरों से उन्होंने नाई को बुलाया।

तए णं से कासवए तेहिं कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठे जाव हयहियए ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं मंगलाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे जेणेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलमंजलिं कट्टु एवं वयासी—'संदिसह णं देवाणुप्पिया ! जं मए करणिज्जं ।'

तए णं से सेणिए राया कासवयं एवं वयासी—गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुरभिणा गंधोदएणं णिक्के हत्थपाए पक्खालेह । सेयाए चउप्फालाए पोत्तीए मुहं बंधेत्ता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि ।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाया गया वह नाई हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दित हृदय हुआ। उसने स्नान किया, बलिकर्म (गृहदेवता का पूजन) किया, मषी-तिलक आदि कौतुक, दही दूर्वा आदि मंगल एवं दुःस्वप्न का निवा-

का हार पहनाया, नौ लड़ो का अर्द्धहार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, प्रालंब (कंठी) पादप्रलम्ब (पैरो तक लटकने वाला आभूषण), कड़े, तुटिक (भुजा का आभूषण), केयूर, अंगद, दसों उंगलियों में दस मुद्रिकाएँ, कंदोरा, कुंडल, चूडामणि तथा रत्नजटित मुकुट पहनाये। यह सब अलंकार पहना कर पुष्पमाला पहनाई। फिर *दर्दर में पकाये हुए चंदन के सुगंधित तेल की गंध शरीर पर लगाई।

तए णं तं मेहं कुमारं गंठियवेढिमपूरिमसंघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकियविभूसियं करेन्ति।

तत्पश्चात् मेघकुमार को सूत से गूंथी हुई, पुष्प आदि से वेढ़ी हुई बांस की सलाई आदि से पूरित की गई तथा वस्तु के योग से परस्पर संघात रूप की हुई-इस तरह पाँच प्रकार की पुष्पमालाओं से कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित किया।

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसयसन्निविट्ठं लीलट्ठियसालभंजियागं ईहामिग-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं घंटावलि-महुरमणहरसरं सुभकंतदरिसणिज्जं निउणोचियमिसिमिसंतमणिरयण-घंटियाजालपरिक्खित्तं खंभुग्गयवइरवेइयापरिगयाभिरामं विज्जाहरजमल-जंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुलोयणलेस्सं सुहफासं सस्सिरीयरूवं सिग्घं तुरियं चवलं चेइयं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं उवट्ठवेह।'

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही एक शिविका तैयार करो जो अनेक सैकड़ो स्तभो से बनी हो, जिसमे क्रीड़ा करती हुई पुतलियाँ बनी हो, जो ईहामृग (भेड़िया), वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु (काले मृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, कुञ्जर, वनलता और पद्मलता आदि के चित्रो की रचना से युक्त हो, जिससे घंटा के समूह के मधुर और मनोहर शब्द हो

*मिट्टी के घड़े का मुँह कपड़े से बाँध कर अग्नि की आँच से तपा कर तैयार किया गया तेल।



रहे हो, जो शुभ, मनोहर और दर्शनीय हो, जो कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित देदीप्यमान मणियो और रत्नो की घुघुरुओ के समूह से व्याप्त हो, स्तंभ पर बनी हुई वेदिका से युक्त होने के कारण जो मनोहर दिखाई देती हो, जो चित्रित विद्याधर-युगलों से युक्त हो, चित्रित सूर्य की हजार किरणों से शोभित हो, इस प्रकार हजारों रूपो वाली, देदीप्यमान, अतिशय देदीप्यमान, जिसे देखते नेत्रो को तृप्ति न हो, जो सुखद स्पर्श वाली हो, सश्रीक स्वरूप वाली हो, शीघ्र त्वरित चपल और अतिशय चपल हो, अर्थात् जिसे शीघ्रतापूर्वक ले जाया जाय और जो एक हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाती हो।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठा जाव उवट्ठवेन्ति। तए णं से मेहे कुमारे सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट होकर यावत् शिविका (पालकी) उपस्थित करते हैं। तत्पश्चात् मेघकुमार शिविका पर आरूढ़ हुआ और सिंहासन के पास पहुँच कर पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठ गया।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सीयं दुरूहति। दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणंसि निसीयति।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अंबधाई रयहरणं च पडिग्गहं च गहाय सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणंसि निसीयति।

तत्पश्चात् जो स्नान कर चुकी है, बलिकर्म कर चुकी है यावत् अल्प और बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत कर चुकी है, ऐसी मेघकुमार की माता उस शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर मेघकुमार के दाहिने पार्श्व में, भद्रासन पर

तत्पश्चात् मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरूढ़ होकर मेघकुमार के बायें पार्श्व मे भद्रासन पर बैठ गई।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारा-गारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-

निउणजुत्तोवयारकुसला, आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-अब्भुन्नय-पीण-रइय-संठियपओहरा, हिम-रयय-कुन्देन्दुपगासं सकोरंटमल्लदामधवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओहारेमाणी चिट्ठइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के पीछे शृङ्गार के आगार रूप, मनोहर वेष वाली, सुन्दर गति हास्य वचन चेष्टा विलास सलाप (पारस्परिक वार्त्तालाप) उल्लाप (वर्णन) करने में कुशल, योग्य उपचार करने मे कुशल, परस्पर मिले हुए समश्रेणी मे स्थित गोल ऊँचे पुष्ट प्रीतिजनक और उत्तम आकार के स्तन वाली एक उत्तम तरुणी, हिम (बर्फ) चाँदी कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान प्रकाश वाले, कारंट के पुष्पों की माला से युक्त धवल छत्र को धारण करती हुई लीलापूर्वक खड़ी हुई थी।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारुवेसाओ जाव कुसलाओ सीयं दुरूहंति, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स उभओ पासं नाणामणिकणगरयणमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ सुहुमवरदीहवालाओ संख-कुंद-दग-रयअ-महियफेणपुंजसंन्निगासाओ चामराओ गहाय सलीलं ओहारेमाणीओ ओहारेमाणीओ चिट्ठंति।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप शृङ्गार के आगार के समान, सुन्दर वेष वाली, यावत् उचित उपकार करने में कुशल दो श्रेष्ठ तरुणियाँ शिबिका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर मेघकुमार के दोनों पार्श्वों में, विविध प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न और महान् जनो के योग्य अथवा बहुमूल्य तपनीयमय (रक्त वर्ण सुवर्ण वाले) उज्ज्वल एवं विचित्र दंडी वाले, चमचमाते हुए, पतले उत्तम और लम्बे बालो वाले, शंख कुन्दपुष्प जलकण रजत एवं मथन किये हुए अमृत के फेन के समूह सरीखे (श्वेत वर्ण वाले) दो चामर धारण करके लीलापूर्वक वींजती-वींजती हुई खड़ी हुई।

तए णं तस्स मेह कुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारा० जाव कुसला सीयं जाव दुरूहइ। दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरतो पुरत्थिमेणं चंदप्पभ-वइर-वेरुलिय विमलदंडं तालविंटं गहाय चिट्ठइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार रूप यावत् उचित उपचार करने में कुशल एक उत्तम तरुणी यावत् शिबिका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़



होकर मेघकुमार के पास पूर्व दिशा के सन्मुख चन्द्रकान्त मणि-वज्ररत्न और वैडूर्यमय निर्मल दंडी वाले पखे को ग्रहण करके खड़ी हुई।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी जाव सुरूवा सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुव्वदक्खिणेणं सेयं रययामयं विमल-सलिलपुन्नं मत्तगयमहामुहाकिइसमाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप एक उत्तम तरुणी यावत् सुन्दर रूप वाली शिविका पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर मेघकुमार से पूर्वदक्षिण-आग्नेय-दिशा में श्वेत रजतमय निर्मल जल से परिपूर्ण, मदमाते हाथी के बड़े मुख के समान आकृति वाले भृंगार (झारी) को ग्रहण करके खड़ी हुई।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसयाणं सरिसत्तयाणं सरिसव्वयाणं एगाभरणगहियनिज्जोयाणं कोडुंबियवरतरुणाणं सहस्सं सद्दावेह।' जाव सद्दावेन्ति।

तए णं कोडुंबियवरतरुणपुरिसा सेणियस्स रन्नो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठा ण्हाया जाव एगाभरणगहियनिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सेणियं रायं एवं वयासी—'संदिसह णं देवाणुप्पिया! जं णं अम्हेहिं करणिज्जं।

तत्पश्चात् मेघकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! शीघ्र ही एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा (क्रान्ति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले तथा एक सरीखे आभूषणों से समान वेष धारण करने वाले एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।' यावत् उन्होंने एक हजार पुरुषों को बुलाया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों ने श्रेष्ठ तरुण सेवक पुरुषों को बुलाया। वे हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने स्नान किया, यावत् एक-से आभूषण पहन कर समान पोशाक पहनी। फिर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आये। आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय! हमें जो करने योग्य है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।

तए णं से सेणिए तं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं एवं वयासी—'गच्छह

णं देवाणुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं परिवहेह।

तए णं तं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सेणिएणं रण्णा एवं वुत्तं संतं हट्ठं तुट्ठं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं परिवहति।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने उन एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषों से कहा—हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की पालकी को वहन करो।

तत्पश्चात् वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की शिबिका को वहन करने लगे।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलया तप्पढमयाए पुरतो अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तंजहा—(१) सोत्थिय (२) सिरिवच्छ (३) नंदियावत्त (४) वद्धमाणग (५) भद्दासण (६) कलस (७) मच्छ (८) दप्पण जाव बहवे अत्थत्थिया जाव ताहिं इट्ठाहिं जाव अणवरयं अभिणंदंता य एवं वयासी।

तत्पश्चात् पुरुषसहस्रवाहिनी शिबिका पर मेघकुमार के आरूढ़ होने पर, उसके सामने, सर्वप्रथम यह आठ मंगलद्रव्य अनुक्रम से चले अर्थात् चलाये गये। वे इस प्रकार हैं—(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नंदावर्त्त (४) वर्धमान (सिकोरा या पुरुषारूढ़ पुरुष या पाँच स्वस्तिक या विशेष प्रकार का प्रासाद), (५) भद्रासन (६) कलश (७) मत्स्य और (८) दर्पण। यावत् बहुत-से धन के अर्थी (याचक) जन यावत् इष्ट कान्त आदि विशेषणों वाली वाणी से यावत् निरन्तर अभिनन्दन एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

'जय जय णंदा! जय जय भद्दा! जयणंदा! भद्दं ते, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं, जियविग्घोऽवि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं नाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं सासयं च अयलं हंता परीसहचमुं णं अभीओ परीसहोवसग्गाणं, धम्मे ते

अविग्घं भवउ' त्ति कट्टु पुणो पुणो मंगलजयजयसद्दं पउंजंति ।

हे नन्द ! जय हो, जय हो ! हे भद्र ! जय हो, जय हो ! हे जगत् को आनन्द देने वाले ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम नहीं जीती हुई पाँच इन्द्रियों को जीतो और जीते हुए (प्राप्त किये) साधुधर्म का पालन करो । हे देव ! विघ्नों को जीत कर सिद्धि मे निवास करो । धैर्यपूर्वक कमर कस कर, तप के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल्लो का हनन करो । प्रमादरहित होकर उत्तम शुक्ल ध्यान के द्वारा आठ कर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करो । अज्ञानान्धकार से रहित सर्वोत्तम केवलज्ञान को प्राप्त करो । परीषह रूपी सेना का हनन करके, परीषह और उपसर्ग से निर्भय होकर शाश्वत एवं अचल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो । तुम्हारे धर्मसाधन में विघ्न न हो ।' इस प्रकार कह कर वे पुनः पुनः मंगलमय 'जयजय' शब्द का प्रयोग करने लगे ।

तए णं से मेहे कुमारे रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ । निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार राजगृह के बीचों बीच होकर निकला । निकल कर जहाँ गुणशील चैत्य था, वहाँ आया । आकर पुरुषसहस्रवाहिनी पालकी से नीचे उतरा ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं पुरओ कट्टु जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छंति । उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेन्ति । करित्ता वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासीः—

'एस णं देवाणुप्पिया ! मेहे कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव जीवियऊसासए हिययणंदिजणए उंबरपुप्फमिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण दरिसणयाए ? से जहानामए उप्पलेइ वा, पउमेइ वा, कुमुदेइ वा, पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं, णोवलिप्पइ-जलरएणं, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु संवुड्ढे, नोवलिप्पइ कामरएणं, नोवलिप्पइ भोगरएणं, एस णं देवाणुप्पिया ! संसार-भउव्विग्गे भीए जम्मणजरमरणाणं इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे

भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अम्हे णं देवाणुप्पियाणं सिस्सभिक्खं दलयामो। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सभिक्खं।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता मेघकुमार को सामने करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आते हैं। आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार दक्षिण तरफ से आरंभ करके प्रदक्षिणा करते है। करके वन्दन करते हैं, नमस्कार करते हैं। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं—

'हे देवानुप्रिय! यह मेघकुमार हमारा इकलौता* पुत्र है। यह हमें इष्ट है, कान्त है, प्राण के समान और उच्छ्वास के समान है। हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला है। गूलर के पुष्प के समान इसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो दर्शन की बात ही क्या है? जैसे उत्पल (नील कमल), पद्म (सूर्य विकासी कमल) अथवा कुमुद (चन्द्रविकासी कमल) कीच में उत्पन्न होता है और जल मे वृद्धि पाता है, फिर भी पंक की रज से अथवा जल की रज (कण) से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार मेघकुमार कामों में उत्पन्न हुआ और भोगों में वृद्धि पाया है, फिर भी काम-रज से लिप्त नहीं हुआ, भोगरज से लिप्त नहीं हुआ। हे देवानुप्रिय! यह मेघकुमार ससार के भय से उद्विग्न हुआ है और जन्म जरा मरण से भयभीत हुआ है। अतः देवानुप्रिय (आप) के समीप मुंडित होकर, गृहत्याग करके साधुत्व की प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता है। हम देवानुप्रिय को शिष्यभिक्षा देते हैं। हे देवानुप्रिय! आप शिष्यभिक्षा अंगीकार कीजिए।

तए णं से समणे भगवं महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं सम्मं पडिसुणेइ।

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमइ। अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार के माता-पिता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर इस अर्थ (बात) को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से उत्तरपूर्व अर्थात्

---

* यद्यपि अन्य रानियों से श्रेणिक के अनेक पुत्र थे, तथापि धारिणी का आत्मज अकेला मेघकुमार ही था।

ईशान दिशा के भाग में गया। जाकर स्वयं ही आभूषण, माला और अलंकार (वस्त्र) उतार डाले।

तए णं से मेहकुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ। पडिच्छित्ता हारवारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्ता-वलिपगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी रोयमाणी रोय-माणी कंदमाणी कंदमाणी विलवमाणी विलवमाणी एवं वयासीः—

'जइयव्वं जाया! घडियव्वं जाया! परक्कमियव्वं जाया! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं। अम्हं पि णं एमेव मग्गे भवउ' त्ति कट्टु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमं-संति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने हंस के लक्षण वाले अर्थात् धवल और मृदुल वस्त्र में आभूषण, माल्य और अलङ्कार ग्रहण किये। ग्रहण करके जल की धारा, निर्गुंडी के पुष्प और टूटे हुए मुक्तावली-हार के समान अश्रु टपकाती हुई, रोती-रोती, आक्रन्दन करती-करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—

'हे लाल! प्राप्त चारित्रयोग में यतना करना, हे पुत्र! अप्राप्त चारित्र-योग के लिए घटना करना-प्राप्त करने का प्रयत्न करना, हे पुत्र! पराक्रम करना। संयम-साधना में प्रमाद न करना हमारे लिए भी यही मार्ग हो! अर्थात् भविष्य में हमें भी संयम अङ्गीकार करने का सुयोग प्राप्त हो!'

इस प्रकार कह कर मेघकुमार के माता-पिता ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये।

तए णं से मेहे कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ। करित्ता जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ। करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

'आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य। से जहानामए केई गाहावई आगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ,-एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मम वि एगे आयाभंडे इट्ठे कंते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयारगोयरविणयवेणइयचरणकरणजायामायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।'

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया। लोच करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—

'भगवन्! यह संसार जरा और मरण से (जरा-मरण रूप अग्नि से) आदीप्त है। हे भगवन्, यह संसार आदीप्त-प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथापति घर में आग लग जाने पर, उस घर में जो अल्प भार वाली और बहुमूल्य वस्तु होती है उसे, ग्रहण करके स्वय एकान्त में चला जाता है। वह सोचता है कि-'अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिए आगे-पीछे हित के लिए, सुख के लिए, क्षमा (समर्थता) के लिए, कल्याण के लिए और भविष्य में उपयोग के लिए होगा। इसी प्रकार मेरा भी यह एक आत्मा रूपी भांड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है। इस आत्मा को मैं निकाल लूँगा-जरा-मरण की अग्नि मे भस्म होने से बचा लूँगा, तो यह संसार का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूं कि देवानुप्रिय (आप) स्वयं ही मुझे प्रव्रजित करें-मुनिवेष प्रदान करें, स्वयं ही मुझे मुंडित करें-मेरा लोच करें, स्वय ही प्रतिलेखन आदि सिखावे, स्वय ही सूत्र और अर्थ प्रदान करके शिक्षा दें, स्वयं ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल), चरणसत्तरी, करणसत्तरी, संयमयात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करें।

तए णं समणे भगवं महावीरे सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्खइ—'एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसी-



यव्वं तुयट्टियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं ।'

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं णिसम्म सम्मं पडिवज्जइ। तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, जाव उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहि सत्तेहि संजमइ ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वय ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वय ही यावत् आचार-गोचर आदि धर्म की शिक्षा दी कि—हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार—पृथ्वी पर युग मात्र दृष्टि रख कर चलना चाहिए, इस प्रकार—निर्जीव भूमि पर खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार—भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए. इस प्रकार सामायिक का उच्चारण करके, शरीर की प्रमार्जना करके शयन करना चाहिए इस प्रकार-वेदना आदि कारणो से निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार-हित मित और मधुर भाषण करना चाहिए। इस प्रकार अप्रमत्त एव सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पचेन्द्रिय) और सत्व (शेष एकेन्द्रिय) की रक्षा करके संयम का पालन करना चाहिए। इस विषय में तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट इस प्रकार का यह धर्म सम्बन्धी उपदेश सुनकर और हृदय में धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अङ्गीकार किया। वह भगवान् की आज्ञा के अनुसार गमन करता, उसी प्रकार बैठता, यावत् उठ-उठ कर अर्थात् प्रमाद और निद्रा का त्याग करके प्राणो भूतों जीवो और सत्वो की यतना करके संयम का आराधन करने लगा।

मेघकुमार का उद्वेग

जं दिवसं च णं मेहे कुमारे मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए, तस्स णं दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि समणाणं निग्गंथाणं अहाराइणियाए सेज्जासंथारएसु विभज्जमाणेसु मेहकुमारस्स दारमूले सेज्जासंथारए जाए यावि होत्था ।



'से णूणं तुमं मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि समणेहिं निग्गंथेहिं वायणाए पुच्छणाए जाव महालियं च णं राइं णो संचाएमि मुहुत्तमवि अच्छिं निमिलावेत्तए' तए णं तुब्भं मेहा ! इमे एयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—'जया णं अहं अगारमज्झे वसामि तया णं मम समणा निग्गंथा आढायंति जाव परियाणंति, जप्पभिइं च णं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि, तप्पभिइं च णं मम समणा णो आढायंति, जाव नो परियाणंति। अदुत्तरं च णं समणा निग्गंथा राओ अप्पेगइया वायणाए जाव पायरयगुंडियं करेन्ति। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए समणं भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरवि आगारमज्झे आवसित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेसि। संपेहित्ता अट्ट-दुहट्टवसट्टमाणसे जाव रयणिं खवेसि। खवित्ता जेणामेव अहं तेणामेव हव्वमागए। से नूणं मेहा ! एस अट्ठे समट्ठे ?'

'हंता अट्ठे समट्ठे।'

तत्पश्चात् 'हे मेघ' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—'हे मेघ ! तुम रात्रि के पहले और पिछले काल के अवसर पर, श्रमण निर्ग्रन्थो के वाचना पृच्छना आदि के लिए आवागमन करने के कारण, लम्बी रात्रि पर्यन्त थोड़ी देर के लिए भी आँख नहीं मींच सके। मेघ ! तब तुम्हारे मन मे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—जब मैं गृहवास में निवास करता था, तब श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे यावत् मुझे जानते थे, परन्तु जब से मैंने मुन्डित होकर गृहवास से निकल कर साधुता की दीक्षा ली है, तब से श्रमण निर्ग्रेन्थ न मेरा आदर करते हैं, न मुझे जानते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमण निर्ग्रन्थ रात्रि में कोई वाचना के लिए यावत् जाते-आते मेरे विस्तर को लांघते हैं यावत् पैरों की रज से भरते हैं। अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात होने पर श्रमण भगवान् महावीर से पूछ कर मैं पुनः गृहवास में बसने लगूँ।' तुमने इस प्रकार विचार किया है। विचार करके आर्त्तध्यान के कारण दुःख से पीडित एवं संकल्प—विकल्प से युक्त मानस वाले होकर यावत् रात्रि व्यतीत की है। रात्रि व्यतीत करके जहाँ मै हूं वहाँ शीघ्रतापूर्वक आए हो। हे मेघ ! यह अर्थ समर्थ है—मेरा यह कथन सत्य है ?

मेघकुमार ने उत्तर दिया—जी हाँ, यह अर्थ समर्थ है—आपका कथन यथार्थ है।

प्रतिबोध

एवं खलु मेहा ! तुमं इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढगिरि-पायमूले वणयरेहिं णिव्वत्तियणामधेज्जे सेए संखदलउज्जलविमलनिम्मल-दहिघण-गोखीरफेण-रयणियर (दगरयरययणियर) प्पयासे सत्तुस्सेहे णवायए दसपरिणाहे सत्तंगपइट्ठिए सोमे समिए सुरूवे पुरतो उदग्गे समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छी अलंबकुच्छी पलंब-लंबोदराहरकरे धणुपट्ठागिइविसिट्ठपुट्ठे अल्लीणपमाणजुत्तवट्टियापीवर-गत्तावरे अल्लीणपमाणजुत्तपुच्छे पडिपुन्नसुचारुकुम्मचलणे पंडुरसुविसुद्ध-निद्धणिरुवहयविंसतिनहे छद्दंते सुमेरुप्पभे नामं हत्थिराया होत्था ।

भगवान् बोले—हे मेघ ! इससे पहले अतीत तीसरे भव मे, वैताढ्य पर्वत के पादमूल में (तलहटी में) तुम गजराज थे । वनचरो ने तुम्हारा नाम 'सुमेरुप्रभ' रक्खा था । उस सुमेरुप्रभ का वर्ण श्वेत था । संख के दल (चूर्ण) के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के थक्के के समान, गाय के दूध के फेन के समान (या गाय के दूध और समुद्र के फेन के समान) और चन्द्रमा के समान (या जलकण और चांदी के समूह के समान) रूप था । वह सात हाथ ऊँचा और नौ हाथ लम्बा था । मध्यभाग मे दस हाथ का परिमाण वाला था । चार पैर, सूंड, पूंछ और लिंग—यह सात अंग प्रतिष्ठित अर्थात् भूमि को स्पर्श करते थे । सौम्य, प्रमाणोपेत अंगों वाला, सुन्दर रूप वाला, आगे से ऊँचा, ऊँचा मस्तक वाला, शुभ या सुखद आसन (स्कंध आदि) वाला था । उसका पिछला भाग वराह (शूकर) के समान नीचे झुका हुआ था । उसकी कूंख बकरी की कूंख जैसे थी और वह छिद्रहीन थी—उसमे गड़हा नहीं पड़ा था तथा लबी नहीं थी । वह लम्बा उदर वाला, लंबे होंठ वाला और लम्बी सूंड वाला था । उसकी पीठ खींचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी आकृति वाली थी । उसके अन्य अवयव भलीभाँति मिले हुए, प्रमाणयुक्त, गोल एव पुष्ट थे । पूंछ चिपकी हुई तथा प्रमाणोपेत थी । पैर कछुए जैसे परिपूर्ण और मनोहर थे । वीसो नाखून श्वेत, निर्मल, चिकने और निरुपहत थे । छह दांत थे ।

तत्थ णं तुमं मेहा ! बहूहिं हत्थीहि य हत्थिणीहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभेहि य कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे हत्थिसहस्स-णायए देसए पागट्ठी पट्ठवए जूहवई वंदपरियट्टए अन्नेसिं च बहूणं एकल्लाणं हत्थिकलभाणं आहेवच्चं जाव विहरसि ।

हे मेघ ! वहाँ तुम बहुत-से हाथियों, हथनियों, लोट्टको (कुमार अवस्था वाले हाथियो), लोट्टिकाओ, कलभो (हाथी के बच्चों) और कलभिकाओ से परिवृत होकर एक हजार हाथियो के नायक, मार्गदर्शक, अगुवा, प्रस्थापक (काम मे लगाने वाले) यूथपति और यूथ की वृद्धि करने वाले थे। इनके अतिरिक्त बहुत-से अन्य अकेले हाथी के बच्चो का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण कर रहे थे।

तए णं तुमं मेहा ! णिच्चप्पमत्ते सइं पललिए कंदप्परई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहिं हत्थीहि य जाव संपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य, दरीसु य, कुहरेसु य, कंदरासु य, उज्झरेसु य, निज्झरेसु य, वियरएसु य, गड्डासु य, पल्लवेसु य, चिल्ललेसु य, कडएसु य, कडयपल्ललेसु य, तडीसु य, वियडीसु य, टंकेसु य, कूडेसु य, सिहरेसु य, पब्भारेसु य, मंचेसु य, मालेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंडेसु य, वणराईसु य, नदीसु य, नदीकच्छेसु य, जूहेसु य, संगमेसु य, वावीसु य, पोक्खरिणीसु य, दीहियासु य, गुंजालियासु य, सरेसु य, सरपंतियासु य, सरसरपंतियासु य, वणयरेहिं दिन्नवियारे बहूहि हत्थीहि य जाव सद्धिं संपरिवुडे बहुविहतरुपल्लवपउरपाणियतणे निब्भए निरुव्विग्गे सुहंसुहेणं विहरसि।

हे मेघ ! तुम निरन्तर प्रमादी, सदा क्रीड़ापरायण, कदर्परति-क्रीड़ा करने में प्रीति वाले, मैथुनप्रिय, कामभोग मे अतृप्त और कामभोग मे तृष्णा वाले थे। बहुत-से हाथियों वगैरह से परिवृत होकर वैताढ्य पर्वत के पादमूल में, पर्वतों में, दरियों (विशेष प्रकार की गुफाओं) में, कुहरों (पर्वतों के अन्तरों) में, कदराओ में, उज्झरो (प्रपातो) में, झरनो में, विदरो (नहरो) में, गड्हों में, पल्वलो (तलैयों) मे, चिल्ललो (कीचड़ वाली तलैयों) में, कटक (पर्वतों के तटों) मे, कटपल्वलो (पर्वत की समीपवर्त्ती तलैयों) मे, तटों मे, अटवी में, टकों (विशेष प्रकार के पर्वतों) में, कूटो (नीचे चौड़े और ऊपर सँकड़े पर्वतों) में, पर्वत के शिखरों पर, प्राग्भारों (कुछ झुके हुए पर्वत के भागो) में, मंचो (नदी आदि को पार करने के लिए पाटा डाल कर बनाये हुए कच्चे पुलो) पर, काननों मे, वनो (एक जाति के वृक्षों वाले बगीचों) में, वनखडो (अनेक जातीय वृक्षों वाले प्रदेशों) में, वनो की श्रेणियो मे, नदियों में, नदीकक्षों (नदी के समीपवर्त्ती वनो) मे, यूथों (वानर आदिको के निवास स्थानों) में, नदियो के संगमस्थलो में,

चौकोर बावड़ियो में, गोल या कमलों वाली बावड़ियों में, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों) मे, गुंजालिकाओं (वक्र बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवरों की पंक्तियों मे, सरःसरः पंक्तियों (जहाँ एक सर से दूसरे सर में पानी जाने का मार्ग बना हो ऐसे सरो की पंक्तियो) में, वनचरों द्वारा विचार (विचरण करने की छूट) जिसे दिया गया है ऐसे तुम बहुसंख्यक हाथियो आदि के साथ, नाना प्रकार के तरुपल्लवो, पानी और घास का उपभोग करते हुए निर्भय, और उद्वेगरहित होकर सुख के साथ विचरते थे।

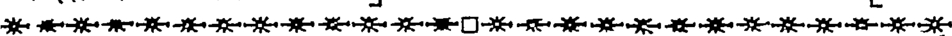
तए णं तुमं मेहा! अन्नया कयाई पाउसवरिसारत्तसरयहेमंतवसंतेसु कमेण पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु, गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलमासे, पायवघंससमुट्ठिएणं सुक्कतणपत्तकयवरमारुतसंजोगदीविएणं महाभयंकरेणं हुयवहेणं वणदवजालासंपलित्तेसु वणंतेसु, धूमाउलासु दिसासु, महावायवेगेणं संघट्टिएसु, छिन्नजालेसु आवयमाणेसु, पोल्लरुक्खेसु अंतो अंतो झियायमाणेसु, मयकुहियविणिविट्ठकिमियकद्दमनदीवियरगजिण्णपाणीयंतेसु वणंतेसु भिंगारकदीणकंदियरवेसु, खरफरुसअणिट्ठरिट्ठवाहितविद्दुमग्गेसु दुमेसु, तण्हावससुक्कपक्खपयडियजिब्भतालुयअसंपुडिततुंडपक्खिसंघेसु ससंतेसु, गिम्हउम्हउण्हवायखरफरुसचंडमारुयसुक्कतणपत्तकयवरवाउलिभमंतदित्तसंभंतसावयाउलमिगतण्हाबद्धचिण्हपट्टेसु गिरिवरेसु, संवट्टिएसु तत्थमियपसवसिरीसवेसु, अवदालियवयणविवरणिल्लालियग्गजीहे, महंततुंबइयपुन्नकन्ने, संकुचियथोरपीवरकरे, ऊसियलंगूले, पीणाइयविरसरडियसद्देणं फोडयंतेव अंबरतलं, पायदद्दरएणं कंपयंतेव मेइणितलं, विणिम्मुयमाणे य सीयारं, सव्वओ समंता वल्लिवियाणाइं छिंदमाणे, रूक्खसहस्साइं तत्थ सुबहूणि णोल्लायंते, विणट्ठरट्ठे व्व णरवरिन्दे, वायाइद्धे व्व पोए, मंडलवाए व्व परिब्भमंते, अभिक्खणं अभिक्खणं लिंडणियरं पमुंचमाणे पमुंचमाणे, बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

तत्पश्चात् एक बार कदाचित् प्रावृट्, वर्षा, शरद्, हेमन्त और वसन्त इन पाँच ऋतुओ के क्रमशः व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया। तब ज्येष्ठ मास में, वृक्षों की आपस की रगड़ से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास,

पत्तों और कचरे से एवं वायु के वेग से दीप्त हुई अत्यन्त भयानक अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्यभाग सुलग उठा। दिशाएँ धुएँ से व्याप्त हो गईं। प्रचण्ड वायुवेग से अग्नि की ज्वालाएँ टूट जाने लगीं और चारो ओर गिरने लगी। पोले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे। वनप्रदेशों के नदी-नालो का जल मृत मृगादिक के शवों से सड़ने लगा, खराब हो गया। उनका कीचड़ कीड़ों वाला हो गया। उनके किनारों का पानी सूख गया। भृङ्गारक पक्षी दीनतापूर्ण आक्रन्दन करने लगे। उत्तम वृक्षों पर स्थित काक अत्यन्त कठोर और अनिष्ट शब्द करने लगे। उन वृक्षों के अग्रभाग अग्निकणो के कारण मूंगे के समान लाल दिखाई देने लगे। पक्षियों के समूह प्यास से पीड़ित होकर पख ढीले करके, जिह्वा एवं तालु को प्रकट करके तथा मुँह फाड़ कर सासें लेने लगे। ग्रीष्मकाल की उष्णता सूर्य के ताप, अत्यन्त कठोर एवं प्रचंड वायु तथा सूखे घास पत्ते और कचरे से युक्त वबंडर के कारण भाग-दौड़ करने वाले, मदोन्मत्त तथा संभ्रम वाले सिंह आदि श्वापदों के कारण श्रेष्ठ पर्वत आकुल-व्याकुल हो उठा। ऐसा प्रतीत होने लगा मानों उन पर्वतों पर मृगतृष्णा रूप पट्टबंध बँधा हो। त्रास को प्राप्त मृग, अन्य पशु और सरीसृप इधर-उधर तड़फने लगे।

इस भयानक अवसर पर, हे मेघ! तुम्हारा अर्थात् तुम्हारे पूर्वभव के सुमेरुप्रभ नामक हाथी का मुख-विवर फट गया। जिह्वा का अग्रभाग बाहर निकल आया। बड़े-बड़े दोनों कान भय से स्तब्ध और व्याकुलता के कारण शब्द ग्रहण करने में तत्पर हुए। बड़ी और मोटी सूंड़ सिकुड़ गई। उसने पूंछ ऊँची कर ली। पीना (भड्डा) के समान विरस अराटि के शब्द चीत्कार से वह आकाशतल को फोडता हुआ सा, पैरो के आघात से पृथ्वीतल को कम्पित करता हुआ सा, सीत्कार करता हुआ, चहुं ओर सर्वत्र बेलों के समूह को छेदता हुआ, त्रस्त और बहुसंख्यक सहस्रों वृक्षों को उखाड़ता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु से डोलते हुए जहाज के समान और ववण्डर (वगडूरे) के समान इधर-उधर भ्रमण करता हुआ एवं बार-बार लीड़ी त्यागता हुआ, बहुत-से हाथियों, हथिनियों आदि के साथ दिशाओं और विदिशाओ मे इधर-उधर भागदौड़ करने लगा।

तत्थ णं तुमं मेहा! जुन्ने जराजज्जरियदेहे आउरे झंझिए पिवासिए दुब्बले किलंते नट्ठसुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विप्पहूणे वणदवजालापरद्धे उण्हेण य, तण्हाए य, छुहाए य परब्भाहए समाणे भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सव्वओ समंता आधावमाणे



परिधावमाणे एगं च णं महं सरं अप्पोदयं पंकबहुलं अतित्थेणं पाणिय-पाए उइण्णो ।

हे मेघ ! तुम वहाँ जीर्ण, जरा से जर्जरित देह वाले, व्याकुल, भूखे, प्यासे, दुर्बल, थके-मांदे, बहिरे तथा दिङ्मूढ़ होकर अपने यूथ (झुंड) से बिछुड़ गये। वन के दावानल की ज्वालाओं से पराभूत हुए। गर्मी से, प्यास से, भूख से पीड़ित होकर भय को प्राप्त हुए, त्रस्त हुए। तुम्हारा आनन्द-रस शुष्क हो गया। इस विपत्ति से कैसे छुटकारा पाऊँ, ऐसा विचार करके उद्विग्न हुए। तुम्हें पूरी तरह भय उत्पन्न हो गया। अतएव तुम इधर-उधर दौड़ने और खूब दौड़ने लगे। इसी समय एक अल्प जल वाला और कीचड़ की अधिकता वाला एक बड़ा सरोवर तुम्हें दिखाई दिया। उसमें पानी पीने के लिए बिना घाट के तुम उतर गये।

तत्थ णं तुमं मेहा ! तीरमइगए पाणियं असंपत्ते अंतरा चेव सेयंसि विसन्ने ।

तत्थ णं तुमं मेहा ! पाणियं पाइस्सामि त्ति कट्टु हत्थं पसारेसि, से वि य ते हत्थे उदगं न पावेइ। तए णं तुमं मेहा ! पुणरवि कायं पच्चुद्धरिस्सामि त्ति कट्टु बलियतरायं पंकंसि खुत्ते ।

हे मेघ ! वहाँ तुम किनारे से तो दूर चले गये, परन्तु पानी तक न पहुँच पाये और बीच ही में कीचड़ में फँस गये।

हे मेघ ! 'मैं पानी पीऊँ' ऐसा सोचकर वहाँ तुमने अपनी सूंड़ फैलाई, मगर तुम्हारी सूंड़ भी पानी न पा सकी। तब हे मेघ ! तुमने पुनः 'शरीर को बाहर निकालूँ' ऐसा विचार कर जोर मारा तो कीचड़ में और गाढ़े फँस गये।

तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइ एगे चिरनिज्जूढे गयवर-जुवाणए सयाओ जूहाओ करचरणदंतमुसलप्पहारेहिं विप्परद्धे समाणे तं चेव महद्दहं पाणीयं पाएउं समोयरेइ ।

तए णं से कलभए तुमं पासति, पासित्ता तं पुव्ववेरं समरइ। समरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे जेणेव तुमं तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तुमं तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं

तिक्खुत्तो पिट्ठओ उच्छुभइ। उच्छुभित्ता पुव्ववेरं निज्झाएइ। निज्झाइत्ता हट्ठतुट्ठे पाणियं पियइ। पिइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् हे मेघ ! एकदा कदाचित् एक नौजवान श्रेष्ठ हाथी को तुमने सूँड, पैर और दांत रूपी मूसलो से प्रहार करके मारा था और अपने झुन्ड मे से बहुत समय पूर्व निकाल दिया था। वह हाथी पानी पीने के लिए उसी महाद्रह में उतरा।

तत्पश्चात् उस नौजवान हाथी ने तुम्हें देखा। देखते ही उसे पूर्व वैर का स्मरण हो आया। स्मरण आते ही उसमें क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। उसका क्रोध बढ़ गया। उसने रौद्र रूप धारण किया और वह क्रोधाग्नि से जल उठा। अतएव वह तुम्हारे पास आया। आकर तीक्ष्ण दाँत रूपी मूसलों से तीन बार तुम्हारी पीठ बींध दी और बींध कर पूर्व वैर का बदला लिया। बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट होकर पानी पीया। पानी पीकर जिस दिशा से प्रकट हुआ था-आया था, उसी दिशा मे वापिस लौट गया।

तए णं तव मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भवित्था उज्जला विउला तिउला कक्खडा जाव दुरहियासा, पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरित्था।

तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं जाव दुरहियासं सत्तराइंदियं वेयणं वेएसि; सवीसं वाससयं परमाउं पालइत्ता अट्टवसट्टदुहट्टे कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे गंगाए महाणदीए दाहिणे कूले विंझगिरिपायमूले एगेणं मत्तवरगंधहत्थिणा एगाए गयवरकरेणूए कुच्छिंसि गयकलभए जणिए। तए णं सा गयकलभिया णवण्हं मासाणं वसंतमासम्मि तुमं पयाया।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना ऐसी थी कि तुम्हें तनिक भी चैन न थी, वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त थी और त्रितुला थी (मन वचन काय की तुलना करने वाली थी, अर्थात् उस वेदना में तीनों योग तन्मय हो रहे थे।) वह वेदना कठोर यावत् दुस्सह थी। उस वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्त ज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में दाह उत्पन्न हो गया। उस समय तुम इस हालत में रहे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम उस उज्ज्वल—बेचैन बना देने वाली यावत् दुस्सह वेदना को सात दिन-रात पर्यन्त भोग कर, एक सौ बीस वर्ष की आयु भोग कर, आर्त्तध्यान के वशीभूत एवं दुःख से पीड़ित हुए, तुम काल मास में (मृत्यु के अवसर पर) काल करके, इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, दक्षिणार्ध भरत में, गंगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर, विंध्याचल के समीप एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गधहस्ती से, एक श्रेष्ठ हथिनी की कूख मे हाथी के बच्चे के रूप में उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् उस हथिनी ने नौ मास पूर्ण होने पर वसन्त मास मे तुम्हें जन्म दिया।

तए णं तुमं मेहा ! गब्भवासाओ विप्पमुक्के समाणे गयकलभए यावि होत्था, रत्तुप्पलरत्तसूमालए जासुमणारत्तपारिजत्तयलक्खारस-सरसकुंकुमसंझब्भरागवन्ने इट्ठे णियस्स जूहवइणो गणियायारकणेरु-कोत्थहत्थी अणेगहत्थिसयसंपरिवुडे रम्मेसु गिरिकाणणेसु सुहंसुहेणं विहरसि।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम गर्भावास से मुक्त हो कर गजकलभक (छोटे हाथी) भी हो गये। लाल कमल के समान लाल और सुकुमार हुए। जपा कुसुम, रक्तवर्ण पारिजात नामक वृक्ष, लाख के रस, सरस कुकुम और सन्ध्या-कालीन बादलों के रंग के समान रक्तवर्ण हुए। अपने यूथपति के प्रिय हुए। गणिकाओ के समान युवती हथिनियों के उदर-प्रदेश में अपनी सूंड़ डालते हुए कामक्रीड़ा मे तत्पर रहने लगे। इस प्रकार सैकड़ो हाथियो से परिवृत होकर तुम पर्वत के रमणीय काननो मे सुखपूर्वक विचरने लगे।

तए णं तुमं मेहा ! उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते जूहवइणा कालधम्मुणा संजुत्तेणं तं जूहं सयमेव पडिवज्जसि।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम बाल्यावस्था को पार करके यौवन को प्राप्त हुए। फिर यूथपति के कालधर्म को प्राप्त होने पर तुम स्वयं ही उस यूथ को वहन करने लगे, अर्थात् यूथपति हो गये।

तए णं तुमं मेहा ! वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे जाव चउदंते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था। तत्थ णं तुमं मेहा ! सत्तंगपइट्ठिए तहेव जाव पडिरूवे। तत्थ णं तुमं मेहा सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्चं जाव अभिरमेत्था

तत्पश्चात् हे मेघ ! वनचरों ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रक्खा। तुम चार

दांतो वाले हस्तिरत्न हुए। हे मेघ! तुम सातो अङ्गों से भूमि का स्पर्श करने वाले, आदि पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त यावत् सुन्दर रूप वाले हुए। हे मेघ! तुम वहाँ सात सौ हाथियो के यूथ का अधिपतित्व करते हुए अभिरमण करने लगे।

तए णं तुमं अन्नया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले वणदव-जालापलित्तेसु वणंतेसु सुधूमाउलासु दिसासु जाव मंडलवाए व्व परिब्भमंते भीए तत्थे जाव संजायभए बहूहिं हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्वओ समंता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था। तए णं तव मेहा! तं वणदवं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—' कहिं णं मन्ने मए अयमेयारूवे अग्गिसंभवे अणुभूयपुव्वे।' तए णं तव मेहा! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं, अज्झवसाणेणं सोहणेणं, सुभेणं परिणामेणं, तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं, ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पज्जित्था।

तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् ग्रीष्म काल के अवसर पर, ज्येष्ठ मास में, वन के दावानल की ज्वालाओ से वन-प्रदेश जलने लगे। दिशाएँ धूम से भर गईं। उस समय तुम बवण्डर की तरह इधर-उधर भागदौड़ करने लगे। भयभीत हुए, व्याकुल हुए और बहुत डर गये। तब बहुत-से हाथियो यावत् हथनियों के साथ, उनसे परिवृत होकर, चारो ओर एक दिशा से दूसरी दिशा मे भागे।

हे मेघ! उस समय उस वन के दावानल को देखकर तुम्हे इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ—' लगता है जैसे इस प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति मैंने कभी पहले अनुभव की है।' तत्पश्चात् हे मेघ! विशुद्ध होती हुई लेश्याओं, शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और जातिस्मरण को आवृत करने वाले कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए तुम्हे संज्ञी जीवो को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ।

तए णं तुमं मेहा! एयमट्ठं सम्मं अभिसमेसि—' एवं खलु मया अईए दोच्चे भवग्गहणे इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले जाव सुहसुहेणं विहरइ, तत्थ णं महया अयमेयारूवे अग्गिसंभवे समणुभूए।' तए णं तुमं मेहा! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि नियएणं जूहेण सद्धिं समन्नागए यावि होत्था। तए णं तुमं

मेहा ! सत्तुस्सेहे जाव सन्निजाइस्सरणे चउद्दंते मेरुप्पभे नाम हत्थी होत्था ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने यह अर्थ सम्यक् प्रकार से जाना कि—'निश्चय ही मैं व्यतीत हुए दूसरे भव मे, इसी जम्बू द्वीप नामक द्वीप मे, भरतक्षेत्र मे, वैताढ्य पर्वत की तलहटी में सुखपूर्वक विचरता था । वहाँ इस प्रकार का महान् अग्नि का संभव मैंने अनुभव किया है।' तदन्तर हे मेघ ! तुम उस भव में उसी दिन के अन्तिम प्रहर तक अपने यूथ के साथ विचरण करते थे। हे मेघ ! उसके बाद काल करके दूसरे भव मे सात हाथ ऊँचे यावत् जातिस्मरण से युक्त, चार दांत वाले मेरुप्रभ नामक हाथी हुए।

तए णं तुज्झं मेहा ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—' तं सेयं खलु मम इयाणिं गंगाए महानदीए दाहिणिल्लंसि कूलंसि विंझगिरिपायमूले दवग्गिसंजायकारणट्ठा सएणं जूहेणं महालयं मंडलं घाइत्तए ' त्ति कट्टु एवं संपेहेसि । संपेहित्ता सुहं सुहेणं विहरसि ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हे इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि—'मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे पर विन्ध्याचल की तलहटी में, दावानल से रक्षा करने के लिए अपने यूथ के साथ एक बड़ा मंडल बनाऊँ।' इस प्रकार विचार करके तुम सुखपूर्वक विचरने लगे।

तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइं पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि गंगाए महानदीए अदूरसामंते बहूहिं हत्थीहिं जाव कलभियाहि य सत्तहि य हत्थिसएहिं संपरिवुडे एगं महं जोयणपरिमंडलं महइमहालयं मंडलं घाएसि । जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कंटए वा लया वा वल्ली वा खाणुं वा रुक्खे वा खुवे वा, तं सव्वं तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय पाएण उद्धवेसि, हत्थेणं गेण्हसि, एगंते पाडेसि ।

तए णं तुमं मेहा ! तस्सेव मंडलस्स अदूरसामंते गंगाए महानईए दाहिणिल्ले कूले विंझगिरिपायमूले गिरिसु य जाव विहरसि ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने कदाचित् एक बार प्रथम वर्षाकाल मे, खूब

वर्षा होने पर गंगा महानदी के समीप बहुत-से हाथियों यावत् हथिनियों से अर्थात् सात सौ हाथियो से परिवृत होकर एक योजन परिमित बड़े घेरा वाला अत्यन्त विशाल मडल बनाया। उस मंडल मे जो कुछ भी घास, पत्ते, काष्ठ, कांटे, लता, वेले, ठूंठ, वृक्ष या पौधे आदि थे, उन सब को तीन बार हिला-हिला कर पैर से उखाड़ा, सूंड से पकड़ा और एक ओर ले जाकर डाल दिया।

हे मेघ! तत्पश्चात् तुम उसी मंडल के समीप गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे, विन्ध्याचल के पादमूल मे, पर्वत आदि पूर्वोक्त स्थानों में विचरण करने लगे।

तए णं मेहा! अन्नया कयाइ मज्झिमए वरिसारत्तंसि महावुट्ठि-कायंसि संनिवइयंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि। उवागच्छित्ता दोच्चं पि मंडलं घाएसि! एवं चरिमे वासारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्नि-वइयमाणंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि; उवागच्छित्ता तच्चं पि मंडलघायं करेसि। जं तत्थ तणं वा जाव सुहंसुहेण विहरसि।

तत्पश्चात् हे मेघ! किसी अन्य समय मध्य वर्षा ऋतु में खूब वर्षा होने पर तुम उस स्थान पर आए जहाँ मडल था। वहाँ आकर दूसरी बार उस मंडल को ठीक साफ किया। इसी प्रकार अन्तिम वर्षा-रात्रि में घोर वृष्टि होने पर जहाँ मंडल था, वहाँ आए। आकर तीसरी बार उस मंडल को साफ किया। वहाँ जो भी तृण आदि उगे थे, उन सब को उखाड़ कर सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

अह मेहा! तुमं गइंदभावम्मि वट्टमाणो कमेणं नलिणिवणविव-हणगरे हेमंते कुंदलोद्धउद्धततुसारपउरम्मि अइक्कंते, अहिणवे गिम्ह-समयंसि पत्ते, वियट्टमाणो वणेसु वणकरेणुविविहदिण्णकयपसवघाओ तुमं उउयकुसुमकयचामरकन्नपूरपरिमंडियाभिरामो मयवसविगसंतकड-तडकिलिन्नगंधमदवारिणा सुरभिजणियगंधो करेणुपरिवारिओ उउसमत्त-जणियसोभो काले दिणयरकरपयंडे परिसोसियतरुवरसिहरभीमतर-दंसणिज्जे भिंगाररवंतभेरवरवे णाणाविहपत्तकट्ठतणकयवरुद्धतपइमारु-याइद्धनहयलदुमगणे वाउलियादारुणयरे तण्हावसदोसदूसियभमंतविवह-सावयसमाउले भीमदरिसणिज्जे वट्टंते दारुणम्मि गिम्हे मारुयवसपसर-पसरियवियंभिएणं अब्भहियभीमभेरवरवप्पगारेणं महुधारापडियसित्त-

उद्धायमाणधगधगंतसद्दुद्धुएणं दित्ततरसफुलिंगेणं धूममालाउलेणं सावयसयंतकरणेणं अब्भहियवणदवेणं जालालोवियनिरुद्धधूमंधकार-भीओ आयवालोयमहंततुंबइयपुन्नकन्नो आकुंचियथोरपीवरकरो भयवस-भयंतदित्तनयणो वेगेण महामेहो व्व पवणोल्लियमहल्लरूवो, जेणेव कओ ते पुरा दवग्गिभयभीयहिययेणं अवगयतणप्पएसरुक्खो रुक्खोद्देसो दवग्गिसंताणकारणट्ठाए जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए। एक्को ताव एस गमो।

हे मेघ ! तुम गजेन्द्र पर्याय में वर्त्त रहे थे कि अनुक्रम से कमलिनियों के वन का विनाश करने वाला, कुंद और लोध्र के पुष्पों की समृद्धि से सम्पन्न तथा अत्यन्त हिम वाला हेमन्त ऋतु व्यतीत हो गया और अभिनव ग्रीष्मकाल आ पहुँचा। उस समय तुम वनों मे विचरण कर रहे थे। वहाँ क्रीड़ा करते समय वन की हथिनियाँ तुम्हारे ऊपर विविध प्रकार कमलो एवं पुष्पों का प्रहार करती थी। तुम उस ऋतु में उत्पन्न पुष्पो के बने चामर जैसे कर्ण के आभूषणो से मंडित और मनोहर थे। मद के कारण विकसित गडस्थलों को आर्द्र करने वाले तथा झरते हुए सुगंधित मदजल से तुम सुगंधमय बन गये थे। हथिनियों से घिरे रहते थे। सब तरह से ऋतुसंबंधी शोभा उत्पन्न हुई थी। उस ग्रीष्म-काल में सूर्य की प्रखर किरणें गिर रही थीं। उस ग्रीष्म ऋतु ने श्रेष्ठ वृक्षों के शिखरों को अत्यन्त शुष्क बना दिया था। वह बड़ा ही भयंकर प्रतीत होता था। शब्द करने वाले भृंगार नामक पक्षी भयानक शब्द करते थे। पत्र काष्ठ तृण और कचरे को उड़ाने वाले प्रतिकूल पवन से आकाशतल और वृक्षों का समूह व्याप्त हो गया था। वह बवण्डरों के कारण भयावह दीख पड़ता था। प्यास के कारण उत्पन्न वेदनादि दोषों से दूषित हुए और इसी कारण इधर-उधर भटकते हुए श्वापदो (शिकारी जंगली पशुओ) से युक्त था। देखने मे ऐसा भयानक ग्रीष्म ऋतु उत्पन्न हुए दावानल के कारण और अधिक दारुण हो गया।

वह दावानल, वायु के कारण प्राप्त हुए प्रचार से फैला हुआ और विक-सित हुआ था। उसके शब्द का प्रकार अत्यधिक भयंकर था। वृक्षों से गिरने वाले मधु की धाराओं से सिंचित होने के कारण वह अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुआ था, धधक रहा था और शब्द के कारण उद्धत था। वह अत्यन्त देदीप्यमान, चिनगारियों से युक्त और धूम की कतार से व्याप्त था। सैकड़ो श्वापदों के प्राणों का अन्त करनेवाला था। इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह ग्रीष्मऋतु अत्यन्त भयंकर दिखाई देता था।

हे मेघ ! तुम उस दावानल की ज्वालाओं से आच्छादित हो गये, रुक गये–इच्छानुसार जाने मे असमर्थ हो गये । धुएँ के कारण उत्पन्न हुए अंधकार से भयभीत हो गये । अग्नि के ताप को देखने से तुम्हारे दोनों कान अरघट्ट के तुंब के समान स्तब्ध रह गये । तुम्हारी मोटी और बड़ी सूंड सिकुड़ गई । तुम्हारे चमकते हुए नेत्र भय के कारण इधर–उधर फिरने–देखने–लगे । जैसे वायु के कारण महामेघ का विस्तार हो जाता है, उसी प्रकार वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विस्तृत दिखाई देने लगा । पहले दावानल के भय से भीत हृदय होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिए, जिस दिशा मे तृण के प्रदेश (मूल आदि) और वृक्ष हटा कर सफाचट प्रदेश बनाया था और जिधर वह मंडल बनाया था, उधर ही जाने का तुमने विचार किया । वहीं जाने का निश्चय किया ।

यह एक गम है, अर्थात् किसी–किसी आचार्य के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है ।

तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइं कमेणं पंचसु उउसु समइक्कंतेसु गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायवसंघंससमुट्ठिएणं जाव संवट्टिएसु मियपसुपक्खिसिरीसिवे दिसोदिसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य सद्धिं जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

हे मेघ ! किसी अन्य समय पांच ऋतु व्यतीत हो जाने पर, ग्रीष्मकाल के अवसर पर, ज्येष्ठ मास में, वृक्षों की परस्पर की रगड़ से उत्पन्न हुए दावानल के कारण यावत् अग्नि फैल गई और मृग पशु पक्षी तथा सरीसृप आदि भाग-दौड़ करने लगे । तब तुम बहुत-से हाथियों आदि के साथ जहाँ वह मंडल था, वहाँ जाने के लिए दौड़े ।

(यह दूसरा गम है, अर्थात् अन्य आचार्य के मतानुसार पूर्वोक्त पाठ के स्थान पर यह पाठ है ।)

तत्थ णं अण्णे बहवे सीहा य, वग्घा य, विगया, दीविया, अच्छा य, रिंछतरच्छा य, पारासरा य, सरभा य, सियाला, विराला, सुणहा, कोला, ससा, कोकंतिया, चित्ता, चिल्लला, पुव्वपविट्ठा अग्गिभयविहुया एगयाओ बिलधम्मेणं चिट्ठंति ।

तए णं तुमं मेहा ! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तेहिं बहूहिं सीहेहिं जाव चिल्ललएहिं य एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठसि ।

उस मंडल में अन्य बहुत से सिंह, बाघ, भेड़िया, द्वीपिक (चीते), रीछ, तरच्छ, पारासर, शरभ, शृगाल, विडाल, श्वान, शूकर, खरगोश, लोमड़ी चित्र और चिल्लल आदि पशु अग्नि के भय से पराभूत होकर पहले ही आ घुसे थे और एक साथ बिलधर्म से रहे हुए थे, अर्थात् जैसे एक बिल मे बहुत से मकोड़े ठसाठस भरे रहते हैं, उसी प्रकार उस मंडल में भी पूर्वोक्त जीव ठसाठस भरे थे।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम जहाँ मंडल था, वहाँ आये और आकर उन बहुसंख्यक सिंह यावत् चिल्ललक आदि के साथ एक जगह बिलधर्म से ठहर गये।

तए णं तुमं मेहा! पाएणं गत्तं कंडुइस्सामि त्ति कट्टु पाए उक्खित्ते, तेसिं च णं अंतरंसि अन्नेहिं बलवंतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे पणोलिज्जमाणे ससए अणुपविट्ठे।

तए णं तुमं मेहा! गायं कंडुइत्ता पुणरवि पायं पडिनिक्खमिस्सामि त्ति कट्टु तं ससयं अणुपविट्ठं पाससि, पासित्ता पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए से पाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं णिक्खित्ते।

तए णं तुमं मेहा! ताए पाणाणुकंपयाए जाव सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए, माणुस्साउए निबद्धे।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुमने 'पैर से शरीर खुजाऊँ' ऐसा सोचकर एक पैर ऊपर उठाया। इसी समय उस खाली हुई जगह में, अन्य बलवान् प्राणियों द्वारा प्रेरित-धकियाया हुआ एक शशक प्रविष्ट हो गया।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुमने पैर खुजा कर सोचा कि मैं पैर नीचे रक्खूँ, परन्तु शशक को पैर की जगह में घुसा हुआ देखा। देखकर द्वीन्द्रियादि प्राणों की अनुकम्पा से, वनस्पति रूप भूत की अनुकम्पा से, पचेन्द्रिय जीवों की अनुकम्पा से तथा वनस्पति के सिवाय शेष चार स्थावर सत्वों की अनुकम्पा से वह पैर अधर ही रक्खा, नीचे नहीं रक्खा।

हे मेघ! तब उस प्राणानुकम्पा यावत् सत्वानुकम्पा से तुमने संसार परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया।

तए णं से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंदियाइं तं वणं झामेइ, निट्ठिए, उवरए, उवसंते, विज्झाए यावि होत्था।



तत्पश्चात् वह दावानल अढ़ाई अहोरात्र पर्यन्त उस वन को जला कर पूर्ण हो गया, उपरत हो गया, उपशान्त हो गया और बुझ गया।

तए णं ते बहवे सीहा य जाव चिल्लला य तं वणदवं निट्ठियं जाव विज्झायं पासंति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिनिक्खमंति। पडिनिक्खमित्ता सव्वओ समंता विप्पसरित्था।

तब उन बहुत से सिंह यावत् चिल्लक आदि प्राणियों ने उस वन-दावानल को पूरा हुआ यावत् बुझा हुआ देखा और देख कर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए। वे प्यास एवं भूख से पीड़ित होते हुए उस मंडल से बाहर निकले और निकल कर चहुँ ओर फैल गये।

तए णं तुमं मेहा! जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलियतयापिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते जुंजिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचंकमणो वा ठाणुखंडे वेगेण विप्पसरिस्सामि त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरिपब्भारे धरणियलंसि सव्वंगेहि य सन्निवइए।

हे मेघ! उस समय तुम वृद्ध, जरा से जर्जरित शरीर वाले शिथिल एवं सलों वाली चमड़ी से व्याप्त गात्र वाले, दुर्बल, थके हुए, भूखे प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, सहारा न होने से निर्बल, सामर्थ्य से रहित और चलने-फिरने की शक्ति से रहित एवं ठूंठ की भाँति स्तब्ध रह गये। 'मैं वेग से चलूँ' ऐसा विचार कर ज्यों ही पैर पसारा कि विद्युत् से आघात पाये हुए रजतगिरि के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धड़ाम से धरती पर गिर पड़े।

तए णं तव मेहा! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दाहवक्कंतिए यावि विहरसि। तए णं तुमं मेहा! तं उज्जलं जाव दुरहियासं तिन्नि राइंदियाइं वेयणं वेएमाणे विहरित्ता एगं वाससयं परमाउं पालइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रन्नो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि कुमारत्ताए पच्चायाए।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम्हारे शरीर में उत्कट वेदना उत्पन्न हुई तथा दाहज्वर उत्पन्न हुआ। तुम ऐसी स्थिति में रहे। तब हे मेघ! तुम उस उत्कट

यावत् दुस्सह वेदना को तीन रात्रि दिवस पर्यन्त भोगते रहे। अन्त में सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत वर्ष में, राजगृह नगर में, श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कूँख में कुमार के रूप मे उत्पन्न हुए।

तए णं तुमं मेहा ! आणुपुव्वेणं गब्भवासाओ निक्खंते समाणे उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते मम अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए। तं जइ जाव तुमे मेहा ! तिरिक्खजोणियभावमुवागएणं अप्पडिलद्धसम्मत्तरयणलंभेणं से पाए पाणाणुकंपयाए जाव अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं णिक्खित्ते, किमंग पुण तुमं मेहा ! इयाणिं विपुलकुलसमुब्भवेणं निरुवहयसरीरदंतलद्धपंचिंदिएणं एवं उट्ठाणबलवीरियपुरिसगारपरक्कमसंजुत्तेणं मम अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे समणाणं निग्गंथाणं राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए जाव धम्माणुओगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य हत्थसंघट्टणाणि य पायसंघट्टणाणि य जाव रयरेणुगुंडणाणि य नो सम्मं सहसि खमसि, तितिक्खसि, अहियासेसि ?

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम अनुक्रम से गर्भवास से बाहर आये—तुम्हारा जन्म हुआ। बाल्यावस्था से मुक्त हुए और युवावस्था को प्राप्त हुए। तब मेरे निकट मुंडित होकर गृहवास से (मुक्त हो) अनगार हुए। तो हे मेघ ! जब तुम तिर्यंचयोनि रूप पर्याय को प्राप्त थे और जब तुम्हें सम्यक्त्व रत्न का लाभ भी प्राप्त नहीं हुआ था, उस समय भी तुमने प्राणियों की अनुकम्पा से प्रेरित होकर यावत् अपना पैर अधर ही रक्खा था, नीचे नहीं टिकाया था, तो फिर हे मेघ ! इस जन्म में तो तुम विशाल कुल में जन्मे हो, तुम्हें उपघात से रहित शरीर प्राप्त हुआ है. प्राप्त हुई पाँचों इन्द्रियों का तुमने दमन किया है और उत्थान (विशिष्ट शारीरिक चेष्टा), बल (शारीरिक शक्ति), वीर्य (आत्मबल) पुरुषकार (विशेष प्रकार का अभिमान) और पराक्रम (कार्य को सिद्ध करने वाला पुरुषार्थ) से युक्त हो और मेरे समीप मुंडित होकर गृहवास त्याग कर अगेही बने हो, फिर भी पहली और पिछली रात्रि के समय श्रमण निर्ग्रन्थ वाचना के लिए यावत् धर्मानुयोग के चिन्तन के लिए तथा उच्चार-प्रश्रवण के लिए आते जाते थे, उस समय तुम्हें उनके हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पर्श हुआ, यावत् रजकणों से तुम्हारा शरीर भर गया, उसे तुम सम्यक् प्रकार से

सहन न कर सके ! बिना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके ! अदीनभाव से तितिक्षा न कर सके ! और शरीर को निश्चल रख कर सहन न कर सके ।

तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सुभेहिं परिणामेहिं, पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं, तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहावूहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पन्ने । एयमट्ठं सम्मं अभिसमेइ ।

तत्पश्चात् मेघकुमार अनगार को श्रमण भगवान् महावीर के पास से यह वृत्तान्त सुन-समझ कर, शुभ परिणामों के कारण, प्रशस्त अध्यवसायों के कारण, विशुद्धि होती हुई लेश्याओं के कारण और जातिस्मरण को आवृत्त करने वाले ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के कारण ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए, सञ्ज्ञी जीवों को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण उत्पन्न हुआ । उससे मेघ मुनि ने अपना पूर्वोक्त वृत्तान्त सम्यक् प्रकार से जान लिया ।

तए णं से मेहे कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं संभारियपुव्व-जाइसरणे दुगुणाणीयसंवेगे आणंदयंसुपुन्नमुहे हरिसवसेणं धाराहयकदंबकं पिव समुस्ससियरोमकूवे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'अज्जप्पभिई णं भंते ! मम दो अच्छीणि मोत्तूणं अवसेसे काए समणाणं निग्गंथाणं निसट्ठे' त्ति कट्टु पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं भंते ! इयाणि सयमेव दोच्चं पि पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं जाव सयमेव आयारगोयरं जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खह ।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा मेघकुमार को पूर्ववृत्तान्त स्मरण करा दिया गया, इस कारण उसे दुगुना संवेग प्राप्त हुआ । उसका मुख आनन्द के आँसुओं से परिपूर्ण हो गया । हर्ष के कारण मेघधारा से आहत कदंब पुष्प की भांति उसके रोमांच विकसित हो गये । उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भंते ! आज से मैंने अपने दोनों नेत्र छोड़ कर शेष समस्त शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए समर्पित किये ।' इस प्रकार कह कर मेघकुमार ने पुनः श्रमण



भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस भाँति कहा—भगवन्! मेरी इच्छा है कि अब आप स्वयं ही दूसरी बार मुझे प्रव्रजित करें, स्वयं ही मुंडित करें, यावत् स्वयं ही ज्ञानादिक आचार, गोचर—गोचरी के लिए भ्रमण, यात्रा—पिण्डविशुद्धि आदि संयमयात्रा तथा मात्रा—प्रमाण-युक्त आहार ग्रहण करना आदि रूप श्रमण धर्म का उपदेश दीजिए।

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ जाव जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खइ—'एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं णिसीयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, उट्ठाय उट्ठाय पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमियव्वं।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वयमेव दीक्षित किया, यावत् स्वयमेव यात्रा-मात्रा रूप धर्म का उपदेश किया कि—'हे देवानुप्रिय! इस प्रकार गमन करना चाहिए अर्थात् युगपरिमित भूमि पर दृष्टि रख कर चलना चाहिए इस प्रकार अर्थात् पृथ्वी का प्रमार्जन करके खड़ा होना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् शरीर एवं भूमि का प्रमार्जन करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार निर्दोष आहार करना चाहिए, और इस प्रकार अर्थात् भाषासमिति पूर्वक बोलना चाहिए। सावधान रह-रह कर प्राणों, भूतो जीवो और सत्वों की रक्षा रूप संयम में प्रवृत्त होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मुनि को प्रत्येक क्रिया यतना के साथ करना चाहिए।'

तए णं से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तह चिट्ठइ जाव संजमेणं संजमइ।

तए णं से मेहे अणगारे जाए इरियासमिए, अणगारवन्नओ भाणियव्वो।

तत्पश्चात् मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के इस धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया। अंगीकार करके उसी प्रकार वर्त्ताव करने लगे यावत् संयम मे उद्यम करने लगे।

तब मेघ ईर्यासमिति आदि से युक्त अनगार हुए। यहाँ (औपपातिक-सूत्र के अनुसार) अनगार का समस्त वर्णन कहना चाहिए।

तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयारूवाणं थेराणं सामाइयमाइयाणि एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् उन मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट रह कर तथा प्रकार के स्थविर मुनियों से सामायिक से प्रारंभ करके ग्यारह अंगशास्त्रों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत से उपवास, वेला, तेला, चौला, पंचौला आदि से तथा अर्धमासखमण एवं मासखमण आदि तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विहार और प्रतिमावहन

तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर से, गुणसिलक चैत्य से निकले। निकल कर बाहर जनपदों में विहार करने लगे-विचरने लगे।

तए णं से मेहे अणगारे अन्नया कयाइ समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'

तत्पश्चात् उन मेघ अनगार ने किसी अन्य समय श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा-'भगवन्! मैं आपकी अनुमति पाकर एक मास की मर्यादा वाली भिक्षु-प्रतिमा को अंगीकार करके विचरने की इच्छा करता हूँ।'

भगवान् ने कहा-'देवानुप्रिय! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध अर्थात् इच्छित कार्य का विघात न करो-विलम्ब न करो।'

तए णं से मेहे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएणं फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोहेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमति पाये हुए मेघ अनगार एक मास की भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे। एक मास की भिक्षु-प्रतिमा को यथासूत्र-सूत्र के अनुसार, कल्प (आचार) के अनुसार, मार्ग (ज्ञानादि मार्ग या क्षायोपशमिक भाव) के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय से ग्रहण किया, निरन्तर सावधान रह कर उसका पालन किया, पारणा के दिन गुरु को देकर शेष बचा भोजन करके शोभित किया, अथवा अतिचारों का निवारण करके शोधन किया, प्रतिमा का काल पूर्ण हो जाने पर भी किंचित् काल अधिक प्रतिमा में रहकर तीर्ण किया, पारणा के दिन प्रतिमा संबंधी कार्यों का कथन करके कीर्त्तन किया। इस प्रकार समीचीन रूप से काया से स्पर्श करके, पालन करके, शोभित या शोधित करके, तीर्ण करके एवं कीर्त्तन करके पुनः श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'

जहा पढमाए अभिलावो तहा दोच्चाए तच्चाए चउत्थाए पंचमाए छम्मासियाए सत्तमासियाए पढमसत्तराइंदियाए दोच्चं सत्तराइंदियाए तइयं सत्तराइंदियाए अहोराइंदियाए वि एगराइंदियाए वि।

'भगवन्! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं दो मास की दूसरी भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार करके विचरना चाहता हूं।'

भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध मत करो।'

जिस प्रकार पहली प्रतिमा में आलापक कहा है, उसी प्रकार दूसरी प्रतिमा दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाँचवीं पाँच मास की, छठी छह मास की, सातवी सात मास की, फिर पहली अर्थात् आठवीं सात अहोरात्र की, दूसरी अर्थात् नौवी भी सात अहोरात्र की, तीसरी अर्थात् दसवीं भी सात अहोरात्र की, और ग्यारहवीं तथा बारहवीं एक-एक अहोरात्र की कहना चाहिए।

तए णं से मेहे अणगारे बारस भिक्खुपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता पालेत्ता सोहेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।'

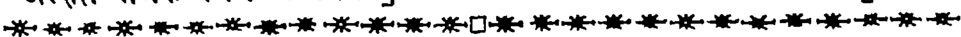
'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'

तत्पश्चात् मेघ अनगार ने बारहों भिक्षुप्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से काय से स्पर्श करके, पालन करके, शोधन करके, तीर्ण करके और कीर्त्तन करके पुनः श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके गुणरत्नसंवत्सर नामक तपःकर्म अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ।'

भगवान् बोले—'हे देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध मत करो।'

[गुणरत्न संवत्सर नामक तप में तेरह मास और सत्तरह दिन उपवास के होते हैं और तिहत्तर दिन पारणा के। इस प्रकार सोलह मास में इस तप का अनुष्ठान किया जाता है। तपस्या का यंत्र इस प्रकार है:—

मास	तप	तपोदिन	पारणा दिवस	कुल दिन
१	उपवास	१५	१५	३०
२	बेला	२०	१०	३०
३	तेला	२४	८	३२
४	चौला	२४	६	३०
५	पचोला	२५	५	३०
६	छह उपवास	२४	४	२८
७	सात ,,	२१	३	२४
८	आठ ,,	२४	३	२७



मास	तप		तपोदिन	पारणा दिवस	कुल दिन
९	नौ	,,	२७	३	३०
१०	दस	,,	३०	३	३३
११	ग्यारह	,,	३३	३	३६
१२	बारह	,,	२४	२	२६
१३	तेरह	,,	२६	२	२८
१४	चौदह	,,	२८	२	३०
१५	पन्द्रह	,,	३०	२	३२
१६	सोलह	,,	३२	२	३४
			४०७	७३	४८०

जिस मास मे जितने दिन कम हैं, उसमे अगले माम के उतने दिन समझ लेने चाहिए। इसी प्रकार जिस मास में अधिक है, उसके दिन अगले मास मे सम्मिलित कर देने चाहिए।]

तए णं से मेहे अणगारे पढमं मासं चउत्थं चउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं।

दोच्चं मासं छट्ठंछट्ठेणं०, तच्चं मासं अट्ठमंअट्ठमेणं०, चउत्थं मासं दसमंदसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं। पंचमं मासं दुवालसमंदुवालसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्तिं वीरासणेणं अवाउडएणं। एवं खलु एएणं अभिलावेणं छट्ठे चोद्दसमंचोद्दसमेणं, सत्तमे सोलसमंसोलसमेणं, अट्ठमे अट्ठारसमं अट्ठारसमेणं, नवमे वीसतिमंवीसतिमेणं, दसमे बावीसइमंबावीसइमेणं, एक्कारसमे चउवीसइमंचउवीसइमेणं, बारसमे छव्वीसइमंछव्वीसइमेणं, तेरसमे अट्ठावीसइमंअट्ठावीसइमेणं, चोद्दसमे तीसइमंतीसइमेणं, पंचदसमे बत्तीसइमंबत्तीसइमेणं, सोलसमे मासे चउत्तीसइमंचउत्तीसइमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुएणं सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे राइं वीरासणेण य अवाउडएण य।

तत्पश्चात् मेघ अनगार पहले महीने मे निरन्तर चतुर्थभक्त अर्थात् एकान्तर उपवास की तपस्या के साथ विचरने लगे। दिन मे उत्कट (गोदोहन) आसन से रहते और सूय के सन्मुख आतापना लेने की भूमि में आतापना लेते। रात्रि मे प्रावरण (वस्त्र) से रहित होकर वीरासन* से स्थित रहते थे।

इसी प्रकार दूसरे महीने निरन्तर षष्ठभक्त तप तीसरे महीने अष्टमभक्त तथा चौथे मास में दशमभक्त तप करते हुए विचरने लगे। दिन में उत्कट आसन से स्थित रहते, सूर्य के सामने, आतापना भूमि मे आतापना लेते और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासन से रहते।

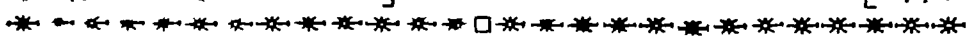
पाँचवें मास में द्वादशम-द्वादशम (पचोले-पंचोले) का निरन्तर तप करने लगे। दिन में उकडू आसन से स्थित होकर, सूर्य के सन्मुख, आतापना-भूमि में आतापना लेते और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासन से रहते थे।

इस प्रकार इसी आलापक के साथ छठे मास में छह-छह उपवास का, सातवें मास मे सात-सात उपवास का, आठवें मास में आठ-आठ उपवास का, नौवें मास में नौ-नौ उपवास का, दसवें मास में दस-दस उपवास का, ग्यारहवें मास में ग्यारह-ग्यारह उपवास का, बारहवे मास में बारह-बारह उपवास का, तेरहवें मास में तेरह-तेरह उपवास का, चौदहवें मास मे चौदह-चौदह उपवास का, पन्द्रहवें मास में पन्द्रह-पन्द्रह उपवास का और सोलहवें मास में सोलह-सोलह उपवास का निरन्तर तपकर्म करते हुए विचरने लगे। दिन में उकडू आसन से सूर्य के सन्मुख आतापनाभूमि में आतापना लेते थे और रात्रि में प्रावरणरहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे।

तए णं से मेहे अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं जाव सम्मं काएण फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, अहासुत्तं अहाकप्पं जाव किट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहि विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

अर्थ—तत्पश्चात् मेघ अनगार ने गुणरत्नसंवत्सर नामक तपःकर्म का सूत्र के अनुसार यावत् सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पर्श किया, पालन किया, शोधित या शोभित किया तथा कीर्तित किया। सूत्र के अनुसार और कल्प के

*दोनों पैर पृथ्वी पर टेक कर सिंहासन या कुर्सी पर बैठा जाय और बाद में सिंहासन या कुर्सी हटा ली जाय तो जो आसन बनता है वह वीरासन कहलाता है।



अनुसार यावत् कीर्त्तन करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके बहुत-से षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशमभक्त आदि तथा अर्धमासखमण एवं मासखमण आदि विचित्र प्रकार के तपःकर्म करके आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तए णं से मेहे अणगारे तेणं उरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारएणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मंसे निस्सोणिए किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था।

जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलायइ, भासं भासमाणे गिलायइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलायइ।

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार उस उराल-प्रधान, विपुल दीर्घकालीन होने के कारण विस्तीर्ण, सश्रीक—शोभासम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी नीरोगताजनक, शिव-मुक्ति के कारण, धन्यधन प्रदान करने वाले, मांगल्य-पापविनाशक, उदग्र-तीव्र, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम अज्ञानान्धकार से रहित और महान् प्रभाव वाले तपकर्म से शुष्क-नीरस शरीर वाले भूखे रूक्ष, मांसरहित और रुधिररहित हो गए। उठते-बैठते उनके हाड़ कड़कड़ाने लगे। उनकी हड्डियाँ केवल चमड़े से मढ़ी रह गईं। शरीर कृश और नसों से व्याप्त हो गया।

वह अपने जीव के बल से ही चलते एवं जीव के बल से ही खड़े रहते। भाषा बोलकर थक जाते बात करते-करते थक जाते, यहाँ तक कि 'मैं बोलूंगा' ऐसा विचार करते ही थक जाते थे। तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त उग्र तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था।

से जहानामए इंगालसगडियाइ वा, कट्ठसगडियाइ वा, पत्तसगडियाइ वा, तिलसगडियाइ वा, एरंडकट्ठसगडियाइ वा, उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंससोणिएणं, हुयासणे इव भासरासिपरिच्छन्ने, तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।



जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी हो, लकड़ियो से भरी गाडी हो, पत्तो से भरी गाड़ी हो, तिलों (तिल के डंठलों) से भरी गाड़ी हो, अथवा एरंड के काष्ठों से भरी गाड़ी हो, धूप मे डाल कर सुखाई हुई हो, अर्थात् कोयला, लकड़ी पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हों और फिर गाड़ी में भरे गये हो, तो वह गाड़ी खड़खड़ की आवाज करती हुई चलती है और आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार मेघ अनगार हाड़ों की खड़खड़ाहट के साथ चलते थे, और खड़खड़ाहट के साथ खड़े रहते थे। वह तपस्या से तो उपचित—वृद्धिप्राप्त थे, मगर मांस और रुधिर से अपचित ह्रास को प्राप्त हो गये थे। वह भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे। वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रहे थे।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे, जेणामेव रायगिहे नगरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम का उल्लङ्घन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चैत्य था, उसी जगह पधारे। पधार कर यथोचित अवग्रह (उपाश्रय) की आज्ञा लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था:—

'एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं तहेव जाव भासं भासिस्सामि त्ति गिलामि, तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धा धिई संवेगे तं जाव ता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार परक्कमे सद्धा धिई संवेगे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, ताव ताव मे

सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते सूरे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नायस्स समाणस्स सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहित्ता गोयमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहित्ता सयमेव मेहघणसन्निगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहित्ता संलेहणाझूसणाए झूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए।

तत्पश्चात् उन मेघ अनगार को रात्रि में पूर्वरात्रि और पिछली रात्रि के समय अर्थात् मध्यरात्रि में धर्म जागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ:—

'इस प्रकार मैं इस प्रधान तप के कारण, इत्यादि पूर्वोक्त सब कथन यहाँ कहना चाहिए, यावत 'भाषा बोलूंगा' ऐसा विचार आते ही थक जाता हूं।' तो अभी मुझ मे उठने की शक्ति है, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा धृति और सवेग है, तो जब तक मुझ मे उत्थान, कार्य करने की शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम श्रद्धा, धृति और संवेग है तथा जब तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर गंधहस्ती के समान जिनेश्वर विचर रहे है, तब तक कल रात्रि के प्रभात रूप मे प्रकट होने पर यावत् सूर्य के तेज से जाज्वल्यमान होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना और नमस्कार करके, श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा लेकर स्वयं ही पांच महाव्रतों को पुनः अगीकार करके, गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो को तथा निर्ग्रन्थियो को खमा कर, तथारूपधारो एवं योगवहन आदि क्रियाएँ जिन्होंने की हैं ऐसे स्थविर साधुओं के साथ, धीरे-धीरे विपुलाचल पर आरूढ़ होकर स्वयं हो सघन मेघ के सदृश पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, संलेखना स्वीकार करके, आहार-पानी का त्याग करके, पादपोपगमन अनशन धारण करके मृत्यु की भी आकांक्षा न करता हुआ विचरूँ।

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

मेघ मुनि ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन रात्रि के प्रभात रूप में परिणत होने पर यावत सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओर से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके न बहुत समीप और न बहुत दूर-योग्य स्थान पर रह कर भगवान् की सेवा करते हुए नमस्कार करते हुए, सन्मुख विनय के साथ दोनो हाथ जोड़ कर उपासना करने लगे अर्थात बैठ गए।

मेहे त्ति समणे भगवं महावीरे मेहं अणगारं एवं वयासी—'से णूणं तव मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं जाव जेणेव अहं तेणेव हव्वमागए। से णूणं मेहा! अट्ठे समट्ठे ?'

'हंता अत्थि।'

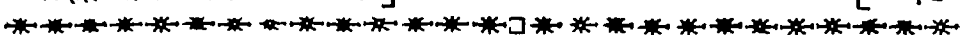
'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'

'हे मेघ!' इस प्रकार संबोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने मेघ अनगार से इस भाँति कहा—'निश्चय ही हे मेघ! रात्रि में, मध्य रात्रि के समय, धर्मजागरणा जागते हुए तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि—इस प्रकार निश्चय ही मैं इस प्रधान तप के कारण, इत्यादि यावत् जहाँ मैं हूं वहाँ तुम तुरंत आये हो। हे मेघ! क्या यह अर्थ समर्थ है? अर्थात् यह बात सत्य है?

मेघ मुनि बोले—'हाँ, यह अर्थ समर्थ है।'

तब भगवान् ने कहा—'देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबंध न करो।'

तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नाए समाणे हट्ठ जाव हियए उट्ठाइ उट्ठेइ, उट्ठाइ उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता गोयमाइ समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेइ, खामेत्ता य तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहइ, दुरूहित्ता सय-



मेव मेहघणसन्निगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहइ, पडिलेहित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी:—

'नमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं' ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी:—

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके हृष्ट-तुष्ट हुए। उनके हृदय में आनन्द हुआ। वह उत्थान करके उठे और उठ कर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दक्षिणा दिशा से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके स्वयं ही पाँच महाव्रतों का उच्चारण किया और गौतम आदि साधुओं को तथा साध्वियों को खमाया। खमा कर तथारूप (चारित्रवान्) और योगवहन आदि किये हुए स्थविर सन्तों के साथ धीरे-धीरे विपुल नामक पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघ के समान काले पृथ्वीशिलापट्टक की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके उच्चार-प्रस्रवण की-मलमूत्र त्यागने की-भूमि का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दर्भ का संथारा बिछाया और उस पर आरूढ़ हो गए। पूर्व दिशा के सन्मुख पद्मासन से बैठ कर, दोनों हाथ जोड़ कर और उन्हें मस्तक से स्पर्श करके (अंजलि करके) इस प्रकार बोले—

'अरिहन्त भगवन्तों को यावत् सिद्धि को प्राप्त सब तीर्थंकरों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिगति को प्राप्त करने के इच्छुक को नमस्कार हो। वहाँ (गुणशील चैत्य में) स्थित भगवान् को यहाँ (विपुलाचल पर) स्थित मैं वन्दना करता हूं। वहाँ स्थित भगवान् यहाँ स्थित मुझको देखें।' इस प्रकार कह कर भगवान् को वंदना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

पुव्विं पि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए, मुसावाए अदिन्नादाणे मेहुणे परिग्गहे कोहे माणे माया लोहे पेज्जे दोसे कलहे अब्भक्खाणे पेसुन्ने परपरिवाए अरइ-रई मायामोसे मिच्छादंसणसल्ले पच्चक्खाए।

इयाणिं पि य णं अहं तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि। सव्वं असणपाणखाइमसाइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं जाव विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतीति कट्टु एयं पि य णं चरमेहिं ऊसासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु संलेहणा झूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

पहले भी मैं ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट समस्त प्राणातिपात का त्याग किया है, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या दोषारोपण करना), पैशुन्य (चुगली), परपरिवाद (पराये दोषों का प्रकाशन), धर्म में अरति, अधर्म में रति, मायामृषा (वेष बदल कर ठगाई करना) और मिथ्यादर्शनशल्य, इन सब का प्रत्याख्यान किया है।

अब भी मैं उन्हीं भगवान् के निकट सम्पूर्ण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूं। तथा सब प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चारों प्रकार के आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूँ। और यह शरीर, जो इष्ट है, कान्त (मनोहर) है और प्रिय है, उसे यावत् रोग, शूलादिक आतंक, बाईस परीषह और उपसर्ग स्पर्श करते हैं, अतएव इस शरीर का भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त परित्याग करता हूं।'

इस प्रकार कह कर संलेखना को अंगीकार करके, भक्तपान का त्याग करके, पादपोपगमन समाधिमरण अंगीकार कर मृत्यु की भी कामना न करते हुए मेघ मुनि विचरने लगे।

तए णं ते थेरा भगवंतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेयावडियं करेन्ति।

तब वह स्थविर भगवन्त ग्लानिरहित होकर मेघ अनगार की वैयावृत्य करने लगे।

तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जित्ता

बहुपडिपुन्नाइं दुवालसवरिसाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता आलो-इयपडिक्कंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते आणुपुव्वीणं कालगए।

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरो के सन्निकट सामायिक आदि ग्यारह अंगो का अध्ययन करके लगभग बारह वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना के द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके, अनशन से साठ भक्त छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यो को हटाकर, समाधि को प्राप्त होकर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए।

तए णं ते थेरा भगवन्तो मेहं अणगारं आणुपुव्वेणं कालगयं पासेन्ति। पासित्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, करित्ता मेहस्स आयारभंडयं गेण्हंति। गेण्हित्ता विउलाओ पव्वयाओ सणियं सणियं पच्चोरुहंति। पच्चोरुहित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए, जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासीः—

तत्पश्चात् मेघ अनगार के साथ गये हुए स्थविर भगवंतों ने मेघ अनगार को क्रमशः कालगत देखा। देखकर परिनिर्वाणनिमित्तक (मुनि के मृत देह को परठने के कारण से किया जाने वाला) कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके मेघ मुनि के उपकरण ग्रहण किये और विपुलपर्वत से धीरे-धीरे नीचे उतरे। उतर कर जहाँ गुणशील चैत्य था और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहीं पहुँचे। पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोलेः—

'एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी मेहे अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए। से णं देवाणुप्पिएहिं अब्भणुन्नाए समाणे गोयमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहइ। दुरूहित्ता सयमेव मेघघणसन्निगासं पुढविसिलं पट्टयं पडिलेहेइ। पडिलेहित्ता भत्तपाणपडियाइक्खित्ते अणुपुव्वेणं कालगए। एस णं देवाणुप्पिया! मेहस्स अणगारस्स आयारभंडए।'

आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी (शिष्य) मेघ अनगार स्वभाव से भद्र और यावत् विनीत थे। वह देवानुप्रिय (आप) से अनुमति लेकर गौतम आदि साधुओं और साध्वियों को खमा कर हमारे हाथ विपुल पर्वत पर धीरे-धीरे आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर स्वयं ही सघन मेघ के समान कृष्ण वर्ण पृथ्वी-शिला पट्टक का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके भक्त पान का प्रत्याख्यान कर दिया और अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए। हे देवानुप्रिय! यह है मेघ अनगार के उपकरण।

पुनर्जन्म संबंधी प्रश्नोत्तर

भंते त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पियाणं अन्तेवासी मेहे णामं अणगारे, से णं भंते! मेहे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने?'

'भगवन्!' इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय के अन्तेवासी मेघ अनगार थे। भगवन्! वह मेघ अनगार कालमास में अर्थात् मृत्यु के अवसर पर काल करके किस गति में गये? और किस जगह उत्पन्न हुए?

'गोयमाइ' समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—'एवं खलु गोयमा! मम अन्तेवासी मेहे णामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए। से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। अहिज्जित्ता बारस भिक्खुपडिमाओ गुणरयण-संवच्छरं तवोकम्मं काएणं फासेत्ता जाव किट्टेता मए अब्भणुन्नाए समाणे गोयमाइ थेरे खामेइ। खामित्ता तहारूवेहिं जाव विउलं पव्वयं दुरूहइ। दुरूहित्ता दब्भसंथारगं संथरइ। संथरित्ता दब्भसंथारोवगए सयमेव पंचमहव्वए उच्चारेइ। बारस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कन्ते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा



उड्ढं चंदिमसूरगहगणनक्खत्ततारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूइं जोयणकोडीओ, बहूइं जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदबंभलंतगमहासुक्कसहस्साराणयपाणयारणच्चुए तिन्नि य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता विजए महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे ।

'हे गौतम !' इस प्रकार कह कर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—'इस प्रकार हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी मेघ नामक अनगार प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था। उसने तथारूप-स्थविरों से सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बारह भिक्षु-प्रतिमाओं का और गुणरत्न संवत्सर नामक तप का काय से स्पर्श करके यावत् कीर्त्तन करके, मेरी आज्ञा लेकर गौतम आदि स्थविरों को खमाया। खमाकर तथारूप यावत् स्थविरों के साथ विपुल पर्वत पर आरोहण किया। दर्भ का संथारा बिछाया। फिर दर्भ के संथारे पर स्थित होकर स्वयं ही पाँच महाव्रतों का उच्चारण किया। बारह वर्ष तक साधुत्व-पर्याय का पालन करके एक मास की संलेखना से अपने शरीर को क्षीण करके, साठ भक्त अनशन से छेदन करके, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, शल्यों का उद्धार करके, समाधि को प्राप्त होकर, काल मास में मृत्यु को प्राप्त करके, ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिषचक्र से बहुत योजन, बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लाखों योजन, बहुत करोड़ों योजन और बहुत कोड़ाकोड़ी योजन लांघ कर, ऊपर जाकर सौधर्म ईशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोक लान्तक महाशुक्र सहस्रार आनत प्राणत आरण और अच्युत देवलोको को तथा तीन सौ अठारह नवग्रैवेयक के विमानावासों को लांघ कर, विजय नामक महाविमान में देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं मेहस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

उस विजय नामक अनुत्तर विमानों में किन्हीं-किन्हीं देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। उनमें मेघ नामक देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है।

एस णं भंते ! मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं, ठिइक्खएणं, भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

भगवन् ! वह मेघ देव उस देवलोक से आयु का अर्थात् आयु कर्म के दलिकों का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का वेदन द्वारा क्षय करके तथा भव का अर्थात् देवभव के कारणभूत कर्मों का क्षय करके तथा देवभव के शरीर का त्याग करके अथवा देवलोक से च्यवन करके किस गति में जाएगा ? किस स्थान पर उत्पन्न होगा ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

हे गौतम ! महाविदेह वर्ष में (जन्म लेकर) सिद्धि प्राप्त करेगा—समस्त मनोरथों को सम्पन्न करेगा, केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जानेगा, समस्त कर्मों से मुक्त होगा और परिनिर्वाण प्राप्त करेगा, अर्थात् कर्मजनित समस्त विकारों से रहित हो जाने के कारण स्वस्थ होगा और समस्त दुःखों का अन्त करेगा ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थयरेणं जाव संपत्तेणं अप्पोपालंभनिमित्तं पढमस्स नायज्झयणस्स, अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि ॥

पढमं अज्झयणं समत्तं

श्रीसुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं—'इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने जो प्रवचन की आदि करने वाले, तीर्थ की संस्थापना करने वाले यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, आप्त (हितकारी) गुरु को चाहिए कि वह अविनीत शिष्य को उपालंभ दे, इस प्रयोजन से प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है । ऐसा मैं कहता हूँ—अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् ने जैसा फर्माया है, वैसा ही मैं तुमसे कहता हूँ !

प्रथम अध्ययन समाप्त

संघाट नामक द्वितीय अध्ययन

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, बिइयस्स णं भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पन्नत्ते ?

श्रीजम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं–'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह (आपके द्वारा प्रतिपादित पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो हे भगवन् ! द्वितीय ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णामं नयरे होत्था, वन्नओ। तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए राया होत्था महया० वण्णओ। तस्स णं रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था, वन्नओ।

श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए, द्वितीय अध्ययन के अर्थ की भूमिका प्रतिपादित करते हैं–'इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उसका वर्णन कह लेना चाहिए। उस राजगृह नगर में श्रेणिक राजा था। वह महान् हिमवन्त पर्वत के समान था, इत्यादि वर्णन भी औपपातिकसूत्र से समझ लेना चाहिए। उस राजगृह नगर से बाहर उत्तरपूर्व दिशा में ईशान कोण मे–गुणशील नामक चैत्य था। उसका वर्णन भी कह लेना चाहिए।

तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे पडिय-जिण्णुज्जाणे यावि होत्था, विणट्ठदेवउले परिसाडियतोरणघरे नाणाविहगुच्छगुम्मलयावल्लिवच्छच्छाइए अणेगवालसयसंकणिज्जे यावि होत्था।

उस गुणशील चैत्य से न अधिक दूर और न अधिक समीप, एक भाग में एक गिरा हुआ जीर्ण उद्यान था। उस उद्यान के देवकुल विनष्ट हो चुके थे। उसमें के द्वारों आदि के तोरण और दूसरे गृह भग्न हो गये थे। नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मो (वांस आदि की झाड़ियों) अशोक आदि की लताओं, ककड़ी आदि की बेलों तथा आम्र आदि के वृक्षों से वह उद्यान व्याप्त था। सैकड़ों वन्य पशुओं के कारण वह भय उत्पन्न करता था।

तस्स णं जिन्नुज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भग्ग-कूवए यावि होत्था।

उस जीर्ण उद्यान के बहुमध्यदेश भाग में-बीचोंबीच एक बड़ा टूटा-फूटा कूप भी था।

तस्स णं भग्गकूवस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए यावि होत्था, किण्हे किण्होभासे जाव रम्मे महामेहनिउरंबभूए बहूहिं रुक्खेहिं य गुच्छेहि य गुम्मेहि य लयाहि य वल्लीहि य तणेहि य कुसेहि य खाणुएहि य संछन्ने पलिच्छन्ने अंतो झुसिरे बाहिं गंभीरे अणेगवालसयसंकणिज्जे यावि होत्था।

उस भग्न कूप से न अधिक दूर और न अधिक समीप एक जगह एक बड़ा *मालुकाकच्छ था। वह अंजन के समान कृष्ण वर्ण वाला था और देखने वालों को कृष्णवर्ण ही दिखाई देता था, यावत् रमणीय और महा मेघ के समूह जैसा था। वह बहुत-से वृक्षों, गुच्छों, गुल्मो, लताओं, बेलो, तृणो, कुशों (दर्भ) और ठूंठों से व्याप्त था और चारों ओर से ढंका हुआ था। वह अन्दर से, पोला अर्थात विस्तृत था और बाहर से गंभीर था, अर्थात् अन्दर दृष्टि का संचार न हो सकने के कारण सघन था। अनेक सैकड़ों हिंसक पशुओं अथवा सर्पों के कारण शंकाजनक था।

तत्थ णं रायगिहे नगरे धण्णे नामं सत्थवाहे अड्ढे दित्ते जाव विउलभत्तपाणे। तस्स णं धन्नस्स [illegible] भद्द [illegible] होत्था, सुकुमालपाणिपाया अहीण [illegible]

*मालुक एक जाति का वृक्ष होता है,

अथवा ककड़ी आदि की [illegible] को मालु

वंजणगुणोववेया माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगी ससिसोमागारा कंता पियदंसणा सुरूवा करयलपरिमियतिवलियमज्झा कुंडलुल्लिहियगंडलेहा कोमुइरयणियरपडिपुण्णसोमवयणा सिंगारागार-चारुवेसा जाव पडिरूवा वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था।

उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह था। वह समृद्धिशाली था, तेजस्वी था और उसके घर बहुत-सा भोजन पानी तैयार होता था।

उस धन्य सार्थवाह की भद्रा नाम की पत्नी थी। उसके हाथ पैर सुकुमार थे। पाँचों इन्द्रियाँ हीनता से रहित परिपूर्ण थीं। वह स्वस्तिक आदि लक्षणों तथा तिल मसा आदि व्यंजनों के गुणों से युक्त थी। मान-उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थी। अच्छी तरह उत्पन्न हुए—सुन्दर सब अवयवों के कारण वह सुन्दरांगी थी। उसका आकार चन्द्रमा के समान सौम्य था। वह अपने पति के लिए मनोहर थी। देखने में प्रिय लगती थी। सुरूपवती थी। मुट्ठी में समा जाने वाला उसका मध्यभाग (कटि प्रदेश) त्रिवलि से सुशोभित था। कुंडलों से उसके गंडस्थलों की रेखा घिसती रहती थी। उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्र के समान सौम्य था। वह श्रृङ्गार का आगार थी। उसका वेष सुन्दर था। यावत् वह प्रतिरूप थी—उसका रूप प्रत्येक दर्शक को नया-नया ही दिखाई देता था। मगर वह वन्ध्या थी, प्रसव करने के स्वभाव से रहित थी। जानु और कूर्पर की ही माता थी, अर्थात् सन्तान न होने से जानु और कूर्पर ही उसके स्तनों का स्पर्श करते थे। या उसकी गोद में जानु और कूर्पर ही स्थित होते थे—पुत्र नहीं।

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पंथए नामं दासचेडे होत्था, सव्वंगसुंदरंगे मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।

उस धन्य सार्थवाह का पंथक नामक दास-चेटक था। वह सर्वाङ्ग सुन्दर था, मांस से पुष्ट था और बालकों को खेलाने में कुशल था।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रायगिहे नयरे बहूणं नगरनिगमसेट्ठि-सत्थवाहाणं अट्ठारसण्ह य सेणिप्पसेणीणं बहुसु कज्जेसु य कुडुंबेसु य मंतेसु य जाव चक्खुभूए यावि होत्था। नियगस्स वि य णं कुडुंबस्स बहुसु य कज्जेसु जाव चक्खुभूए यावि होत्था।

वह धन्य सार्थवाह राजगृह नगर में बहुतसे नगर के व्यापारियों, श्रेष्ठियों और सार्थवाहों के तथा अठारहों श्रेणियों (जातियो) और प्रश्रेणियो के बहुत-से कार्यों मे, कुटुम्बों में और मंत्रणाओं में यावत् चक्षु के समान मार्ग-दर्शक था और अपने कुटुम्ब में भी बहुत-से कार्यों में यावत् चक्षु के समान था।

तत्थ णं रायगिहे नगरे विजए नामं तक्करे होत्था, पावे चंडालरूवे भीमतररुद्दकम्मे आरुसियदित्तरत्तनयणे खरफरुसमहल्लविगयवीभत्थदाढिए असंपुडियउट्ठे उद्धुयपइन्नलंबंतमुद्धए भमरराहुवन्ने निरणुक्कोसे निरणुतावे दारुणे पइभए निसंसइए निरणुकंपे अहिव्व एगंतदिट्ठिए, खुरे व एगंतधाराए, गिद्धे व आमिसतल्लिच्छे अग्गिमिव सव्वभक्खे, जलमिव सव्वगाही, उक्कंचणवंचणमायानियडिकूडकवडसाइसंपओगबहुले, चिरनगरविणट्ठदुट्ठसीलायारचरित्ते, जूयपसंगी, मज्जपसंगी, भोज्जपसंगी, मंसपसंगी, दारुणे, हिययदारए, साहसिए, संधिच्छेयए, उवहिए, विस्संभघाई, आलीयगतित्थभेयलहुहत्थसंपउत्ते, परस्स दव्वहरणम्मि निच्चं अणुबद्धे, तिव्ववेरे, रायगिहस्स नगरस्स बहूणि अइगमणाणि य निग्गमणाणि य दाराणि य अवदाराणि य छिंडिओ य खंडिओ य नगरनिद्धमणाणि य संवट्टणाणि य निव्वट्टणाणि य जूवखलयाणि य पाणागाराणि य वेसागाराणि य तद्दारट्ठाणाणि (तक्करट्ठाणाणि) य तक्करघराणि य सिंघाडगाणि य तियाणि य चउक्काणि य चच्चराणि य नागघराणि य भूयघराणि य जक्खदेउलाणि य सभाणि य पवाणि य पाणियसालाणि य सुन्नघराणि य आभोएमाणे आभोएमाणे मग्गमाणे गवेसमाणे, बहुजणस्स छिद्देसु य विसमेसु य विहुरेसु य वसणेसु य अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जन्नेसु य पव्वणीसु य मत्तपमत्तस्स य वक्खित्तस्स य वाउलस्स य सुहियस्स य दुक्खियस्स य विदेसत्थस्स य विप्पवसियस्स य मग्गं च छिद्दं च विरहं च अंतरं च मग्गमाणे गवेसमाणे एवं च णं विहरइ।

उस राजगृह नगर में विजय नामक एक चोर था। वह पाप कर्म करने वाला, चाण्डाल के समान रूप वाला, अत्यन्त भयानक और क्रूर कर्म करने

वाला था। क्रुद्ध हुए पुरुष के समान देदीप्यमान और लाल उसके नेत्र थे। उसकी दाढ़ी या दाढे अत्यन्त कठोर, मोटी, विकृत और वीभत्स (डरावनी) थी। उसके होठ आपस में मिलते नहीं थे, अर्थात् दांत बड़े और बाहर निकले हुए थे और होठ छोटे थे। उसके मस्तक के केश हवा से उड़ते रहते थे, बिखरे रहते थे और लम्बे थे। वह भ्रमर अथवा राहु के समान काला था। वह दया और पश्चात्ताप से रहित था। दारुण (रौद्र) था और इसी कारण भय उत्पन्न करता था। वह नृशंस-नरघातक था। उसे प्राणियो पर अनुकम्पा नहीं थी। वह साँप की भाँति एकान्त दृष्टि वाला था, अर्थात् किसी भी कार्य के लिए पक्का निश्चय कर लेता था। वह छुरे की तरह एक धार वाला था, अर्थात् जिसके घर चोरी करने का निश्चय करता, उसी मे पूरी तरह संलग्न हो जाता था। वह गिद्ध की तरह मांस का लोलुप था और अग्नि के समान सर्वभक्षी था अर्थात् जिसकी चोरी करता, उसका सर्वस्व हरण कर लेता था। जल के समान सर्वग्राही था, अर्थात् नजर पर चढ़ी सब वस्तुओं को अपहरण कर लेता था। वह उत्कंचन में (हीन गुण वाली वस्तु को अधिक मूल्य लेने के लिए उत्कृष्ट गुण वाली बनाने में), वंचन–दूसरों को ठगने–में, माया (पर को धोखा देने की बुद्धि) में, निकृति–बगुला के समान ढोंग करने में, कूट में अर्थात् तोल–नाप को कम–ज्यादा करने में और कपट करने अर्थात् वेष और भाषा को बदलने में अति निपुण था। सातिसंप्रयोग में उत्कृष्ट वस्तु में मिलावट करने में भी निपुण था या अविश्वास करने में चतुर था। वह चिरकाल से नगर मे उपद्रव कर रहा था। उसका शील, आकार और चरित्र अत्यन्त दूषित था। वह द्यूत में आसक्त था, मदिरापान में अनुरक्त था, अच्छा भोजन करने में गृद्ध था और मांस में लोलुप था। लोगों के हृदय को विदारण कर देने वाला, साहसी–परिणाम का विचार न करके कार्य करने वाला, सेंध लगाने वाला, गुप्त कार्य करने वाला, विश्वासघाती और आग लगा देने वाला था। तीर्थ रूप देवद्रोणी आदि का भेदन करने वाला और हस्तलाघव वाला था। पराया द्रव्य हरण करने में सदैव तैयार रहता था। तीव्र वैर वाला था।

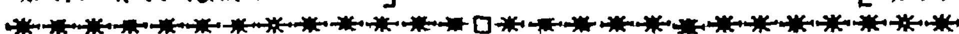
वह विजय चोर राजगृह नगर के बहुत–से प्रवेश करने के मार्गों, निकलने के मार्गों, दरवाजो, पीछे की खिड़कियों, छेड़ियों, किले की छोटी खिड़कियों, मोरियों, रास्ते मिलने की जगहों, रास्ते अलग–अलग होने के स्थानो, जुआ के अखाड़ो, मदिरापान के स्थानों, वेश्या के घरो, उनके घरो के द्वारो (चोरों के अड्डों) चोरों के घरो, शृङ्गाटको–सिंघाड़े के आकार के मार्गों, तीन मार्ग मिलने के स्थानो, चौकों, अनेक मार्ग मिलने के स्थानो, नागदेव के गृहों, भूतो के गृहों, यक्षगृहो, सभास्थानो, प्याउओ, दुकानों और शून्यगृहों को देखता फिरता था।

उनकी मार्गणा करता था–उनके विद्यमान गुणों का विचार करता था उनकी गवेषणा करता था, अर्थात् उनकी कमियों का विचार करता था। बहुतों के छिद्रों का विचार करता था, अर्थात् थोड़े जनों का परिवार हो तो चोरी करने में सुविधा हो, ऐसा विचार करता था। विषम–रोग की तीव्रता, इष्ट जनो के वियोग, व्यसन–राज्य आदि की ओर से आये हुए संकट, अभ्युदय–राज्यलक्ष्मी आदि के लाभ, उत्सवों, प्रसव–पुत्रादि के लाभ, मदनत्रयोदशी आदि तिथियो क्षण–बहुत लोगों के भोज आदि यज्ञ–नाग आदि की पूजा, कौमुदी आदि पर्वणी में अर्थात् इन सब प्रसंगों पर बहुत से लोग मद्यपान से मत्त हो गये हों, प्रमत्त हुए हों, अमुक कार्य में व्यस्त हों, विविध कार्यों मे आकुल–व्याकुल हों, सुख में हों, दुःख में हो, परदेश गये हो, परदेश जाने की तैयारी में हों, ऐसे अवसरों पर वह लोगो के छिद्र का विरह (एकान्त) का और अन्तर (अवसर) का विचार करता हुआ और गवेषणा करता हुआ विचरता था।

बहिया वि य णं रायगिहस्स नगरस्स आरामेसु य, उज्जाणेसु य वाविपोक्खरिणीदीहियागुंजालियासरेसु य सरपंतिसु य सरसरपंतियासु य जिण्णुज्जाणेसु य भग्गकूवएसु य मालुयाकच्छएसु य सुसाणेसु य गिरिकन्दरलेणउवट्ठाणेसु य बहुजणस्स छिद्देसु य जाव एवं च णं विहरइ।

वह विजय चोर राजगृह नगर के बाहर भी आरामों में अर्थात् दम्पती के क्रीड़ा करने के लिए माधवीलतागृह आदि जहाँ बने हों ऐसे बगीचों में, उद्यानों में अर्थात् पुष्पों वाले वृक्ष जहाँ हों और लोग जहाँ जाकर उत्सव मनाते हों ऐसे बागों मे, चौकोर वावड़ियों में कमलवाली पुष्पकरिणी में, दीर्घिकाओ (लम्बी बावड़ियों) में, गुंजालिकाओं (वांकी वावड़ियो) मे, सरोवरों में, सरोवरों की पक्तियो में, सर–सर पंक्तियो मे (एक तालाब का पानी दूसरे तालाब में जा सके, ऐसे सरोवरों की पक्तियों) मे, जीर्ण उद्यानों में, भग्न कूपों में, मालुकाकच्छों की झाड़ियों में, श्मशानो में, पर्वत की गुफाओं मे लयनो अर्थात् पर्वतस्थित पाषाणगृहों में तथा उपस्थानों अर्थात् पर्वत पर स्थित पाषाणमंडपो में उपर्युक्त बहुत लोगों के छिद्र आदि देखता हुआ विचरता था।

तए णं तीसे भद्दाए भारियाए अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—



'अहं धन्नेण सत्थवाहेण सद्धिं बहूणि वासाणि सद्दफरिसरसगंध-रूवाणि माणुस्सयाइं कामभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरामि। नो चेव णं अहं दारगं वा दारिगं वा पयायामि।

तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव सुलद्धे णं माणुस्सए जम्म-जीवियफले तासिं अम्मयाणं, जासिं मन्ने णियगकुच्छिसंभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुरसमुल्लावगाइं मम्मणपयंपियाइं थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं थणयं पिबंति। तओ य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊणं उच्छंगे निवेसियाइं देन्ति समुल्लावए पिए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए।

तं अहं णं अधन्ना अपुन्ना अलक्खणा अकयपुन्ना एत्तो एगम-वि न पत्ता।'

धन्य सार्थवाह की भार्या भद्रा एक बार कदाचित् मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता कर रही थी कि उसे इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—

बहुत वर्षों से मैं धन्य सार्थवाह के साथ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और रूप यह पाँचों प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भोगती हुई विचर रही हूँ, परन्तु मैंने एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म नहीं दिया।

वे माताएँ धन्य हैं, यावत् उन माताओं को मनुष्य-जन्म और जीवन का फल भला प्राप्त हुआ है, जो माताएँ, मैं मानती हूँ कि, अपनी कूँख से उत्पन्न हुए, स्तनो का दूध पीने में लुब्ध, मीठे बोल बोलने वाले, तुतला-तुतला कर बोलने वाले और स्तन के मूल से काँख के प्रदेश की ओर सरकने वाले मुग्ध बालकों को स्तनपान कराती हैं। और फिर कोमल कमल के समान हाथों से उन्होंने पकड़ कर अपनी गोद मे बिठलाती हैं और बार बार अतिशय प्रिय वचन वाले मधुर उल्लाप देती हैं।

सो मैं अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ, कुलक्षणा हूँ और पापिनी हूँ कि इनमें से एक भी (विशेषण) न पा सकी।

तं सेयं मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते धण्णं सत्थवाहं आपुच्छित्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुन्नाया समाणी सुबहुं

विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेत्ता सुबहुं पुप्फवत्थगंधमल्ला-लंकारं गहाय बहूहिं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणमहिलाहिं सद्धिं संपरिवुडा जाइं इमाइं रायगिहस्स नगरस्स बहिया णागाणि य भूयाणि य जक्खाणि य इंदाणि य खंदाणि य रुद्दाणि य सेवाणि य वेसम-णाणि य तत्थ णं बहूणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य महरिहं पुप्फच्चणियं करेत्ता जाणुपायपडियाए एवं वइत्तए:—जइ णं अहं देवाणुप्पिया ! दारगं वा दारिगं वा पयायामि, तो णं अहं तुब्भं जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि त्ति कट्टु उवाइयं उवाइत्तए।

अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रकट होने पर और सूर्योदय होने पर धन्य सार्थवाह से पूछ कर, धन्य सार्थवाह की आज्ञा पाकर मैं बहुत अधिक अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार कराके बहुत-से पुष्प वस्त्र गंध माला और अलंकार ग्रहण करके बहुसंख्यक मित्रों, ज्ञातिजनों, निजजनों, स्वजनों संबंधियों, परिजनों की महिलाओं के साथ परिवृत होकर, राजगृह नगर के बाहर जो नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कंद, रुद्र, शिव और वैश्रमण आदि देवों के आयतन हैं और उनमें जो नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण की प्रतिमा हैं, उनकी बहुमूल्य पुष्पादि से पूजा करके घुटने और पैर झुका कर अर्थात् उनको नमस्कार करके इस प्रकार कहूं—'हे देवा-नुप्रिय ! यदि मैं एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगी, पर्व के दिन दान दूंगी, भाग-द्रव्य के लाभ का हिस्सा दूंगी और तुम्हारी अक्षय निधि की वृद्धि करूँगी। इस प्रकार अपनी इष्ट वस्तु की याचना करूँ।

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते जेणामेव धण्णे सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणु-प्पिया ! तुब्भेहिं सद्धिं बहूइं वासाइं जाव देन्ति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए। तं णं अहं अहन्ना अपुन्ना अकयलक्खणा, एत्तो एगमवि न पत्ता। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी विउलं असणं ४ जाव अणुवड्ढेमि, उवाइयं करेत्तए।

भद्रा ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन यावत् सूर्यो-दय होने पर जहाँ धन्य सार्थवाह थे, वहीं आई। आकर इस प्रकार बोली:—

हे देवानुप्रिय ! मैं ने आपके साथ बहुत वर्षों तक कामभोग भोगे हैं। यावत् अन्य स्त्रियाँ बार-बार अति मधुर वचन वाले उल्लाप देती हैं–अपने बच्चों की लौरियाँ गाती हैं, किन्तु मैं अधन्य, पुण्य-हीन और लक्षणहीन हूं, जिससे पूर्वोक्त विशेषणों में से एक भी विशेषण न पा सकी। तो हे देवानुप्रिय ! मैं चाहती हूं कि आपकी आज्ञा पाकर विपुल अशन आदि तैयार कराकर नाग आदि की पूजा करूँ यावत् उनकी अक्षय निधि की वृद्धि करूँ, ऐसी मनौती मनाऊँ। (पूर्वसूत्र के अनुसार यहाँ भी सब कह लेना चाहिए)

तए णं धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी–ममं पि य णं खलु देवाणुप्पिए ! एस चेव मणोरहे–कहं णं तुमं दारगं दारियं वा पयाएज्जसि ?' भद्दाए सत्थवाहीए एयमट्ठं अणुजाणाइ।

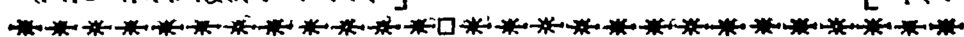
तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने भद्रा भार्या से इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिये ! निश्चय ही मेरा भी यही मनोरथ है कि किस प्रकार तुम पुत्र या पुत्री का प्रसव करो।' इस प्रकार कह कर भद्रा सार्थवाही को उस अर्थ का–उसने वैसा करने की अनुमति दे दी।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुन्नाया समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेइ। उवक्खडावेत्ता सुबहुं पुप्फगंधवत्थमल्लालंकारं गेण्हइ। गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुबहुं पुप्फ जाव मल्लालंकारं ठवेइ। ठवित्ता पुक्खरिणिं ओगाहइ। ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, जलकीडं करेइ, करित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा उल्लपडसाडिगा जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हइ। गिण्हित्ता पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ। पच्चोरुहित्ता तं सुबहुं पुप्फगंधमल्लं गेण्हइ। गेण्हित्ता जेणामेव नागघरए य जाव वेसमणघरए य तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तत्थ णं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य आलोए पणामं करेइ, ईसिं पच्चुन्नमइ। पच्चुन्नमित्ता लोमहत्थगं परामुसइ। परामुसित्ता नागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थेणं पमज्जइ,

उदगधाराए अब्भुक्खेइ। अब्भुक्खित्ता पम्हलसुकुमालाए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ। लूहित्ता महरिहं वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च चुन्नारुहणं च वन्नारुहणं च करेइ। करित्ता जाव धूवं डहइ, डहित्ता जाणुपायपडिया पंजलिउडा एवं वयासी—'जइ णं अहं दारगं वा दारिगं वा पयायामि तो णं अहं जायं य जाव अणुवड्ढेमि त्ति कट्टु उवाइयं करेइ, करित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता विपुलं असणपाणखाइमसाइमं आसाएमाणी जाव विहरइ। जिमिया जाव सुईभूया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही धन्य सार्थवाह से अनुमति पाई हुई हृष्ट तुष्ट यावत् प्रफुल्लित हृदय होकर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराती है। तैयार कराकर बहुत-से पुष्प गंध वस्त्र माला और अलंकारों को ग्रहण करती है और फिर अपने घर से बाहर निकलती है। राजगृह नगर के बीचोबीच होकर निकलती है। निकल कर जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ पहुँचती है। पहुँच कर पुष्करिणी के किनारे बहुत-से पुष्प यावत् मालाएँ और अलंकार रख दिये। रख कर पुष्करिणी में प्रवेश किया, जलमज्जन किया, जलक्रीड़ा की, स्नान किया और बलिकर्म किया। तत्पश्चात् ओढ़ने-पहनने के दोनों गीले वस्त्र धारण किये हुए भद्रा सार्थवाही ने वहाँ जो उत्पल-कमल और सहस्रपत्र-कमल थे, उन्हें ग्रहण किया। फिर पुष्करिणी से बाहर निकली। निकल कर पहले रक्खे हुए बहुत-से पुष्प, गंध माला आदि लिये और उन्हें लेकर जहाँ नागगृह था यावत् वैश्रमणगृह था, वहाँ पहुँची। पहुँच कर उनमें स्थित नाग की प्रतिमा यावत् वैश्रमण की प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें नमस्कार किया। कुछ नीचे झुकी। मोर-पिच्छी लेकर उससे नागप्रतिमा यावत् वैश्रमणप्रतिमा का प्रमार्जन किया। जल की धार छोड़ कर अभिषेक किया। अभिषेक करके रुएँदार और कोमल कषाय-रंग वाले सुगंधित वस्त्र से प्रतिमा के अंग पोंछे। पोंछ कर बहु-मूल्य वस्त्रों का आरोहण किया—वस्त्र पहनाए पुष्पमाला पहनाई, गंध का लेपन किया, चूर्ण चढ़ाया और शोभाजनक वर्ण का स्थापन किया, यावत् धूप जलाई। तत्पश्चात् घुटने और पैर टेक कर, दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—

'अगर मैं पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी याग-पूजा करूँगी, यावत् अक्षय निधि की वृद्धि करूँगी।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाही ने मनौती करके जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ आई और विपुल अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम का आस्वादन करती हुई यावत् विचरने लगी। भोजन करने के पश्चात् शुचि होकर अपने घर आ गई।



अदुत्तरं च णं भद्दा सत्थवाही चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुन्नमासिणीसु विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडेइ, उवक्खडित्ता बहवे नागायणे जाव वेसमणायणे उवायमाणी नमंसमाणी जाव एवं च णं विहरइ ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइ केणइ कालंतरेणं आवन्नसत्ता जाया यावि होत्था ।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करती और तैयार करके बहुत-से नागायतनों में यावत् वैश्रमण-आयतनों में देवों की मनौती करती-भोग चढ़ाती थी और उन्हें नमस्कार करती हुई विचरती थी ।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही कुछ समय व्यतीत हो जाने पर एकदा कदाचित् गर्भवती हो गई ।

तए णं तीसे भद्दाए सत्थवाहीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, जाओ णं विउलं असण-पाणखाइमसाइमं सुबहुयं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारं गहाय मित्तनाइ-नियगसयणसंबंधिपरियणमहिलियाहि य सद्धिं संपरिवुडाओ रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति । निग्गच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति । उवागच्छित्ता पोक्खरिणिं ओगाहिंति, ओगाहित्ता ण्हा-याओ कयबलिकम्माओ सव्वालंकारविभूसियाओ विपुलं असणपाण-खाइमसाइमं आसाएमाणीओ जाव पडिभुंजेमाणीओ दोहलं विणेन्ति । एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता धण्णं, सत्थवाहं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम तस्स गब्भस्स जाव विणेन्ति; तं इच्छामि णं देवा-णुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी जाव विहरित्तए ।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया (ये) ! मा पडिबंधं करेह ।'

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही को (गर्भवती हुए) दो मास बीत गये । तीसरा मास चल रहा था, तब इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ—'वे माताएँ धन्य हैं,

यावत् वे माताएँ शुभ लक्षण वाली हैं, जो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम, यह चार प्रकार का आहार तथा बहुत-सारे पुष्प, वस्त्र, गंध और माला तथा अलंकार ग्रहण करके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनो की स्त्रियों के साथ परिवृत होकर राजगृह नगर के बीचोंबीच होकर निकलती हैं। निकल कर जहाँ पुष्करिणी है वहाँ आती हैं, आकर पुष्करिणी में अवगाहन करती हैं, अवगाहन करके स्नान करती हैं, बलिकर्म करती हैं और सब अलंकारों से विभूषित होती हैं। फिर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार का आस्वादन करती हुई तथा परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं।' इस प्रकार भद्रा सार्थवाही ने विचार किया। विचार करके कल-दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर धन्य सार्थवाह के पास आई। आकर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिय! मुझे उस गर्भ के प्रभाव से ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य और सुलक्षणा हैं जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं, आदि, अतएव हे देवानुप्रिय! आपके द्वारा आज्ञा पाई हुई मैं भी दोहद पूर्ण करके विचरूँ।'

सार्थवाह ने कहा-'हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो। उसमें ढील न करो।'

तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुन्नाया समाणी हट्ठतुट्ठा जाव विउलं असणपाणखाइमसाइमं जाव ण्हाया जाव उल्लपडसाडगा जेणेव णागधरए जाव धूवं दहइ। दहित्ता पणामं करेइ, पणामं करेत्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तए णं ताओ मित्तनाइ जाव नगरमहिलाओ भद्दं सत्थवाहिं सव्वालंकार विभूसियं करेइ।

तएणं सा भद्दा सत्थवाही ताहिं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजण-णगरमहिलियाहिं सद्धिं तं विउलं असणपाणखाइमसाइमं जाव परि-भुंजेमाणी य दोहलं विणेइ। विणित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह से आज्ञा पाई हुई भद्रा सार्थवाही हृष्ट-तुष्ट हुई। यावत् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके, यावत् स्नान करके, यावत् पहनने और ओढ़ने का गीला वस्त्र धारण करके जहाँ नागायतन आदि थे, वहाँ आई। यावत् धूप जलाई, प्रणाम किया। प्रणाम करके जहाँ

पुष्करिणी थी, वहाँ आई। आने पर उन मित्र ज्ञाति यावत् नगर की स्त्रियों ने भद्रा सार्थवाही को सर्व आभूषणों से अलंकृत किया।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सबंधी, परिजन एवं नगर की स्त्रियो के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का यावत् परिभोग करके अपने दोहद को पूर्ण किया। पूर्ण करके जिस दिशा से वह प्रादुर्भूत हुई थी, उसी दिशा मे लौट गई।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही संपुन्नडोहला जाव तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

तएणं सा भद्दा सत्थवाही णवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण राइंदियाणं सुकुमालपाणिपायं जाव दारगं पयाया।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही दोहद पूर्ण करके यावत् उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी।

तत्पश्चात् उस भद्रा सार्थवाही ने नौ मास सम्पूर्ण हो जाने पर और साढ़े सात दिन रात व्यतीत हो जाने पर सुकुमार हाथों-पैरों वाले बालक का प्रसव किया।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेन्ति, करित्ता तहेव जाव विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेंति, उवउवक्खडावित्ता तहेव मित्तनाइ० भोयावेत्ता अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति—'जम्हा णं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य उवाइयलद्धे णं तं होउ णं अम्हं इमे दारए देवदिन्ननामेणं।'

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च दायं च भायं च अक्खयनिहिं च अणुवड्ढेन्ति।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन जातकर्म नामक संस्कार किया। करके उसी प्रकार यावत् अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार करवाया। तैयार करवाकर उसी प्रकार मित्र ज्ञाति जनों आदि को भोजन कराकर इस प्रकार का गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा—'क्योंकि हमारा यह पुत्र बहुत-सी नागप्रतिमाओं यावत् वैश्रमणप्रतिमाओं की मनौती

करने से उत्पन्न हुआ है, इस कारण हमारा यह पुत्र 'देवदत्त' नाम से हो, अर्थात इसका नाम देवदत्त रक्खा जाय।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उन देवताओं की पूजा की, उन्हें दान दिया, प्राप्त धन का विभाग किया और अक्षय निधि की वृद्धि की।

तए णं से पंथए दासचेडए देवदिन्नस्स दारगस्स बालग्गाही जाए। देवदिन्नं दारयं कडीए गेण्हइ, गेण्हित्ता बहूहिं डिंभएहिं य डिंभगाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरमइ।

तत्पश्चात वह पंथक नामक दासचेटक देवदत्त बालक का बालग्राही (बच्चे को खेलाने वाला) नियुक्त हुआ। वह देवदत्त बालक को कमर मे ले लेता और लेकर बहुत-से बालकों, बालिकाओं, कुमारों और कुमारिकाओं के साथ परिवृत होकर खेलता-खेलाता रहता था।

तए णं सा भद्दासत्थवाही अन्नया कयाइं देवदिन्नं दारयं ण्हायं कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं सव्वालंकारभूसियं करेइ। पंथयस्स दासचेडयस्स हत्थयंसि दलयइ।

तए णं पंथए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं दारयं कडीए गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य जाव कुमारयाहि य सद्धिं संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता देव-दिन्नं दारगं एगंते ठावेइ। ठावित्ता बहूहिं डिंभएहि य जाव कुमारि-याहि य सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि होत्था विहरइ।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने किसी समय स्नान किये हुए, बलिकर्म, कौतुक, मगल और प्रायश्चित् किये हुए तथा समस्त अलंकारों से विभूषित हुए देवदत्त बालक को, दासचेटक पथक के हाथ में सौंपा।

तत्पश्चात् पथक दासचेटक ने भद्रा सार्थवाही के हाथ से देवदत्त बालक को लेकर अपनी कटि में ग्रहण किया। ग्रहण करके वह अपने घर से बाहर निकला। बाहर निकल कर बहुत-से बालकों, बालिकाओ यावत् कुमारिकाओं से परिवृत होकर जहाँ राजमाग था, वहाँ आया। आकर देवदत्त बालक को

एकान्त में–एक ओर बिठला दिया। बिठला कर बहुसंख्यक बालकों यावत् कुमारिकाओं के साथ, (देवदत्त की ओर से) असावधान होकर खेलने लगा–विचरने लगा।

इमं च णं विजए तक्करे रायगिहस्स नगरस्स बहूणि बाराणि य अवदाराणि य तहेव जाव आभोएमाणे मग्गेमाणे गवेसेमाणे जेणेव देवदिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ। पासित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववन्ने पंथयं दासचेडं पमत्तं पासइ। पासित्ता दिसालोयं करेइ। करेत्ता देवदिन्नं दारयं गेण्हइ। गेण्हित्ता कक्खंसि अल्लियावेइ। अल्लियावित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ। पिहेत्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं रायगिहस्स नगरस्स अवदारेणं निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे, जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं जीवियाओ ववरोवेइ। ववरोवित्ता आभरणालंकारं गेण्हइ। गेण्हित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरयं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवियविप्पजढं भग्गकूवए पक्खिवइ। पक्खिवित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता निच्चले निप्फंदे तुसिणीए दिवसं खिवेमाणे चिट्ठइ।

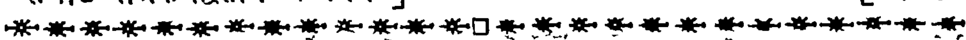
इसी समय विजय चोर राजगृह नगर के बहुतसे द्वारों एवं अपद्वारों आदि को यावत् देखता हुआ, उनकी मार्गणा करता हुआ, गवेषणा करता हुआ. जहाँ देवदत्त बालक था, वहाँ आ पहुँचा। आकर देवदत्त बालक को सभी आभूषणों से भूषित देखा। देखकर बालक देवदत्त के आभरणों और अलंकारों में मूर्छित (मूढ़–विवेकविहीन) हो गया, ग्रथित (लोभ से ग्रस्त) हो गया, गृद्ध (आकांक्षायुक्त) हो गया और अध्युपपन्न (उसमें अत्यन्त तन्मय) हो गया। उसने दासचेटक पंथक को बेखबर देखा और चारों ओर दिशाओं का अवलोकन किया। फिर बालक देवदत्त को उठाया और उठाकर कांख में दबा लिया। ओढ़ने के कपड़े से उसे छिपा लिया–ढँक लिया। फिर शीघ्र, त्वरित, चपल और उतावल के साथ राजगृह नगर के अपद्वार से बाहर निकल गया। निकल कर जहाँ जीर्ण उद्यान था और जहाँ टूटा–फूटा कुआ था, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुंच

कर देवदत्त बालक को जीवन से रहित कर दिया। उसे निर्जीव करके उसके सब आभरण और अलंकार ले लिये। फिर बालक देवदत्त के प्राणहीन, चेष्टाहीन एवं निर्जीव शरीर को उस भग्न कूप में पटक दिया। इसके बाद वह मालुका कच्छ में घुस गया और निश्चल अर्थात् गमनागमनरहित, निस्पन्द–हाथों-पैरों को भी न हिलाता हुआ, और मौन रहकर दिन समाप्त होने की राह देखने लगा।

तए णं से पंथए दासचेडे तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देवदिन्नदारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ। करित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे, जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी–'एवं खलु सामी! भद्दा सत्थवाही देवदिन्नं दारयं ण्हायं जाव मम हत्थंसि दलयइ। तए णं अहं देवदिन्नं दारयं कडीए गिण्हामि। गिण्हित्ता जाव मग्गणगवेसणं करेमि, तं न णज्जइ णं सामी! देवदिन्ने दारए केणइ हए वा अवहिए वा अवखित्ते वा पायवडिए धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेइ।

तत्पश्चात् वह पंथक नामक दासचेटक थोड़ी देर बाद जहाँ बालक देवदत्त को बिठलाया था, वहाँ पहुँचा। पहुँचने पर उसने देवदत्त बालक को उस स्थान पर न देखा। वह रोता, चिल्लाता और विलाप करता हुआ सब जगह उसकी ढूँढ़–खोज करने लगा। मगर कहीं भी उसे बालक देवदत्त की खबर न लगी, छींक वगैरह का शब्द न सुनाई दिया, न पता चला। तब वह जहाँ अपना घर था और जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ पहुंचा। पहुँच कर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहने लगा–'स्वामिन्! इस प्रकार भद्रा सार्थवाही ने स्नान किये हुए बालक देवदत्त को यावत् मेरे हाथ में दिया। तत्पश्चात् मैंने बालक देवदत्त को कमर में ले लिया। लेकर (बाहर ले गया, एक जगह बिठलाया। थोड़ी देर बाद वह दिखाई न दिया) यावत् सब जगह उसकी ढूँढ़–खोज की, परन्तु नहीं मालूम स्वामिन्! कि देवदत्त बालक को कोई मित्रादि अपने घर ले गया है, चोर ने अपहरण कर लिया है अथवा किसी ने ललचा लिया है?, इस प्रकार धन्य सार्थवाह के पैरों में पड़कर उसने अर्थ निवेदन किया।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंथयदासचेडगस्स एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म



तेण य महया पुत्तसोएणाभिभूए समाणे परसुणियत्ते चंपगपायवे धसत्ति धरणीयलंसि सव्वंगेहिं सन्निवडिए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह पंथक दासचेटक की यह बात सुन कर और हृदय में धारण करके महान् पुत्रशोक से व्याकुल होकर, कुल्हाड़े से काटे हुए चम्पक वृक्ष की तरह धडाम से पृथ्वी पर सब अंगो से गिर पड़ा-मूर्छित हो गया।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे तओ मुहुत्तंतरस्स आसत्थे पच्छागयपाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ। देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता महत्थं पाहुडं गेण्हइ। गेण्हित्ता जेणेव नगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणेइत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! मम पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए देवदिन्ने नाम दारए इट्ठे जाव उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण पासणयाए?

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह थोडी देर बाद आश्वस्त हुआ-होश में आया, उसके प्राण मानों वापिस लौटे, उसने देवदत्त बालक की सब ओर ढूंढ-खोज की, मगर कहीं भी देवदत्त बालक का पता न चला, छींक आदि का शब्द भी न सुन पड़ा और न समाचार मिला। तब वह अपने घर पर आया। आकर बहुमूल्य भेंट ली और जहाँ नगररक्षक-कोतवाल थे, वहाँ पहुँच कर वह बहुमूल्य भेंट सामने रक्खी और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! मेरा पुत्र और भद्रा भार्या का आत्मज देवदत्त नामक बालक हमे इष्ट है, यावत् गूलर के फूल के समान उसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन का तो कहना ही क्या है!

तए णं सा भद्दा देवदिन्नं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पंथगस्स हत्थे दलयइ, जाव पायवडिए तं मम निवेदेइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! देवदिन्नदारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं कयं (करित्तए-करेह)।

तत्पश्चात् भद्रा ने देवदत्त को स्नान करा कर और समस्त अलंकारों से विभूषित करके पथक के हाथ में सौंप दिया। यावत् पथक ने मेरे पैरों में गिर

कर मुझ से निवेदन किया। (यहाँ पिछला सब वृत्तान्त कह लेना चाहिए)। तो हे देवानुप्रियो ! मैं चाहता हूं कि आप देवदत्त बालक की सब जगह मार्गणा-गवेषणा करें।

तए णं ते नगरगोत्तिया धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा सन्नद्धबद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणवट्टिया जाव गहियाउह-पहरणा धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं रायगिहस्स नगरस्स बहूणि अइगम-णाणि य जाव पवासु य मग्गणगवेसणं करेमाणा रायगिहाओ नय-राओ पडिणिक्खमंति। पडिणिक्खमित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्ग-कूवए तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति। पासित्ता हा हा अहो अकज्ज-मिति कट्टु देवदिन्नं दारयं भग्गकूवाओ उत्तारेंति। उत्तारित्ता धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थे णं दलयंति।

तत्पश्चात् उन नगररक्षकों ने धन्य सार्थवाह के ऐसा कहने पर कवच (बख्तर) तैयार किया, उसे कसों से बाँधा और शरीर पर धारण किया। धनुष रूपी पट्टिका पर प्रत्यंचा चढ़ाई अथवा भुजाओं पर चमड़े का पट्टा बाँधा। आयुध (शस्त्र) और प्रहरण (तीर आदि) ग्रहण किये। फिर धन्य सार्थवाह के साथ राजगृह नगर के बहुत-से निकलने के मार्गों यावत् प्याऊ आदि में ढूंढ-खोज करते हुए राजगृह नगर से बाहर निकले। निकल कर जहाँ जीर्ण उद्यान था और जहाँ भग्न कूप था, वहाँ आये। आकर उस कूप में निष्प्राण, निश्चेष्ट एवं निर्जीव देवदत्त का शरीर देखा, देख कर 'हा, हा, अहो अकार्य !' इस प्रकार कह कर उन्होंने देवदत्त कुमार को उस भग्न कूप से बाहर निकाला और धन्य सार्थवाह के हाथ में सौंप दिया।

तए णं ते नगरगुत्तिया विजयस्स तक्करस्स पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता विजयं तक्करं ससक्खं सहोडं सगेवेज्जं जीवग्गाहं गिण्हंति। गिण्हित्ता अट्ठिमुट्ठिजाणुकोप्परपहारसंभग्गमहिय-गत्तं करेन्ति। करित्ता अवउडाबंधणं करेन्ति। करित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणं गेण्हंति। गेण्हित्ता विजयस्स तक्करस्स गीवाए बंधंति, बंधित्ता मालुयाकच्छयाओ पडिनिक्खमंति। पडिणिक्खमित्ता



जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता रायगिहं नगरं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता रायगिहे नगरे सिंघाडगतिय-चउक्कचच्चरमहापहपहेसु कसप्पहारे य लयप्पहारे य छिवापहारे य निवाएमाणा निवाएमाणा छारं च धूलिं च कयवरं च उवरिं पक्किर-माणा पक्किरमाणा महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वदंतिः—

तत्पश्चात् वे नगररक्षक विजय चोर के पैरों के निशानो का अनुसरण करते हुए मालुकाकच्छ में पहुँचे। उसके भीतर प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर विजय चोर को पंचों की साक्षी पूर्वक, चोरी के माल के साथ, गर्दन में बाँधा और जीवित पकड़ लिया। फिर अस्थि (हड्डी की लकड़ी) मुष्टि, घुटनों और कोहनियो के प्रहार करके उसके शरीर को भग्न और मथित कर दिया—ऐसी मार मारी कि उसका सारा शरीर ढीला पड़ गया। उसकी गर्दन और दोनो हाथ पीठ की तरफ बाँध दिये। फिर बालक देवदत्त के आभरण कब्जे में किये। तत्पश्चात् विजय चोर को गर्दन से बाँधा और मालुकाकच्छ से बाहर निकले। निकल कर जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आये। वहाँ आकर राजगृह नगर में प्रविष्ट हुए और नगर के त्रिक चतुष्क, चत्वर एवं महापथ आदि मार्गों में कोड़ों के प्रहार, छड़ियों के प्रहार, छिवा (कंबा) के प्रहार करते—करते और उसके ऊपर राख, धूल और कचरा डालते हुए तेज आवाज से घोषणा करते हुए इस प्रकार बोलेः—

'एस णं देवाणुप्पिया! विजए नामं तक्करे जाव गिद्धे विव आमिसभक्खी बालघायए, बालमारए, तं नो खलु देवाणुप्पिया! एयस्स केइ राया वा रायपुत्ते वा रायमच्चे वा अवरज्झइ, एत्थट्ठे अप्पणो सयाइं कम्माइं अवरज्झंति' त्ति कट्टु जेणामेव चारगसाला तेणामेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता हडिबंधणं करेन्ति, करित्ता भत्तपाणनिरोहं करेन्ति, करित्ता तिसंझं कसप्पहारे य जाव निवाए-माणा निवाएमाणा विहरंति।

'हे देवानुप्रियो! (लोको!) यह विजय नामक चोर यावत् गीध के समान मांसभक्षी, बालघातक और बालक का हत्यारा है। हे देवानुप्रियो! कोई राजा, राजपुत्र अथवा राजा का अमात्य इसके लिए अपराधी नहीं है—कोई निष्कारण ही इसे दंड नहीं दे रहा है। इस विषय में इसके अपने किये कार्य ही अपराधी हैं।' इस प्रकार कह कर जहाँ चारकशाला (कारागार) थी, वहाँ

पहुंचे वहाँ पहुँच कर उसे बेड़ियो से जकड़ दिया । भोजन-पानी बंद कर दिया। और तीनो संध्याकालों में-प्रातः, मध्याह्न और सूर्यास्त के समय, चाबुक आदि के प्रहार करते हुए विचरने लगे ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरियणेणं सद्धिं रोयमाणे जाव कंदमाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरस्स महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं निहरणं करेंति। करित्ता बहूइं लोइयाइं मयग०-किच्चाइं करेंति, करित्ता केणइ कालंतरेणं अवगयसोए जाए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिवार के साथ रोते-रोते यावत् विलाप करते-करते बालक देवदत्त के शरीर का महान् ऋद्धि-सत्कार के समूह के साथ नीहरण किया, अर्थात् अग्नि-संस्कार के लिए श्मशान मे ले गया। तत्पश्चात् अनेक लौकिक मृतककृत्य किये। मृतक-कृत्य करके कुछ समय के अनन्तर वह उस शोक से रहित हो गया।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे अन्नया कयाइं लहुसयंसि रायावरहंसि संपलत्ते जाए यावि होत्था। तए णं ते नगरगुत्तिया धण्णं सत्थवाहं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चारगे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता चारगं अणुपवेसंति, अणुपवेसित्ता विजएणं तक्करेणं सद्धिं एगयओ हडिबंधणं करेंति ।

तत्पश्चात् किसी समय धन्य सार्थवाह को चुगलखोरो ने छोटा-सा राज-कीय अपराध लगा दिया। तब नगररक्षको ने धन्य सार्थवाह को गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार करके जहाँ कारागार था, वहाँ ले गये। ले जा कर कारागार में प्रवेश किया और प्रवेश करके विजय चोर के साथ एक ही बेड़ी में बाँध दिया।

तए णं सा भद्दा भारिया कल्लं जाव जलंते विपुलं असणपाण-खाइमसाइमं उवक्खडेइ, उवक्खडित्ता भोयणपिंडए करेइ, करित्ता भायणाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता । लंछियमुद्दियं करेइ। करित्ता एगं च सुरभिवारिपडिपुण्णं दगवारयं करेइ। करित्ता पंथयं दासचेडं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं विपुलं असणपाणखाइमसाइमं गहाय चारगसालाए धन्नस्स सत्थवाहस्स उवणेहि।'

तत्पश्चात् भद्रा भार्या ने दूसरे दिन यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार किया। भोजन तैयार करके भोजन रखने का पिटक (बांस की छाबड़ी) ठीकठाक किया और उसमे भोजन के पात्र रख दिये। फिर उस पिटक को लांछित और मुद्रित कर दिया, अर्थात् उस पर रेखा आदि के चिह्न बना दिये और मोहर लगा दी। सुगंधित जल से परिपूर्ण छोटा-सा घड़ा तैयार किया। फिर पथक दासचेटक को आवाज दी और कहा—हे देवानुप्रिय ! तू जा। यह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम लेकर कारागार मे धन्य सार्थवाह के पास लेजा।

तए णं से पंथए भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे तं भोयणपिंडयं तं च सुरभिवरवारिपडिपुण्णं दगवारयं गेण्हइ। गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता रायगिहे नगरे मज्झंमज्झेणं जेणेव चारगसाला, जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता भोयणपिंडयं ठावेइ, ठावेत्ता उल्लंछइ, उल्लंछित्ता भायणाइं गेण्हइ। गेण्हित्ता भायणाइं धोवेइ, धोवित्ता हत्थसोयं दलयइ, दलइत्ता धण्णं सत्थवाहं तेणं विपुलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं परिवेसइ।

तत्पश्चात् पंथक ने भद्रा सार्थवाही के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर उस भोजन-पिटक को और उत्तम सुगंधित जल से परिपूर्ण घट को ग्रहण किया। ग्रहण करके अपने घर से निकला। निकल कर राजगृह के मध्यभाग मे होकर जहाँ कारागार था और जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर भोजन का पिटक रख दिया। उसे लांछन और मुद्रा से रहित किया, अर्थात् उस पर बना हुआ चिह्न हटाया और मोहर हटा दी। फिर भोजन के पात्र लिये, उन्हे धोया और फिर हाथ धोने का पानी दिया। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन परोसा।

तए णं से विजए तक्करे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'तुमं णं देवाणुप्पिया ! मम एयाओ विपुलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागं करेहि।'

तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी—'अवियाइं अहं विजया ! एयं विपुलं असणपाणखाइमसाइमं कायाणं वा सुणगाणं

वा दलएज्जा, उक्कुरुडियाए वा णं छड्डेज्जा, नो चेव णं तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडिणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विपुलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागं करेज्जामि।'

उस समय विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिय! तुम मुझे इस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन में से संविभाग करो—हिस्सा दो।'

तब धन्य सार्थवाह ने विजय चोर से इस प्रकार कहा—हे विजय! भले ही मैं यह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम काकों और कुत्तों को दे दूंगा अथवा उकरड़े में फैंक दूंगा, परन्तु तुझ पुत्रघातक, पुत्रहन्ता शत्रु, वैरी (सानुबन्ध वैर वाले), प्रतिकूल आचरण करने वाले एवं प्रत्यमित्र-प्रत्येक बात में विरोधी-को इस अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य में से संविभाग नहीं करूँगा।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे तं विउलं असणपाणखाइमसाइमं आहारेइ। आहारित्ता तं पंथयं पडिविसज्जेइ। तए णं से पंथए दासचेडे तं भोयणपिडगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

इसके बाद धन्य सार्थवाह ने उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आहार किया। आहार करके पंथक को लौटा दिया। पंथक दासचेट ने भोजन का वह पिटक लिया और लेकर जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स तं विपुलं असणपाणखाइमसाइमं आहारियस्स समाणस्स उच्चारपासवणेणं उव्वाहित्था।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी—एहि ताव विजया! एगंतमवक्कमामो, जेण अहं उच्चारपासवणं परिट्ठवेमि।

तए णं से विजए तक्करे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—तुब्भं देवाणुप्पिया! विपुलं असणपाणखाइमसाइमं आहारियस्स अत्थि उच्चारे वा पासवणे वा, मम ण देवाणुप्पिया! इमेहिं बहूहिं कसप्पहारेहिं य जाव लयापहारेहि य तण्हाए य छुहाए य परब्भवमाणस्स णत्थि केइ

उच्चारे वा पासवणे वा, तं छंदेणं तुमं देवाणुप्पिया ! एगंते अवक्कमित्ता उच्चारपासवणं परिट्ठवेहि ।

तत्पश्चात् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन किये हुए धन्य सार्थवाह को मल-मूत्र की बाधा उत्पन्न हुई। तब धन्य सार्थवाह ने विजय चोर से कहा—विजय, चलो, एकान्त में चलें; जिससे मैं मल-मूत्र का त्याग कर सकूँ।

तब विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—देवानुप्रिय ! तुमने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया है, अतएव तुम्हे मल और मूत्र की बाधा उत्पन्न हुई है। देवानुप्रिय ! मैं तो इन बहुत चाबुकों के प्रहारों से, यावत् लता के प्रहारों से तथा प्यास और भूख से पीडित हो रहा हूँ। मुझे मल-मूत्र की बाधा नहीं है। देवानुप्रिय ! जाने की इच्छा हो तो तुम्हीं एकान्त में जाकर मल-मूत्र का त्याग करो।

तए णं धण्णे सत्थवाहे विजएणं तक्करेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं से धण्णे सत्थवाहे मुहुत्तंतरस्स बलियतरागं उच्चारपासवणेणं उव्वाहिज्जमाणे विजयं तक्करं एवं वयासी—एहि ताव विजया ! जाव अवक्कमामो ।

तए णं से विजए धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'जइ णं तुमं देवाणुप्पिया ! तओ विपुलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागं करेहि, ततो हं तुम्हेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमामि ।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह विजय चोर के इस प्रकार कहने पर मौन रह गया। इसके बाद, थोड़ी देर में धन्य सार्थवाह उच्चार-प्रश्रवण की बाधा से अत्यन्त पीड़ित होता हुआ विजय चोर से बोला—'विजय, चलो, यावत् एकान्त में चलें ।

तब विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—'देवानुप्रिय ! यदि तुम उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से संविभाग करो तो मैं तुम्हारे साथ एकान्त में चलूँ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं एवं वयासी—'अहं णं तुब्भं तओ विउलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागं करिस्सामि ।'

तए णं से विजए धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ । तए णं से विजए धण्णेणं सद्धिं एगंते अवक्कमेइ, उच्चारपासवणं परिट्ठवेइ, आयंते चोक्खे परमसुइभूए तमेव ठाणं उवसंकमित्ता णं विहरइ ।

-तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने विजय से कहा-मैं तुम्हे उस विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम में से संविभाग करूँगा-हिस्सा दूंगा ।

तत्पश्चात् विजय ने धन्य सार्थवाह के इस अर्थ को स्वीकार किया । फिर विजय, धन्य सार्थवाह के साथ एकान्त में गया । धन्य सार्थवाह ने मल-मूत्र का परित्याग किया । फिर जल से चोखा और परम पवित्र होकर उसी स्थान पर आकर ठहरे ।

तए णं सा भद्दा कल्लं जाव जलंते विउलं असणपाणखाइम-साइमं जाव परिवेसेइ । तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयस्स तक्करस्स तओ विउलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागं करेइ । तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंथयं दासचेडं विसज्जेइ ।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने दूसरे दिन सूर्य के देदीप्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करके पंथक के साथ भेजा । यावत् पंथक ने धन्य को परोसा । तब धन्य सार्थवाह ने विजय चोर को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से भाग दिया । फिर धन्य सार्थवाह ने पंथक दास चेटक को रवाना कर दिया ।

तए णं से पंथए भोयणपिडयं गहाय चारगाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गेहे, जेणेव भद्दा भारिया, तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता भद्दं सत्थवाहिणिं एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिए ! धण्णे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स ताओ विउलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संवि-भागं करेइ ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही पंथयस्स दासचेडयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरत्ता रुट्ठा जाव मिसिमिसेमाणा धण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ ।

तदनन्तर वह पंथक भोजन-पिटक लेकर कारागार से बाहर निकला। निकल कर राजगृह नगर के बीचोबीच हो कर जहाँ अपना घर था और जहाँ भद्रा भार्या थी, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुंच कर उसने भद्रा सार्थवाही से कहा– 'देवानुप्रिये! धन्य सार्थवाह ने तुम्हारे पुत्र के घातक यावत् प्रत्यमित्र को उस विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम में से हिस्सा दिया है।

तब भद्रा सार्थवाही दासचेटक पंथक के पास से यह अर्थ सुन कर तत्काल लाल हो गई, रुष्ट हुई, यावत् मिसमिसाती हुई धन्य सार्थवाह पर प्रद्वेष करने लगी।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे अन्नया कयाइं मित्तनाइनियगसयण-संबंधिपरिजणेणं सएण य अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पाणं मोयावेइ। मोयावित्ता चारगसालाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं करेइ। करित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अह धोयमट्टियं गेण्हइ। गेण्हित्ता पोक्खरिणिं ओगाहइ। ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ। करित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे जाव रायगिहं नगरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता रायगिहनगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को किसी समय मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिवार के लोगों ने अपने (धन्य सार्थवाह के) सारभूत अर्थ से, राजदंड से मुक्त कराया। मुक्त होकर वह कारागार से बाहर निकला। निकल कर जहाँ अलंकारिकसभा (हजामत बनवाना, नाखून कटवाना आदि शरीर-शृङ्गार करने की नाई की दुकान) थी, वहाँ पहुंचा। पहुंच कर अलंकारिक-कर्म किया। फिर जहां पुष्करिणी थी, वहाँ आया। आकर नीचे की धोने की मिट्टी ली और पुष्करिणी में अवगाहन किया, जल में मज्जन किया, स्नान किया, बलिकर्म किया, यावत् राजगृह नगर में प्रवेश किया। राजगृह नगर के मध्य में होकर जहां अपना घर था, वहां जाने के लिए रवाना हुआ।

तए णं धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नगरे बहवे नियगसेट्ठिसत्थवाहपभइओ आढंति परिजाणंति सक्कारेंति, सम्माणेंति अब्भुट्ठेंति, सरीरकुसलं पुच्छंति।

तए णं से धण्णे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता जावि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तंजहा दासाइ वा, पेस्साइ वा, भियगाइ वा, भाइल्लगाइ वा, से वि य णं धण्णं सत्थवाहं एज्जंतं पासइ, पासित्ता पायवडियाए खेमकुसलं पुच्छंति।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को आता देख कर राजगृह नगर में बहुत-से आत्मीय श्रेष्ठी सार्थवाह आदि ने आदर किया, सन्मान से बुलाया, वस्त्र आदि से सत्कार किया, नमस्कार आदि करके सन्मान किया, खड़े होकर मान किया और शरीर की कुशल पूछी।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह अपने घर पहुंचा। वहां जो बाहर की सभा थी, जैसे-दास (दासीपुत्र), प्रेष्य (काम-काज के लिए बाहर भेजे जाने वाले नौकर), भृतक (जिनका बाल्यावस्था से पालन-पोषण किया हो) और व्यापार के हिस्सेदार। उन्होंने भी धन्य साथवाह को आता देखा। देख कर पैरों में गिर कर क्षेम-कुशल की पृच्छा की।

जावि य से तत्थ अब्भंतरिया परिसा भवइ, तंजहा—मायाइ वा, पियाइ वा, भायाइ वा, भगिणीइ वा, सावि य णं धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ। अब्भुट्ठेत्ता कंठाकंठियं अवयासिय बाहप्पमोक्खणं करेइ।

और वहाँ जो आभ्यन्तर सभा थी, जैसे कि-माता, पिता, भाई, बहिन आदि, उन्होंने भी धन्य सार्थवाह को आता देखा। देखकर वे आसन से उठ खड़े हुए उठकर गले से गला मिलाकर हर्ष के आँसू बहाये।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ। तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता णो आढाइ, नो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया परम्मुही संचिट्ठइ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी—किं णं तुब्भं देवाणुप्पिए! न तुट्ठी वा, न हरिसे वा, नाणंदे वा? जं मए सएणं अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पाणं विमोइए?

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह भद्रा भार्या के पास पहुँचा। तब भद्रा सार्थवाही ने धन्य सार्थवाह को आता देखा। देख कर उसने न आदर किया, न मानो जाना। न आदर करती हुई और न जानती हुई वह मौन रह कर और पीठ फेर कर (विमुख होकर) बैठी रही।

तब धन्य सार्थवाह ने भद्रा भार्या से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये! मेरे आने से तुम्हे सन्तोष क्यों नही है? हर्ष क्यों नहीं है? आनन्द क्यो नहीं है? मैंने अपने सारभूत अर्थ से राजकार्य (राजदंड) से अपने आपको छुड़ाया है।

तए णं सा भद्दा धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'कहं णं देवाणुप्पिया! मम तुट्ठी वा जाव आणंदे वा भविस्सइ, जेण तुमं मम पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स तओ विपुलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागं करेसि?

तत्पश्चात् भद्रा ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! मुझे क्यों सन्तोष यावत् आनन्द होगा, जब कि तुमने मेरे पुत्र के घातक यावत् प्रत्यमित्र (विजय चोर) को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन में से संविभाग किया?

तए णं से धण्णे भद्दं एवं वयासी—'नो खलु देवाणुप्पिए! धम्मो त्ति वा, तवो त्ति वा, कयपडिकइया वा, लोगजत्ता इ वा, नायए ति वा, घाडिए ति वा, सहाए ति वा, सुहि त्ति वा, तओ विपुलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागे कए, नन्नत्थ सरीरचिन्ताए।

तए णं सा भद्दा धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, कंठाकंठिं अवयासेइ, खेमकुसलं पुच्छइ, पुच्छित्ता ण्हाया जाव पायच्छित्ता विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

तब धन्य सार्थवाह ने भद्रा से कहा—देवानुप्रिये! धर्म समझ कर, तप समझ कर, किये उपकार का बदला समझ कर, लोकयात्रा—लोकदिखावा—समझ कर, न्याय समझ कर या नायक समझ कर, सहचर समझ कर, सहायक समझ कर अथवा सुहृद् (मित्र) समझ कर मैंने उस विपुल अशन, पान, खादिम

और स्वादिम में से संविभाग नहीं किया है। सिवाय शरीर चिन्ता (मल-मूत्र बाधा) के और किसी प्रयोजन से संविभाग नहीं किया।

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर भद्रा हृष्ट-तुष्ट हुई, यावत् आ से उठी, कंठ से मिलाया और क्षेम-कुशल पूछी फिर स्नान किया, यावत् प्र श्चित्त (तिलक आदि) किया और पाँचो इन्द्रियो के विपुल भोग भोगती हुई र लगी।

तए णं से विजए तक्करे चारगसालाए तेहिं बंधेहिं वहेहिं कसप्प हारेहि य जाव तण्हाए य छुहाए य परब्भवमाणे कालमासे का किच्चा नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ने। से णं तत्थ नेरइए जाए का कालोभासे जाव वेयणं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।

से णं तओ उव्वट्टित्ता अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ।

तत्पश्चात् विजय चोर कारागार में बन्ध, वध, चाबुकों के प्रहार, या प्यास और भूख से पीड़ित होता हुआ, मृत्यु के अवसर पर काल करके ना रूप से नरक में उत्पन्न हुआ। नरक में उत्पन्न हुआ वह काला और अति काला दीखता था, यावत् वेदना का अनुभव कर रहा था।

वह नरक से निकल कर अनादि, अनन्त दीर्घ मार्ग या दीर्घ काल व चतुर्गति रूप संसार-कान्तार में पर्यटन करेगा।

एवामेव जंबू! जे णं अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरि उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्व समाणे विपुलमणिमुत्तियधणकणगरयणसारे णं लुब्भइ से वि एवं चेव।

श्रीसुधर्मा स्वामी उपसंहार करते हुए जम्बू स्वामी से कहते हैं—हे जम्ब इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी आचार्य या उपाध्याय के पास मुण्डि होकर, गृहत्याग कर साधुत्व की दीक्षा अंगीकार करके विपुल मणि मौक्ति धन कनक और रत्नो के सार में लुब्ध होता है, वह भी ऐसा ही होता है—उस दशा भी विजय चोर जैसी होती है।

ते णं काले णं ते णं समए णं धम्मघोसा नामं थेरा भगवं

जाइसंपन्ना कुलसंपन्ना जाव पुव्वानुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव राय-गिहे नगरे, जेणेव गुणसिलए चेइए जाव अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिणिहत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ।

उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविर भगवंत जाति से सम्पन्न यावत् अनुक्रम से चलते हुए जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चैत्य था, वहाँ आये। यावत् यथायोग्य उपाश्रय की याचना करके संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे–रहे। उनका आगमन जानकर परिषद् निकली। धर्मघोष स्थविर ने धर्मदेशना की।

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–'एवं खलु भगवंतो जाइसंपन्ना इहमागया, इहं संपत्ता, तं इच्छामि णं थेरे भग-वंते वंदामि, नमंसामि।'

ण्हाए जाव सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए पायविहार-चारेणं जेणेव गुणसिले चेइए, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ। तए णं थेरा धण्णस्स विचित्तं धम्म-माइक्खंति।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को बहुत लोगों से यह अर्थ (वृत्तान्त) सुन कर और समझ कर इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ–'उत्तम जाति से सम्पन्न स्थविर भगवान् यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं। तो मैं चाहता हूँ कि स्थविर भगवान् को वंदना करूँ, नमस्कार करूँ।'

इस प्रकार विचार कर धन्य ने स्नान किया, यावत् शुद्ध–साफ बहुमूल्य, अल्प, मांगलिक वस्त्र धारण किये। फिर पैदल चल कर जहाँ गुणशील चैत्य था और जहाँ स्थविर भगवान् थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर उन्हें वन्दना की, नमस्कार किया। तत्पश्चात् स्थविर भगवान् ने धन्य सार्थवाह को विचित्र धर्म का उपदेश दिया, अर्थात् ऐसे धर्म का उपदेश दिया जो जिनशासन के सिवाय अन्य सुलभ नहीं है।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा एवं वयासी–'सद्दहामि णं

भंते ! निग्गंथे पावयणे' जाव पव्वइए । जाव बहूणि वासाणि सामण्ण-परियागं पाउणित्ता, भत्तं पच्चक्खाइत्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने ।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता । तत्थ णं धण्णस्स देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता ।

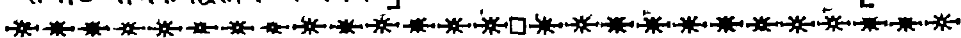
से णं धण्णे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिहिइ ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह धर्मोपदेश सुन कर यावत् बोला—'भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं ।' यावत् वह प्रव्रजित हो गया । यावत् बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय पाल कर, भोजन का प्रत्याख्यान करके एक मास की सलेखना से, अनशन से साठ भक्तों को छेद कर, कालमास में काल करके सौधर्म देवलोक में देव के रूप में उत्पन्न हुआ ।

सौधर्म देवलोक में किन्हीं-किन्हीं देवों की चार पल्योपम की स्थिति कही है । धन्य नामक देव की भी चार पल्योपम की स्थिति कही है ।

वह धन्य नामक देव आयु के दलिकों का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का क्षय करके तथा भव (देवभव के कारण गति आदि कर्मों) का क्षय करके अनन्तर ही देह का त्याग करके महाविदेह क्षेत्र में (मनुष्य होकर) सिद्धि प्राप्त करेगा यावत सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

जहा णं जंबू ! धण्णेणं सत्थवाहेणं नो धम्मो त्ति वा जाव विजयस्स तक्करस्स तओ विपुलाओ असणपाणखाइमसाइमाओ संविभागे कए नन्नत्थ सरीरसारक्खणट्ठाए, एवामेव जंबू ! जे णं अम्हं निग्गंथे वा निग्गंथी वा जाव पव्वइए समाणे ववगयण्हाणुम्मद्दणपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसे इमस्स ओरालियसरीरस्स नो वण्णहेउं वा, रूवहेउं वा, विसयहेउं वा असणपाणखाइमसाइमं आहारमाहारेइ, नन्नत्थ णाण-दंसणचरित्ताणं वहणयाए । से णं इह लोए चेव बहूणं समणाणं सम-



णीणं सावगाण य साविगाण य अच्चणिज्जे जाव पज्जुवासणिज्जे भवइ। परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कन्नच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पाडणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ। अणाईयं च णं अणवदग्गं दीहं जाव वीइवइस्सइ, जहा से धण्णे सत्थवाहे।

श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा–हे जम्बू ! जैसे धन्य सार्थवाह ने 'धर्म है' ऐसा समझ कर यावत् विजय चोर को उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में से सविभाग नहीं किया था, सिवाय शरीर की रक्षा करने के, अर्थात् धन्य सार्थवाह ने केवल शरीररक्षा के लिए ही विजय को अपने आहार में से हिस्सा दिया था, धर्म या उपकार आदि समझ कर नहीं इसी प्रकार हे जम्बू ! हमारा जो साधु या साध्वी यावत् प्रव्रजित होकर स्नान, उप-मर्दन, पुष्प, गंध, माला, अलंकार आदि शृङ्गार का त्याग करके अशन पान खादिम और स्वादिम आहार करता है सो इस औदारिक शरीर के वर्ण के लिए, रूप के लिए या विषय–सुख के लिए नहीं करता। सिवाय ज्ञान, दर्शन और चारित्र को वहन करने के उसका अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता। वह साधुओं साध्वियों श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा इस लोक में अर्चनीय यावत् उपासनीय होता है। परलोक में भी वह हस्तछेदन (हाथों का काटा जाना), कर्णछेदन और नासिकाछेदन को तथा इसी प्रकार हृदय के उत्पाटन एवं वृषणों (अंडकोषों) के उत्पाटन और उद्बंधन (ऊँचा बाँध कर लटकाना) आदि कष्टों को प्राप्त नहीं करेगा। वह अनादि अनन्त दीर्घमार्ग वाले संसार को यावत् पार करेगा, जैसे धन्य सार्थवाह ने किया।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव दोच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

इस प्रकार हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है।

सारांश

इस दृष्टान्त की योजना इस प्रकार की गई है—उदाहरण में जो राजगृह नगर कहा है, उसके स्थान पर मनुष्यक्षेत्र समझना चाहिए। धन्य सार्थवाह साधु का प्रतीक है। विजय चोर के समान साधु का शरीर है। पुत्र देवदत्त के

स्थान पर अनन्त अनुपम आनन्द का कारणभूत संयम समझना चाहिए। जैसे पंथक के प्रमाद से देवदत्त का घात हुआ, उसी प्रकार शरीर की प्रमाद रूप अशुभ प्रवृत्ति से संयम का घात होता है। देवदत्त के आभूषणों के स्थान पर इन्द्रियविषय समझना चाहिए। इन विषयों के प्रलोभन में पड़ा हुआ शरीर संयम का घात कर डालता है। हडिबंधन के समान जीव और शरीर का अभिन्न रूप से रहना समझना चाहिए। राजा के स्थान पर कर्मफल जानना चाहिए। कर्म की प्रकृतियाँ राजपुरुषों के समान हैं। अल्प अपराध के स्थान पर मनुष्यायु के बंध के हेतु समझने चाहिए। उच्चार-प्रस्रवण की जगह प्रत्युपेक्षण आदि क्रियाएँ समझना चाहिए अर्थात् जैसे आहार न देने से विजय चोर उच्चार-प्रस्रवण के लिए प्रवृत्त न हुआ, उसी प्रकार शरीर भी आहार के बिना प्रत्युपेक्षण आदि क्रियाओं में प्रवृत्त नहीं होता। पंथक के स्थान पर मुग्ध साधु समझना चाहिए। भद्रा सार्थवाही को आचार्य के स्थान पर जानना चाहिए। किसी मुग्ध (भोले) साधु के मुख से जब आचार्य किसी साधु का अशनादि से शरीर का पोषण करता सुनता है, तब वह उस साधु को उपालंभ देता है। जब वह साधु बतलाता है कि मैंने विषयभोग आदि के लिए शरीर का पोषण नहीं किया, परन्तु ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना के लिए शरीर को आहार दिया है, तब गुरु को संतोष हो जाता है। कहा भी है—

सिवसाहणेसु आहारविरहिओ जं न वट्टए देहो।
तम्हा धण्णो व्व विजयं, साहू तं तेण पोसेज्जा॥

अर्थात्-निराहार शरीर मोक्ष के कारणों-प्रतिलेखन आदि क्रियाओं-में प्रवृत्त नही होता, अतएव जैसे धन्य सार्थवाह ने विजय चोर का पोषण किया, उसी प्रकार साधु शरीर का पोषण करे।

द्वितीय अध्ययन समाप्त

तृतीय अण्डक अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं दोच्चस्स अज्झयणस्स णायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, तइअस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पएणत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता धर्म कथा के द्वितीय अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ फर्माया है तो तीसरे अध्ययन का क्या अर्थ फर्माया है ?

एवं खलु जम्बू ! ते णं काले णं ते णं समए णं चंपा नामं नयरी होत्था, वन्नओ । तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए सुभूमिभाए नामं उज्जाणे होत्था । सव्वोउय० सुरम्मे नंदण-वणे इव सुहसुरभिसीयलच्छायाए समणुबद्धे ।

श्रीसुधर्मा उत्तर देते हैं--इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी । उसका वर्णन कहना चाहिए । उस चम्पा नगरी से बाहर उत्तरपूर्व दिशा मे सुभूमिभाग नामक एक उद्यान था । वह सभी ऋतुओं के फूलो–फलो से सम्पन्न था रमणीक था । नदन–वन के समान शुभ या सुख--कारक था तथा सुगंधयुक्त और शीतल छाया से व्याप्त था ।

तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उत्तरओ एगदेसम्मि मालुया-कच्छए; वण्णओ । तत्थ णं एगा वरमऊरी दो पुट्ठे परियागए पिट्ठुंडी पंडुरे निव्वणे निरुवहए भिन्नमुट्ठिप्पमाणे मऊरीअंडए पसवइ । पसवित्ता सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संविट्ठेमाणी विहरइ ।

उस सुभूमिभाग उद्यान के उत्तर मे, एक प्रदेश मे, एक मालुकाकच्छ था, अर्थात् मालुका नामक वृक्षो का वनखण्ड था । उसका वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए । उस मालुकाकच्छ मे एक श्रेष्ठ मयूरी ने पुष्ट, पर्यायागत प्रसवकाल के

अनुक्रम से प्राप्त, चावलों के पिंड के समान श्वेत वर्ण वाले, व्रण अर्थात् छिद्र या घाव से रहित, वायु आदि के उपद्रव से रहित तथा पोली मुट्ठी के बराबर दो मयूरी-के अंडों का प्रसव किया। प्रसव करके वह अपने पांखों की वायु से उनकी रक्षा करती, उनका संगोपन-सारसंभाल करती और संवेष्टन-पोषण करती हुई रहती थी।

तत्थ णं चंपाए नयरीए दुवे सत्थवाहदारगा परिवसंति; तंजहा—जिणदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया सहदारदरिसी अन्नमन्नमणुरत्तया अन्नमन्नमणुव्वयया अन्नमण्णच्छंदाणुवत्तया अन्नमन्नहियइच्छियकारया अन्नमन्नेसु गिहेसु किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

उस चम्पा नगरी में दो सार्थवाह पुत्र निवास करते थे। वे इस प्रकार—जिनदत्त का पुत्र और सागरदत्त का पुत्र। वे दोनो साथ ही जन्मे थे, साथ ही बड़े हुए थे, साथ ही धूल में खेले थे, साथ ही विवाहित हुए थे अथवा एक साथ रहते हुए एक-दूसरे के द्वार को देखने वाले थे-साथ-साथ घर में प्रवेश करते थे। दोनों का परस्पर अनुराग था। एक दूसरे का अनुसरण करता था, एक दूसरे की इच्छा के अनुकूल चलता था। दोनों एक दूसरे के हृदय का इच्छित कार्य करते थे और एक दूसरे के घरों में नित्यकृत्य और नैमेत्तिक कार्य करते हुए रहते थे।

तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अन्नया कयाई एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सन्निसन्नाणं सन्निविट्ठाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'जण्णं देवाणुप्पिया! अम्हं सुहं वा दुक्खं वा पव्वज्जा वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ, तएणं अम्हेहिं एगयओ समेच्चा णित्थरियव्वं।' ति कट्टु अन्नमन्नमेयारूवं संगारं पडिसुणेन्ति। पडिसुणेत्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र किसी समय इकट्ठे हुए, एक के घर में आये और एक साथ बैठे थे। उस समय उनमे आपस में इस प्रकार वार्त्तालाप हुआ-'हे देवानुप्रिय! जो भी हमें सुख, दुःख, प्रव्रज्या अथवा विदेश-गमन प्राप्त हो, उस सब का हमें एक दूसरे के साथ ही निर्वाह करना चाहिए।' इस प्रकार कह कर दोनों ने आपस में इस प्रकार की प्रतिज्ञा अंगीकार की। प्रतिज्ञा अंगीकार करके अपने-अपने कार्य में लग गये।

तत्थ णं चंपाए नयरीए देवदत्ता नामं गणिया परिवसइ, अड्ढा जाव भत्तपाणा चउसट्ठिकलापंडिया चउसट्ठिगणियागुणोववेया अउणत्तीसं विसेसे रममाणी एक्कवीसरइगुणप्पहाणा बत्तीसपुरिसोवयारकुसला णवंगसुत्तपडिबोहिया अट्ठारसदेसीभासाविसारया सिंगारागारचारुवेसा संगयगयहसियभणियविहियविलासललियसंलावनिउणजुत्तोवयारकुसला ऊसियभया सहस्सलंभा विइन्नछत्तचामरवालवियणिया कन्नीरहप्पयाया यावि होत्था, बहूणं गणियासहस्साणं आहेवच्चं जाव विहरइ।

उस चम्पा नगरी में देवदत्ता नामक गणिका निवास करती थी। वह समृद्ध थी, यावत् बहुत भोजन पान वाली थी। चौसठ कलाओं में पंडिता थी। गणिका के चौसठ गुणों से युक्त थी। उनतीस प्रकार की विशेष क्रीड़ा से क्रीड़ा करने वाली थी। कामक्रीड़ा के इक्कीस गुणों से श्रेष्ठ थी। बत्तीस प्रकार के पुरुष के उपचार करने में कुशल थी। सोते हुए नौ अंगो (दो कान, दो नेत्र, दो नासिकापुट, जिह्वा, त्वचा, और मन) को जागृत करने वाली अर्थात् युवावस्था को प्राप्त थी। अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में निपुण थी। वह ऐसा सुन्दर वेष धारण करती थी, मानो शृङ्गाररस का स्थान हो। सुन्दर गति, उपहास, वचन, चेष्टा, विलास (नेत्रों की चेष्टा) एवं ललित संलाप (बात-चीत) करने में कुशल थी। योग्य उपचार (व्यवहार) करने में चतुर थी। उसके घर पर ध्वजा फहराती थी। एक हजार देने वाले को वह प्राप्त होती थी, अर्थात् उसका एक दिन का शुल्क एक हजार रुपया था। राजा के द्वारा उसे छत्र, चामर और बालव्यजन (विशेष प्रकार का चामर) प्रदान किया गया था। वह कर्णीरथ नामक वाहन पर आरूढ़ होकर आती जाती थी, यावत् हजार गणिकाओं का आधिपत्य करती हुई रहती थी।

तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जिमियभुत्तुत्तरागयाणं समाणाणं आयंताणं चोक्खाणं परमसुइभूयाणं सुहासणवरगयाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था-'तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! कल्लं जाव जलंते विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेत्ता तं विपुलं असणपाणखाइमसाइमं धूवपुप्फगंधवत्थं गहाय देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स

उज्जाणसिरिं 'पच्चणुभवमाणाणं विहरित्तए' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेन्ति, पडिसुणित्ता कल्लं पाउब्भूए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेन्ति, सद्दावित्ता एवं वयासी–

तत्पश्चात् वे दोनो सार्थवाह पुत्र किसी समय मध्याह्नकाल मे भोजन करने के अनन्तर, आचमन करके, हाथ-पैर धोकर-स्वच्छ होकर एवं परम पवित्र होकर सुखद आसनों पर बैठे। उस समय उन दोनो मे आपस मे इस प्रकार का बात-चीत हुई—'हे देवानुप्रिय! अपने लिए यह अच्छा होगा कि कल यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा धूप, पुष्प, गंध और वस्त्र साथ में लेकर, देवदत्ता गणिका के साथ, सुभूमिभाग नामक उद्यान में उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरें।' इस प्रकार कह कर दोनों ने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुरुषो को बुला कर इस प्रकार कहा—

गच्छह णं देवाणुप्पिया! विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडेह। उवक्खडित्ता तं विपुलं असणपाणखाइमसाइमं धूवपुप्फं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे, जेणेव णंदा पुक्खरिणी तेणामेव उवागच्छह। उवागच्छित्ता णंदापुक्खरिणीओ अदूरसामंते थूणामंडवं आहणह।' आहणित्ता आसित्तसंमज्जिओवलित्तं सुगंधं जाव कलियं करेह। करित्ता अम्हे पडिवालेमाणा चिट्ठह' जाव चिट्ठंति।

'हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करो। तैयार करके उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम को तथा धूप, पुष्प, आदि को लेकर जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान है और जहाँ नन्दा पुष्करिणी है, वहाँ जाओ। जाकर नन्दा पुष्करिणी के समीप थूणा-मण्डप (वस्त्र से आच्छादित मंडप) तैयार करो। जल सींच कर, झाड-बुहार कर, लीप कर यावत् सुगंधित श्रेष्ठ धूप जलाकर उस स्थान को सुगंधयुक्त बनाओ। यह सब करके हमारी बाट देखते रहो।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुष आदेशानुसार कार्य करके यावत् उनकी बाट देखते रहे।

तए णं सत्थवाहदारगा दोच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव लहुकरणजुत्तजोइयं समखुरवालिहाण-समलिहियतिक्ख (ग्ग) सिंगएहिं रययामयघंटसुत्तरज्जुयपवरकंचण-

खचियणत्थपग्गहोवग्गहिएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिरयणकंचणघंटियाजालपरिक्खित्तं पवरलक्खणोववेयं जुत्तमेव पवहण उवणेह।' ते वि तहेव उवणेन्ति।

तत्पश्चात् सार्थवाहपुत्रों ने दूसरी बार (दूसरे) कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा–शीघ्र ही एक समान खुर और पूंछ वाले, एक-से चित्रित, तीखे सींगों वाले, चाँदी की घंटियों वाले स्वर्णजटित सूत की डोरी की नाथ से बँधे हुए तथा नील कमल की कलंगी से युक्त श्रेष्ठ जवान बैल जिसमें जुते हों, नाना प्रकार की मणियों की रत्नों की और स्वर्ण की घंटियों के समूह से युक्त तथा श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त रथ ले आओ।' वे कौटुम्बिक पुरुष आदेशानुसार रथ उपस्थित करते हैं।

तए णं ते सत्थवाहदारगा ण्हाया जाव सरीरा पवहणं दुरूहंति। दुरूहित्ता जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहं तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहन्ति, पच्चोरुहित्ता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुपविसेन्ति।

तए णं सा देवदत्ता गणिया सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी–'संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! किमिहागमणप्पओयणं?'

तत्पश्चात् उन सार्थवाहपुत्रों ने स्नान किया, यावत् शरीर को वस्त्राभरणों से अलंकृत किया और वे रथ पर आरूढ़ हुए। रथ पर आरूढ़ होकर जहाँ देवदत्ता गणिका का घर था, वहाँ आये। आकर वाहन (रथ) से नीचे उतरे और उतर कर देवदत्ता गणिका के घर में प्रविष्ट हुए।

उस समय देवदत्ता गणिका ने सार्थवाहपुत्रों को आता देखा। देखकर वह हृष्ट-तुष्ट होकर आसन से उठी और उठ कर सात-आठ कदम सामने गई। सामने जाकर उसने सार्थवाहपुत्रों से इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो! आज्ञा दीजिए, आपके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?

तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्तं गणियं एवं वयासी 'इच्छामो णं देवाणुप्पिए! तुम्हेहिं सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरित्तए।'

तए णं सा देवदत्ता तेसिं सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता ण्हाया कयकिच्चा किं ते पवर जाव सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव समागया।

तत्पश्चात् सार्थवाहपुत्रों ने देवदत्ता गणिका से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभाग नामक उद्यान की उद्यानश्री का अनुभव करते हुए विचरना चाहते हैं।'

तत्पश्चात् देवदत्ता ने उन सार्थवाहपुत्रों की इस बात को स्वीकार किया। स्वीकार करके स्नान किया, मंगलकृत्य किया। अधिक क्या कहें? यावत् लक्ष्मी के समान श्रेष्ठ वेष धारण किया। जहाँ सार्थवाहपुत्र थे वहाँ आ गई।

तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं जाणं दुरूहंति, दुरूहित्ता चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे, जेणव नंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता णंदापोक्खरिणिं ओगाहिंति। ओगाहित्ता जलमज्जणं करेंति, जलकीडं करेंति, ण्हाया देवदत्ताए सद्धिं पच्चुत्तरंति। जेणेव थूणामंडवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थूणामंडवं अणुपविसित्ता सव्वालंकारविभूसिया आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया देवदत्ताए सद्धिं तं विपुलं असणपाणखाइमसाइमं धूवपुप्फगंधवत्थं आसाएमाणा वीसाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरंति। जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा देवदत्ताए सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र देवदत्ता गणिका के साथ यान पर आरूढ़ हुए और चम्पा नगरी के बीचोंबीच होकर जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था और जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर यान (रथ) से नीचे उतरे। उतर कर नंदा पुष्करिणी में अवगाहन किया। अवगाहन करके जलमज्जन किया, जलक्रीड़ा की, स्नान किया और फिर देवदत्त के साथ बाहर निकले। जहाँ स्थूणामंडप था वहाँ आये। आकर स्थूणामंडप में प्रवेश किया। सब अलंकारों से विभूषित हुए, आश्वस्त (स्वस्थ) हुए, विश्वस्त (विश्रान्त) हुए, श्रेष्ठ आसन पर बैठे। देवदत्ता गणिका के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा धूप, पुष्प, गंध और वस्त्र का आस्वादन करते हुए, विशेष

रूप से आस्वादन करते हुए एवं भोगते हुए विचरने लगे। भोजन के पश्चात् देवदत्ता के साथ मनुष्य संबंधी विपुल कामभोग भोगते हुए विचरने लगे।

तए णं ते सत्थवाहदारगा पुव्वावरण्हकालसमयंसि देवदत्ताए गणियाए सद्धिं थूणामंडवाओ पडिणिक्खमंति। पडिणिक्खमित्ता हत्थसंगेल्लीए सुभूमिभागे बहुसु आलिघरएसु य कयलीघरेसु य लया-घरएसु य अच्छणघरएसु य पेच्छणघरएसु य पसाहणघरएसु य मोहण घरएसु य सालघरएसु य जालघरएसु य कुसुमघरएसु य उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र दिन के पिछले पहर में देवदत्ता गणिका के साथ स्थूणामंडप से बाहर निकले। बाहर निकल कर हाथ मे हाथ डाल कर सुभूमिभाग उद्यान मे बने हुए आलि वृक्षों के गृहों में, कदलीगृहो मे, लतागृहों में, आसन (बैठने के) गृहों में, प्रेक्षणगृहो मे, मण्डन करने के गृहो में, मैथुन-गृहों में, साल वृक्षों के गृहों में, जाली वाले गृहों में, पुष्पगृहो में उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरने लगे।

तए णं ते सत्थवाहदारगा जेणेव से मालुयाकच्छए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं सा वणमऊरी ते सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ। पासित्ता भीया तत्था महया महया सद्देणं केकारवं विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी मालुयाकच्छाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता एगंसि रुक्खडालयंसि ठिच्चा ते सत्थवाहदारए मालुयाकच्छयं च अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी चिट्ठइ।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहदारक जहाँ मालुकाकच्छ था, वहाँ जाने के लिए प्रवृत्त हुए। तब उस वनमयूरी ने सार्थवाहपुत्रो को आता देखा। देख कर वह डर गई और घबरा गई। वह जोर-जोर से आवाज करके केकारव करती हुई मालुकाकच्छ से बाहर निकली। निकल कर एक वृक्ष की डाली पर स्थित होकर उन सार्थवाहपुत्रों को तथा मालुकाकच्छ को अपलक दृष्टि से देखने लगी।

तए णं ते सत्थवाहदारगा अण्णमण्णं सद्दावेन्ति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'जहा णं देवाणुप्पिया! एसा वणमऊरी अम्हे एज्जमाणा पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा पलाया महया महया सद्देणं

जाव अम्हे मालुयाकच्छयं च पेच्छमाणी पेच्छमाणी चिट्ठइ, तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं' ति कट्टु मालुयाकच्छयं अंतो अणुपविसंति। अणुपविसित्ता तत्थ णं दो पुट्ठे परियागए जाव पासित्ता अन्नमन्नं सद्दावेन्ति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् उन सार्थवाहपुत्रों ने आपस में एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! यह वनमयूरी हमें आता देखकर भयभीत हुई, स्तब्ध रह गई, त्रास को प्राप्त हुई, उद्विग्न हुई, भाग (उड़) गई और जोर-जोर की आवाज करके यावत् हम लोगो को तथा मालुकाकच्छ को पुनः पुनः देखती हुई ठहरी है, अतएव यहाँ कोई कारण होना चाहिए।' इस प्रकार कह कर वे मालुकाकच्छ के भीतर घुसे। घुस कर उन्होंने वहाँ दो पुष्ट और अनुक्रम से वृद्धि प्राप्त मयूरी-अंडे यावत् देखे, देख कर एक दूसरे को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहाः—

'सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे इमे वणमऊरीअंडए साणं जाइमंताणं कुक्कुडियाणं अंडएसु य पक्खिवित्तए। तए णं ताओ कुक्कुडियाओ ताए अंडए सए य अंडए सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणीओ संगोवेमाणीओ विहरिस्संति तए णं अम्हं एत्थं दो कीलावणगा मऊरपोयगा भविस्संति।' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सए सए दासचेडे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! इमे अंडए गहाय सयाणं जाइमंताणं कुक्कुडीणं अंडएसु पक्खिवह।' जाव ते वि पक्खिवेंति।

'हे देवानुप्रिय! वनमयूरी के इन अंडों को अपनी उत्तम जाति की मुर्गी के अंडो मे डलवा देना अपने लिए अच्छा रहेगा। ऐसा करने से अपनी जातिवन्त मुर्गियाँ इन अंडो का और अपने अण्डो को अपने पंखों की हवा से रक्षण करती और सँभालती रहेगी। तो हमारे दो क्रीड़ा करने के मयूर-बालक हो जाएँगे।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके अपने-अपने दासपुत्रों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! तुम जाओ। इन अंडों को लेकर अपनी उत्तम जाति की मुर्गियों के अंडो मे डाल (मिला) दो।' यावत् उन दासपुत्रों ने उन दोनो अडो को मुर्गियो के अडों में मिला दिया।

तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणा विहरित्ता तमेव जाणं दुरूढा समाणा जेणेव चंपानयरी जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता देवदत्ताए गिहं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता देवदत्ताए गणियाए विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति। दलइत्ता सक्कारेंति, सक्कारित्ता संमाणेंति, सम्माणित्ता देवदत्ताए गिहाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता जेणेव सयाइं सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे सार्थवाहपुत्र देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान में उद्यान की शोभा का अनुभव करते हुए विचरण करके उसी यान पर आरूढ़ होते हुए जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ देवदत्ता गणिका का घर था, वहाँ आये। आकर देवदत्ता के घर में प्रवेश किया। प्रवेश करके देवदत्ता गणिका को विपुल जीविका के योग्य प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसका सत्कार किया, सत्कार करके सन्मान किया। सन्मान करके दोनों देवदत्ता के घर से बाहर निकले। निकल कर जहाँ अपने-अपने घर थे, वहाँ आये। आकर अपने कार्य में संलग्न हो गये।

तए णं जे से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए से णं कल्लं जाव जलंते जेणेव से वणमऊरीअंडए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तंसि मऊरीअंडयंसि संकिए कंखिए विइगिच्छासमावन्ने भेयसमावन्ने कलुससमावन्ने—'किं णं ममं एत्थ कीलावणमऊरीपोयए भविस्सइ, उदाहु णो भविस्सइ?' त्ति कट्टु तं मऊरीअंडयं अभिक्खणं अभिक्खणं उव्वत्तेइ, परियत्तेइ, आसारेइ, संसारेइ, चालेइ, फंदेइ, घट्टेइ, खोभेइ, अभिक्खणं अभिक्खणं कण्णमूलंसि टिट्टियावेइ। तए णं से मऊरीअंडए अभिक्खणं अभिक्खणं उव्वत्तिज्जमाणे जाव टिट्टियावेज्जमाणे पोच्चडे जाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् उनमें जो सागरदत्त का पुत्र सार्थवाहदारक था, वह कल (दूसरे दिन), सूर्य के देदीप्यमान होने पर जहाँ वनमयूरी का अंडा था, वहाँ

हृष्ट-तुष्ट होकर मयूरपोषकों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा देवानुप्रियो! तुम मयूर के इस बच्चे को अनेक मयूर को पोषण देने योग्य पदार्थों से, अनुक्रम से सरक्षण करते हुए और संगोपन करते हुए बड़ा करो और नृत्य कला सिखलाओ।

तब उन मयूरपोषकों ने जिनदत्त के पुत्र की यह बात स्वीकार की। उस मयूर-बालक को ग्रहण किया। ग्रहण करके जहाँ अपना घर था वहाँ आये। आकर उस मर-बालक को यावत नृत्यकला सिखलाने लगे।

तए णं से मऊरपोयए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते लक्खणवंजणगुणोववेए माणुम्माणपमाणपडिपुण्ण-पक्खपेहुणकलावे विचित्तपिच्छे सयचंदए नीलकंठए नच्चणसीलए एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए अणेगाइं नट्टुल्लगसयाइं केकारव-सयाणि य करेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् मयूरी का वह बच्चा बचपन से मुक्त हुआ। उसमें विज्ञान का परिणमन हुआ। युवावस्था को प्राप्त हुआ। लक्षणों और तिल आदि व्यंजनों के गुणों से युक्त हुआ। चौड़ाई रूप मान, स्थूलता रूप उन्मान और लम्बाई रूप प्रमाण से उसके पंखों और पिच्छों का समूह परिपूर्ण हुआ। उसके पिच्छ रंग-बिरंगे हो गए। उनमें सैकड़ों चन्द्रक थे। वह नीले कंठ वाला और नृत्य करने का स्वभाव वाला हुआ। एक चुटकी बजाने से अनेक प्रकार के सैकड़ों केकारव करता हुआ विचरण करने लगा।

तए णं ते मऊरपोसगा तं मऊरपोययं उम्मुक्कबालभावं जाव करेमाणं पासित्ता, पासित्ता तं मऊरपोयगं गेण्हंति। गेण्हित्ता जिण-दत्तस्स पुत्तस्स उवणेन्ति। तए णं से जिणदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए मऊरपोयगं उम्मुक्कबालभावं जाव करेमाणं पासित्ता हट्ठतुट्ठे तेसिं विउलं जीवियारिहं पीइदाणं जाव पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् मयूरपालकों ने उस मयूर के बच्चे को बचपन से मुक्त यावत् केकारव करता हुआ देख-देख कर उस मयूर बच्चे को ग्रहण किया। ग्रहण करके जिनदत्त के पुत्र के पास ले गये। तब जिनदत्त के पुत्र सार्थवाहदारक ने मयूर बालक को बचपन से मुक्त यावत् केकारव करता देखकर, हृष्ट-तुष्ट होकर उन्हें जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया यावत् विदा किया।

तए णं से मऊरपोयए जिणदत्तपुत्तेणं एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए णंगोला (ल) भंगसिरोधरे सेयावंगे अवयारियपइन्नपक्खे उक्खित्तचंदकाइयकलावे केक्काइयसयाणि विमुच्चमाणे णच्चइ।

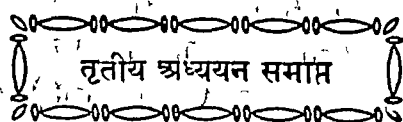
तए णं से जिणदत्तपुत्ते तेणं मऊरपोयएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पणिएहि य जयं करेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह मयूर बालक जिनदत्त के पुत्र द्वारा एक चुटकी बजाने पर लांगूल के भंग के समान अर्थात् जैसे सिंह आदि अपनी पूंछ को टेढ़ी करते हैं उसी प्रकार अपनी गर्दन टेढ़ी करता था। उसके शरीर पर पसीना आ जाता था अथवा उसके नेत्र के कोने श्वेत वर्ण के हो गये थे। वह बिखरे पिच्छो वाले दोनो पंखो को शरीर से जुदा कर लेता था अर्थात् उन्हें फैला देता था। वह चन्द्रक आदि से युक्त पिच्छों के समूह को ऊँचा कर लेता था और सैकड़ो केकारव करता हुआ नृत्य करता था।

तत्पश्चात् वह जिनदत्त का पुत्र उस मयूर बालक के द्वारा चम्पानगरी के शृङ्गाटक आदि मार्गों में सैकड़ो, हजारो और लाखो की होड़ में विजय प्राप्त करता हुआ विचरता था।

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए समाणे पंचसु महव्वएसु छसु जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्विइगिच्छे से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं जाव वीइवइस्सइ। एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं णायाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि॥

हे आयुष्मन् श्रमणो! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी दीक्षित होकर पाँच महाव्रतों में, षट् जीवनिकाय में तथा निर्ग्रन्थ-प्रवचन में शंका से रहित, कांक्षा से रहित तथा विचिकित्सा से रहित होता है, वह इसी भव में बहुत से श्रमणों एवं श्रमणियों में मान-सम्मान प्राप्त करके यावत् संसार रूप अटवी को पार करेगा। हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फरमाया है।



चतुर्थ कूर्म अध्ययन



—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं नायाणं तच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स णं णायाणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

श्रीजम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं— 'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाताअंग के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फर्माया है तो ज्ञाता अंग के चौथे ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ फर्माया है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं वाणारसी नामं नयरी होत्था, वन्नओ। तीसे णं वाणारसीए नयरीए बहिया उत्तर-पुरच्छिमे दिसिभागे गंगाए महानदीए मयंगतीरद्दहे नामं दहे होत्था, अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजले अच्छविमलसलिलपलिच्छन्ने संछन्नपत्तपुप्फपलासे बहुउप्पलपउमकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपुंडरीय-महापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तकेसरपुप्फोवचिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

श्रीसुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं—

हे जम्बू ! उस काल और समय मे वाणारसी (बनारस) नामक नगरी थी। यहाँ उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगरी-वर्णन के समान कहना चाहिए।

उस वाणारसी नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में, गंगा नामक महानदी में मृतगंगातीर ह्रद नामक एक ह्रद था। उसके अनुक्रम से सुन्दर सुशोभित तट थे। उसका जल गहरा और शीतल था। वह ह्रद स्वच्छ एवं निर्मल जल से परिपूर्ण था। कमलिनियों के पत्तों और फूलों की पांखुड़ियों से आच्छादित था। बहुत से उत्पलों (नीले कमलों), पद्मों (लाल कमलों),

तए णं से मऊरपोयए जिणदत्तपुत्तेणं एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए णंगोला (ल) भंगसिरोधरे सेयावंगे अवयारियपइन्नपक्खे उक्खित्तचंदकाइयकलावे केक्काइयसयाणि विमुच्चमाणे णच्चइ ।

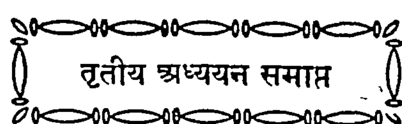
तए णं से जिणदत्तपुत्ते तेणं मऊरपोयएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पणिएहि य जयं करेमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात् वह मयूर बालक जिनदत्त के पुत्र द्वारा एक चुटकी बजाने पर लांगूल के भंग के समान अर्थात् जैसे सिह आदि अपनी पूंछ को टेढ़ी करते हैं उसी प्रकार अपनी गर्दन टेढ़ी करता था। उसके शरीर पर पसीना आ जाता था अथवा उसके नेत्र के कोने श्वेत वर्ण के हो गये थे। वह बिखरे पिच्छो वाले दोनो पंखो को शरीर से जुदा कर लेता था अर्थात् उन्हें फैला देता था। वह चन्द्रक आदि से युक्त पिच्छों के समूह को ऊँचा कर लेता था और सैकड़ो केकारव करता हुआ नृत्य करता था।

तत्पश्चात् वह जिनदत्त का पुत्र उस मयूर बालक के द्वारा चम्पानगरी के शृङ्गाटक आदि मार्गों में सैकड़ों, हजारों और लाखो की होड़ मे विजय प्राप्त करता हुआ विचरता था।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए समाणे पंचसु महव्वएसु छसु जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्विइगिच्छे से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं जाव वीइवइस्सइ। एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं णायाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि ॥

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी दीक्षित होकर पाँच महाव्रतों में, षट् जीवनिकाय में तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका से रहित, कांक्षा से रहित तथा विचिकित्सा से रहित होता है, वह इसी भव में बहुत से श्रमणों एवं श्रमणियों में मान-सम्मान प्राप्त करके यावत् संसार रूप अटवी को पार करेगा। हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फरमाया है।



चतुर्थ कूर्म अध्ययन



-जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं नायाणं तच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स णं णायाणं के अट्ठे पन्नत्ते?

श्रीजम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाताअंग के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फर्माया है तो ज्ञाता अंग के चौथे ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ फर्माया है?'

एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं वाणारसी नामं नयरी होत्था, वन्नओ। तीसे णं वाणारसीए नयरीए बहिया उत्तर-पुरच्छिमे दिसिभागे गंगाए महानदीए मयंगतीरद्दहे नामं दहे होत्था, अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजले अच्छविमलसलिलपलिच्छन्ने संछन्नपत्तपुप्फपलासे बहुउप्पलपउमकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपुंडरीय-महापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तकेसरपुप्फोवचिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

श्रीसुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं—

हे जम्बू! उस काल और समय में वाणारसी (बनारस) नामक नगरी थी। यहाँ उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगरी-वर्णन के समान कहना चाहिए।

उस वाणारसी नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में, गंगा नामक महानदी में मृतगंगातीर ह्रद नामक एक ह्रद था। उसके अनुक्रम से सुन्दर सुशोभित तट थे। उसका जल गहरा और शीतल था। वह ह्रद स्वच्छ एवं निर्मल जल से परिपूर्ण था। कमलिनियों के पत्तों और फूलों की पांखुड़ियों से आच्छादित था। बहुत से उत्पलों (नीले कमलों), पद्मों (लाल कमलों),

तए णं से मऊरपोयए जिणदत्तपुत्तेणं एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए णंगोला (ल) भंगसिरोधरे सेयावंगे अवयारियपइन्नपक्खे उक्खित्तचंदकाइयकलावे केक्काइयसयाणि विमुच्चमाणे णच्चइ।

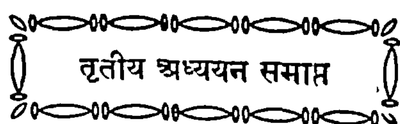
तए णं से जिणदत्तपुत्ते तेणं मऊरपोयएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पणिएहि य जयं करेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह मयूर बालक जिनदत्त के पुत्र द्वारा एक चुटकी बजाने पर लांगूल के भंग के समान अर्थात् जैसे सिंह आदि अपनी पूंछ को टेढ़ी करते हैं उसी प्रकार अपनी गर्दन टेढ़ी करता था। उसके शरीर पर पसीना आ जाता था अथवा उसके नेत्र के कोने श्वेत वर्ण के हो गये थे। वह बिखरे पिच्छों वाले दोनो पंखो को शरीर से जुदा कर लेता था अर्थात् उन्हे फैला देता था। वह चन्द्रक आदि से युक्त पिच्छों के समूह को ऊँचा कर लेता था और सैकड़ो केकारव करता हुआ नृत्य करता था।

तत्पश्चात् वह जिनदत्त का पुत्र उस मयूर बालक के द्वारा चम्पानगरी के शृङ्गाटक आदि मार्गों मे सैकड़ो, हजारो और लाखो की होड़ में विजय प्राप्त करता हुआ विचरता था।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए समाणे पंचसु महव्वएसु छसु जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्विइगिच्छे से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं जाव वीइवइस्सइ। एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं णायाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि॥

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो साधु या साध्वी दीक्षित होकर पाँच महाव्रतों मे, षट् जीवनिकाय में तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका से रहित, कांक्षा से रहित तथा विचिकित्सा से रहित होता है, वह इसी भव में बहुत से श्रमणों एवं श्रमणियों में मान-सम्मान प्राप्त करके यावत् संसार रूप अटवी को पार करेगा। हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाता के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फरमाया है।



चतुर्थ कूर्म अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं नायाणं तच्चस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स णं णायाणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

श्रीजम्बू स्वामी अपने गुरुदेव श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञाताअंग के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ फर्माया है तो ज्ञाता अंग के चौथे ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ फर्माया है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं वाणारसी नामं नयरी होत्था, वन्नओ । तीसे णं वाणारसीए नयरीए बहिया उत्तर-पुरच्छिमे दिसिभागे गंगाए महानदीए मयंगतीरद्दहे नामं दहे होत्था, अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजले अच्छविमलसलिलपलिच्छन्ने संछन्नपत्तपुप्फपलासे बहुउप्पलपउमकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपुंडरीय-महापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तकेसरपुप्फोवचिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

श्रीसुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं—

हे जम्बू ! उस काल और समय में वाणारसी (बनारस) नामक नगरी थी । यहाँ उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगरी-वर्णन के समान कहना चाहिए ।

उस वाणारसी नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में, गंगा नामक महानदी में मृतगंगातीर ह्रद नामक एक ह्रद था । उसके अनुक्रम से सुन्दर सुशोभित तट थे । उसका जल गहरा और शीतल था । वह ह्रद स्वच्छ एवं निर्मल जल से परिपूर्ण था । कमलिनियों के पत्तों और फूलों की पांखुड़ियों से आच्छादित था । बहुत से उत्पलों (नीले कमलों), पद्मों (लाल कमलों),

कुमुदों (चन्द्रविकासी कमलों), नलिनों तथा सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमलों से तथा केसर प्रधान अन्य पुष्पों से समृद्ध था। इस कारण वह आनन्दजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था।

तत्थ णं बहूणं मच्छाण य कच्छपाण य गाहाण य मगराण य सुंसुमाराण य सइयाण य साहस्सियाण य सयसाहस्सियाण य जूहाइं निब्भयाइं निरुव्विग्गाइं सुहंसुहेणं अभिरममाणयाइं अभिरममाणयाइं विहरंति।

उस ह्रद मे सैकड़ो, सहस्रो और लाखो मच्छों, कच्छों, ग्राहो, मगरों और सुंसुमार जाति के जलचर जीवों के समूह भय से रहित, उद्वेग से रहित सुख पूर्वक रमते-रमते विचरण करते थे।

तस्स णं मयंगतीरद्दहस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए होत्था, वन्नओ। तत्थ णं दुवे पावसियालगा परिवसंति, पावा चंडा रोद्दा तल्लिच्छा साहसिया लोहियपाणी आमिसत्थी आमिसाहारा आमिसप्पिया आमिसलोला आमिसं गवेसमाणा रत्तिं वियालचारिणो दिया पच्छन्नं चावि चिट्ठंति।

उस मृतगंगातीर ह्रद के समीप एक बड़ा मालुका कच्छ था। उसका वर्णन यहाँ कहना चाहिए उस मालुक कच्छ में दो पापी शृगाल निवास करते थे। वे पापी, चंड (क्रोधी) रौद्र (भयंकर) इष्ट वस्तु को प्राप्त करने में दत्त-चित्तऔर साहसो थे। उनके हाथ अर्थात् अगले पैर रक्तरंजित रहते थे। वे मांस के अर्थी, मांसाहारी, मांसप्रिय एवं मांसलोलुप थे। मांस की गवेषणा करते हुए रात्रि और सन्ध्या के समय घूमते थे और दिन मे छिपे रहते थे।

तए णं ताओ मयंगतीरद्दहाओ अन्नया कयाइं सूरियंसि चिरत्थमियंसि लुलियाए संझाए पविरलमाणुसंसि णिसंतपडिणिसंतंसि समाणंसि दुवे कुम्मगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा सणियं सणियं उत्तरंति। तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं सव्वओ समंता परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् मृतगंगातीर नामक ह्रद में से किसी समय, सूर्य के बहुत समय पहले अस्त हो जाने पर, संध्याकाल व्यतीत हो जाने पर, जब कोई विरले

मनुष्य ही चलते-फिरते थे और सब मनुष्य अपने-अपने घरों में विश्राम कर रहे थे अथवा सब लोग चलने-फिरने से विरत हो चुके थे, तब आहार के अभिलाषी दो कछुए निकले। वे मृतगंगातीर ह्रद के आसपास चारों ओर फिरते हुए अपनी आजीविका करते हुए विचरण करने लगे।

तयाणंतरं च णं ते पावसियालगा आहारत्थी जाव आहारं गवेसमाणा मालुयाकच्छयाओ पडिणिक्खमंति। पडिणिक्खमित्ता जेणेव मयंगतीरे दहे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता तस्सेव मयंगतीरदहस्स परिपेरंतेणं परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

तए णं ते पावसियाला ते कुम्मए पासंति, पासित्ता जेणेव ते कुम्मए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् आहार के अर्थी यावत् आहार की गवेषणा करते हुए वे दोनों पापी शृगाल मालुकाकच्छ से बाहर निकले। निकल कर जहाँ मृतगंगातीर नामक ह्रद था, वहाँ आए। आकर उसी मृतगगातीर ह्रद के पास इधर-उधर चारों ओर फिरने लगे और आजीविका करते हुए विचरण करने लगे।

तत्पश्चात् उन पापी सियारों ने उन दो कछुओ को देखा। देखकर जहाँ दोनों कछुए थे, वहाँ आने के लिए प्रवृत्त हुए।

तए णं ते कुम्मगा ते पावसियालए एज्जमाणे पासंति। पासित्ता भीता तत्था तसिया उव्विग्गा संजातभया हत्थे य पाए य गीवाए य सएहिं सएहिं काएहिं साहरंति, साहरित्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति।

तत्पश्चात् उन कछुओ ने उन पापी सियारों को आता देखा। देख कर वे डरे, त्रास को प्राप्त हुए, भागने लगे, उद्वेग को प्राप्त हुए और बहुत भयभीत हुए। उन्होने अपने हाथ, पैर और ग्रीवा को अपने शरीर मे गोपित कर लिया छिपा लिया। गोपन करके निश्चल, निस्पंद (हलन-चलन से रहित), और मौन रह गए।

तए णं ते पावसियालया जेणेव ते कुम्मगा तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता ते कुम्मगा सव्वओ समंता उव्वत्तेन्ति, परियत्तेन्ति,

कुमुदो (चन्द्रविकासी कमलो), नलिनों तथा सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमलों से तथा केसर प्रधान अन्य पुष्पों से समृद्ध था। इस कारण वह आनन्दजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था।

तत्थ णं बहूणं मच्छाण य कच्छपाण य गाहाण य मगराण य सुंसुमाराण य सइयाण य साहस्सियाण य सयसाहस्सियाण य जूहाइं निब्भयाइं निरुव्विग्गाइं सुहंसुहेणं अभिरममाणयाइं अभिरममाणयाइं विहरंति।

उस ह्रद में सैकड़ों, सहस्रों और लाखों मच्छों, कच्छों, ग्राहों, मगरों और सुंसुमार जाति के जलचर जीवों के समूह भय से रहित, उद्वेग से रहित सुख पूर्वक रमते-रमते विचरण करते थे।

तस्स णं मयंगतीरद्दहस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए होत्था, वन्नओ। तत्थ णं दुवे पावसियालगा परिवसंति, पावा चंडा रोद्दा तल्लिच्छा साहसिया लोहियपाणी आमिसत्थी आमिसाहारा आमिसप्पिया आमिसलोला आमिसं गवेसमाणा रत्तिं वियालचारिणो दिया पच्छन्नं चावि चिट्ठंति।

उस मृतगंगातीर ह्रद के समीप एक बड़ा मालुका कच्छ था। उसका वर्णन यहाँ कहना चाहिए उस मालुक कच्छ में दो पापी शृगाल निवास करते थे। वे पापी, चंड (क्रोधी) रौद्र (भयंकर) इष्ट वस्तु को प्राप्त करने में दत्त-चित्तऔर साहसो थे। उनके हाथ अर्थात् अगले पैर रक्तरंजित रहते थे। वे मांस के अर्थी, मांसाहारी, मांसप्रिय एवं मांसलोलुप थे। मांस की गवेषणा करते हुए रात्रि और सन्ध्या के समय घूमते थे और दिन में छिपे रहते थे।

तए णं ताओ मयंगतीरद्दहाओ अन्नया कयाइं सूरियंसि चिरत्थमियंसि लुलियाए संझाए पविरलमाणुसंसि णिसंतपडिणिसंतंसि समाणंसि दुवे कुम्मगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा सणियं सणियं उत्तरंति। तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं सव्वओ समंता परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् मृतगंगातीर नामक ह्रद में से किसी समय, सूर्य के बहुत समय पहले अस्त हो जाने पर, संध्याकाल व्यतीत हो जाने पर, जब कोई विरले

मनुष्य ही चलते-फिरते थे और सब मनुष्य अपने-अपने घरों में विश्राम कर रहे थे अथवा सब लोग चलने-फिरने से विरत हो चुके थे, तब आहार के अभिलाषी दो कछुए निकले। वे मृतगंगातीर ह्रद के आसपास चारों ओर फिरते हुए अपनी आजीविका करते हुए विचरण करने लगे।

तयाणंतरं च णं ते पावसियालगा आहारत्थी जाव आहारं गवेसमाणा मालुयाकच्छयाओ पडिणिक्खमंति। पडिणिक्खमित्ता जेणेव मयंगतीरे दहे तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता तस्सेव मयंगतीरदहस्स परिपेरंतेणं परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

तए णं ते पावसियाला ते कुम्मए पासंति, पासित्ता जेणेव ते कुम्मए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् आहार के अर्थी यावत् आहार की गवेषणा करते हुए वे दोनों पापी शृगाल मालुकाकच्छ से बाहर निकले। निकल कर जहाँ मृतगंगातीर नामक ह्रद था, वहाँ आए। आकर उसी मृतगगातीर ह्रद के पास इधर-उधर चारो ओर फिरने लगे और आजीविका करते हुए विचरण करने लगे।

तत्पश्चात् उन पापी सियारों ने उन दो कछुओं को देखा। देखकर जहाँ दोनों कछुए थे, वहाँ आने के लिए प्रवृत्त हुए।

तए णं ते कुम्मगा ते पावसियालए एज्जमाणे पासंति। पासित्ता भीता तत्था तसिया उव्विग्गा संजातभया हत्थे य पाए य गीवाए य सएहिं सएहिं काएहिं साहरंति, साहरित्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति।

तत्पश्चात् उन कछुओं ने उन पापी सियारों को आता देखा। देख कर वे डरे, त्रास को प्राप्त हुए, भागने लगे, उद्वेग को प्राप्त हुए और बहुत भयभीत हुए। उन्होने अपने हाथ, पैर और ग्रीवा को अपने शरीर मे गोपित कर लिया छिपा लिया। गोपन करके निश्चल. निस्पंद (हलन-चलन से रहित), और मौन रह गए।

तए णं ते पावसियालया जेणेव ते कुम्मगा तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता ते कुम्मगा सव्वओ समंता उव्वत्तेन्ति, परियत्तेन्ति,

आसारेन्ति, संसारेन्ति, चालेन्ति, घट्टेन्ति, फंदेन्ति, खोभेन्ति, नहेहिं आलुंपंति, दंतेहि य अक्खोडेंति, नो चेव णं संचाएंति तेसिं कुम्मगाणं सरीरस्स आबाहं वा, पबाहं वा, वाबाहं वा उप्पाएत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए।

तए णं ते पावसियालया एए कुम्मए दोच्चं पि तच्चं पि सव्वओ समंता उव्वत्तेंति, जाव नो चेव णं सचाएंति करत्तए। ताहे संता तंता परितंता निव्विन्ना समाणा सणियं सणिय पच्चोसक्कंति, एगंतमवक्कमंति, निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति।

तत्पश्चात् वे पापी सियार जहाँ वे कछुए थे, वहाँ आए। आकर उन कछुओं को सब तरफ से फिराने लगे, स्थानान्तरित करने लगे, सरकाने लगे, हटाने लगे, चलाने लगे, स्पर्श करने लगे, हिलाने लगे, क्षुब्ध करने लगे, नाखूनों से फाड़ने लगे और दांतों से चींथने लगे, किन्तु उन कछुओं के शरीर को थोड़ी बाधा, अधिक बाधा या विशेष बाधा उत्पन्न करने में अथवा उनकी चमड़ी छेदने में समर्थ न हो सके।

तत्पश्चात् उन पापी सियारों ने इन कछुओं को दूसरी बार और तीसरी बार सब ओर से घुमाया-फिराया, किन्तु यावत् उनकी चमड़ी छेदने मे समर्थ न हुए। तब वे श्रान्त हो गये—शरीर से थक गये, तान्त हो गये—मानसिक ग्लानि को प्राप्त हुए और शरीर तथा मन—दोनों से थक गये तथा खेद को प्राप्त हुए। धीमे-धीमे पीछे लौट गये, एकान्त में चले गये और निश्चल, निस्पंद तथा मूक होकर ठहर गये।

तत्थ णं एगे कुम्मए ते पावसियालए चिरंगए दूरगए जाणित्ता सणियं सणियं एगं पायं निच्छुभइ। तए णं ते पावसियालया तेणं कुम्मएणं सणियं सणियं एगं पायं नीणियं पासंति। पासित्ता ताए उक्किट्ठाए गईए सिग्घं चवलं तुरियं चंडं जइणं वेगिइं जेणेव से कुम्मए तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं पायं नखेहिं आलुंपंति, दंतेहिं अक्खोडेंति, तओ पच्छा मंसं च सोणियं च आहारेंति, आहारित्ता तं कुम्मगं सव्वओ समंता उव्वत्तेंति जाव नो चेव णं संचाइंति करेत्तए। ताहे दोच्चं पि अवक्कमंति, एवं चत्तारि

वि पाया जाव सणियं सणियं गीवं णीणेइ । तए णं ते पावसियालया तेणं कुम्मएणं गीवं णीणियं पासंति, पासित्ता सिग्घं चवलं तुरियं चंडं नहेहिं दंतेहिं कवालं विहाडेंति, विहाडित्ता तं कुम्मगं जीवियाओ ववरोवेंति, ववरोवित्ता मंसं च सोणियं च आहारेंति ।

उन दोनों में से एक कछुए ने उन पापी सियारो को बहुत समय पहले और दूर गया जान कर धीरे-धीरे अपना एक पैर बाहर निकाला ।

तत्पश्चात् उन पापी शृगालों ने देखा कि उस कछुए ने धीरे-धीरे एक पैर निकाला है । यह देख कर वे दोनो उत्कृष्ट गति से शीघ्र, चपल, त्वरित, चंड, जय और वेगयुक्त रूप से जहाँ वह कछुआ था, वहाँ आये । आकर उन्होने कछुए का वह पैर नाखूनो से विदारण किया और दाँतो से तोड़ा । तत्पश्चात् उसके मांस और रक्त का आहार किया । आहार करके वे कछुए को उलटपलट कर देखने लगे, किन्तु यावत् उसकी चमड़ी छेदने में समर्थ न हुए । तब वे दूसरी बार हट गये । इसी प्रकार क्रमशः चारों पैरों के विषय में कहना चाहिए । फिर उस कछुए ने ग्रीवा बाहर निकाली । उन पापी सियारों ने देखा कि कछुए ने ग्रीवा बाहर निकाली है । यह देख कर वे शीघ्र ही उसके समीप आये । उन्होंने नाखूनो से विदारण करके और दांतों से तोड़ कर उसके कपाल को अलग कर दिया । अलग करके कछुए को जीवन-रहित कर दिया । जीवन रहित करके उसके मांस और रुधिर का आहार किया ।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरियउवज्झायाणं अंतिए पव्वइए समाणे पंच से इंदियाइं अगुत्ताइं भवंति, से ण इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं सावगाणं साविगाणं हीलणिज्जे परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि जाव अणुपरियट्टइ, जहा कुम्मए अगुत्तिदिए ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य या उपाध्याय के निकट दीक्षित हो कर पांचो इन्द्रियों का गोपन नहीं करते हैं, वे इसी भव मे बहुत साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा हीलना करने योग्य होते हैं और परलोक मे भी बहुत दंड पाते हैं, यावत् अनन्त संसार में परिभ्रमण करते है, जैसे अपनी इन्द्रियों का गोपन न करने वाला वह कछुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

तए णं ते पावसियालया जेणेव से दोच्चए कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं कुम्मयं सव्वओ समंता उव्वत्तेंति जाव दंतेहिं अक्खुडेंति जाव करित्तए।

तए णं ते पावसियालया दोच्चं पि तच्चं पि जाव नो संचाएंति तस्स कुम्मगस्स किंचि आबाहं वा विबाहं वा जाव छविच्छेयं वा करित्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विन्ना समाणा जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया।

तत्पश्चात् वे दोनों पापी सियार जहाँ दूसरा कछुआ था, वहाँ आये। आकर उस कछुए को चारों तरफ से, सब दिशाओं से उलट-पलट कर देखने लगे, यावत् दांतों से तोड़ने लगे, परन्तु यावत् उसकी चमड़ी का छेदन करने में समर्थ न हो सके।

तत्पश्चात् वे पापी सियार दूसरी बार और तीसरी बार दूर चले गये किन्तु कछुए ने अपने अंग बाहर न निकाले, अतः वे उस कछुए को कुछ भी आबाधा या विबाधा अर्थात् थोड़ी या बहुत पीड़ा न कर सके यावत् उसकी चमड़ी छेदने में भी समर्थ न हो सके। तब वे श्रान्त, तान्त और परितान्त हो कर तथा खिन्न होकर जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये।

तए णं से कुम्मए ते पावसियालए चिरंगए दूरगए जाणित्ता सणियं सणियं गीवं नेणेइ, नेणित्ता दिसावलोयं करेइ, करित्ता जमगसमगं चत्तारि वि पाए नीणेइ, नीणेत्ता ताए उक्किट्ठाए कुम्मगईए वीइवयमाणे वीइवयमाणे जेणेव मयंगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरियणेणं सद्धिं अभिसमन्नागए यावि होत्था।

तत्पश्चात् उस कछुए ने उन पापी सियारों को चिरकाल से गया और दूर गया जान कर धीरे-धीरे अपनी ग्रीवा बाहर निकाली। ग्रीवा निकाल कर सब दिशाओं में अवलोकन किया। अवलोकन करके एक साथ चारों पैर बाहर निकाले और उत्कृष्ट कूर्मगति से अथात् कछुए के योग्य अधिक से अधिक तेज चाल से दौड़ता-दौड़ता जहाँ मृतगंगातीर नामक ह्रद था, वहाँ आ पहुँचा। वहाँ आकर मित्र ज्ञाति निजक, स्वजन, संबंधी और परिजन के साथ मिल गया।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं समणो वा समणी वा पंच से इंदियाइं गुत्ताइं भवंति, जाव जहा उ से कुम्मए गुत्तिंदिए । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ॥

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार हमारा जो श्रमण या श्रमणी पाँचों इन्द्रियों का गोपन करता है, जैसे उस कछुए ने अपनी इन्द्रियों को गुप्त रक्खा था, वह इस संसार को तर जाता है।

अध्ययन का उपसंहार करते हुए सुधर्मा स्वमी कहते हैं–हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने चौथे ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैं ने भगवान् से सुना है, वैसा ही मैं कहता हूँ।

चतुर्थ अध्ययन समाप्त

पाँचवाँ शैलक अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बू स्वामो श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं–भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने चौथे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवन् ! पाँचवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं बारवती नामं नयरी होत्था, पाईणपडीणायया उदीणदाहिणविच्छिन्ना नवजोयणविच्छिन्ना दुवालसजोयणायामा धणवइमइनिम्मिया चामीयरपवरपायारणाणामणिपंचवण्णकविसीसगसोहिया अलयापुरिसंकासा पमुइयपक्कीलिया पच्चक्खं देवलोयभूया ।

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में द्वारवती (द्वारिका) नामक नगरी थी । वह पूर्व पश्चिम में लम्बी और उत्तर-दक्षिण में चौड़ी थी । नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी थी । वह कुबेर की मति से निर्मित हुई थी । सुवर्ण के श्रेष्ठ प्राकार से और पंचरंगी नाना मणियो के बने कंगूरो से शोभित थी । अलकापुरी के समान जान पड़ती थी । उसके निवासी जन प्रमोदयुक्त एवं क्रीड़ा करने मे तत्पर रहते थे । वह साक्षात् देवलोक सरीखी थी ।

तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए रेवतगे नाम पव्वए होत्था-तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे णाणाविहगुच्छगुम्मलयावल्लिपरिगए हंसमिगमऊरकोंचसारसचक्कवायमयणसारकोइलकुलोववेए अणेगतडकडगवियरउज्झरयपवायपब्भारसिहरपउरे अच्छर-

गणदेवसंघचारणविज्ञाहरमिहुणसंविचिन्ने निच्चच्छणए दसारवरवीरपुरिस-तेलोक्कवलवगाणं सोमे सुभगे पियदंसणे सुरूवे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

उस द्वारिका नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में रैवतक (गिरनार) नामक पर्वत था। वह बहुत ऊँचा था। उसके शिखर गगन-तल को स्पर्श करते थे। वह नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मो लताओं और वल्लियों से व्याप्त था। हंस मृग मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनसारिका और कोयल आदि पक्षियो के झुंडों से व्याप्त था। उसमें अनेक तट और गंड-शैल थे। बहु संख्यक गुफाएँ, झरने, प्रपात, प्राग्भार (कुछ-कुछ नमे हुए गिरि-प्रदेश) और शिखर थे। वह पर्वत अप्सराओं के समूहों, देवों के समूहों, चारण मुनियों और विद्याधरों के मिथुनों (जोड़ों) से युक्त था। उसमें दशार वंश के समुद्रविजय आदि वीर पुरुषों के, जो कि नेमिनाथ के साथ होने के कारण तीनों लोकों से भी अधिक बलवान् थे, नित्य-नये उत्सव होते रहते थे वह पर्वत सौम्य, सुभग, देखने में प्रिय, सुरूप, प्रसन्नता प्रदान करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप था।

तस्स णं रेवयगस्स अदूरसामंते एत्थ णं णंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

तस्स णं उज्जाणस्स वहुमज्झभागे सुरप्पिए नामं जक्खाययणे होत्था दिव्वे वन्नओ ।

उस रैवतक पर्वत से न अधिक दूर और न अधिक समीप एक नन्दनवन नामक उद्यान था। वह सब ऋतुओं संबंधी पुष्पों और फलों से समृद्ध था, मनोहर था। नन्दनवन के समान आनन्दप्रद; दर्शनीय, अभिरूप और प्रति-रूप था।

उस उद्यान के ठीक बीचोबीच यक्ष का दिव्य आयतन था। यहाँ यक्षा-यतन का वर्णन कहना चाहिए।

तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं राईसहस्साणं,

पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठी दुद्दंतसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एक्कवीसाए वीरसाहस्सीणं, महा सेनपामोक्खाणं छप्पन्नाए बलवगसाहस्सीणं, रुप्पिणीपामोक्खा बत्तीसाए महिलासाहस्सीणं, अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणिया साहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं ईसरतलवर जाव सत्थवाहपभिईणं वेयड्ढ गिरिसायरपेरंतस्स य दाहिणड्ढभरहस्स य बारवईए नयरीए आहेवच्च जाव पालेमाणे विहरइ।

उस द्वारिका नगर में कृष्ण नामक वासुदेव राजा निवास करते थे। व वासुदेव वहाँ समुद्रविजय आदि दश दशारों, बलदेव आदि पाँच महावीर उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त योद्धाओं, वीरसेन आदि इक्कीस हजार पुरुष महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् पुरुषों, रुक्मिणी आदि बत्तीस हज रानियों अनंगसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाओं तथा अन्य बहुत-से ईश्व (ऐश्वर्यवान् धनाढ्य सेठों), तलवरों (कोतवालों) यावत् सार्थवाहों आ का, उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तथा अन्य तीन दिशाओं में स पर्यन्त दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र का और द्वारिका नगरी का अधिपतित्व करते ह और पालन करते हुए विचरते थे।

तत्थ णं बारवईए नयरीए थावच्चा णामं गाहावइणी परिवस अड्ढा जाव अपरिभूया। तीसे णं थावच्चाए गाहावइणीए पुत्ते थावच्च पुत्ते णामं सत्थवाहदारए होत्था सुकुमालपाणिपाए जाव सुरूवे।

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी तं दारयं साइरेगअट्ठवासजाय जाणित्ता सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणे जाव भोगसमत्थं जाणित्ता बत्तीसाए इब्भकुलबालियाणं एगदिवसे पाणिं गेण्हावेइ, बत्तीसओ दाओ जाव बत्तीसाए इब्भकुलबालिया सद्धिं विउले सद्दफरिसरसरूववन्नगंधे जाव भुंजमाणे विहरइ।

द्वारिका नगरी में थावच्चा नामक एक गाथापत्नी (गृहस्थ महिल निवास करती थी। वह समृद्धि वाली थी यावत् किसी से पराभव पाने वा नहीं थी। उस थावच्चा गाथापत्नी का थावच्चापुत्र नामक सार्थवाह का बा

पुत्र था। उसके हाथ-पैर अत्यन्त सुकुमार थे। यावत् वह सुन्दर रूपवान् था।

तत्पश्चात् उस थावच्चा गाथापत्नी ने उस पुत्र को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जान कर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा। फिर भोग भोगने में समर्थ (युवा) हुआ जान कर इभ्यकुल की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ एक ही दिन में पाणि ग्रहण कराया। प्रासाद आदि बत्तीस-बत्तीस का दायजा दिया अर्थात थावच्चापुत्र की बत्तीसों पत्नियों के लिए बत्तीस महल आदि सामग्री प्रदान की। वह इभ्यकुल की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ विपुल शब्द, स्पर्श, रस, रूप, वर्ण और गंध का भोग यावत् करता हुआ विचरने लगा।

ते णं काले णं ते णं समए णं अरहा अरिट्ठनेमी सो चेव वण्णओ, दसधणुस्सेहे, नीलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पयासे, अट्ठारसहि समणसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे, चत्तालीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव बारवई नयरी, जेणेव रेवयगपव्वए, जेणेव नंदणवणे उज्जाणे, जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे, जेणेव असोगवरपायवे, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ।

उस काल और उस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि पधारे। धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, आदि वर्णन भगवान् महावीर के वर्णन के समान ही उनका यहाँ समझना चाहिए। विशेष यह कि भगवान् अरिष्टनेमि दस धनुष ऊँचे थे, नील कमल भैंस के सींग, गुलिका और अलसी के फूल के समान श्याम कान्ति वाले थे। अठारह हजार साधुओं से परिवृत थे और चालीस हजार साध्वियों से परिवृत थे। वे भगवान् अरिष्टनेमि अनुक्रम से विहार करते हुए यावत् जहाँ द्वारिका नगरी थी, जहाँ गिरनार पर्वत था, जहाँ नन्दनवन नामक उद्यान था, जहाँ सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था और जहाँ अशोक वृक्ष था, वहीं पधारे। पधार कर यथोचित अवग्रह को ग्रहण करके, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। नगरी से परिषद् निकला। भगवान् ने उसे धर्मोपदेश दिया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया!

सभाए सुहम्माए मेघोघरसियं गंभीरं महुरसद्दं कोमुदियं भेरिं तालेह ।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामी ! तह' त्ति जाव पडिसुणेंति । पडिसुणित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियाओ पडिणिक्खमंति । पडिणिक्खमित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कोमुदिया भेरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं मेघोघरसियं गंभीरं महुरसद्दं भेरिं तालेंति ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने यह कथा (वृत्तान्त) सुनकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सुधर्मा सभा में जाकर मेघों के समूह जैसे शब्द वाली, गंभीर तथा मधुर शब्द वाली कौमुदी नामक भेरी बजाओ ।'

तब वे कौटुम्बिक पुरुष, कृष्ण वासुदेव द्वारा इस प्रकार आज्ञा देने पर हृष्ट-तुष्ट हुए । यावत् मस्तक पर अंजलि करके 'इस प्रकार हे स्वामिन् ! बहुत अच्छा' ऐसा कह कर उन्होंने आज्ञा अंगीकार की । अंगीकार करके कृष्ण वासुदेव के पास से निकले । निकल कर जहाँ सुधर्मा सभा थी और जहाँ कौमुदी नामक भेरी थी, वहाँ आए । आकर मेघसमूह के समान शब्द वाली, गंभीर एवं मधुर ध्वनि वाली भेरी बजाई ।

तओ निद्धमहुरगंभीरपडिसुएणं पिव सारइएणं बलाहएणं पिव अणुरसियं भेरीए ।

उस समय स्निग्ध, मधुर और गंभीर प्रतिध्वनि करता हुआ, शरद्‌ऋतु के मेघ के समान भेरी का शब्द हुआ ।

तए णं तीसे कोमुइयाए भेरियाए तालियाए समाणीए बारवईए नयरीए नवजोयणविच्छिन्नाए दुवालसजोयणायामाए सिंघाडगतिय-चउक्कचच्चरकंदरदरीविवरकुहरगिरिसिहरनगरगोउरपासायदुवारभवण-देउलपडिसुयासयसहस्ससंकुलं सद्दं करेमाणे बारवइं नगरिं सब्भिंतर-बाहिरियं सव्वओ समंता से सद्दे विप्पसरित्था ।

तत्पश्चात् उस कौमुदी भेरी के ताड़न करने पर नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरी के शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर कंदरा,

गुफा, विवर, कुहर, गिरिशिखर, नगर के गोपुर प्रासाद, द्वार, भवन, देवकुल-आदि समस्त स्थानों में लाखों प्रतिध्वनियों से युक्त, भीतर और बाहर के विभागों सहित द्वारिका नगर को शब्दायमान करता हुआ चारों ओर वह शब्द फैल गया।

तए णं बारवईए नयरीए नवजोयणविच्छिन्नाए बारसजोयणायामाए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव गणियासहस्साइं कोमुईयाए भेरीए सद्दं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा जाव ण्हाया आविद्धवग्घारियमल्लदामकलावा अहतवत्थचंदणोक्किन्नगायसरीरा अप्पेगइया हयगया एवं गयगया रहसीयासंदमाणीगया, अप्पेगइया पायविहारचारेणं पुरिसवग्गुरापरिखित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियं पाउब्भवित्था।

तत्पश्चात् नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरी में समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् अनेक हजार गणिकाएँ. उस कौमुदी भेरी का शब्द सुन कर एव हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुए। यावत् सब ने स्नान किया। लम्बी लटकने वाली फूलमालाओं के समूह को धारण किया। कोरे-नवीन वस्त्रों को धारण किया। शरीर पर चन्दन का लेप किया। कोई अश्व पर आरूढ़ हुए, इसी प्रकार कोई गज पर आरूढ़ हुए, कोई रथ पर, कोई पालकी में और कोई म्याने में बैठे। कोई-कोई पैदल ही पुरुषों के समूह के साथ चले और कृष्ण वासुदेव के पास प्रकट हुए-आये।

तए णं कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे जाव अंतियं पाउब्भवमाणे पासइ। पासित्ता हट्ठ तुट्ठ जाव कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउरंगिणीं सेणं सज्जेह, विजयं च गंधहत्थिं उवट्ठवेह।' ते वि तह त्ति उवट्ठवेंति, जाव पज्जुवासंति।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने समुद्रविजय वगैरह दस दसारों को तथा पूर्ववर्णित अन्य सब को यावत् अपने निकट प्रकट हुआ देखा। देख कर वह हृष्ट-तुष्ट हुए, यावत् उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चतुरंगिणी सेना सजाओ और विजय नामक गंधहस्ती को उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने 'बहुत अच्छा' कह कर विजय गंधहस्ती उपस्थित किया। यावत् कृष्ण वासुदेव सब के साथ भगवान् अरिष्ट-

नेमि को वन्दना करने गये। वंदना नमस्कार करके भगवान् की उपासना करने लगे।

थावच्चापुत्ते वि निग्गए, जहा मेहे तहेव धम्मं सोच्चा णिसम्म जेणेव थावच्चा गाहावइणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पायग्गहणं करेइ। जहा मेहस्स तहा चेव णिवेयणा। जाहे नो संचाएइ विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलेहि य बहूहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा सन्नवित्तए वा विन्नवित्तए वा, ताहे अकामिया चेव थावच्चापुत्तदारगस्स निक्खमणमणुमन्नित्था। नवरं निक्खमणाभिसेयं पासामो। तए णं से थावच्चापुत्ते तुसिणीए संचिट्ठइ।

मेघ कुमार की तरह थावच्चापुत्र भी भगवान् को वन्दना करने के लिए निकला। उसी प्रकार धर्म को श्रवण करके और हृदय में धारण करके जहाँ थावच्चा गाथापत्नी थी, वहाँ आया। आकर माता के पैरों को ग्रहण किया-चरण स्पर्श किया। जैसे मेघकुमार ने अपने वैराग्य का निवेदन किया, उसी प्रकार थावच्चापुत्र की भी वैराग्य निवेदना समझ लेनी चाहिए। माता जब विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूलबहुत-सी आघवना-सामान्य कथन से, पन्नवणा-विशेष कथन से, सन्नवणा–धन-वैभव आदि का लालच दिखला कर, विन्नवणा–आजीजी करके, सामान्य कहने, विशेष कहने, ललचाने और मनाने में समर्थ न हुई, तब इच्छा न होने पर भी माता ने थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण स्वीकार किया। विशेष यह कहा कि–'मैं तुम्हारा दीक्षा–महोत्सव देखूँ।' तब थावच्चापुत्र मौन रह गया, अर्थात् उसने माता की बात मान ली।

तए णं सा थावच्चा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायरिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता मित्त जाव संपरिवुडा जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स भवणवरपडिदुवारदेसभाए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पडिहारदेसिएणं मग्गेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल वद्धावेइ, वद्धावित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं रायरिहं पाहुडं उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी–

तत्पश्चात् वह थावच्चा सार्थवाही आसन से उठी। उठ कर महान् अर्थ वाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषों के योग्य तथा राजा के योग्य भेंट ग्रहण

की। ग्रहण करके मित्र ज्ञाति आदि से परिवृत होकर जहाँ कृष्ण वासुदेव के श्रेष्ठ भवन का मुख्य द्वार का देशभाग था, वहाँ आई। आकर प्रतीहार द्वारा दिखलाये मार्ग से जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आई। आकर दोनों हाथ जोड़ कर कृष्ण वासुदेव को बधाया। बधाकर वह महा अर्थ वाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट सामने रक्खी। सामने रख कर इस प्रकार कहाः—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं दारए इट्ठे जाव से णं संसारभयउव्विग्गे इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स जाव पव्वइत्तए। अहं णं निक्खमणसक्कारं करेमि। इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! थावच्चापुत्तस्स निक्खममाणस्स छत्तमउडचामराओ य विदिन्नाओ।

हे देवानुप्रिय ! मेरा थावच्चापुत्र नामक एक ही पुत्र है। वह मुझे इष्ट है, कान्त है, यावत् वह संसार के भय से उद्विग्न होकर अरिहन्त अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता है। मैं उसका निष्क्रमणसत्कार करना चाहती हूँ। अतएव हे देवानुप्रिय ! प्रव्रज्या अंगीकार करने वाले थावच्चापुत्र के लिए आप छत्र मुकुट और चामर प्रदान करें, यह मेरी अभिलाषा है।

तए णं कण्हे वासुदेवे थावच्चागाहावइणिं एवं वयासी—'अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए ! सुनिव्वुया वीसत्था, अहं णं सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चा सार्थवाही से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वस्त रहो। मैं स्वयं ही थावच्चापुत्र बालक का दीक्षासत्कार करूँगा।

तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेनाए विजयं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासीः—

मा णं तुमे देवाणुप्पिया ! मुंडे भवित्ता पव्वयाहि, भुंजाहि णं देवाणुप्पिया ! विउले माणुस्सए कामभोए मम बाहुच्छायापरिग्गहिए, केवलं देवाणुप्पियस्स अहं णो संचाएमि वाउकायं उवरिमेणं निवारि-

त्तए। अण्णे णं देवाणुप्पियस्स जं किंचि वि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएइ तं सव्वं निवारेमि।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव चतुरङ्गिणी सेना के साथ विजय नामक उत्तम हाथी पर आरूढ़ होकर जहाँ थावच्चा सार्थवाही का भवन था वहीं आये। आकर थावच्चापुत्र से इस प्रकार बोलेः—

हे देवानुप्रिय! तुम मुंडित होकर प्रव्रज्या ग्रहण मत करो। मेरी भुजाओं की छाया के नीचे रह कर मनुष्य संबंधी विपुल कामभोगों को भोगो। मैं केवल देवानुप्रिय के अर्थात् तुम्हारे ऊपर होकर जाने वाले वायुकाय को रोकने में समर्थ नहीं हूँ। इसके सिवाय देवानुप्रिय को (तुम्हे) जो कोई भी सामान्य पीड़ा या विशेष पीड़ा उत्पन्न होगी, उस सब का निवारण करूँगा।'

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! मम जीवियंतकरणं मच्चुं एज्जमाणं निवारेसि, जरं वा सरीररूवविणासिणिं सरीरं अइवयमाणिं निवारेसि, तए णं अहं तव बाहुच्छायापरिग्गहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरामि।

तब कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्र ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! यदि तुम मेरे जीवन का अन्त करने वाले आते हुए मरण को रोक दो और शरीर पर आक्रमण करने वाली एवं शरीर के रूप का विनाश करने वाली जरा को रोक दो, तो मैं तुम्हारी भुजाओं की छाया के नीचे रह कर मनुष्य संबंधी विपुल कामभोग भोगता हुआ विचरूँ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे थावच्चापुत्तं एवं वयासी—'एए णं देवाणुप्पिया! दुरइक्कमणिज्जा, णो खलु सक्का सुबलिएणावि देवेण वा दाणवेण वा णिवारित्तए णण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं।'

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर कृष्ण वासुदेव ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! मरण और जरा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। अतीव बलशाली देव अथवा दानव के द्वारा भी इनका निवारण नहीं किया जा सकता। हाँ, अपने कर्मों का क्षय ही इन्हें रोक सकता है

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तं पुरओ काउं जेणेव अरिहा अरिट्ठनेमी, सव्वं तं चेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ ।

तए णं से थावच्चा गाहावइणी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरणमल्लालंकारे पडिच्छइ । पडिच्छित्ता हारवारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिपगासाइं अंसूणि विणिम्मुंचमाणी विणिम्मुंचमाणी एवं वयासी—'जइयव्वं जाया ! घडियव्वं जाया ! परक्कमियव्वं जाया ! अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएव्वं' जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव थावच्चापुत्र को आगे करके जहाँ अरिहन्त अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये । इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए । यावत् थावच्चापुत्र ने ईशान दिशा में जाकर आभरण पुष्पमाला और अलंकारों का परित्याग किया ।

तत्पश्चात् थावच्चा सार्थवाही ने हंस के चिह्न वाले वस्त्र में आभरण, माला और अलंकारों को ग्रहण किया । ग्रहण करके मोतियों के हार, जल की धार, सिन्दुवार के फूलों तथा छिन्न हुई मोतियों की श्रेणी के समान आँसू त्यागती हुई इस प्रकार कहने लगी—'हे पुत्र ! इस प्रव्रज्या के विषय में यत्न करना, हे पुत्र ! शुद्ध क्रिया करने में घटना करना और हे पुत्र ! चारित्र का पालन करने में पराक्रम करना । इस अर्थ में तनिक भी प्रमाद न करना । इस प्रकार कह कर वह जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

तए णं से थावच्चापुत्ते पुरिससहस्सेहिं सद्धिं सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, जाव पव्वइए । तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे जाए ईरियासमिए भासासमिए जाव विहरइ ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने हजार पुरुषों के साथ स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया, यावत् प्रव्रज्या अंगीकार की । उसके बाद थावच्चापुत्र अनगार हो गया । ईर्यासमिति से युक्त, भाषासमिति से युक्त होकर यावत् विचरने लगा ।

तए णं से थावच्चापुत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ । अहिज्जित्ता बहूहिं जाव चउत्थेणं विहरइ । तए णं अरिहा अरिट्ठनेमी थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स तं इब्भाइयं अणगारसहस्सं सीसत्ताए दलयइ ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने अरिहन्त अरिष्टनेमि के तथारूप स्थविरों के पास से सामायिक से आरंभ करके चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन करके वे बहुत से अष्टमभक्त षष्ठभक्त यावत् चतुर्थभक्त (उपवास) आदि करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् अरिहन्त अरिष्टनेमि ने थावच्चापुत्र अनगार को वह इभ्य आदि एक हजार अनगार शिष्य के रूप में प्रदान किये।

तए णं से थावच्चापुत्ते अन्नया कयाइं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–'इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे सहस्सेणं अणगारेणं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने अन्यदा कदाचित् अरिहन्त अरिष्टनेमि को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा–'भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं हजार साधुओं के साथ जनपद में विहार करना चाहता हूँ।'

भगवान् ने उत्तर दिया–'देवानुप्रिय! तुम्हे जैसे सुख उपजे वैसा करो।

तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं तेणं उरालेणं उदग्गेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र एक हजार अनगारों के साथ उस प्रधान, तीव्र, प्रयत्न वाले-प्रमादरहित और बहुमानपूर्वक ग्रहण किये हुए चारित्र एवं तप से युक्त होकर बाहर जनपद (देश) में विचरण करने लगे।

ते णं काले णं ते णं समए णं सेलगपुरे नामं नयरे होत्था, सुभूमिभागे उज्जाणे, सेलए राया, पउमावई देवी, मंडुए कुमारे जुवराया।

तस्स णं सेलगस्स पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया होत्था, उप्पत्तियाए वेणइयाए (पारिणामियाए कम्मियाए) चउव्विहाए बुद्धीए उववेया रज्जधुरचिंतया वि होत्था।

तए णं थावच्चापुत्ते नामं अणगारे सहस्सेणं अणगारेणं सद्धिं

जेणेव सेलगपुरे जेणेव सुभूमिभागे नामं उज्जाणे तेणेव समोसढे। सेलए वि राया विणिग्गए। धम्मो कहिओ।

उस काल और उस समय में शैलकपुर नामक नगर था। सुभूमिभाग नामक उद्यान था। शैलक वहाँ का राजा था। पद्मावती रानी थी। उनका मंडुक नामक कुमार था। वह युवराज था।

उस शैलक राजा के पंथक आदि पाँच सौ मंत्री थे। वे औत्पत्तिकी, वैनयिकी, पारिणामिकी और कार्मिकी–इस प्रकार चार तरह की बुद्धि से सम्पन्न थे और राज्य की धुरा के चिन्तक भी थे।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार हजार मुनियो के साथ जहाँ शैलकपुर था, और जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहाँ पधारे। शैलक राजा भी उन्हे वन्दना करने के लिए निकला। थावच्चापुत्र ने धर्म का उपदेश किया।

धम्मं सोच्चा 'जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइया, तहा णं अहं नो संचाएमि पव्वइत्तए। तओ णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं' जाव समणोवासए, जाव अहिगयजीवाजीवे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया समणोवासया जाया। थावच्चापुत्ते बहिया जणवयविहारं विहरइ।

धर्म सुन कर शैलक राजा ने कहा–जैसे देवानुप्रिय के समीप बहुत–से उग्रकुल के, भोगकुल के तथा अन्य कुलो के पुरुषों ने हिरण्य–सुवर्ण आदि का त्याग करके दीक्षा अगीकार की है, उस प्रकार मै दीक्षित होने मे समर्थ नहीं हूं। अतएव मै देवानुप्रिय के पास से पाँच अणुव्रतों को, सात शिक्षाव्रतों को यावत धारण करके श्रावक बनना चाहता हूँ। यावत् राजा श्रमणोपासक, यावत् जीव-अजीव का ज्ञाता हो गया, यावत् अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा। इसी प्रकार पंथक आदि पाँच सौ मंत्री भी श्रमणोपासक हो गये तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार वहाँ से विहार करके जनपद में विचरण करने लगे।

ते णं काले णं ते णं समए णं सोगंधिया नाम नयरी होत्था, वण्णओ। नीलासोए उज्जाणे, वण्णओ। तत्थ णं सोगंधियाए नयरीए सुदंसणे नामं नगरसेट्ठी परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए।

उस काल और उस समय में सौगंधिका नामक नगरी थी। उसका वर्णन समझ लेना चाहिए। उस नगरी के बाहर नीलाशोक नामक उद्यान था। उसका भी वर्णन कह लेना चाहिए। उस सौगंधिका नगरी में सुदर्शन नामक नगरश्रेष्ठी निवास करता था। वह समृद्धिशाली था, यावत् किसी से पराभूत नहीं हो सकता था।

ते णं काले णं ते णं समएणं सुए नामं परिव्वायए होत्था रिउव्वेयजजुव्वेयसामवेयअथव्वणवेयसट्ठितंतकुसले, संखसमए लद्धट्ठे, पंचजमपंचनियमजुत्तं सोयमूलयं दसप्पयारं परिव्वायगधम्मं दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणे पण्णवेमाणे धाउरत्त-वत्थपवरपरिहिए तिदंडकुंडियछत्तछन्नालियंकुसपवित्तयकेसरीहत्थगए परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव सोगंधिया नयरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करित्ता संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उस काल और उस समय में शुक नामक एक परिव्राजक था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद तथा षष्टितंत्र (सांख्यशास्त्र) में कुशल था। सांख्य मत के शास्त्रों में कुशल था। पाँच यमों और पाँच नियमों से युक्त दस प्रकार के शौचमूलक परिव्राजक धर्म का, दानधर्म का, शौचधर्म का और तीर्थस्नान का उपदेश और प्ररूपणा करता था। गेरू से रंगे हुए श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण करता था। त्रिदंड, कुण्डिका-कमंडलु, मयूरपिच्छ का छत्र, छन्नालिक (काष्ठ का एक उपकरण), अंकुश (वृक्ष के पत्ते तोड़ने का एक उपकरण), पवित्री (ताम्र धातु की बनी अंगूठी) और केसरी (प्रमार्जन करने का वस्त्र-खण्ड), यह सात उपकरण उसके हाथ में रहते थे। एक हजार परिव्राजकों से परिवृत वह शुक परिव्राजक जहाँ सौगंधिका नगरी थी और जहाँ परिव्राजको का आवसथ (मठ) था, वहाँ आया। आकर परिव्राजकों के उस मठ में उसने अपने उपकरण रक्खे और सांख्यमत के अनुसार अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

तए णं सोगंधियाए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर० बहुजणो अन्न-मन्नस्स एवमाइक्खइ-एवं खलु सुए परिव्वायए इह हव्वमागए जाव विहरइ। परिसा निग्गया। सुदंसणो निग्गए।

तए णं से सुए परिव्वायए तीसे परिसाए सुदंसणस्स य अन्नेसिं च बहूणं संखाणं परिकहेइ–'एवं खलु सुदंसणा ! अम्हं सोयमूलए धम्मे पन्नत्ते। से वि य सोए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–दव्वसोए य भावसोए य। दव्वसोए य उदएणं मट्टियाए य। भावसोए दब्भेहि य मंतेहि य। जं णं अम्हं देवाणुप्पिया ! किंचि असुई भवइ, तं सव्वं सज्जो पुढवीए आलिप्पइ, तओ पच्छा सुद्धेण वारिणा पक्खालिज्जइ, तओ तं असुई सुई भवइ। एवं खलु जीवा जलाभिसेयपूयप्पाणो अविग्घेणं सग्गं गच्छंति।

तब उस सौगंधिका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि आदि स्थानों में अनेक मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर ऐसा कहने लगे–'इस प्रकार निश्चय ही शुक परिव्राजक यहाँ आये हैं यावत् आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।' पर्षदा निकली। सुदर्शन भी निकला।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक ने उस परिषद् को, सुदर्शन को तथा अन्य बहुत–से श्रोताओं को सांख्यमत का उपदेश दिया। यथा–हे सुदर्शन ! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है वह शौच दो प्रकार का है–द्रव्यशौच और भाव-शौच। द्रव्यशौच जल से और मिट्टी से होता है। भावशौच दर्भ से और मंत्र से होता है। हे देवानुप्रिय ! हमारे यहाँ जो कोई वस्तु अशुचि होती है, वह सब तत्काल पृथ्वी (मिट्टी) से मांज दी जाती है और फिर शुद्ध जल से धो ली जाती है। तब अशुचि शुचि हो जाती है। इसी प्रकार निश्चय ही जीव जलस्नान से अपनी आत्मा को पवित्र करके बिना विघ्न के स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

तए णं से सुदंसणे सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा हट्ठे, सुयस्स अंतियं सोयमूलयं धम्मं गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायए विपुलेण असणपाण-खाइमसाइमवत्थेणं पडिलाभेमाणे जाव विहरइ। तए णं से सुए परिव्वायए सोगंधियाओ नयरीओ निगच्छइ, निगच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तत्पश्चात् सुदर्शन, शुक परिव्राजक के समीप धर्म को श्रवण करके हर्षित हुआ। उसने शुक से शौचमूलक धर्म को ग्रहण किया। ग्रहण करके परिव्राजकों को विपुल अशन पान खादिम स्वादिम और वस्त्र से प्रतिलाभित करता हुआ अर्थात् अशन आदि दान करता हुआ विचरने लगा। तत्पश्चात् वह शुक परि-

श्राजक सौगंधिका नगरी से बाहर निकला । निकल कर जनपद-विहार से विचरने लगा ।

ते णं काले णं ते णं समए णं थावच्चापुत्ते णामं अणगारे सहस्सेणं अणगारेणं सद्धिं पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं-सुहेणं विहरमाणे जेणेव सोगंधिया नयरी जेणेव नीलासोए उज्जाणे तेणेव समोसढे ।

उस काल और उस समय में थावच्चापुत्र नामक अनगार एक हजार अनगारों के साथ अनुक्रम से विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए और सुखे सुखे विचरते हुए जहाँ सौगंधिका नामक नगरी थी और जहाँ नीलाशोक नामक उद्यान था, वहाँ पधारे।

परिसा निग्गया । सुदंसणो वि णिग्गए । थावच्चापुत्तं नामं अणगारं आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'तुम्हाणं किंमूलए धम्मे पन्नत्ते ?

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणेणं एवं वुत्ते समाणे सुदंसणं एवं वयासी—'सुदंसणा ! विणयमूले धम्मे पण्णत्ते । से वि य विणए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—अगारविणए य अणगारविणए य । तत्थ णं जे से अगारविणए से णं पंच अणुव्वयाइं, सत्तसिक्खावयाइं, एक्कारस उवासगपडिमाओ । तत्थ णं जे से अणगारविणए से णं पंच महव्वयाइं पन्नत्ताइं, तंजहा सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं, सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं, जाव मिच्छादंसणसल्लाओ वेरमणं, दसविहे पच्चक्खाणे, बारस भिक्खुपडिमाओ, इच्चेएणं दुविहेणं विणयमूलएणं धम्मेणं अणुपुव्वेणं अट्ठ-कम्मपगडीओ खवेत्ता लोयग्गपइट्ठाणे भवंति ।

थावच्चापुत्र अनगार का आगमन जानकर परिषद् निकली । सुदर्शन भी निकला । उसने थावच्चापुत्र अनगार को दक्षिण तरफ से आरंभ करके प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके वह इस प्रकार बोला—आपके धर्म का मूल क्या कहा गया है ?

तब सुदर्शन के इस प्रकार कहने पर थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा–हे सुदर्शन ! धर्म विनयमूलक कहा गया है। वह विनय (चारित्र) भी दो प्रकार का कहा है–अगारविनय अर्थात् गृहस्थ का चारित्र और अनगारविनय अर्थात मुनि का चारित्र। इनमें जो अगारविनय है, वह पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत और ग्यारह उपासक प्रतिमा रूप है। जो अनगारविनय है, वह पाँच महाव्रत रूप है, यथा–समस्त प्राणातिपात (हिंसा) से विरमण, समस्त मृषावाद से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त मैथुन से विरमण, समस्त परिग्रह से विरमण, इसके अतिरिक्त समस्त रात्रि-भोजन से विरमण, यावत् समस्त मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण, दस प्रकार का प्रत्याख्यान और बारह भिक्षुप्रतिमाएँ। इस प्रकार दो तरह के विनयमूलक धर्म से, क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों को क्षय करके जीव लोक के अग्रभाग में–मोक्ष मे प्रतिष्ठित होते हैं।

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी–'तुब्भे णं सुदंसणा ! किंमूलए धम्मे पण्णत्ते ?'

'अम्हाणं देवाणुप्पिया ! सोयमूले धम्मे पण्णत्ते, जाव सग्गं गच्छंति।'

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से कहा—'हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है ?'

(सुदर्शन ने उत्तर दिया—) देवानुप्रिय ! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है। इस धर्म से यावत् जीव स्वर्ग में जाते हैं।

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी–'सुदंसणा ! से जहा-नामए केई पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा, तए णं सुदंसणा ! तस्स रुहिरकयस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि काइ सोही ?

'णो तिणट्ठे समट्ठे।'

तत्पश्चात थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन ! जैसे कुछ भी नाम वाला कोई पुरुष एक बड़े रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोए, तो हे सुदर्शन ! उस रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की की कोई शुद्धि होगी ?

(सुदर्शन ने कहा)—यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता।

एवामेव सुदंसणा ! तुब्भं पि पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसण–सल्लेणं नत्थि सोही, जहा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव पक्खालिज्जमाणस्स नत्थि सोही।

'सुदंसणा ! से जहा नामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं सज्जियाखारेणं अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता पयणं आरुहेइ, आरुहित्ता उण्हं गाहेइ, गाहित्ता तओ पच्छा सुद्धेणं वारिणा धोवेज्जा, से णूणं सुदंसणा ! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स सज्जियाखारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स सोही भवइ ?'

'हंता भवइ।'

एवामेव सुदंसणा ! अम्हं पि पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छा–दंसणसल्लवेरमणेणं अत्थि सोही, जहा वि तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स जाव सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि सोही।

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! तुम्हारे मतानुसार भी प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से शुद्धि नही हो सकती, जैसे उस रुधिरलिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की शुद्धि नहीं होती।

हे सुदर्शन ! जैसे यथानामक (कुछ भी नाम वाला) कोई पुरुष एक बड़े रुधिरलिप्त वस्त्र को सज्जी के खार के पानी में भिंगावे, फिर पाकस्थान (चूल्हे) पर चढ़ावे, चढ़ा कर उष्णता ग्रहण करावे (उबाले) और फिर स्वच्छ जल से धोवे, तो निश्चय ही हे सुदर्शन ! वह रुधिर से लिप्त वस्त्र, सज्जीखार के पानी में भींग कर, चूल्हे पर चढ़ कर, उबल कर और शुद्ध जल से प्रक्षालित होकर शुद्ध हो जाता है ?

(सुदर्शन कहता है—) 'हाँ, हो जाता है।'

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! हमारे धर्म के अनुसार भी प्राणातिपात विरमण से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के विरमण से शुद्धि होती है, जैसे उस रुधिर लिप्त वस्त्र की यावत् शुद्ध जल से धोये जाने पर शुद्धि होती है।

तत्थ णं से सुदंसणे संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता

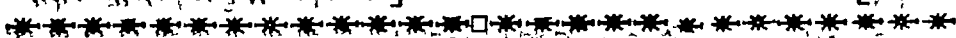
नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं भंते! धम्मं सोच्चा जाणित्तए, जाव समणोवासए जाए अहिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् सुदर्शन प्रतिबोध को प्राप्त हुआ। उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं धर्म को सुनकर जानना अंगीकार करना चाहता हूँ।' यावत् वह श्रमणोपासक हो गया, जीवाजीव का ज्ञाता हो गया, यावत् निर्ग्रन्थ श्रमणों को आहार आदि का दान करता हुआ विचरने लगा।

तए णं तस्स सुयस्स परिव्वायगस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु सुदंसणेणं सोयं धम्मं विप्पजहाय विणयमूले धम्मे पडिवन्ने। तं सेयं खलु मम सुदंसणस्स दिट्ठिं वामेत्तए, पुणरवि सोयमूलए धम्मे आघवित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं जेणेव सोगंधिया नयरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडनिक्खेवं करेइ, करित्ता धाउरत्तवत्थपरिहए पविरलपरिव्वायगेणं सद्धिं संपरिवुडे परिव्वायगावसहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सोगंधियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुदंसणस्स गिहे, जेणेव सुदंसणे तेणेव उवागच्छइ।

तत्पश्चात् उस शुक परिव्राजक को इस कथा का अर्थ अर्थात् समाचार जान कर इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—सुदर्शन ने शौच धर्म का परित्याग करके विनयमूल धर्म अंगीकार किया है। अतएव सुदर्शन की दृष्टि श्रद्धा का वमन (त्याग) कराना और पुनः शौचमूलक धर्म का उपदेश करना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके एक हजार परिव्राजकों के साथ जहाँ सौगन्धिका नगरी थी और जहाँ परिव्राजकों का मठ था, वहाँ आया। आकर उसने परिव्राजकों के मठ में उपकरण रक्खे। रख कर गेरू से रंगे वस्त्र धारण किये हुए वह थोड़े से परिव्राजकों के साथ घिरा हुआ परिव्राजक-मठ से निकला। निकल कर सौगंधिका नगरी के मध्यभाग में होकर जहाँ सुदर्शन का घर था और जहाँ सुदर्शन था, वहाँ आया।

तए णं से सुदंसणे तं सुयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो अब्भुट्ठेइ, नो पच्चुग्गच्छइ, नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो वंदइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।



तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं अणब्भुट्ठियं पासित्ता एवं वयासी—'तुमं णं सुदंसणा ! अन्नया ममं एज्जमाणं पासित्ता अब्भुट्ठेसि जाव वंदसि, इयाणिं सुदंसणा ! तुमं ममं एज्जमाणं पासित्ता जाव णो वंदसि, तं कस्स णं तुमे सुदंसणा ! इमेयारूवे विणयमूलधम्मे पडिवन्ने ?

तत्पश्चात् उस सुदर्शन ने शुक को आता देखा। देखकर वह खड़ा नहीं हुआ, सामने नहीं गया, उसका आदर नहीं किया, उसे जाना नहीं, वन्दना नहीं की, किन्तु मौन बना रहा।

तब उस परिव्राजक ने सुदर्शन को न खड़ा हुआ देखकर इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन! पहले तुम मुझे आता देखकर खड़े होते थे, यावत् वन्दना करते थे, परन्तु हे सुदर्शन! अब तुम मुझे आता देखकर न खड़े हुए, यावत् न वन्दना की, तो हे सुदर्शन! किसके समीप तुमने विनयमूल धर्म अंगीकार किया है ?

तए णं से सुदंसणे सुएणं परिव्वायएणं एवं वुत्ते समाणे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता करयल० सुयं परिव्वायगं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी थावच्चापुत्ते नामं अणगारे जाव इहमागए, इह चेव नीलासोए उज्जाणे विहरइ, तस्स णं अंतिए विणयमूले धम्मे पडिवन्ने।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक के इस प्रकार कहने पर सुदर्शन आसन से उठ कर खड़ा हुआ। दोनों हाथ जोड़े और शुक परिव्राजक से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! अरिहंत अरिष्टनेमि के अन्तेवासी थावच्चापुत्र नामक अनगार यावत् यहां आये हैं और यहीं नीलाशोक उद्यान में विचर रहे हैं। उनके पास से मैंने विनयमूल धर्म अंगीकार किया है।

तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं एवं वयासी—'तं गच्छामो णं सुदंसणा ! तव धम्मायरियस्स थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउब्भवामो। इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छामो। तं जइ णं मे से इमाइं अट्ठाइं जाव वागरइ, तए णं अहं वंदामि नमंसामि। अह मे से इमाइं अट्ठाइं जाव नो से वागरेइ, तए णं अहं एएहिं चेव अट्ठेहिं हेऊहिं निप्पट्ठपसिणवागरणं करिस्सामि।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—हे सुदर्शन चलें, हम तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चापुत्र के समीप प्रकट हों—चलें और इस प्रकार के इन अर्थों को, हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को तथा व्याकरणों को पूछें। अगर वह मेरे इन अर्थों आदि का उत्तर देंगे तो मैं उन्हें वन्दना करूँगा, नमस्कार करूँगा। और यदि वह मेरे इन अर्थों यावत् व्याकरणों को नहीं कहेंगे—इनका उत्तर नहीं देंगे तो मैं उन्हें इन्हीं अर्थों तथा हेतुओं आदि से निरुत्तर कर दूंगा।

तए णं से सुए परिव्वायगसहस्सेणं सुदंसणेण य सेट्ठिणा सद्धिं जेणेव नीलासोए उज्जाणे, जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—'जत्ता ते भंते! जवणिज्जं ते अव्वाबाहं पि ते फासुयं विहारं ते?

तए णं से थावच्चापुत्ते सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते समाणे सुयं परिव्वायगं एवं वयासी—'सुया! जत्ता वि मे, जवणिज्जं पि मे, अव्वाबाहं पि मे, फासुयविहारं पि मे।'

तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक, एक हजार परिव्राजकों के और सुदर्शन सेठ के साथ जहाँ नीलाशोक उद्यान था, और जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे, वहाँ आया। आकर थावच्चापुत्र से कहने लगा—'भगवन्! तुम्हारी यात्रा चल रही है? यापनीय है? तुम्हारे अव्याबाध है? और तुम्हारा प्रासुक विहार हो रहा है?

तब थावच्चापुत्र ने शुक परिव्राजक के इस प्रकार कहने पर शुक से कहा—हे शुक! मेरी यात्रा भी हो रही है, यापनीय भी वर्त रहा है, अव्याबाध भी है और प्रासुक विहार भी हो रहा है।

तए णं से सुए थावच्चापुत्तं एवं वयासी—'किं भंते! जत्ता?

'सुया! जं णं मम णाणदंसणचरित्ततवसंजममाइएहिं जोएहिं जोयणा से तं जत्ता।'

'से किं तं भंते! जवणिज्जं?'

'सुया! जवणिज्जे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—इंदियजवणिज्जे य नोइंदियजवणिज्जे य।'

'से किं तं इंदियजवणिज्जं ?'

'सुया ! जं णं मम सोइंदियचक्खिदियघाणिंदियजिब्भिदियफासिं-दियाइं निरुवहयाइं वसे वट्टंति, से तं इंदियजवणिज्जं।'

'से किं तं नोइंदियजवणिज्जे ?'

'सुया ! जन्नं कोहमाणमायालोभा खीणा, उवसंता, नो उदयंति, से तं नोइंदियजवणिज्जे।'

तत्पश्चात् शुक ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा-'भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?'

(थावच्चापुत्र-) हे शुक ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम आदि योगों से षट्काय के जीवों की यतना करना हमारी यात्रा है।

शुक—'भगवन् ! यापनीय क्या है ?'

थावच्चापुत्र—शुक ! यापनीय दो प्रकार का है-इन्द्रिययापनीय और नो इन्द्रिययापनीय।

'इन्द्रिययापनीय किसे कहते हैं ?'

'शुक ! हमारी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय बिना किसी उपद्रव के वशीभूत रहती हैं, वही हमारा इन्द्रिय-यापनीय है।'

'नो इन्द्रिययापनीय क्या है ?'

'हे शुक ! क्रोध मान माया लोभ रूप कषाय क्षीण हो गये हों, उपशांत हो गये हों, उदय में न आ रहे हो, वही हमारा नोइन्द्रययापनीय कहलाता है।'

'से किं तं भंते ! अव्वाबाहं ?'

'सुया ! जन्नं मम वाइयपित्तियसिंभियसन्निवाइया विविहा रोगा-यंका णो उदीरेंति, से तं अव्वाबाहं।'

'से किं तं भंते ! फासुयविहारं ?'

'सुया ! जन्नं आरामेसु उज्जाणेसु देवउलेसु सभासु पवासु इत्थि-पसुपंडगविवज्जियासु वसहीसु पाडिहारियं पीढफलगसेज्जासंथारयं उग्गिण्हित्ता णं विहरामि, से तं फासुयविहारं।'

शुक ने कहा—'भगवन् ! प्रासुक विहार क्या है ?'

'हे शुक ! जो वात पित्त कफ और सन्निपात (दो अथवा तीन का मिश्रण) आदि सम्बन्धी विविध प्रकार के रोग (उपायसाध्य व्याधि) और आतंक (तत्काल प्राणनाशक व्याधि) उदय में न आवें, वह हमारा अव्याबाध है।'

'भगवन्' प्रासुक विहार क्या है ?'

'हे शुक ! हम जो आराम में, उद्यान में, देवकुल में, सभा में, प्याऊ में तथा स्त्री पशु और नपुंसक से रहित उपाश्रय में पडिहारी (वापिस लौटा देने योग्य) पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि ग्रहण करके विचरते हैं, सो वह हमारा प्रासुक विहार है।'

सरिसवया ते भंते ! भक्खेया अभक्खेया ?'

'सुया ! सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि।'

'से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि ?'

'सुया ! सरिसवया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—मित्तसरिसवया धन्नसरिसवया य। तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवया ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—सहजायया, सहवड्ढियया, सहपंसुकीलियया। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जे ते धन्नसरिसवया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य। तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया तं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—फासुगा य अफासुगा य। अफासुगा णं सुया ! नो भक्खेया। तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—जाइया य अजाइया य। तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य। तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जे ते अलद्धा ते अभक्खेया। तत्थ णं जे ते लद्धा ते निग्गंथाणं भक्खेया। एएणं अट्ठेणं, सुया ! एवं वुच्चइ सरिसवया भक्खेया वि, अभक्खेया वि।

शुक परिव्राजक ने प्रश्न किया भगवन् ! आपके लिये 'सरिसवया' भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं ?'

थावच्चापुत्र ने उत्तर दिया—'हे शुक ! 'सरिसवया' हमारे लिए भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी है।'

शुक ने पुनः प्रश्न किया—'भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हो कि सरिसवया' भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं ?'

थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं—'हे शुक ! सरिसवया दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकारः-मित्र सरिसवया और धान्यसरिसवया (सरसो)। इनमे जो मित्रसरिसवया हैं, वे तीन प्रकार के कहे गये है। वे इस प्रकार (१) साथ जन्मे हुए, (२) साथ बढ़े हुए और (३) साथ-साथ धूल में खेले हुए। यह तीनों प्रकार के मित्र सरिसवया श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

उनमे जो धान्यसरिसवया (सरसों) हैं, वे दो प्रकार के हैं। वह इस प्रकार शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। उनमे जो अशस्त्रपरिणत हैं अर्थात् जिनको अचित्त करने के लिए अग्नि आदि शस्त्रो का प्रयोग नहीं किया गया है, अतएव जो अचित्त नही हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। उनमे जो शस्त्रपरिणत हैं, वे दो प्रकार के हैं। वह इस प्रकार प्रासुक और अप्रासुक। हे शुक ! अप्रासुक भक्ष्य नहीं है। उनमें जो प्रासुक हैं, वे दो प्रकार के कहे हैं। वह इस प्रकार याचित (याचना किये हुए) और अयाचित (नही याचना किये हुए)। उनमें जो अयाचित हैं, वे अभक्ष्य हैं। उनमें जो याचित हैं, वे दो प्रकार के हैं। वह इस प्रकार एषणीय और अनेषणीय। उनमें जो अनेषणीय हैं वे अभक्ष्य हैं। जो एषणीय है, वे दो प्रकार के कहे हैं। वह इस प्रकार लब्ध (प्राप्त) और अलब्ध (अप्राप्त)। उनमे जो अलब्ध हैं, वे अभक्ष्य हैं। जो लब्ध हैं वे निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य हैं। हे शुक ! इस अभिप्राय से कहा है कि सरिसवया भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं।'

एवं कुलत्था वि भाणियव्वा। नवरि इमं नाणत्तं—इत्थिकुलत्था य धन्नकुलत्था य। इत्थिकुलत्था तिविहा पन्नत्ता, तंजहा—कुलवधुया य, कुलमाउया य, कुलधूया य। धन्नकुलत्था तहेव।

इसी प्रकार 'कुलत्था' भी कहना चाहिए, अर्थात जैसे सरिसवया के संबंध में प्रश्न और उत्तर ऊपर कहे हैं, वैसे ही कुलत्था के विषय में कहने चाहिए। विशेषता इस प्रकार है—कुलत्था के दो भेद हैं—स्त्रीकुलत्था (कुल मे स्थित महिला) और धान्यकुलत्था अर्थात् कुलथ नामक धान्य। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार कुलवधू कुलमाता और कुलपुत्री। यह

अभक्ष्य है। धान्यकुलत्था भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं, इत्यादि सरिसवया के समान समझना चाहिए।

एवं मासा वि। नवरि इमं नाणत्तं–मासा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–कालमासा य, अत्थमासा य, धन्नमासा य। तत्थ णं जे ते कालमासा ते णं दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा–सावणे जाव आसाढे, ते णं अभक्खेया। अत्थमासा दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–हिरन्नमासा य सुवण्णमासा य। ते णं अभक्खेया। धन्नमासा तहेव।

मास संबंधी प्रश्नोत्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेषता इस प्रकार है–मास तीन प्रकार के कहे गये हैं। वह इस प्रकार–कालमास, अर्थमास और धान्यमास। इसमें से कालमास बारह प्रकार के कहे हैं। वे इस प्रकार–श्रावण यावत् आषाढ़, अर्थात् श्रावणमास से लगा कर आषाढ़ मास तक। वे सब अभक्ष्य हैं अर्थमास अर्थात् अर्थरूप माशा दो प्रकार के कहे हैं–चाँदी का माशा और सोने का माशा। वे भी अभक्ष्य हैं। धान्यमास अर्थात् उड़द भक्ष्य भी हैं। इत्यादि सरिसवया के समान कहना चाहिए।

'एगे भवं ? दुवे भवं ? अणेगे भवं ? अक्खए भवं ? अव्वए भवं ? अवट्ठिए भवं ? अणेगभूयभावभविए वि भवं ?

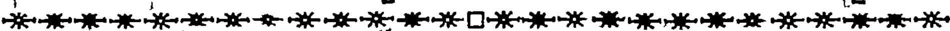
'सुया ! एगे वि अहं, दुवे वि अहं, जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं।'

'से केणट्ठेणं भंते ! एगे वि अहं जाव........ ?

'सुया ! दव्वट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूयभावभविए वि अहं।'

शुक परिव्राजक ने पुनः प्रश्न किया–'आप एक हैं ? आप दो हैं ? आप अनेक हैं ? आप अक्षय हैं ? आप अव्यय हैं ? आप अवस्थित है ? आप भूत, भाव और भावी वाले हैं ?'

(यह प्रश्न करने का परिव्राजक का अभिप्राय यह है कि अगर थावच्चापुत्र अनगार आत्मा को एक कहेंगे तो श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान और शरीर के अवयव अनेक होने से आत्मा की अनेकता का प्रतिपादन करके



एकता का खंडन करूँगा। अगर वे आत्मा का द्वित्व स्वीकार करेंगे तो 'अहम्-मैं' प्रत्यय से होने वाली एकता की प्रतीति से विरोध बतलाऊँगा। इसी प्रकार आत्मा की नित्यता स्वीकार करेंगे तो मैं अनित्यता का प्रतिपादन करके खंडन करूँगा। यदि अनित्यता स्वीकार करेंगे तो उसके विरोधी पक्ष को अंगीकार करके नित्यता का समर्थन करूँगा। मगर परिव्राजक के अभिप्राय को असफल बनाते हुए, अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर थावच्चापुत्र उत्तर देते हैं-)

'हे शुक ! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूँ क्योंकि जीवद्रव्य एक ही है। (यहाँ द्रव्य से एकत्व स्वीकार करने से पर्याय की अपेक्षा अनेकत्व मानने में विरोध नहीं रहा।) ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं दो भी हूं। प्रदेशों की अपेक्षा से मैं अक्षय भी हूँ. अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूं। (क्योंकि आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं और उनका कभी पूरी तरह क्षय नहीं होता, थोड़े-से प्रदेशों का भी व्यय नहीं होता, उसका असंख्यात प्रदेशीपन सदैव अवस्थित-नित्य रहता है।) और उपयोग की अपेक्षा से अनेक भूत (अतीतकालीन), भाव (वर्त्तमान कालीन और भावी (भविष्यत् कालीन), भी हूं, अर्थात् अनित्य भी हूं। तात्पर्य यह है कि उपयोग आत्मा का गुण है, आत्मा से कथंचित् अभिन्न है। और वह भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् कालीन विषयों को जानता है और सदैव पलटता रहता है। इस प्रकार उपयोग अनित्य होने से आत्मा भी कथंचित् अनित्य है।

एत्थ णं से सुए संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-'इच्छामि णं भंते ! तुब्भे अंतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए।' धम्मकहा भाणियव्वा।

तए णं से सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वयासी-'इच्छामि णं भंते ! परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइत्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया !' जाव उत्तरपुरच्छिमे दिसीभागे तिदंडयं जाव धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडित्ता सयमेव सिहं उप्पाडेइ, उप्पाडित्ता जेणेव थावच्चापुत्ते० मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए। सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। तए णं थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगारसहस्सं सीसत्ताए वियरइ।

थावच्चापुत्र के उत्तर से उस शुक परिव्राजक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसने थावच्चापुत्र को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा–'भगवन् ! मैं आपके पास से केवली प्ररूपित धर्म सुनने की अभिलाषा करता हूँ।' यहाँ धर्मकथा कहनी चाहिए।

तत्पश्चात् शुक परिव्राजक थावच्चापुत्र से धर्म सुन कर और उसे हृदय मे धारण करके इस प्रकार बोला–'भगवन् ! मैं एक हजार परिव्राजकों के साथ देवानुप्रिय के निकट, मुंडित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूं।'

थावच्चापुत्र अनगार बोले–'देवानुप्रिय ! जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो।' यह सुनकर यावत् उत्तरपूर्व दिशा मे जाकर शुक परिव्राजक ने त्रिदंड यावत् गेरु से रंगे वस्त्र एकान्त मे उतार डाले। अपने ही हाथ से शिखा उखाड़ ली। उखाड़ कर जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे वहाँ आया। मुंडित होकर यावत् दीक्षित हो गया। फिर सामायिक से आरंभ करके चौदह पूर्वों को अध्ययन किया। तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने शुक को एक हजार अनगार शिष्य के रूप में प्रदान किये।'

तए णं थावच्चापुत्ते सोगंधियाओ नयरीओ नीलासोयाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुंडरीयं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहइ। दुरूहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलापट्टयं जाव पाओवगमणं समणुवन्ने।

तए णं से थावच्चापुत्ते बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए जाव केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे जाव पहीणे।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार सौगंधिका नगरी से और नीलाशोक उद्यान से निकले। निकल कर जनपदविहार अर्थात् विभिन्न देशों मे विचरण करने लगे तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र (अपना अन्तिम समय सन्निकट समझ कर) हजार साधुओं के साथ जहाँ पुण्डरीक-शत्रुंजयपर्वत था, वहाँ आये। आकर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर उन्होंने मेघघटा के समान श्याम और जहाँ देवो का आगमन होता था ऐसे पृथ्वीशिलापट्टक पर आरूढ़ होकर यावत् पादपोपगमन अनशन ग्रहण किया।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय पाल कर, एक मास की संलेखना करके, साठ भक्तों का अनशन करके यावत् केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न करके तत्पश्चात् सिद्ध हुए, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

तए णं से सुए अन्नया कयाइं जेणेव सेलगपुरे नयरे, जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव समोसरिए। परिसा निग्गया, सेलओ निग्गच्छइ। धम्मं सोच्चा जं णवरं—'देवाणुप्पिया! पंथगपामोक्खाइं पंच मंतिसयाइं आपुच्छामि, मंडुयं च कुमारं रज्जे ठावेमि, तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

तत्पश्चात् शुक अनगार किसी समय जहाँ शैलकपुर नगर था और जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहीं पधारे। उन्हें वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। शैलक राजा भी निकला। धर्म सुन कर उसे प्रतिबोध प्राप्त हुआ। विशेष यह कि राजा ने निवेदन किया—हे देवानुप्रिय! मैं पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों से पूछ लूँ—उनकी अनुमति ले लूँ, और मंडुक कुमार को राज्य पर स्थापित कर दूं। उसके पश्चात् आप देवानुप्रिय के समीप मुंडित होकर गृहवास से निकल कर अनगारदीक्षा अंगीकार करूँगा।'

यह सुन कर शुक अनगार ने कहा—'जैसे सुख उपजे वैसा करो।'

तए णं से सेलए राया सेलगपुरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणं सन्निसन्ने।

तए णं से सेलए राया पंथयपामोक्खे पंच मंतिसए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! मए सुयस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य धम्मे मए इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। अहं णं देवाणुप्पिया! संसारभयउव्विग्गे जाव पव्वयामि। तुब्भे णं देवाणुप्पिया! किं करेह? किं वसेह? किं वा ते हियइच्छं ति?

तए णं तं पंथयपामोक्खा सेलगं रायं एवं वयासी—'जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसार० जाव पव्वयह, अम्हाणं देवाणुप्पिया! किमन्ने

आहारे वा आलंबे वा? अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया! संसारभय-उव्विग्गा जाव पव्वयामो, जहा देवाणुप्पिया! अम्हं बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य जाव तहा णं पव्वइयाण वि समाणाणं बहुसु जाव चक्खुभूए।

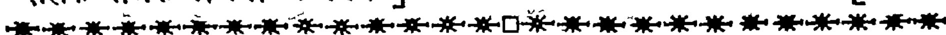
तत्पश्चात् शैलक राजा ने शैलकपुर नगर मे प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ अपना घर था और जहाँ बाहर की उपस्थानशाला (राजसभा) थी, वहाँ आया। आकर सिंहासन पर बैठा।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! मैंने शुक अनगार से धर्म सुना है और उस धर्म की मैंने इच्छा की है। वह धर्म मुझे रुचा है। अतएव हे देवानुप्रियो! मैं संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् दीक्षा ग्रहण कर रहा हूं। देवानुप्रियो! तुम क्या करोगे? कहाँ रहोगे? तुम्हारा हित और इच्छित क्या है?

तत्पश्चात् वे पथक आदि मंत्री शैलक राजा से इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रिय! यदि आप संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् प्रव्रजित होना चाहते हैं, तो हे देवानुप्रिय! हमारा दूसरा आधार कौन है? हमारा आलंबन कौन है? अतएव हे देवानुप्रिय! हम भी संसार के भय से उद्विग्न होकर दीक्षा अंगीकार करेंगे। हे देवानुप्रिय! जैसे हम यहाँ गृहस्थावस्था में बहुत-से कार्यों में तथा कारणों में यावत् आपके मार्गदर्शक हैं, उसी प्रकार दीक्षित होकर भी आपके बहुत-से कार्य-कारणों में यावत् चक्षुभूत (मार्ग प्रदर्शक) होंगे।

तए णं से सेलगे पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए एवं वयासी—'जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे संसार० जाव पव्वयह, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! सएसु सएसु कुडुंबेसु जेट्ठे पुत्ते कुडुंबमज्झे ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह' त्ति। तहेव पाउब्भवंति।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पथक प्रभृति पाँच सौ मंत्रियों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हुए हो, यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहते हो तो, देवानुप्रियो! जाओ और अपने-अपने कुटुम्बों में अपने अपने ज्येष्ठ पुत्रों को कुटुम्ब के मध्य में स्थापित करके हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे समीप प्रकट होओ।' यह सुन



कर पाँच सौ मंत्री गये, राजा के आदेशानुसार कार्य करके शिविकाओं पर आरूढ़ होकर राजा के पास प्रकट हुए-आये।

तए णं से सेलए राया पंच मंतिसयाइं पाउब्भवमाणाइं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं जाव रायाभिसेयं उवट्ठवेह०।' अभिसिंचइ जाव राया जाए, जाव विहरइ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पाँच सौ मंत्रियों को अपने पास आया देखा। देखकर हृष्ट-तुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही मंडुक कुमार के महान् अर्थ वाले राज्याभिषेक की तैयारी करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया। शैलक राजा ने राज्याभिषेक किया। मंडुक राजा हो गया, यावत् सुखपूर्वक विचरने लगा।

तए णं से सेलए मंडुयं रायं आपुच्छइ। तए णं से मंडुए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'खिप्पामेव सेलगपुरं नयरं आसित्त जाव गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करित्ता कारवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।'

तए णं से मंडुए दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'खिप्पामेव सेलगस्स रण्णो महत्थं जाव निक्खमणाभिसेयं' जहेव मेहस्स तहेव, णवरं पउमावई देवी अग्गकेसे पडिच्छइ। सव्वे वि पडिग्गहं गहाय सीयं दुरूहंति, अवसेसं तहेव, जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव विहरइ।

तत्पश्चात् शैलक ने मंडुक राजा से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। तब मंडुक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा-'शीघ्र ही शैलकपुर नगर को स्वच्छ और सिंचित करके सुगंध की बट्टी के समान करो और कराओ। ऐसा करके और कराकर यह आज्ञा मुझे वापिस सौंपो अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो।

तत्पश्चात् मंडुक राजा ने दुबारा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा-शीघ्र ही शैलक महाराजा के महान् अर्थ वाले (बहुव्यय-साध्य) यावत् दीक्षाभिषेक की तैयारी करो।' जिस प्रकार मेघकुमार के अध्ययन

में कहा था, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि पद्मावती देवी ने शैलक के अग्रकेश ग्रहण किये। सभी दीक्षार्थी प्रतिग्रह-पात्र आदि ग्रहण करके शिबिका पर आरूढ़ हुए। शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् राजर्षि शैलक ने दीक्षित होकर सामायिक से आरंभ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत-से उपवास आदि करते हुए यावत् विचरने लगे।

तए णं से सुए सेलयस्स अणगारस्स ताइं पंथयपामोक्खाइं पंच अणगारसयाइं सीसत्ताए वियरइ।

तए णं से सुए अन्नया कयाइं सेलगपुराओ नगराओ सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए णं से सुए अणगारे अन्नया कयाइं तेणं अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं विहरमाणे जेणेव पोंडरीए पव्वए जाव सिद्धे॥

तत्पश्चात् शुक अनगार ने शैलक अनगार को पंथक प्रभृति पाँच सौ अनगार शिष्य रूप में प्रदान किये।

तत्पश्चात् शुक मुनि किसी समय शैलकपुर नगर से और सुभूमिभाग उद्यान से निकले। निकल कर बाहर जनपद विहार से विचरने लगे।

तत्पश्चात् वह शुक अनगार एक हजार अनगारों के साथ अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपना अन्तिम समय समीप आया जान कर पुंडरीक पर्वत पर पधारे यावत् सिद्ध हुए।

तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स तेहिं अंतेहि य, पंतेहि य, तुच्छेहि य, लूहेहि य, अरसेहि य, विरसेहि य, सीएहि य, उण्हेहि य, कालाइक्कंतेहि य, पमाणाइक्कंतेहि य णिच्चं पाणभोयणेहि य पयइसुकुमालस्स सुहोचियस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा, कंडुयदाहपित्तज्जरपरिगयसरीरे यावि विहरइ। तए णं से सेलए तेणं रोगायंकेणं सुक्के जाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् प्रकृति से सुकुमार और सुखभोग के योग्य शैलक राजर्षि के शरीर में अन्त (चना आदि), प्रान्त (ठंडा या बचाखुचा), तुच्छ (अल्प), रूक्ष (रूखा), अरस (हींग आदि के संस्कार से रहित), विरस (स्वादहीन), ठंडा-गरम, कालातिक्रान्त (भूख का समय बीत जाने पर प्राप्त) और प्रमाणातिक्रान्त (कम या ज्यादा भोजन-पान नित्य मिलने के कारण वेदना उत्पन्न हो गई। वह वेदना उत्कट यावत् दुस्सह थी। उनका शरीर खुजली और दाह उत्पन्न करने वाले पित्तज्वर से व्याप्त हो गया। तब वह शैलक राजर्षि उस रोगातंक से शुष्क हो गये, अर्थात् उनका शरीर सूख गया।

तए णं से सेलए अन्नया कयाइं पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव विहरइ। परिसा निग्गया, मंडुओ वि निग्गओ, सेलयं अणगारं जाव वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पज्जुवासइ।

तए णं से मंडुए राया सेलयस्स अणगारस्स शरीरयं सुक्कं भुक्कं जाव सव्वाबाहं सरोगं पासइ, पासित्ता एवं वयासी-'अहं णं भंते! तुब्भं अहापवित्तेहिं तिगिच्छिएहिं अहापवित्तेणं ओसहभेसज्जेणं भत्तपाणेणं तिगिच्छं आउट्टामि, तुब्भे णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह, फासुअं एसणिज्जं पीढफलगसेज्जासंथारगं ओगिण्हित्ताणं विहरह।

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि किसी समय अनुक्रम से विचरते हुए यावत् जहाँ सुभूमिभाग नामक उद्यान था, वहाँ आकर विचरने लगे। उन्हे वंदना करने के लिए परिषद् निकली। मंडुक राजा भी निकला। शैलक अनगार को सब ने वंदन किया, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके उपासना की। उस समय मंडुक राजा ने शैलक अनगार का शरीर शुष्क, निस्तेज यावत् सब प्रकार की पीड़ावाला और रोगयुक्त देखा। देख कर इस प्रकार कहा—

'भगवन्! मैं आपकी साधु के योग्य चिकित्सको से, साधु के योग्य औषध और भेषज के द्वारा तथा भोजन-पान द्वारा चिकित्सा कराऊँ। हे भगवन्! आप मेरी यानशाला मे पधारिए और प्रासुक एव एषणीय पीठ, फलक, शय्या तथा संस्तारक ग्रहण करके विचरिए।

तए णं से सेलए अणगारे मंडुयस्स रण्णो एयमट्ठं तह त्ति पडि-

सुणेइ। तए णं से मंडुए सेलयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तए णं से सेलए कल्लं जाव जलंते सभंडमत्तोवगरणमायाय पंथगपामोक्खेहिं पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं सेलगपुरमणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मंडुयस्स जाणसाला तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता फासुयं पीढ० जाव विहरइ।

तत्पश्चात् शैलक अनगार ने मंडुक राजा के इस अर्थ को (विज्ञप्ति को) 'ठीक है' ऐसा कह कर स्वीकार किया। तब मंडुक राजा ने शैलक को वन्दना की, नमस्कार किया और वन्दना नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

तत्पश्चात् वह शैलक राजर्षि कल (दूसरे दिन) सूर्य के देदीप्यमान होने पर भंडमात्र (पात्र) और उपकरण लेकर पंथक प्रभृति पाँच सौ मुनियों के साथ शैलकपुर में प्रविष्ट हुए। प्रवेश करके जहाँ मंडुक राजा की यानशाला थी, उधर आये। आकर प्रासुक पीठ फलक आदि ग्रहण करके विचरने लगे।

तए णं से मंडुए राया चिगिच्छए सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! सेलयस्स फासुयएसणिज्जेणं जाव तेगिच्छं आउट्टेह।'

तए णं तेगिच्छया मंडुएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सेलयस्स रायरिसिस्स अहापवित्तेहिं ओसहभेसज्जभत्तपाणेहिं तेगिच्छं आउट्टेंति। मज्जपाणयं च से उवदिसंति।

तए णं तस्स सेलयस्स अहापवित्तेहिं जाव मज्जपाणेणं रोगायंके उवसंते होत्था, हट्ठे जाव बलियसरीरे जाए ववगयरोगायंके।

तत्पश्चात् मंडुक राजा ने चिकित्सकों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम शैलक राजर्षि की प्रासुक और एषणीय औषध आदि से यावत् चिकित्सा करो।

तब चिकित्सक मंडुक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने साधु के योग्य औषध, भेषज एवं भोजन-पान से चिकित्सा की और मद्यपान करने के लिए कहा।

तत्पश्चात् साधु के योग्य औषध आदि से तथा मद्यपान से शैलक राजर्षि का रोगातक शान्त हो गया। वह हृष्टपुष्ट यावत् बलवान् शरीर वाले हो गए। उनके रोगातंक पूरी तरह दूर हो गये।

तए णं से सेलए तंमि रोगायंकंसि उवसंतंसि समाणंसि, तंसि विपुलंसि असणपाणखाइमसाइमंसि मज्जपाणए य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववन्ने ओसन्ने ओसन्नविहारी एवं पासत्थे पासत्थविहारी, कुसीले कुसीलविहारी, पमत्ते पमत्तविहारी, संसत्ते संसत्तविहारी, उउबद्धपीढ-फलगसेज्जासंथारए पमत्ते यावि विहरइ। नो संचाएइ फासुयं एसणिज्जं पीढं पच्चप्पिणित्ता मंडुयं च रायं आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरित्तए।

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि उस रोगातंक के उपशान्त हो जाने पर उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में एवं मद्यपान में मूर्छित, मत्त, गृद्ध और अत्यन्त आसक्त हो गये। वह अवसन्न–आलसी अर्थात् आवश्यक आदि क्रिया सम्यक् प्रकार से न करने वाले, अवसन्नविहारी अर्थात् लगातार बहुत दिनों तक आलस्यमय जीवन यापन करने वाले हो गये। इसी प्रकार पार्श्वस्थ (ज्ञान दर्शन चारित्र को एक किनारे रख देने वाले) तथा पार्श्वस्थविहारी अर्थात् बहुत समय तक ज्ञानादि को एक किनारे रख देने वाले, कुशील अर्थात् काल विनय आदि भेद वाले ज्ञान दर्शन और चारित्र के आचारो के विराधक, बहुत समय तक इनके विराधक होने के कारण कुशील विहारी तथा प्रमत्त (पाँच प्रकार के प्रमाद से युक्त), प्रमत्तविहारी, संसक्त (कदाचित् संविग्न के और कदाचित् पर्श्वस्थ के गुणों से युक्त तथा तीन गौरव वाले तथा संसक्त-विहारी हो गये। शेष (वर्षाऋतु के सिवाय) काल में भी शय्या–सस्तारक के लिए पीठ–फलक रखने वाले प्रमादी हो गये। वह प्रासुक तथा एषणीय पीठ फलक आदि को वापिस देकर और मंडुक राजा से अनुमति लेकर बाहर यावत् जनपद–विहार करने में असमर्थ हो गए।

तए णं तेसिं पंथयवज्जाणं पंचण्हं अणगारसयाणं अन्नया कयाइं एगयओ सहियाणं जाव पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणाणं अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–'एवं खलु सेलए रायरिसी चइत्ता रज्जं पव्वइए, विपुलं णं असणपाणखाइम-साइमे मज्जपाणए मुच्छिए, नो संचाएइ जाव विहरित्तए, नो खलु

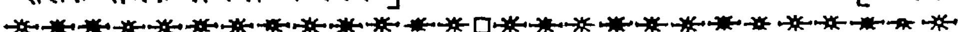
कप्पइ देवाणुप्पिया ! समणाणं जाव पमत्ताणं विहरित्तए । तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं कल्लं सेलयं रायरिसिं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढफलगसेज्जासंथारयं पच्चप्पिणित्ता सेलगस्स अणगारस्स पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठवेत्ता बहिया अब्भुज्जएणं जाव विहरित्तए ।' एवं संपेहेंति, संपेहित्ता कल्लं जेणेव सेलए आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढफलगसेज्जासंथारयं पच्चप्पिणंति, पच्चप्पिणित्ता पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेंति, ठावित्ता बहिया जाव विहरंति ।

तत्पश्चात् पथक को छोड़ कर वे पाँच सौ अनगार किसी समय इकट्ठे हुए । यावत् मध्य रात्रि के समय धर्मजागरणा करते हुए उन्हे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि-शैलक राजर्षि राज्य का त्याग करके यावत् दीक्षित हुए, किन्तु अब विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम में तथा मद्यपान में मूर्छित हो गये है । वह जनपदविहार करने में समर्थ नही हैं । हे देवानुप्रियो ! श्रमणो को प्रमादी होकर रहना-नहीं कल्पता है । अतएव देवानुप्रियो ! हमारे लिए यह श्रेयस्कर है कि कल शैलक राजर्षि से आज्ञा लेकर और पडिहारी पीठ फलग शय्या एवं संस्तारक वापिस सौंप कर, पंथक अनगार को शैलक अनगार का वैयावृत्यकारी स्थापित करके अर्थात् सेवा में नियुक्त करके, बाहर जनपद में अभ्युद्यत अर्थात् उद्यम सहित विचरण करें ।' उन मुनियो ने ऐसा विचार किया । विचार करके कल अर्थात् दूसरे दिन शैलक राजर्षि के समीप जाकर, उनकी आज्ञा लेकर, प्रतिहारी पीठ फलग शय्या संस्तारक वापिस दे दिये । वापिस देकर पथक अनगार को वैयावृत्यकारी नियुक्त किया-उनकी सेवा में रक्खा । रख कर बाहर यावत् विचरने लगे ।

तए णं से पंथए सेलयस्स सेज्जासंथारउच्चारपासवणखेलसंघाणमत्त-ओसहभेसज्जभत्तपाणएणं अगिलाए विणएणं वेयावडियं करेइ ।

तए णं से सेलए अन्नया कयाइं कत्तियचाउम्मासियंसि विपुलं असणपाणखाइमसाइमं आहारमाहारिए सुबहुं मज्जपाणयं पीए पुव्वावरण्हकालसमयंसि सुहप्पसुत्ते ।

तत्पश्चात् वह पथक अनगार शैलक राजर्षि की शय्या, संस्तारक उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म संघाण (नासिका-मल) के पात्र, औषध, भेषज, आहार, पानी आदि से बिना ग्लानि, विनयपूर्वक वैयावृत्य करने लगे ।



तत्पश्चात् किसी समय शैलक राजर्षि कार्तिकी चौमासी के दिन विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार करके और बहुत अधिक मद्यपान करके सायकाल के समय आराम से सो रहे थे।

तए णं से पंथए कत्तियचाउम्मासियंसि कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते चाउम्मासियं पडिक्कमिउंकामे सेलयं रायरिसिं खामणट्ठयाए सीसेणं पाएसु संघट्टेइ।

तए णं से सेलए पंथएणं सीसेणं पाएसु संघट्टिए समाणे आसुरुत्ते जाव मिसमिसेमाणे उट्ठेइ, उट्ठित्ता एवं वयासी-'से केस णं भो! एस अपत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए जे णं ममं सुहपसुत्तं पाएसु संघट्टेइ?'

उस समय पंथक मुनि ने कार्तिक की चौमासी के दिन कायोत्सर्ग करके, दैवसिक प्रतिक्रमण करके, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा से, शैलक राजर्षि को खमाने के लिए अपने मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श किया।

पंथक शिष्य के द्वारा मस्तक से चरणों का स्पर्श करने पर शैलक राजर्षि तत्काल रुष्ट हुए, यावत् क्रोध से मिसमिसाने लगे और उठ गये। उठ कर बोले-अरे, कौन है यह अप्रार्थित (मौत) की इच्छा करने वाला, यावत् लज्जा आदि से रहित, जिसने सुखपूर्वक सोये हुए मेरे पैरों का स्पर्श किया?

तए णं से पंथए सेलएणं एवं वुत्ते समाणे भीए तत्थे तसिए करयल० कट्टु एवं वयासी-'अहं णं भंते! पंथए कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते, चाउम्मासियं पडिक्कंते चाउम्मासियं खामेमाणे देवाणुप्पियं वंदमाणे सीसेणं पाएसु संघट्टेमि। तं खमंतु णं देवाणुप्पिया! खमंतु मेऽवराहं, तुमं णं देवाणुप्पिया! णाइभुज्जो एवं करणयाए' त्ति कट्टु सेलयं अणगारं एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेइ।

शैलक ऋषि के इस प्रकार कहने पर पथक मुनि भयभीत हो गये, त्रास को और खेद को प्राप्त हुए। दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगे-'भगवन्! मैं पथक हूँ। मैंने कायोत्सर्ग करके दैवसिक प्रतिक्रमण किया है और चौमासी प्रतिक्रमण करता हूं। अतएव चौमासी खामणा देने के लिए आप देवानुप्रिय को वन्दना करते समय, मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों का स्पर्श किया है। सो

देवानुप्रिय ! क्षमा कीजिए, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। देवानुप्रिय ! फिर ऐसा नहीं करूँगा।' इस प्रकार कह कर शैलक अनगार को सम्यक् रूप से, विनयपूर्वक इस अर्थ (अपराध) के लिए पुनः पुनः खमाने लगे।

तए णं तस्स सेलयस्स रायरिसिस्स पंथएणं एवं वुत्तस्स अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं रज्जं च जाव ओसन्नो जाव उउबद्धपीढ० विहरामि। तं नो खलु कप्पइ समणाणं णिग्गंथाणं पासत्थाणं जाव विहरित्तए। तं सेयं खलु मे कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढफलगसेज्जासंथारयं पच्चप्पिणित्ता पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जाव जणवयविहारेणं विहरित्तए।' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव विहरइ।

पंथक के द्वारा इस प्रकार कहने पर उन शैलक राजर्षि को इस प्रकार का यह विचार उत्पन्न हुआ-'मैं राज्य आदि का त्याग करके भी यावत् अवसन्न-आलसी आदि होकर शेष काल मे भी पीठ फलक आदि रख कर विचर रहा हूँ—रह रहा हूं। श्रमण निर्ग्रन्थों को पार्श्वस्थ-शिथिलाचारी होकर रहना नहीं कल्पता। अतएव कल मंडुक राजा से पूछ कर पडिहारी पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक वापिस देकर, पंथक अनगार के साथ, बाहर अभ्युद्यत (उग्र) विहार से विचरना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।' उन्होंने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन यावत् उसी प्रकार करके विहार कर दिया।

एवामेव समणाउसो ! जाव निग्गंथो वा निग्गंथी वा ओसन्ने जाव संथारए पमत्ते विहरइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं हीलणिज्जे, संसारो भाणियव्वो।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी आलसी होकर, संस्तारक आदि के विषय में प्रमादी होकर रहता है, वह इसी लोक में बहुत-से श्रमणो, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की हीलना का पात्र होता है। यावत् वह चिरकाल पर्यन्त संसार-भ्रमण करता है। इस प्रकार संसार कहना चाहिए।

तए णं ते पंथगवज्जा पंच अणगारसया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'सेलए रायरिसी

पंथएणं बहिया जाव विहरइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सेलयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।' एवं संपेहेंति, संपेहित्ता सेलयं रायरिसिं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति ।

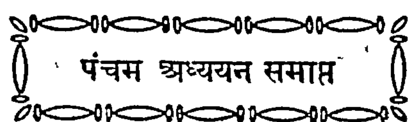
तत्पश्चात् पंथक को छोड़ कर पाँच सौ अनगारों (अर्थात ४९९ मुनियों) ने यह वृत्तान्त जाना । तब उन्होंने एक दूसरे को बुलाया । बुला कर इस प्रकार कहा—'शैलक राजर्षि पथक मुनि के साथ बाहर यावत् विचर रहे हैं, तो हे देवानुप्रियो ! हमें शैलक राजर्षि के समीप जाकर विचरना उचित है ।' उन्होंने ऐसा विचार किया । विचार करके राजर्षि शैलक के निकट जाकर विचरने लगे ।

तए णं ते सेलगपामोक्खा पंच अणगारसया बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणित्ता जेणेव पोंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छंति । उवागच्छित्ता जहेव थावच्चापुत्ते तहेव सिद्धा ।

तत्पश्चात शैलक प्रभृति पाँच सौ मुनि बहुत वर्षों तक संयमपर्याय पाल कर जहाँ पुंडरीक पर्वत था, वहाँ आये । आकर थावच्चापुत्र की भाँति सिद्ध हुए ।

एवामेव समणाउसो ! जो निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव विहरिस्सइ०, एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं पंचमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि ॥

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु या साध्वी इस तरह विचरेगा, वह सिद्धि प्राप्त करेगा । हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने पाँचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ फर्माया है । उनके कथनानुसार मैं कहता हूँ ।



छठा तुंबक अध्ययन



'जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, छट्ठस्स णं भंते! णायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?'

श्रीजम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि को प्राप्त ने पाँचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो हे भगवन्! छठे ज्ञाताध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि को प्राप्त ने क्या अर्थ कहा है?

एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णामं नयरे होत्था। तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए नामं राया होत्था। तस्स णं रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं गुण-सिलए नामं चेइए होत्था।

श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में कहा—हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में ईशान कोण में गुणशील नामक चैत्य (उद्यान) था।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव समोसढे। अहापडिरूवं उग्गहं गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-माणे विहरइ। परिसा निग्गया, सेणिओ वि निग्गओ, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विच-रते हुए, यावत् जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील चैत्य था, वहाँ पधारे। यथा योग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। भगवान् को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली।

श्रेणिक राजा भी निकला। भगवान् ने धर्म कहा। उसे सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे अदूरसामंते जाव सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं से इंदभूई जायसड्ढे समणस्स भगवओ महावीरस्स एवं वयासी—'कहं णं भंते! जीवा गुरुयत्तं वा लहुयत्तं वा हव्वमागच्छंति?'

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार न अधिक दूर और न अधिक समीप स्थान पर यावत् शुक्ल ध्यान में लीन होकर विचर रहे थे।

उस समय, जिन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई है ऐसे इन्द्रभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार कहा—'भगवन्! किस प्रकार जीव शीघ्र ही गुरुता अथवा लघुता को प्राप्त होते है?'

'गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं सुक्कं तुंबं णिच्छिड्डं निरुवहयं दब्भेहिं कुसेहिं वेढेइ, वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपई, उण्हे दलयइ, दलइत्ता सुक्कं समाणं दोच्चं पि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ, लिंपित्ता उण्हे सुक्कं समाणं तच्चं पि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढित्ता मट्टियालेवेणं लिंपइ। एवं खलु एएणुवाएणं अंतरा वेढेमाणे, अंतरा लिंपेमाणे, अंतरा सुक्कवेमाणे जाव अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं आलिंपइ, अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा। से णूणं गोयमा! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गुरुययाए भारिययाए गुरुयभारिययाए उप्पिं सलिलमइवइत्ता अहे धरणियलपइट्ठाणे भवइ।

एवामेव गोयमा! जीवा वि पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ समज्जिणंति। तासिं गुरुययाए भारिययाए गरुयभारिययाए कालमासे कालं किच्चा धरणियलमइवइत्ता

अहे नरगतलपइट्ठाणा भवंति। एवं खलु गोयमा! जीवा गुरुयत्तं हव्वमागच्छंति।

हे गौतम! यथानामक-कुछ भी नाम वाला, कोई पुरुष एक बड़े, सूखे, छिद्ररहित और अखंडित तूंबे को दर्भ (डाभ) से और कुश (दूब) से लपेटे और फिर मिट्टी के लेप से लींपे फिर धूप में रख दे। सूख जाने पर दूसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और फिर मिट्टी के लेप से लींप दे। लींप कर धूप में सूख जाने पर तीसरी बार दर्भ और कुश से लपेटे और लपेट कर मिट्टी का लेप चढ़ा दे। इसी प्रकार, इसी उपाय से बीच-बीच में दर्भ और कुश से लपेटता जाय, बीच-बीच मे लेप चढ़ाया जाय और बीच-बीच में सुखाता जाय, यावत् आठ मिट्टी के लेप उस तूंबे पर चढ़ावे। फिर उसे अथाह, जिसे तिरा न जा सके अपौरुषिक (जिसे पुरुष की ऊँचाई से नापा न जा सके) जल में डाल दिया जाय। तो निश्चय ही हे गौतम! वह तूंबा मिट्टी के आठ लेपों के कारण गुरुता को प्राप्त होकर, भारी होकर तथा गुरु एवं भारी होकर ऊपर रहे हुए जल को लांघ कर, नीचे धरती के तल भाग में स्थित हो जाता है।

इसी प्रकार हे गौतम! जीवन भी प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य से अर्थात् अठारह पापस्थानकों के सेवन से क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों का उपार्जन करते हैं। उन कर्मप्रकृतियों की गुरुता के कारण, भारीपन के कारण और गुरुता के भार के कारण, मृत्यु के समय मृत्यु को प्राप्त होकर, इस पृथ्वी-तल को लांघ कर नीचे नरक तल में स्थित होते हैं। इस प्रकार हे गौतम! जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं।

अहण्णं गोयमा! से तुंबे तंसि पढमिल्लुगंसि मट्टियालेवंसि तिन्नंसि कुहियंसि परिसडियंसि ईसिं धरणियलाओ उप्पइत्ता णं चिट्ठइ। ततोऽणंतरं च णं दोच्चं वि मट्टियालेवे जाव उप्पइत्ता णं चिट्ठइ। एवं खलु एएणं उवाएणं तेसु अट्ठसु मट्टियालेवेसु तिन्नेसु जाव विमुक्कबंधणे अहे धरणियलमइवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइ-ट्ठाणे भवइ।

अब हे गौतम! उस तूंबे का पहला (ऊपर का) मिट्टी का लेप गीला हो जाय, गल जाय और परिशटित (नष्ट) हो जाय तो वह तूंबा पृथ्वीतल से कुछ ऊपर आकर ठहरता है। तदनन्तर दूसरा मृतिकालेप हट जाय तो तूंबा

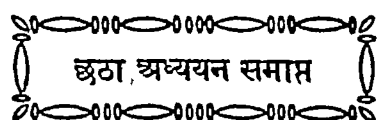
कुछ और ऊपर आ जाता है। इस प्रकार इस उपाय से उन आठों मृतिकालेपों के गीले हो जाने पर यावत् हट जाने पर तूंबा बन्धन मुक्त होकर धरणीतल को लांघ कर ऊपर जल की सतह पर स्थित हो जाता है।

एवामेव गोयमा ! जीवा पाणाइवाय वेरमणेणं जाव मिच्छादंसण-सल्लवेरमणेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्मपगडीओ खवेत्ता गगणतलमुप्पइत्ता उप्पिं लोयग्गपइट्ठाणा भवंति। एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति।

इसी प्रकार हे गौतम ! प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विरमण से क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों को खपा कर आकाशतल की ओर उड़ कर लोकाग्र भाग में स्थित हो जाते हैं। इस प्रकार हे गौतम ! जीव शीघ्र लघुत्व को पाते हैं।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं छट्ठस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि।

श्री सुधर्मास्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—'इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने छठे ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैं तुमसे कहता हूं।



सातवाँ रोहिणीज्ञात अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने छठे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवन् ! सातवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

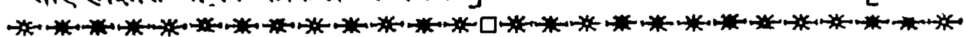
एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था । तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए नामं राया होत्था । तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए (सुभूमिभागे) उज्जाणे होत्था ।

तत्थ णं रायगिहे नयरे धण्णे नामं सत्थवाहे परिवसइ-अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्था, अहीणपंचिंदियसरीरा जाव सुरूवा ।

श्री सुधर्मास्वामी उत्तर देते हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था । उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था । उस राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा—ईशान कोण में गुणशील (सुभूमिभाग) उद्यान था ।

उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था, वह समृद्धिशाली था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था । उस धन्य सार्थवाह की भद्रा नामक भार्या थी । उसकी पाँचो इन्द्रियाँ और शरीर के अवयव परिपूर्ण थे, यावत् वह सुन्दर रूप वाली थी ।

तस्स णं धन्नस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए भारियाए अत्तया चत्तारि सत्थवाहदारया होत्था, तंजहा—धणपाले, धणदेवे, धणगोवे, धणरक्खिए ।



तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चउण्हं पुत्ताणं भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था, तंजहा–उज्झिया, भोगवइया, रक्खिया, रोहिणिया।

उस धन्य सार्थवाह के पुत्र और भद्रा भार्या के आत्मज (उदरजात) चार सार्थवाह पुत्र थे। वे इस प्रकार–धनपाल, धनदेव, धनगोप, धनरक्षित।

उस धन्य सार्थवाह के चार पुत्रो की चार भार्याएँ–सार्थवाह की पुत्रवधुएँ थीं। वे इस प्रकार–उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–'एवं खलु अहं रायगिहे णयरे बहूणं राईसर जाव पभिईणं सयस्स कुडुंबस्स बहुसु कज्जेसु य, करणिज्जेसु य, कुडुंबेसु य, मंतणेसु य, गुज्झे रहस्से निच्छए ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे, मेढी, पमाणे, आहारे, आलंबणे, चक्खू, मेढीभूए, सव्वकज्जवड्ढावए। तं ण णज्जइ जं मए गयंसि वा, चुयंसि वा, मयंसि वा, भग्गंसि वा, लुग्गंसि वा, सडियंसि वा, पडियंसि वा, विदेसत्थंसि वा, विप्पवसियंसि वा, इमस्स कुडुंबस्स किं मन्ने आहारे वा आलंबे वा पडिबंधे वा भविस्सइ ?

तं सेयं खलु मम कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता मित्तणाइणियगसयण० चउण्हं सुण्हाणं कुलघर-वग्गं आमंतेत्ता तं मित्तणाइणियगसयण० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघर-वग्गं विपुलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं धूवपुप्फवत्थगंध० जाव सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणट्ठयाए पंच पंच सालिअक्खए दलइत्ता जाणामि ताव का किहं वा सारक्खेइ वा, संगोवेइ वा, संवड्ढेइ वा ?

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को किसी समय, मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—' इस प्रकार निश्चय ही मैं राजगृह नगर मे राजा, ईश्वर यावत् तलवर आदि–आदि को और अपने कुटुम्ब के अनेक कार्यो मे, करणीयों में, कुटुम्बो में, मंत्रणाओ मे, गुप्त बातो मे, रहस्यमय बातो में निश्चय करने में, व्यवहारो (व्यापार) मे पूछने योग्य, बारम्बार पूछने योग्य, मेढी के समान, प्रमाणभूत, आधार, आलम्बन, चक्षु के समान पथदर्शक

मेढ़ीभूत और सब कार्यों की प्रवृत्ति कराने वाला हूं। अर्थात् राजा आदि सभी श्रेणियों के लोग सब प्रकार के कार्यों में मुझसे सलाह लेते हैं, मैं सब का विश्वासभाजन हूं। परन्तु न जाने मेरे कहीं दूसरी जगह चले जाने पर, किसी अनाचार के कारण अपने स्थान से च्युत हो जाने पर, मर जाने पर भग्न हो जाने पर अर्थात् वायु आदि के कारण लूला-लंगड़ा कुबड़ा होकर असमर्थ हो जाने पर, रुग्ण हो जाने पर, किसी रोग विशेष से विशीर्ण हो जाने पर, प्रासाद आदि से गिर जाने पर या बीमारी से खाट में पड़ जाने पर, परदेश में जाकर रहने पर अथवा घर से निकल कर विदेश जाने लिए प्रवृत्त होने पर मेरे कुटुम्ब का पृथ्वी की तरह आधार, रस्सी के समान अवलम्बन और बुहारू की सलाइयों के समान प्रतिबन्ध करने वाला—सब में एकता रखने वाला कौन होगा ?

अतएव मेरे लिए यह उचित होगा कि कल यावत् सूर्योदय होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम-यह चार प्रकार का आहार तैयार करवा कर मित्र, ज्ञाति, निजक और स्वजन सम्बन्धी आदि को तथा चारों वधुओं के कुलगृह (मैके) के समुदाय को आमंत्रित करके और उन मित्र ज्ञाति निजक स्वजन आदि तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृह वर्ग का अशन पान खादिम स्वादिम से तथा धूप पुष्प वस्त्र एवं गंध आदि से सत्कार करके, सन्मान करके, उन्हीं मित्र ज्ञाति आदि के समक्ष तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग (मैके के सभी लोगों) के समक्ष, पुत्रवधुओं की परीक्षा करने के लिए पाँच-पाँच शालि-अक्षत (चावल के दाने) दूं। इससे जान सकूँगा कि कौन पुत्रवधू किस प्रकार उनकी रक्षा करती है, सार-सँभाल रखती है या बढ़ाती है ?

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव मित्तणाइ० चउण्हं सुण्हाणं कुलघरवग्गं आमंतेइ, आमंतित्ता विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ।

धन्य सार्थवाह ने इस प्रकार विचार करके दूसरे दिन मित्र, ज्ञाति आदि को तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग को आमंत्रित किया। आमंत्रित करके विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया।

तओ पच्छा ण्हाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गेणं सद्धिं तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव

मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालि-अक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेट्ठा सुण्हा उज्झिइया तं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, गेण्हित्ता अणुपुव्वेणं सारक्खेमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिदिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु सुण्हाए हत्थे दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

उसके बाद धन्य सार्थवाह ने स्नान किया। वह भोजन मंडप में उत्तम सुखासन पर बैठा। फिर मित्र, ज्ञाति आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुल-गृहवर्ग के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भोजन करके, यावत् उन सब का सत्कार किया, सन्मान किया; सत्कार-सम्मान करके उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने पाँच चावल के दाने लिये। लेकर जेठी पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—हे पुत्री ! तुम मेरे हाथ से यह पाँच चावल के दाने लो। इन्हे लेकर अनुक्रम से इनका संरक्षण और संगोपन करती रहो। हे पुत्री ! जब मैं तुम से यह पाँच चावल के दाने माँगूँ, तब तुम यह पाँच चावल के दाने मुझे वापिस लौटाना।' इस प्रकार कह कर पुत्र वधू के हाथ में वह दाने दे दिये। देकर उसे विदा किया।

तए णं सा उज्झिया धण्णस्स तह त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जेत्था:—'एवं खलु तायाणं कोट्ठागारंसि बहवे पल्ला सालीणं पडिपुण्णा चिट्ठंति, तं जया णं ममं ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएस्सइ, तया णं अहं पल्लंतराओ अन्ने पंच सालि-अक्खए गहाय दाहामि' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ते पंच सालि-अक्खए एगंते एडेइ, एडित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् उस उज्झिका ने धन्य सार्थवाह के इस अर्थ—आदेश—को 'तहत्ति—बहुत अच्छा' इस प्रकार कह कर अंगीकार किया। अंगीकार करके धन्य सार्थवाह के हाथ से पाँच शालि—अक्षत (चांवल के दाने) ग्रहण किये।



ग्रहण करके एकान्त में गई। वहाँ जाकर उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–'इस प्रकार निश्चय ही पिता (श्वसुर) के कोठार में शालि से भरे हुए बहुत से पल्य विद्यमान हैं। सो जब पिता मुझसे यह पाँच शालिअक्षत माँगेंगे, तब मैं दूसरे पल्य से दूसरे शालि-अक्षत लेकर दे दूंगी।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके उसने उन पाँच चावल के दानों को एकान्त मे डाल दिया और डाल कर अपने काम में लग गई।

एवं भोगवईयाए वि, णवरं सा छोल्लेइ, छोल्लित्ता अणुगिलइ, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया। एवं रक्खियां वि, णवरं गेण्हइ, गेण्हित्ता इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु ममं ताओ इमस्स मित्तनाइ० चउण्ह सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ सद्दावेत्ता एवं वयासी–'तुमं णं पुत्ता! मम हत्थाओ जाव पडिदिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयइ, तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं' ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवेइ, पक्खिवित्ता ऊसीसा-मूले ठावेइ, ठावित्ता तिसंझं पडिजागरमाणी विहरइ।

इसी प्रकार दूसरी पुत्रवधू भोगवती को भी बुलाकर पाँच दाने दिये, इत्यादि। विशेष यह है कि उसने वह दाने छीले और छील कर निगल गई। निगल कर अपने काम में लग गई।

इसी प्रकार रक्षिका के विषय मे जानना चाहिए। विशेषता यह है कि–उसने वह दाने लिये। लेने पर उसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि–मेरे पिता (श्वसुर) ने मित्र ज्ञाति आदि के तथा चारों बहुओं के कुलगृहवर्ग के सामने मुझे बुला कर यह कहा है कि–'पुत्री! तुम मेरे हाथ से यह पाँच दाने लो, यावत् जब मैं माँगू तो लौटा देना, यह कह कर मेरे हाथ में पाँच दाने दिये हैं। तो यहाँ कोई कारण होना चाहिए।' उसने इस प्रकार विचार किया। विचार करके वह चावल के पाँच दाने शुद्ध वस्त्र मे बाँधे। बाँध कर रत्नो की डिबिया में रख लिये। रख कर सिरहाने के नीचे स्थापित किये। स्थापित करके तीनों संध्याओं के समय उनकी सारसँभाल करती हुई रहने लगी।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे तस्सेव मित्त० जाव चउत्थिं रोहिणीयं सुण्हं सद्दावेइ। सद्दावेत्ता जाव 'तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं, तं सेयं

खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संवड्ढेमाणीए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ। संपेहित्ता कुलघरपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! एए पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेह। करित्ता इमे पंच सालिअक्खए वावेह, वावेत्ता दोच्चं पि तच्चं पि उक्खयनिक्खए करेह; करेत्ता वाडिपक्खेवं करेह, करित्ता सारक्खेमाणा संगोवेमाणा अणुपुव्वेणं संवड्ढेह।'

तत्पश्चात् धान्य सार्थवाह ने उन्हीं मित्रों आदि को समक्ष चौथी पुत्रवधू रोहिणी को बुलाया। बुला कर उसे भी वही कह कर पाँच दाने दिये। यावत् उसने सोचा—इस प्रकार पाँच दाने देने में कोई कारण होना चाहिए। अतएव मेरे लिए उचित है कि इन पाँच चावल के दानों का संरक्षण करूँ, संगोपन करूँ और इनकी वृद्धि करूँ। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके अपने कुलगृह के पुरुषों को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रियो तुम इन पाँच शालि-अक्षतों को ग्रहण करो। ग्रहण करके पहली वर्षाऋतु मे अर्थात् वर्षा के आरंभ मे जब खूब वर्षा हो तब एक छोटी-सी क्यारी को अच्छी तरह साफ करना। साफ करके यह पाँच शालि-अक्षत बो देना। बोकर दूसरी बार और तीसरी बार उत्क्षेप-निक्षेप करना, अर्थात् एक जगह से उखाड़-कर दूसरी जगह रोपना। फिर क्यारी के चारो ओर बाड़ लगाना। इनकी रक्षा और संगोपना करते हुए अनुक्रम से बढ़ाना।

तए णं ते कोडुंबिया रोहिणीए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ते पंच सालि-अक्खए गेण्हंति, गेण्हित्ता अणुपुव्वेणं संरक्खंति, संगोवंति विहरंति।

तए णं ते कोडुंबिया पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि णिवइयंसि समाणंसि खुड्डायं केयारं सुपरिकम्मियं करेंति, करित्ता ते पंच सालि-अक्खए ववंति, ववित्ता दोच्चं पि तच्चं पि उक्खयनिक्खए करेंति, करित्ता वाडिपरिक्खेवं करेंति, करित्ता अणुपुव्वेणं सारक्खेमाणा संगोवेमाणा संवड्ढेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने रोहिणी के अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार करके उन चावल के पाँच दानों को ग्रहण किया। ग्रहण करके अनुक्रम से उनका सरक्षण, संगोपन करते हुए रहने लगे।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वर्षाऋतु के प्रारंभ में महावृष्टि पड़ने पर छोटी-सी क्यारी साफ की। करके पाँच चावल के दाने बोये। बोकर दूसरी और तीसरी बार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया, करके वाड़ का परिक्षेप किया। करके अनुक्रम से संरक्षण, सगोपन और संवर्धन करते हुए विचरने लगे।

तए णं ते सालि-अक्खए अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढिज्जमाणा साली जाया, किण्हा किण्होभासा जाव निउरंबभूया पासादीया दंसणीया अभिरूवा पडिरूवा।

तए णं ते साली पत्तिया वत्तिया (तइया) गब्भिया पसूया आगयगंधा खीराइया बद्धफला पक्का परियागया सल्लइया पत्तइया हरियपव्वकंडा जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् संरक्षित, संगोपित और संवर्धित किये जाते हुए वे शालि-अक्षत अनुक्रम से शालि हो गये वे श्याम, श्याम कान्ति वाले यावत् निकुरंबभूत-समूह रूप हो कर प्रसन्नता प्रदान करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो गये।

तत्पश्चात् उन शालि के पौधों मे पत्ते आ गये, वे वर्त्तितगोल हो गये, छाल वाले हो गए, गर्भित हो गए—डौंड़ो लग गई, प्रसूत हुए-पत्तों के भीतर से दाने बाहर आ गये, सुगंध वाले हुए, दूध वाले हुए, बद्धफल—बंधे हुए फल वाले हुए, पक गये, तैयार हो गये, शल्यकित हुए-पत्ते सूख जाने के कारण सलाई जैसे हो गये, पत्रकित हुए—विरले पत्ते रह गये और हरितपर्वकाण्ड—नीली नाल वाले हो गये। इस प्रकार वे शालि उत्पन्न हुए।

तए णं ते कोडुंबिया ते सालीए पत्तिए जाव सल्लइए पत्तइए जाणित्ता तिक्खेहिं णवपज्जणएहिं असियएहिं लुणेंति। लुणित्ता करयलमलिए करेंति, करित्ता पुणंति, तत्थ णं चोक्खाणं सूयाणं अखंडाणं अफोडियाणं छड्डछड्डापूयाणं सालीणं मागहए पत्थए जाए।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वह शालि पत्र वाले यावत् शलाका वाले तथा विरल पत्र वाले जान कर तीखे और पजाये हुए (जिन पर नयी धार

चढ़वाई हो ऐसे) हँसियों (दात्रों) से काटे। काट कर उनका हथेलियों से मर्दन किया। मर्दन करके साफ किया। इससे वे चोखे-निर्मल, शुचि-पवित्र, अखंड और अस्फोटित-बिना टूटे-फूटे और सूप से झटक-झटक कर साफ किये हुए हो गये। वे मगधदेश में प्रसिद्ध एक प्रस्थक* प्रमाण हो गये।

तए णं ते कोडुंबिया ते साली नवएसु घडएसु पक्खिवंति, पक्खिवित्ता उवलिंपंति, उवलिंपित्ता लंछियमुद्दिए करेंति, करित्ता कोट्ठागारस्स एगदेसंसि ठावेंति, ठावित्ता सारक्खेमाणा संगोवेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने उन प्रस्थ प्रमाण शालि-अक्षतों को नवीन घड़े में भरा। भर कर उसके मुख पर मिट्टी का लेप कर दिया। लेप करके उसे लांछित-मुद्रित किया-उस पर सील लगा दी। फिर उसे कोठार के एक भाग में रख दिया। रख कर उसका रक्षण और संगोपन करते हुए विचरने लगे।

तए णं ते कोडुंबिया दोच्चम्मि वासारत्तंसि पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेंति, करित्ता ते सालि ववंति, दोच्चं पि तच्चं पि उक्खयनिक्खए जाव लुणेंति जाव चलणतलमलिए करेंति, करित्ता पुणंति, तत्थ णं सालीणं बहवे कुडए जाए। जाव एगदेसंसि ठावेंति, ठावित्ता सारक्खेमाणा संगोवेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दूसरी वर्षाऋतु में, वर्षाकाल के प्रारंभ में महावृष्टि पड़ने पर एक छोटी क्यारी को साफ किया। साफ करके वे शालि बो दिये। दूसरी बार और तीसरी बार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया, यावत् लुनाई की-उन्हें काटा। यावत् पैरों के तलुवों से उनका मर्दन किया, उन्हें साफ किया। अब शालि के बहुत-से कुड़व हो गये। यावत् उन्हें कोठार के एक भाग में रख दिया। कोठार में रख कर उनका संरक्षण और संगोपन करते हुए विचरने लगे।

तए णं ते कोडुंबिया तच्चंसि वासारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि बहवे

---

*दो असई की एक पसई, दो पसई की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुड़व और चार कुड़व का एक प्रस्थक होता है। यह मगधदेश का तत्कालीन नाप है।

केयारे सुपरिकम्मिए करेंति, जाव लुणेंति, लुणित्ता संवहंति, संवहित्ता खलयं करेंति, करित्ता मलेंति, जाव बहवे कुंभा जाया।

तए णं ते कोडुंबिया साली कोट्ठागारंसि पक्खिवंति, जाव विहरंति। चउत्थे वासारत्ते बहवे कुंभसया जाया।

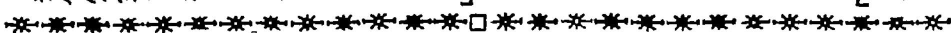
तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने तीसरी वर्षाऋतु मे, महावृष्टि होने पर बहुत-सी क्यारियाँ अच्छी तरह साफ कीं। यावत् उन्हे बोकर काट लिया। काटकर भारा बाँध कर वहन किया। वहन करके खलिहान में रक्खा। उन्हे मर्दन किया। यावत् बहुत-से कुम्भ प्रमाण शालि हो गये।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वह शालि कोठार में रक्खे, यावत् उनकी रक्षा करने लगे। चौथी वर्षाऋतु में इसी प्रकार करने से सैकड़ों कुम्भ प्रमाण शालि हो गये।

तए णं तस्स धण्णस्स पंचमयंसि संवच्छरंसि परिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्थाः— एवं खलु मम इओ अईए पंचमे संवच्छरे चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणट्ठयाए ते पंच सालिअक्खया हत्थे दिन्ना, तं सेयं खलु मम कल्लं जाव जलंते पंच सालिअक्खए परिजाइत्तए। जाव जाणामि ताव काए किहं सारक्खिया वा संगोविया वा संवड्ढिया वा? जाव त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं जाव सम्माणित्ता तस्सेव मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ जेट्ठं उज्झियं सद्दावेइ। सद्दावित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् जब पाँचवाँ वर्ष चल रहा था, तब धन्य सार्थवाह को मध्य रात्रि के समय में इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआः—

मैंने इससे पहले के-अतीत, पाँचवें वर्ष में चारों पुत्रवधुओं को, परीक्षा करने के निमित्त, वह पाँच चावल के दाने हाथ में दिये थे। तो कल यावत् सूर्योदय होने पर पाँच चावल के दाने माँगना मेरे लिए उचित होगा। यावत् जानूँ तो सही कि किसने किस प्रकार उनका संरक्षण, संगोपन और संवर्धन किया है? धन्य सार्थवाह ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय



होने पर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाया। मित्रों ज्ञातिजनों आदि को तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवर्ग को आमंत्रित यावत् सम्मानित करके उन्हीं मित्रो, ज्ञातिजनों आदि तथा चारो पुत्रवधुओ के कुलगृहवर्ग के समक्ष, जेठी पुत्रवधू उज्झिया को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहाः—

'एवं खलु अहं पुत्ता! इओ अईए पंचमंसि संवच्छरंसि इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तव हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयामि, जया णं अहं पुत्ता! एए पंच सालिअक्खए जाएज्जा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिदिज्जाएसि त्ति कट्टु तं हत्थंसि दलयामि, से नूणं पुत्ता! अट्ठे समट्ठे?'

'हंता, अत्थि।'

'तं णं पुत्ता! मम ते सालिअक्खए पडिनिज्जाएहि।'

हे पुत्री! इससे अतीत पांचवे संवत्सर मे इन्हीं मित्रो, ज्ञातिजनो आदि तथा चारों पुत्रवधुओ के कुलगृहवर्ग के समक्ष मैंने तुम्हारे हाथ मे पांच शालि-अक्षत दिये थे, और यह कहा था कि हे पुत्री! जब मैं यह पांच शालिअक्षत मांगूँ, तब तुम मेरे यह पांच शालि-अक्षत मुझे वापिस सौंपना। तो यह अर्थ समर्थ है—यह बात सत्य है?'

उज्झिका ने कहा—'हां, सत्य है।'

धन्य सार्थवाह बोले—'तो हे पुत्री! मेरे वह शालिअक्षत वापिस दो।'

तए णं सा उज्झिया एयमट्ठं धण्णस्स पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव कोट्ठागारं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पल्लाओ पंच सालि-अक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—'एए णं ते पंच सालि-अक्खए' त्ति कट्टु धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थंसि ते पंच सालिअक्खए दलयइ।

तए णं धण्णे सत्थवाहे उज्झियं सवहसावियं करेइ, करित्ता एवं वयासी—'किं णं पुत्ता! एए चेव पंच सालिअक्खए उदाहु अन्ने?'

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्थवाह की यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके जहां कोठार था वहां पहुंची। पहुँच कर पल्य में से पांच शालिअक्षत ग्रहण किये और ग्रहण करके धन्य सार्थवाह के समीप आकर बोली-'यह हैं वह पांच शालिअक्षत।' यों कह कर धन्य सार्थवाह के हाथ में पांच शालि के दाने दिये।

तब धन्य सार्थवाह ने उज्झिका को सौगंद दिलाई और कहा-'पुत्री! क्या यही वे शालि के दाने हैं अथवा ये दूसरे हैं?'

तए णं उज्झिया धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-'एवं खलु तुब्भे ताओ! इओ अईए पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स जाव विहराहि। तए णं अहं तुब्भं एयमट्ठं पडिसुणेमि। पडिसुणित्ता ते पंच सालिअक्खए गेण्हामि, एगंतमवक्कमामि। तए णं मम इमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु तायाण कोट्ठागारंसि० सकम्मसंजुत्ता। तं णो खलु ताओ! ते चेव पंच सालिअक्खए, एए णं अन्ने।'

तत्पश्चात् उज्झिका ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा-हे तात! इससे पहले के पांचवें वर्ष में इन मित्रों एवं ज्ञातिजनों के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने पांच दाने देकर आपने उनका संरक्षण संगोपन और संवर्धन करती हुई विचरना, ऐसा कहा था। उस समय मैंने आपकी बात स्वीकार की। स्वीकार करके वह पांच शालि के दाने ग्रहण किये और एकान्त में चली गई। तब मुझे इस तरह का विचार उत्पन्न हुआ कि--पिताजी के कोठार में बहुत से शालि भरे हैं, जब मांगेंगे तो दे दूँगी। ऐसा विचार कर मैंने वह दाने फेंक दिये और अपने काम में लग गई। अतएव हे तात! ये वही शालि के दाने नहीं हैं। यह दूसरे हैं।'

तए णं से धण्णे उज्झियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरत्ते जाव मिसिमिसेमाणे उज्झिइयं तस्स मित्तनाइ० चउण्ह सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स छारुज्झियं च छाणुज्झियं च कयवरुज्झियं च समुच्छियं च सम्मज्जिअं च पाउवदाइं च ण्हाणावदाइं च बाहिरपेसणकारिं ठवेइ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उज्झिका के पास से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके क्रुद्ध हुए। यावत् क्रोध में आकर मिसमिसाने लगे। उन्होंने उज्झिका को उन मित्रो, ज्ञातिजनों आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के सामने अपने कुलगृह की राख फैंकने वाली, छाणे डालने या थापने वाली, कचरा झाड़ने वाली, पैर धोने का पानी देने वाली, स्नान के लिए पानी देने वाली और बाहर के दासी के कार्य करने वाली नियुक्त की।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पव्वइए पंच य से महव्वयाइं उज्झियाइं भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टइस्सइ। जहा सा उज्झिया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु और साध्वी यावत् प्रव्रज्या लेकर पांच (दानों के समान पांच) महाव्रतों का परित्याग कर देता है, वह उज्झिका की तरह इसी भव में बहुत से श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र बनता है, यावत् अनन्त संसार में पर्यटन करेगा।

एवं भोगवइया वि। नवरं तस्स कुलघरस्स कंडंतियं कोट्टंतियं पीसंतियं च एवं रुच्चंतियं च रंधंतियं च परिवेसंतियं च परिभायंतियं च अब्भितरियं च पेसणकारिं महाणसिणिं ठवेइ।

इसी प्रकार भोगवती के विषय में जानना चाहिए। विशेषता यह है कि (वह पांचों दाने खा गई थी, अतएव उसे) खांड़ने वाली, कूटने वाली, पीसने वाली, जांते मे दल कर धान्य के छिलके उतारने वाली, रांधने वाली, परोसने वाली, त्यौहारों के प्रसंग पर स्वजनों के घर जाकर ल्हावणी बांटने वाली, घर में भीतर की दासी का काम करने वाली एवं रसोईदारिन का कार्य करने वाली के रूप में नियुक्त किया।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं समणो वा समणी वा पंच य से महव्वयाइं फोडियाइं भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं जाव हीलणिज्जे, जहा व सा भोगवइया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु अथवा साध्वी पांच महाव्रतों को फोड़ने वाला अर्थात् रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर नष्ट करने वाला होता है, वह इसी भव में बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियो, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र बनता है, जैसे वह भोगवती।

एवं रक्खिया वि । नवरं जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मंजूसं विहाडेइ, विहाडित्ता रयणकरंडगाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच सालिअक्खए धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयइ ।

इसी प्रकार रक्षिका के विषय में जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि-(पांच दाने मांगने पर) वह जहां उसका निवासगृह था वहां आई। आकर उसने मंजूषा खोली। खोल कर रत्न की डिबिया में से वह पांच शालि के दाने ग्रहण किये। ग्रहण करके जहां धन्य सार्थवाह था, वहां आई। आकर धन्य-सार्थवाह के हाथ में वह शालि के पांच दाने दे दिये।

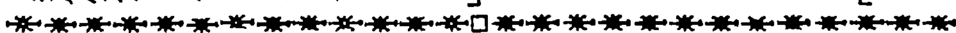
तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियं एवं वयासी–'किं णं पुत्ता ! ते चेव एए पंच सालिअक्खए, उदाहु अण्णे ?' त्ति। तए णं रक्खिया धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी–'ते चेव ताया ! एए पंच सालिअक्खया, णो अन्ने।'

'कहं णं पुत्ता ?'

'एवं खलु ताओ ! तुब्भे इओ पंचमम्मि संवच्छरे जाव भवियव्वं एत्थ कारणेणं ति कट्टु ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे जाव तिसंझं पडिजागरमाणी यावि विहरामि। तओ एएणं कारणेणं ताओ ! ते चेव ते पंच सालिअक्खए, णो अन्ने।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने रक्षिका से इस प्रकार कहा-हे पुत्री ! क्या यह वही पांच शालि-अक्षत हैं या दूसरे हैं ?' तब रक्षिका ने धन्य सार्थवाह से ऐसा कहा-'तात ! यह वही शालिअक्षत है, दूसरे नहीं है।

धन्य ने पूछा-'पुत्री ! कैसे ?'



रक्षिका बोली–'तात! आपने इससे अतीत पांचवें वर्ष में शालि के पांच दाने दिये थे। तब मैं ने विचार किया कि इसमे कोई कारण होना चाहिए। ऐसा विचार करके इन पांच शालि के दानों को शुद्ध वस्त्र में बांधा, यावत् तीनों संध्याओं में सार-सँभाल करती हुई विचरती हूं। अतएव इस कारण से, हे तात! यह वही शालि के दाने हैं, दूसरे नही हैं।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ० तस्स कुलघरस्स हिरन्नस्स य कंसदूसविपुलधण जाव सावतेज्जस्स य भंडागारिणिं ठवेइ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह रक्षिका के पास से यह अर्थ सुन कर हर्षित और संतुष्ट हुआ। उसे अपने घर के हिरण्य की (आभूषणों की), कांसा आदि बर्तनो की, दूष्य-रेशमी वस्त्रों की, विपुल धन, धान्य, कनक, मुक्ता आदि स्वापतेय की भाण्डागारिणी (भंडारी) के रूप मे नियुक्त कर दिया।

एवामेव समणाउसो! जाव पंच य से महव्वयाइं रक्खियाइं भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे, जहा जाव से रक्खिया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! यावत् हमारा जो साधु या साध्वी पाँच महाव्रतों की रक्षा करता है, वह इसी भव में बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं का अर्चनीय (पूज्य) होता है, जैसे वह रक्षिका।

रोहिणिया वि एवं चेव। नवरं–'तुब्भे ताओ! मम सुबहुयं सगडीसागडं दलाहि, जेण अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएमि।'

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणिं एवं वयासी–'कहं णं तुमं मम पुत्ता! ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाइस्ससि?'

तए णं सा रोहिणी धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी–'एवं खलु ताओ! इओ तुब्भे पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त जाव बहवे कुंभसया जाया, तेणेव कमेणं। एवं खलु ताओ! तुब्भे ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाएमि।

रोहिणी के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि-जब धन्य सार्थवाह ने पाँच दाने मांगे तो उसने कहा-'तात ! आप मुझे बहुत-से गाड़े-गाडियाँ दो, जिससे मैं आपको वह पाँच शालि के दाने लौटाऊँ।

तब धन्य सार्थवाह ने रोहिणी से कहा-पुत्री ! तू मुझे वह पाँच शालि के दाने गाड़ा-गाड़ी में भर कर कैसे देगी ?

तब रोहिणी ने धन्य सार्थवाह से कहा-'तात ! इससे पहले के पाँचवें वर्ष में इन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनो आदि के समक्ष आपने पाँच दाने दिये थे। यावत् वे अब सैकड़ो कुम्भ हो गये हैं, इत्यादि पूर्वोक्त क्रमानुसार कहना। इस प्रकार हे तात ! मैं आपको वह पाँच शालि के दाने गाड़ा-गाड़ियो में भर कर देती हूँ।'

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणीयाए सुबहुयं सगडसागडं दलयइ, तए णं रोहिणी सुबहुं सगडसागडं गहाय जेणेव सए कुलघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोट्ठागारे विहाडेइ, विहाडित्ता पल्ले उब्भिदइ, उब्भिदित्ता सगडीसागडं भरेइ, भरित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ।

तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव बहुजणो अन्नमन्नं एवमाइक्खइ-'धन्ने णं देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे, जस्स णं रोहिणिया सुण्हा, जीए णं पंच सालिअक्खए सगडसागडिएणं निज्जाइए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने रोहिणी को बहुत-से छकड़ा-छकड़ी दिये। रोहिणी उन छकड़ा-छकड़ियों को लेकर जहां अपना कुलगृह (मैका) था, वहां आई। आकर कोठार खोला। कोठार खोल कर कोठी खोली, खोल कर छकड़ा-छकड़ी भरे। भर कर राजगृह नगर के मध्यभाग में होकर जहां अपना घर (सुसराल) था और जहा धन्य सार्थवाह था, वहां आ पहुंची।

तब राजगृह नगर में, शृङ्गाटक आदि मार्गों में बहुत लोग आपस में इस प्रकार कहने लगे-'देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाह धन्य है, जिसकी पुत्रवधू रोहिणी है, जिसने पांच शालि के दाने छकड़ा-छकड़ियों में भर कर लौटाये !'

तए णं से धण्णे सत्थवाहे ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाइए पासइ, पासित्ता हट्ठ तुट्ठ पडिच्छइ। पडिच्छित्ता तस्सेव

मित्तनाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ रोहिणीयं सुण्हं तस्स कुलघरवग्गस्स बहुसु कज्जेसु य जाव रहस्सेसु य आपुच्छणिज्जं जाव वट्टावियं पमाणभूयं ठावेइ।

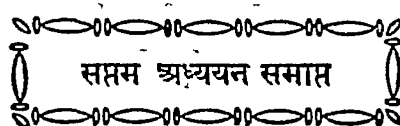
तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उन पांच शालि के दानों को छकड़ा-छकड़ियों द्वारा लौटाये देखता है। देखकर हृष्ट और तुष्ट होकर उन्हें स्वीकार करता है। स्वीकार करके उसने उन्हीं मित्रो एवं ज्ञातिजनों आदि के तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृहवर्ग के समक्ष रोहिणी पुत्रवधू को, उस कुलगृहवर्ग के अनेक कार्यों में यावत् रहस्यों में पूछने योग्य यावत् गृह का कार्य चलाने वाली और प्रमाणभूत नियुक्त किया।

एवामेव समणाउसो ! जाव पंच महव्वया संवड्ढिया भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं जाव वीईवइस्सइ जहा व सा रोहिणीया

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु-साध्वी अपने पाँच महाव्रतों को बढ़ाते हैं, वे इसी भव में बहुत से श्रमणो आदि के पूज्य होकर यावत् संसार से मुक्त हो जाते हैं। जैसे वह रोहिणी।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं सत्तमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि।

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैंने तुमसे कहा है।



अष्टम मल्ली अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं सत्तमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! के अट्ठे पन्नत्ते ?

जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो आठवें का क्या अर्थ कहा है?

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, निसढस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीयोयाए महाणईए दाहिणेणं, सुहावहस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं सलिलावती नामं विजए पन्नत्ते।

हे जम्बू! उस काल और उस समय मे, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, महाविदेह नामक वर्ष (क्षेत्र) मे, मेरु पर्वत से पश्चिम मे, निषध नामक वर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीतोदा महानदी से दक्षिण मे, सुखावह नामक वक्षार पर्वत से पश्चिम में और पश्चिम लवण समुद्र से पूर्व में—इस स्थान पर, सलिलावती नामक विजय कहा गया है।

तत्थ णं सलिलावतीविजए वीयसोगा नामं रायहाणी पण्णत्ता—नवजोयणविच्छिन्ना जाव पच्चक्खं देवलोगभूया।

तीसे णं वीयसोगाए रायहाणीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थ णं इंदकुंभे नामं उज्जाणे होत्था।

तत्थ णं वीयसोगाए रायहाणीए बले नामं राया होत्था। तस्सेव धारिणीपामोक्खं देविसहस्सं उवरोधे होत्था।

उस सलिलावती विजय में वीतशोका नामक राजधानी कही गई है। वह नौ योजन चौड़ी, यावत् साक्षात् देवलोक के समान थी।

उस वीतशोका राजधानी के उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा के भाग में इन्द्र-कुम्भ नामक उद्यान था।

उस वीतशोका राजधानी मे बल नामक राजा था। उस बल राजा के अन्तःपुर में धारिणी प्रभृति एक हजार देवियाँ (-रानियाँ) थीं।

तए णं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव महब्बले नामं दारए जाए, उम्मुक्क जाव भोग-समत्थे। तए णं तं महब्बलं अम्मापियरो सरिसियाणं कमलसिरी-पामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति। पंच पासायसया पंचसओ दाओ जाव विहरइ।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी किसी समय स्वप्न में सिंह को देख कर जागृत हुई। यावत् यथा समय महाबल नामक पुत्र का जन्म हुआ। वह बालक क्रमशः बाल्यावस्था को त्याग कर भोग भोगने में समर्थ हो गया। तब माता-पिता ने समान रूप वय वाली कमलश्री आदि पाँच सौ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ, एक ही दिन मे, महाबल का पाणिग्रहण कराया। पाँच सौ प्रासाद आदि पांच-पांच सौ का दहेज दिया। यावत् महाबल कुमार मनुष्य संबंधी कामभोग भोगता हुआ विचरने लगा।

ते णं काले णं ते णं समए णं धम्मघोसा नाम थेरा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव इंदकुंभे नामं उज्जाणे तेणेव समो-सढे, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति।

उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थाविर पांच सौ शिष्यो अनगारो के साथ परिवृत होकर अनुक्रम से विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम गमन करते हुए सुखे-सुखे विहार करते हुए जहां इन्द्रकुम्भ नाम उद्यान था, वहां पधारे और संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए रहे।

परिसा निग्गया, बलो वि राया निग्गओ, धम्मं सोच्चा णिसम्म जं नवरं महब्बलं कुमारं रज्जे ठावेइ, ठावित्ता सयमेव बले राया थेराणं अंतिए पव्वइए एक्कारसअंगविओ बहूणि वासाणि सामण्ण-परियायं पाउणित्ता जेणेव चारुपव्वए मासिएणं भत्तेणं अपाणेणं केवलं पाउणित्ता जाव सिद्धे।

स्थविर मुनिराज को वन्दना करने के लिए जनसमूह निकला। बल राजा भी निकला। धर्म सुन कर राजा को वैराग्य हुआ। विशेष यह कि उसने महाबल कुमार को राज्य पर प्रतिष्ठित किया। प्रतिष्ठित करके स्वयं ही बल राजा ने आकर स्थविर के निकट प्रव्रज्या अंगीकार की। वह ग्यारह अंगों के वेत्ता हुए। बहुत वर्षों तक संयम पाल कर जहाँ चारुपर्वत था; वहाँ गये। एक मास का निर्जल अनशन करके केवलज्ञान प्राप्त करके यावत् सिद्ध हुए।

तए णं कमलसिरी अन्नया कयाइ जाव सीहं सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा, जाव बलभद्दो कुमारो जाओ, जुवराया यावि होत्था।

तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् कमलश्री यावत् स्वप्न में सिंह को देख कर जागृत हुई। यावत् बलभद्र कुमार का जन्म हुआ। वह युवराज भी हो गया।

तस्स णं महब्बलस्स रन्नो इमे छप्पिय बालवयंसगा रायाणो होत्था, तंजहा- (१) अयले (२) धरणे (३) पूरणे (४) वसू (५) वेसमणे (६) अभिचंदे, सहजाया जाव संवड्ढिया। ते णित्थरियव्वे त्ति कट्टु अन्नमन्नस्सेयमट्ठं पडिसुणेंति। सुहंसुहेणं विहरंति।

उस महाबल राजा के यह छहों राजा बालमित्र थे। वे इस प्रकार-(१) अचल (२) धरण (३) पूरण (४) वसु (५) वैश्रमण और (६) अभिचन्द्र। वे साथ ही जन्मे थे यावत् साथ ही वृद्धि को प्राप्त हुए थे। उन्होंने 'साथ-साथ देशविदेश जाना, साथ-साथ सुख-दुःख भोगना और साथ ही आत्मा का निस्तार करना-आत्मा को संसार-सागर से तारना' ऐसा निर्णय करके परस्पर में इस अर्थ (बात) को अंगीकार किया था। वे सुखपूर्वक रह रहे थे।

ते णं काले णं ते णं समए णं धम्मघोसा थेरा जेणेव इंदकुंभे उज्जाणे तेणेव समोसढा, परिसा निग्गया, महब्बलो वि राया निग्गओ। धम्मो कहिओ। महब्बलेणं धम्मं सोच्चा—जं नवरं देवाणुप्पिया! छप्पिए बालवयंसगे आपुच्छामि, बलभद्दं च कुमारं रज्जे ठावेमि, जाव छप्पिय बालवयंसए आपुच्छइ।

तए णं ते छप्पि य बालवयंसए महब्बलं रायं एवं वयासी—'जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे पव्वयह, अम्हं के अन्ने आहारे वा? जाव पव्वयामो।

तए णं से महब्बले राया छप्पिय बालवयंसए एवं वयासी—'जइ णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे मए सद्धिं जाव पव्वयह, तओ णं तुब्भे गच्छह जेट्ठपुत्तं सएहिं सएहिं रज्जेहिं ठावेह, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा समाणा पाउब्भवह।' तए णं ते छप्पिय बालवयंसए जाव पाउब्भवंति।

उस काल और उस समय मे धर्मघोष नामक स्थविर जहाँ इन्द्रकुंभ उद्यान था, वहाँ पधारे। परिषद् वंदना करने के लिए निकली। महाबल राजा भी निकला। स्थविर महाराज ने धर्म कहा। महाबल राजा को धर्म श्रवण करके वैराग्य उत्पन्न हुआ। विशेष यह कि राजा ने कहा—'हे देवानुप्रिय ! मैं अपने छहों बाल मित्रों से पूछ लेता हूँ और बलभद्र कुमार को राज्य पर स्थापित कर देता हूं।' इस प्रकार कह कर उसने छहो बालमित्रो से पूछा।

तब वे छहों बाल-मित्र महाबल राजा से कहने लगे—देवानुप्रिय ! यदि तुम प्रव्रजित होते हो तो हमारे लिए अन्य कौन-सा आधार है ? यावत् हम भी दीक्षित होते हैं।

तत्पश्चात् महाबल राजा ने उन छहो बालमित्रों से कहा—हे देवानुप्रियो ! यदि तुम मेरे साथ यावत् प्रव्रजित होते हो तो तुम जाओ और अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने-अपने राज्य पर प्रतिष्ठित करो और फिर हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिबिकाओं पर आरूढ़ होकर यहाँ प्रकट होओ—आओ।' तब छहों बालमित्र गये और अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्यासीन करके यावत् आ गये।

तए णं से महब्बले राया छप्पिय बालवयंसए पाउब्भूए पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बलभद्दस्स कुमारस्स महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचेह।' ते वि तहेव जाव बलभद्दं कुमारं अभिसिंचेंति।

तब महाबल राजा ने छहो बालमित्रों को आया देखा। देख कर वह हर्षित और संतुष्ट हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुला कर कहा—देवानुप्रियो ! जाओ और बलभद्र कुमार का महान् महान् राज्याभिषेक से अभिषेक करो। यह आदेश सुन कर उन्होंने उसी प्रकार किया, यावत् बलभद्र कुमार का अभिषेक किया।

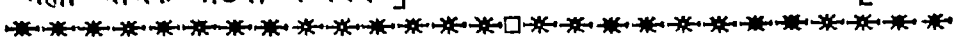
तए णं से महब्बले राया बलभद्दं कुमारं आपुच्छइ तओ णं महब्बलपामोक्खा छप्पिय बालवयंसए सद्धिं पुरिससहस्सवाहिणिं दुरूढा वीयसोयाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति। णिग्गच्छित्ता जेणेव इंदकुंभे उज्जाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता ते वि य सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेंति, करित्ता जाव पव्वएंति, एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमेहिं अप्पाणं भावेमाणा जाव विहरंति।

तत्पश्चात् महाबल राजा ने बलभद्र कुमार से आज्ञा ली। फिर महाबल आदि छहों बालमित्रों के साथ हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य शिबिका पर आरूढ़ होकर वीतशोका नगरी के बीचों बीच होकर निकले। निकल कर जहाँ इन्द्रकुम्भ उद्यान था और जहाँ स्थविर भगवन्त थे, वहाँ आये। आकर उन्होने भी स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। लोच करके यावत दीक्षित हुए। ग्यारह अंगो का अध्ययन करके, बहुत-से उपवास, बेला, तेला, आदि तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तए णं तेसिं महब्बलपामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अन्नया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'जं णं अम्हं देवाणुप्पिया! एगं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरामो, तं णं अम्हेहिं सव्वेहिं सद्धिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता बहूहिं चउत्थ जाव विहरंति।

तत्पश्चात् वह महाबल आदि सातों अनगार किसी समय इकट्ठे हुए। उस समय उनमे परस्पर इस प्रकार बातचीत हुई—'हे देवानुप्रियो! हम लोग एक हो तपक्रिया को अंगीकार करके विचरते है तो फिर हम सब को एक साथ ही तपक्रिया ग्रहण करके विचरना उचित है।' इस प्रकार कह कर सबने यह बात अंगीकार की। अंगीकार करके अनेक चतुर्थभक्त आदि यावत् एक-सी तपस्या करते हुए विचरने लगे।

तए णं से महब्बले अणगारे इमेण कारणेणं इत्थिणामगोयं कम्मं निव्वत्तिसु—जइ णं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।



जइ णं ते महब्बलवज्जा अणगारा छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे अट्ठमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। एवं अट्ठमं तो दसमं, अह दसमं तो दुवालसं।

तत्पश्चात् उन महाबल अनगार ने इस कारण से स्त्री नामगोत्र कर्म का उपार्जन किया—यदि वे महाबल को छोड़ कर शेष छह अनगार चतुर्थभक्त (उपवास) ग्रहण करके विचरते, तो वह महाबल अनगार (उन्हें बिना कहे) षष्ठभक्त (बेला) ग्रहण करके विचरते। अगर महाबल के सिवाय छह अनगार षष्ठभक्त अंगीकार करके विचरते तो महाबल अनगार अष्टमभक्त (तेला) ग्रहण करके विचरते। इसी प्रकार वे अष्टमभक्त करते तो महाबल दशमभक्त करते, वे दशमभक्त करते तो महाबल द्वादशभक्त कर लेते। (इस प्रकार अपने साथी मुनियों से छिपा कर—कपट करके महाबल अधिक तप करते थे।)

इमेहि य वीसाएहि य कारणेहिं आसेवियबहुलीकएहिं तित्थयर-नामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु, तंजहा—

अरिहंत–सिद्ध–पवयण–गुरु–थेर–बहुस्सुए–तवस्सीसुं ।
वल्लभया य तेसिं, अभिक्ख णाणोवओगे य ॥ १ ॥

दंसण–विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारं ।
खणलव–तवच्चियाए, वेयावच्चे समाही य ॥ २ ॥

अपुव्वनाणगहणे, सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥

स्त्रीनामगोत्र के अतिरिक्त इन कारणों के एक बार और बार–बार सेवन करने से तीर्थंकरनामगोत्र कर्म का भी उपार्जन किया। वे कारण यह हैं:—

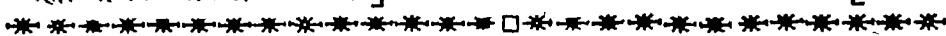
(१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) प्रवचन–श्रुतज्ञान (४) गुरु-धर्मोपदेशक (५) स्थविर अर्थात् साठ वर्ष की उम्र वाले जातिस्थविर, समवायांग के ज्ञाता श्रुत-स्थविर और बीस वर्ष की दीक्षा वाले पर्यायस्थविर, यह तीन प्रकार के स्थविर साधु (६) बहुश्रुत–दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रुत के ज्ञाता (७) तपस्वी–इन सातों के प्रति वत्सलता धारण करना अर्थात् इनका यथोचित सत्कार–सन्मान करना, गुणोत्कीर्त्तन करना (८) बारंबार ज्ञान का उपयोग करना (९) दर्शन–सम्यक्त्व (१०) ज्ञानादिक का विनय करना (११) छह आवश्यक करना (१२) उत्तरगुणों और मूलगुणों का निरतिचार पालन करना (१३) क्षणलव अर्थात् क्षण एवं लव

प्रमाण काल में भी संवेग, भावना एवं ध्यान का सेवन करना (१४) तप करना (१५) त्याग--मुनियों को उचित दान देना (१६) वैयावृत्य करना (१७) समाधि-गुरु आदि को साता उपजाना (१८) नया-नया ज्ञान ग्रहण करना (१९) श्रुत की भक्ति करना और (२०) प्रवचन की प्रभावना करना, इन बीस कारणों से जीव तीर्थंकरत्व की प्राप्ति करता है। तात्पर्य यह है कि इन बीस कारणों से महाबल मुनि ने तीर्थङ्कर नामकर्म उपार्जन किया।

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अनगारा मासिअं भिक्खु-पडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, जाव एगराइअं भिक्खुपडिमं उव-संपज्जित्ता णं विहरंति।

तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार एक मास की पहली भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे। यावत् बारहवीं एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे। (यहाँ 'यावत्' शब्द से बीच की दस भिक्षुप्रति-माएँ इस प्रकार समझनी चाहिए:--दूसरी दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाँचवीं पाँच मास की, छठी छह मास की, सातवीं सात मास की, आठवीं सात अहोरात्र की, नौवीं सात अहोरात्र की और दसवीं सात अहोरात्र की और ग्यारहवीं एक अहोरात्र की। इस प्रकार सब बारह भिक्षु-प्रतिमाएँ हैं।)

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीह-निक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तंजहा--चउत्थं करेंति, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेंति, पारित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता, दसमं करेंति, करित्ता चाउद्दसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता चोद्दसमं करेंति, करित्ता अट्ठारसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता वीसइमं करेंति, करित्ता अट्ठारसम करेंति, करित्ता वीसइमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता अट्ठारसमं करेंति, करित्ता चोद्दसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता चाउद्दसमं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता



दसमं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति। सव्वत्थ सव्वकामगुणिएणं पारेंति।

* तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति सातों अनगार क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित नामक तपःकर्म अंगीकार करके विचरते हैं। वह तप इस प्रकार किया जाता है-

सर्व प्रथम एक उपवास करे, उपवास करके सर्वकामगुणित (विगय आदि सभी पदार्थों को ग्रहण करने रूप) पारणा करे; पारणा करके दो उपवास करे, फिर एक उपवास करे, करके तीन उपवास (अष्टमभक्त) करे, करके दो उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके आठ उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके नौ उपवास करे, करके आठ उपवास करे, करके नौ उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके आठ उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके सात उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके छह उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके पाँच उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके चार उपवास करे, करके दो उपवास करे, करके तीन उपवास करे, करके एक उपवास करे, करके दो उपवास करे, करके एक उपवास करे। सब जगह पारणा के दिन सर्व कामगुणित पारणा करके उपवासों को पारना समझना चाहिए। इस तप की स्थापना यों है:—

१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८
१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	

एवं खलु एसा खुड्डागसीहनिक्कीलियस्स तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी छहिं मासेहिं सत्तहि य अहोरत्तेहि य अहासुत्ता जाव आराहिया भवइ।

---

* सिंह की क्रीड़ा के समान तप सिंहनिष्क्रीडित कहलाता है। जैसे सिंह चलता चलता पीछे देखता है, इसी प्रकार जिस तप में पीछे के तप की आवृत्ति करके आगे का तप किया जाता है और इसी क्रम से आगे बढ़ा जाता है, वह सिंहनिष्क्रीडित तप कहलाता है।

इस प्रकार इस क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप को पहली परिपाटी छह मासों और सात अहोरात्रों में सूत्र के अनुसार यावत् आराधित होती है। (इसमें १५४ उपवास और तेतीस पारणा किये जाते हैं।)

तयाणंतरं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेंति, नवरं विगइवज्जं पारेंति। एवं तच्चा वि परिवाडी, नवरं पारणए अलेवाडं पारेंति। एवं चउत्था वि परिवाडी, नवरं पारणए आयंबिलेणं पारेंति।

तत्पश्चात् दूसरी परिपाटी में एक उपवास करते हैं, इत्यादि सब पहले के समान समझना। विशेषता यह है कि इसमें विकृतिरहित पारणा करते हैं, अर्थात् पारणा मे विगय का सेवन नहीं करते। इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी समझनी चाहिए। इसमें विशेषता यह है कि अलेपकृत से पारणा करते हैं। चौथी परिपाटी में भी ऐसा ही करते है। उसमे आयंबिल से पारणा की जाती है।

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं दोहिं संवच्छरेहिं अट्ठावीसाए अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आणाए आराहेत्ता, जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार क्षुल्लक (लघु) सिंहनिष्क्रीडित्त तप को (चारों परिपाटी सहित) दो वर्ष और अट्ठाईस अहोरात्र मे, सूत्र के कथनानुसार यावत् तीर्थङ्कर की आज्ञा से आराधन करके, जहां स्थविर भगवान् थे, वहां आये। आकर उन्हो ने वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोलेः—

इच्छामो णं भंते! महालयं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं तहेव जहा खुड्डागं, नवरं चोत्तीसइमाओ नियत्तए, एगाए चेव परिवाडीए कालो एगेणं संवच्छरेणं छहिं मासेहिं अट्ठारसेहि य अहोरत्तेहिं समप्पेइ। सव्वं पि सीहनिक्कीलियं छहिं वासेहिं, दोहि य मासेहिं, बारसेहि य अहोरत्तेहिं समप्पेइ।

भगवन्! हम महत् (बड़ा) सिंहनिष्क्रीडित नामक तपकर्म करना चाहते हैं। यह तप क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप के समान ही जानना चाहिए। विशेषता

यह है कि इसमे चौंतीस भक्त अर्थात् सोलह उपवास तक पहुँच कर वापिस लौटा जाता है। एक परिपाटी एक वर्ष, छह मास और अठारह अहोरात्र मे समाप्त होती है। सम्पूर्ण महासिंहनिष्क्रीडित तप छह वर्ष, दो मास और बारह अहोरात्र मे समाप्त होता है। (प्रत्येक परिपाटी में ५५८ दिन लगते है, ४९७ उपवास और ६१ पारणा होते हैं।

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा महालयं सीहनिक्कीलियं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूणि चउत्थ जाव विहरंति।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति सातों मुनि महासिंहनिष्क्रीडित तपकर्म का सूत्र के अनुसार यावत् आराधन करके जहां स्थविर भगवान् थे, वहां आते है। आकर स्थविर भगवान् को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं। वन्दना और नमस्कार करके बहुत से उपवास बेला आदि करते हुए विचरते हैं।

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा तेणं उरालेणं सुक्का भुक्खा जहा खंदओ, नवरं थेरे आपुच्छित्ता चारुपव्वयं (वक्खारपव्वयं) दुरूहंति। दुरूहित्ता जाव दोमासियाए संलेहणाए सवीसं भत्तसयं अणसणं चउरासीइं वाससयसहस्साइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता चुलसीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते विमाणे देवत्ताए उववन्ना।

तत्पश्चात् वे महाबल प्रभृति अनगार उस प्रधान तप के कारण शुष्क अर्थात् मांस-रक्त से हीन तथा रूक्ष अर्थात् निस्तेज हो गये, जैसे भगवतीसूत्र मे कथित स्कंदक मुनि। विशेषता यह है कि स्कंदक मुनि ने भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त की थी, पर इन सात मुनियो ने स्थविर भगवान् से आज्ञा ली। आज्ञा लेकर चारु पर्वत (चारु नामक वक्षस्कार पर्वत) पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर यावत् दो मास की संलेखना करके-एक सौ बीस भक्त का अनशन करके, चौरासी लाख वर्षों तक संयम का पालन करके, चौरासी लाख पूर्व का कुल आयुष्य भोग कर जयंत नामक तीसरे अनुत्तर विमान मे देव-पर्याय से उत्पन्न हुए।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

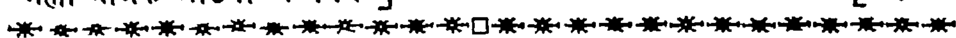
तत्थ णं महब्बलवज्जाणं छण्हं देवाणं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई, महब्बलस्स देवस्स पडिपुण्णाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

उस जयन्त विमान में कितनेक देवों की बत्तीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। उनमें से महाबल को छोड़ कर दूसरे छह देवों की कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति और महाबल देव की पूरे बत्तीस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

तए णं ते महब्बलवज्जा छप्पि य देवा जयंताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विसुद्धपिइमाइवंसेसु रायकुलेसु पत्तेयं पत्तेयं कुमारत्ताए पच्चायायासी। तंजहा—पडिबुद्धी इक्खागराया १, चंदच्छाए अंगराया २, संखे कासिराया ३, रुप्पी कुणालाहिवई ४, अदीणसत्तू कुरुराया ५, जियसत्तू पंचालाहिवई ६।

तत्पश्चात् महाबल देव के सिवाय छहों देव जयन्त देवलोक से, देव संबंधी आयु का क्षय होने से, देवलोक में रहने रूप स्थिति का क्षय होने से और देव संबंधी भव का क्षय होने से, अन्तर रहित, शरीर का त्याग करके अथवा च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप में, भरत वर्ष (क्षेत्र) में विशुद्ध माता-पिता के वंश वाले राजकुलों में, अलग-अलग कुमार के रूप में उत्पन्न हुए। वे इस प्रकार-(१) पहला मित्र प्रतिबुद्धि इक्ष्वाकु वंश का अथवा इक्ष्वाकु देश का राजा हुआ। (इक्ष्वाकु देश को कोशल देश भी कहते हैं, जिसकी राजधानी अयोध्या थी)। (२) दूसरा चंद्रच्छाय अंगदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी चम्पा थी। (३) तीसरा मित्र शंख काशी देश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी वाणारसी नगरी थी। (४) चौथा रुक्मि कुणाल देश का राजा हुआ, जिसकी नगरी श्रावस्ती थी। (५) पांचवां अदीनशत्रु कुरुदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। (६) छठा जितशत्रु पंचाल देश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी कांपिल्यपुर थी।

तए णं से महब्बले देवे तिहिं णाणेहिं समग्गे उच्चट्ठाणट्ठिएसु गहेसु, सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु, जइएसु सउणेसु, पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुतंसि पवायंसि, निप्फन्नसस्समेइणीयंसि कालंसि, पमुइयपक्कीलिएसु जणवएसु, अद्धरत्तकालसमयंसि



अस्सिणीनक्खत्तेणं जोगमुवागएणं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे फग्गुणसुद्धे, तस्स णं फग्गुणसुद्धस्स चउत्थिपक्खेणं जयंताओ विमाणाओ बत्तीससागरोवमट्ठिईयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रन्नो पभावईए देवीए कुच्छिंसि आहारवक्कंतीए सरीरवक्कंतीए भववक्कंतीए गब्भत्ताए वक्कंते।

तत्पश्चात् वह महाबल देव तीन-मति, श्रुत और अवधि-ज्ञान से युक्त होकर, जब समस्त ग्रह उच्च स्थान में रहे हुए थे, सभी दिशाएँ सौम्य-उत्पात से रहित, वितिमिर-अंधकार से रहित और विशुद्ध-धूल आदि से रहित थीं, पक्षियों के शब्द आदि रूप शकुन विजयकारक थे, वायु दक्षिण की ओर चल रहा था और अनुकूल अर्थात् शीत मंद और सुगंध रूप होकर पृथ्वी पर प्रसार कर रहा था, पृथ्वी पर धान्य निष्पन्न हो गया था, इस कारण लोग अत्यन्त हर्षयुक्त होकर क्रीड़ा कर रहे थे, ऐसे समय में, धर्म रात्रि के अवसर पर, अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर, हेमन्त ऋतु के चौथे मास, आठवें पक्ष अर्थात् फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में, चतुर्थी तिथि के पश्चात् भाग-रात्रिभाग में, बत्तीस सागरोपम की स्थिति वाले जयन्त नामक विमान से, अनन्तर, शरीर त्याग कर, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भरतक्षेत्र में, मिथिला नामक राजधानी में, कुंभ राजा की प्रभावती देवी की कूंख में, देवगति संबंधी आहार का त्याग करके, वैक्रिय शरीर का त्याग करके एवं देवभव का त्याग करके गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ।

तं रयणिं च णं पभावई देवी तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सयणिज्जंसि जाव अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धण्णे मंगल्ले सस्सिरीए चउद्दसमहासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तंजहा—

गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयर-झय-कुंभे।
पउमसर-सागर-विमाण-रयणुच्चय-सिहिं च ॥

तए णं सा पभावई देवी जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव भत्तारकहणं सुमिणपाढगपुच्छा जाव विहरइ।

उस रात्रि में प्रभावती देवी उस प्रकार के उस पूर्ववर्णित वासभवन में, पूर्ववर्णित शय्या पर यावत् अर्ध रात्रि के समय, जब न गहरी सोई थी और न जाग ही रही थी बार-बार ऊंघ रही थी तब इस प्रकार के प्रधान, कल्याणरूप, शिव-उपद्रवरहित, धन्य, मांगलिक और सश्रीक चौदह महास्वप्न देख कर जागी। वे चौदह स्वप्न इस प्रकार हैं:- (१) गज (२) वृषभ (३) सिंह (४) अभिषेक (५) पुष्पमाला (६) चन्द्रमा (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) कुम्भ (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) सागर (१२) विमान (१३) रत्नों की राशि (१४) धूमरहित अग्नि।

यह चौदह स्वप्न देखने के पश्चात् प्रभावती रानी जहाँ राजा कुम्भ थे, वहाँ आई। आकर पति से स्वप्नों का वृत्तान्त कहा। कुम्भ राजा ने स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। यावत् प्रभावती देवी हर्षित एवं संतुष्ट होकर विचरने लगी।

तए णं तीसे पभावईए देवीए तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं इमेयारूवे डोहले पाउब्भूए-धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं जलथलयभासुरप्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं अत्थुयपच्चत्थुयंसि सयणिज्जंसि सन्निसन्नाओ सण्णिवन्नाओ य विहरंति। एगं च महं सिरीदामगंडं पाडल-मल्लिय-चंपय-असोग-पुन्नाग-मरुयग-दमणग-अणोज्ज कोज्जय-कोरंट-पत्तवरपउरं परमसुहफासदरिसणिज्जं महया गंधद्धुणिं मुयंतं अग्घायमाणीओ डोहलं विणेंति।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी को तीन मास बराबर पूर्ण हुए तो इस प्रकार का दोहद (मनोरथ) उत्पन्न हुआ-वे माताएँ धन्य हैं जो जल और थल में उत्पन्न हुए, देदीप्यमान, अनेक, पँचरंगे पुष्पों से आच्छादित और पुनः पुनः आच्छादित की हुई शय्या पर सुखपूर्वक बैठी हुई और सुख से सोई हुई विचरती है। तथा पाटला, मालती, चम्पा, अशोक, पुंनाग के फूलों, मरूवा के पत्तों, दमनक के फूलों, निर्दोष शतपत्रिका के फूलों एवं कोरंट के उत्तम पत्तों से गूंथे हुए, परमसुखदायक स्पर्श वाले, देखने में सुन्दर तथा अत्यन्त सौरभ छोड़ने वाले श्रीदामकाण्ड (सुन्दर माला) के समूह को सूंघती हुई अपना दोहद पूर्ण करती हैं।

तए णं तीसे पभावईए देवीए इमेयारूवं डोहलं पाउब्भूयं पासित्ता अहासन्निहिया वाणमंतरा देवा खिप्पामेव जलथलय० जाव दसद्धवन्नमल्लं कुंभग्गसो य भारग्गसो य कुंभगस्स रण्णो भवणंसि साहरंति। एगं च णं महं सिरिदामगंडं जाव गंधद्धुणिं मुयंतं उवणेंति।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी को इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ देख कर पास में रहे हुए वाण-व्यन्तर देवों ने शीघ्र ही जल और थल में उत्पन्न हुए यावत् पाँच वर्ण वाले पुष्प, कुम्भों और भारों के प्रमाण में अर्थात् बहुत-से पुष्प कुम्भ राजा के भवन में लाकर डाल दिये। इनके अतिरिक्त सुखप्रद एवं सुगंध फैलाता हुआ एक श्रीदामकांड भी लाकर डाल दिया।

तए णं सा पभावई देवी जलथलय० जाव मल्लेणं डोहलं विणेइ। तए णं सा पभावई देवी पसत्थडोहला जाव विहरइ।

तए णं सा पभावई देवी नवण्हं मासाणं अद्धट्ठमाण य रत्तिंदियाणं जे से हेमंताणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे मग्गसिरसुद्धे तस्स णं मग्गसिरसुद्धस्स एक्कारसीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अस्सिणीनक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उच्चट्ठाणगएसु गहेसु जाव पमुइयपक्कीलिएसु जणवएसु आरोयारोयं एगूणवीसइमं तित्थयरं पयाया।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने जल और थल मे उत्पन्न यावत् फूलो की माला से अपना दोहला पूर्ण किया। तब प्रभावती देवी प्रशस्तदोहला होकर विचरने लगी।

तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने नौ मास और साढ़े सात दिवस पूर्ण होने पर, हेमन्त के प्रथम मास मे, दूसरे पक्ष मे अर्थात् मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में, मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन, मध्य रात्रि में, अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर, सभी ग्रहों के उच्च स्थान पर स्थित होने पर, जब देश के सब लोग प्रमुदित होकर क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे समय मे, आरोग्य-आरोग्य पूर्वक अर्थात् बिना किसी बाधा के उन्नीसवें तीर्थङ्कर को जन्म दिया।

ते णं काले णं ते णं समए णं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महयरीयाओ जहा जंबुदीवपन्नत्तीए जम्मणं सव्वं भाणियव्वं। नवरं मिहिलाए नयरीए कुंभरायस्स भवणंसि पभावईए देवीए अभिलावो संजोएव्वो जाव नंदीसरवरे दीवे महिमा।

उस काल और उस समय मे अधोलोक में बसने वाली महत्तरिका दिशाकुमारिकाएँ आईं, इत्यादि जन्म का जो वर्णन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में आया है, वह सब यहां समझ लेना चाहिए, विशेषता यह है कि-मिथिला नगरी में, कुंभ राजा के भवन मे, प्रभावती देवी का आलापक कहना-नाम कहना

तए णं मल्ली मणिपेढियाए उवरिं अप्पणो सरिसियं सरित्तयं सरिसव्वयं सरिसलावन्नजोव्वणगुणोववेयं कणगमइं मत्थयच्छिड्डं पउमुप्पलप्पिहाणं पडिमं करेइ, करित्ता जं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारेइ, तओ मणुन्नाओ असणपाणखाइमसाइमाओ कल्लाकल्लिं एगमेगं पिंडं गहाय तीसे कणगमईए मत्थयच्छिड्डाए जाव पडिमाए मत्थयंसि पक्खिवमाणी पक्खिवमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् उस मल्ली कुमारी ने मणिपीठिका के ऊपर अपनी जैसी, अपनी जैसी त्वचा वाली, अपनी सरीखी उम्र वाली, समान लावण्य, यौवन और गुणो से युक्त एक सुवर्ण की प्रतिमा बनवाई। उस प्रतिमा के मस्तक पर छिद्र था और उस पर कमल का ढक्कन था। इस प्रकार की प्रतिमा बनवा कर जो विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य वह खाती थी, उस मनोज्ञ अशन पान खाद्य और स्वाद्य में से प्रतिदिन एक-एक पिण्ड (कवल) लेकर उस स्वर्णमयी, मस्तक में छेद वाली यावत् प्रतिमा मे मस्तक मे से डालती रहती थी।

तए णं तीसे कणगमईए जाव मत्थयछिड्डाए पडिमाए एगमेगंसि पिंडे पक्खिप्पमाणे पक्खिप्पमाणे पउमुप्पलपिहाणं पिहेइ। तओ गंधे पाउब्भवइ, से जहानामए अहिमडेइ वा जाव एत्तो अणिट्ठतराए अमणामतराए।

तत्पश्चात उस स्वर्णमयी यावत् मस्तक में छिद्र वाली प्रतिमा मे एक एक पिंड डाल-डाल कर कमल का ढक्कन ढँक देती थी। इससे उसमे ऐसा दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी जैसे सर्प के मृतकलेवर की हो, यावत् उससे भी अधिक अनिष्ट और गंध उत्पन्न होती थी।

ते णं काले णं ते णं समए णं कोसले नाम जणवए होत्था। तत्थ णं सागेए नाम नयरे होत्था। तस्स णं उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं महं एगे णागघरए होत्था दिव्वे सच्चे सच्चोवाए संनिहियपाडिहेरे।

उस काल और उस समय मे कौशल नामक देश था। उसमे साकेत नामक नगर था। उस नगर के उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में एक नागगृह (नाग देव की प्रतिमा से युक्त चैत्य) था। वह प्रधान था, सत्य था अर्थात्

नागदेव का कथन सत्य सिद्ध होता था, उसकी सेवा सफल होती थी और वह देवाधिष्ठित था।

तत्थ णं नयरे पडिबुद्धी नाम इक्खागुराया परिवसइ, तस्स पउमावई देवी, सुबुद्धी अमच्चे सामदंड० जाव रज्जधुराचिंतए होत्था।

उस साकेत नगर मे प्रतिबुद्धि नामक इक्ष्वाकु वंश का राजा निवास करता था। पद्मावती उसकी पटरानी थी सुबुद्धि अमात्य था, जो साम, दाम, भेद और दंड नीतियों मे कुशल था यावत् राज्य-धुरा की चिन्ता करने वाला था।

तए णं पउमावईए अन्नया कयाइं नागजन्नए यावि होत्था। तए णं सा पउमावई नागजन्नमुवट्ठियं जाणित्ता जेणेव पडिवुद्धी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० जाव एवं वयासी—'एवं खलु सामी! मम कल्लं नागजन्नए यावि भविस्सइ, तं इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी नागजन्नयं गमित्तए, तुब्भे वि णं सामी! मम नागजन्नंसि समोसरह।

किसी समय एक बार पद्मावती देवी की नागपूजा का उत्सव आया। तब पद्मावती देवी नागपूजा का उत्सव आया जान कर प्रतिबुद्धि राजा के पास गई। पास जाकर दोनो हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली—'स्वामिन्! कल मुझे नागपूजा करनी है। अतएव आपकी अनुमति पाकर मैं नागपूजा करने के लिए जाना चाहती हूं। स्वामिन्! आप भी मेरी नागपूजा मे पधारो, ऐसी मेरी इच्छा है।'

तए णं पडिबुद्धी पउमावईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ। तए णं पउमावई पडिबुद्धिणा रण्णा अब्भणुन्नाया हट्ठतुट्ठा जाव कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! मम कल्लं नागजन्नए भविस्सइ, तं तुब्भे मालागारे सद्दावेह, सद्दावित्ता एवं वयह:—

तब प्रतिबुद्धि राजा ने पद्मावती देवी की यह बात स्वीकार की। तत्पश्चात् पद्मावती देवी, प्रतिबुद्धि राजा की अनुमति पाकर हृष्ट-तुष्ट हुई। उसने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा—'हे देवानुप्रियो! कल मेरे नागपूजा होगी, सो तुम मालाकारों को बुलाओ और उन्हे इस प्रकार कहो—

एवं खलु पउमावईए देवीए कल्लं नागजन्नए भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! जलथलय० दसद्धवन्नं मल्लं नागघरयंसि साहरह, एगं च णं महं सिरिदामगंडं उवणेह। तए णं जलथलय० दसद्धवन्नेणं मल्लेणं णाणाविहभत्तिसुविरइयं करेह। तंसि भत्तिंसि हंस-मिय-मऊर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणसाल-कोइलकुलोववेयं ईहामिय जाव भत्ति-चित्तं महग्घं महरिहं विपुलं पुप्फमंडवं विरएह। तस्स णं बहुमज्झदेस-भाए एगं महं सिरिदामगंडं जाव गंधद्धुणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलंबेह। ओलंबित्ता पउमावइं देविं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठह।' तए णं ते कोडुंबिया जाव चिट्ठंति।

'इस प्रकार निश्चय ही पद्मावतीदवी के कल नागपूजा होगी। अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम जल और थल में उत्पन्न हुए पाँचों रंगों के फूल नागगृह में ले जाओ। और एक श्रीदामकाण्ड (शोभित मालाओं का समूह) बना कर लाओ। तत्पश्चात् जल और थल में उत्पन्न होने वाले पाँच वर्णों के फूलों से विविध प्रकार की रचना करके उसे सजाओ। उस रचना में हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनशाल (मैना) और कोकिल के समूह से युक्त तथा ईहामृग, वृषभ, तुरग आदि की रचना वाले चित्र बना कर महामूल्यवान्, महान् जनों के योग्य और विस्तार वाला एक पुष्पमण्डप बनाओ। उस पुष्प-मण्डप के मध्य भाग में एक महान् और गंध के समूह को छोड़ने वाला श्रीदाम-काण्ड उल्लोच (छत-अगासी) पर लटकाओ। लटका कर पद्मावती देवी की की राह देखते-देखते ठहरो।' तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष इसी प्रकार कार्य करके यावत् पद्मावती की राह देखते हुए नागगृह में ठहरते हैं।

तए णं सा पउमावई देवी कल्लं० कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दा-वित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सागेयं नगरं सब्भि-तरबाहिरियं आसित्तसम्मज्जियोवलित्तं० जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरे दिन प्रातः काल सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही साकेत नगर में भीतर और बाहर पानी सींचो, सफाई करो और लिपाई करो।' यावत् वे कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार कार्य करके आज्ञा वापिस लौटाते हैं।

तए णं सा पउमावई देवी दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दा-

चित्ता एवं वयासी–'खिप्पामेव देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्तं जाव जुत्तामेव उवट्ठवेह ।' तए णं ते वि तहेव उवट्ठावेंति ।

तए णं सा पउमावई अंतो अंतेउरंसि ण्हाया जाव धम्मियं जाणं दुरूढा ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो ! शीघ्र ही लघुकरण से युक्त (द्रुतगामी अश्वों वाले) यावत् रथ को जोड़ कर उपस्थित करो।' तब वे भी उसी प्रकार रथ उपस्थित करते हैं।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी अन्तःपुर के अन्दर स्नान करके यावत् धार्मिक (धर्म कार्य के लिए काम में आने वाले) यान पर अर्थात् रथ पर आरूढ़ हुई।

तए णं सा पउमावई नियगपरिवालसंपरिवुडा सागेयं नगरं मज्झंमज्झेणं णिज्जइ, णिज्जित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुक्खरिणिं ओगाहइ। ओगाहित्ता जलमज्जणं जाव परम-सुइभूया उल्लपडसाडया जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव गेण्हइ। गेण्हित्ता जेणेव नागघरए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी अपने परिवार से परिवृत होकर साकेत नगर के बीच में होकर निकली। निकल कर जहाँ पुष्करिणी थी वहाँ आई। आकर पुष्करिणी में प्रवेश किया। प्रवेश करके स्नान किया। यावत् अत्यन्त शुचि होकर गीली साड़ी पहन कर वहाँ जो कमल आदि थे, उन्हें यावत् ग्रहण किया ग्रहण करके जहाँ नागगृह था, वहाँ जाने के लिए विचार किया।

तए णं पउमावईए दासचेडीओ बहूओ पुप्फपडलगहत्थगयाओ धूवकडुच्छुगहत्थगयाओ पिट्ठओ समणुगच्छंति।

तए णं पउमावई सव्विड्ढिए जेणेव णागघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नागघरयं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता लोमहत्थगं जाव धूवं डहइ, डहित्ता पडिबुद्धिं रायं पडिवालेमाणी पडिवालेमाणी चिट्ठइ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी की बहुत-सी दास-चेटियाँ (दासियां) फूलों की छावड़ियां लेकर तथा धूप की कुड़छियां हाथ में लेकर पीछे चलने लगीं।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी सर्व ऋद्धि के साथ–पूरे ठाठ के साथ–जहां नागगृह था, वहां आई। आकर नागगृह मे प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर रोमहस्तक (पींछी) लेकर प्रतिमा पूंजी, यावत् धूप खेई। धूप खेकर प्रतिबुद्धि राजा की प्रतीक्षा करती हुई वही ठहरी।

तए णं पडिबुद्धि राया एहाए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धारिज्जमाणेणं जाव सेयवरचामराहिं महयाहय-गय-रह-जोह-महयाभडगचडगरपहकरेहिं साकेयनगरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव णागघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता आलोए पणामं करेइ, करित्ता पुप्फमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पासइ तं एगं महं सिरिदामगंडं।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा स्नान करके श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आसीन हुआ। कोरंट के फूलो सहित अन्य पुष्पो की मालाएँ जिसमे लपेटी हुई थीं, ऐसा छत्र उसके मस्तक पर धारण किया गया। यावत् उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। उसके आगे–आगे विशाल घोड़े, हाथी, रथ और पैदल योद्धा–यह चतुरंगी सेना चली। सुभटों के समूह के समूह चले। वह साकेत नगर के मध्यभाग मे होकर निकला। निकल कर जहां नागगृह था, वहाँ आया। आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरा। उतर कर प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रणाम किया। प्रणाम करके पुष्प–मंडप मे प्रवेश किया प्रवेश करके वहां एक महान् श्रीदाम-काण्ड देखा।

तए णं पडिबुद्धी तं सिरिदामगंडं सुइरं कालं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता तंसि सिरिदामगंडंसि जायविम्हए सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी–

'तुमं णं देवाणुप्पिया! मम दोच्चेणं बहूणि गामागर० जाव संनिवेसाइं आहिंडसि, बहूणि राईसर जाव गिहाइं अणुपविससि, तं अत्थि णं तुमे कहिंचि एरिसए सिरिदामगंडे दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं इमे पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे ?

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा उस श्रीदामकाण्ड को बहुत देर तक देखता रहा। देख कर उस श्रीदामकाण्ड के विषय मे उसे आश्चर्य उत्पन्न हुआ। उसने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा:–

'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दौत्य कार्य से बहुतेरे ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् सन्निवेशों में आदि मे घूमते हो, और बहुत से राजाओं एवं ईश्वरो आदि के गृह मे प्रवेश करते हो; तो क्या तुमने ऐसा सुन्दर श्रीदामकाण्ड कहीं पहले देखा है, जैसा पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड है ?

तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धिं रायं एवं वयासी—एवं खलु सामी ! अहं अन्नया कयाइं तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं रायहाणिं गए, तत्थ णं मए कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहवररायकन्नाए संवच्छरपडिलेहणगंसि दिव्वे सिरिदामगंडे दिट्ठपुव्वे । तस्स णं सिरिदामगंडस्स इमे पउमावईए सिरिदामगंडे सयसहस्सइमं वि कलं न अग्घइ ।

तब सुबुद्धि अमात्य ने प्रतिबुद्धि राजा से कहा—हे स्वामिन् ! मैं एक बार किसी समय आपके दौत्यकार्य से मिथिला राजधानी गया था। वहां मैंने कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा, विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली के संवत्सर प्रतिलेखनउत्सव (जन्मगांठ के महोत्सव) के समय दिव्य श्रीदामकाण्ड देखा था। उस श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखवां अंश भी नहीं पाता ।

तए णं पडिबुद्धी राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—'केरिसिया णं देवाणुप्पिया ! मल्ली विदेहवररायकन्ना जस्स णं संवच्छरपडिलेहणयंसि सिरिदामगंडस्स पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे सयसहस्सइमं पि कलं न अग्घइ ?

तए णं सुबुद्धी अमच्चे पडिबुद्धिं इक्खागुरायं एवं वयासी—'एवं खलु सामी ! मल्ली विदेहवररायकन्नगा सुपइट्ठियकुम्मुन्नयचारुचरणा, वन्नओ ।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा ने सुबुद्धि मंत्री से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली कैसी है, जिसकी जन्मगांठ के उत्सव मे बनाये गये श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखवां अंश भी नहीं पाता ?'

तब सुबुद्धि मन्त्री ने इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि से कहा—इस प्रकार स्वामिन् ! विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली सुप्रतिष्ठित और कछुए के समान उन्नत एवं

सुन्दर चरण वाली है। इत्यादि वर्णन जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि के अनुसार जान लेना चाहिए।

तए णं पडिबुद्धी राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सिरिदामगंडजणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया! मिहिलं रायहाणिं, तत्थ णं कुंभगस्स रण्णो धूयं पमावईए देवीए अत्तयं मल्लिं विदेहवररायकण्णगं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि णं सा सयं रज्जसुंका।

तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि राजा ने सुबुद्धि अमात्य के पास से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके और श्रीदामकाण्ड की बात से हर्षित होकर दूत को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिय! तुम मिथिला राजधानी जाओ। वहाँ कुंभ राजा की पुत्री, पद्मावती देवी की आत्मजा और विदेह की प्रधान राजकुमारी मल्ली की मेरी पत्नी के रूप मे मगनी करो। फिर भले ही उसके लिए सारा राज्य शुल्क–मूल्य में देना पड़े।

तए णं से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पावेइ, पडिकप्पावित्ता दुरूढे जाव हयगयमहयाभडचडगरेणं साएयाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव विदेहजणवए जेणेव मिहिला रायहाणी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् उस दूत ने प्रतिबुद्धि राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित और संतुष्ट होकर उसकी आज्ञा अंगीकार की। अंगीकार करके जहां अपना घर था, और जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहां आया। आकर (आगे, पीछे और अगल–बगल में) चार घंटों वाले अश्वरथ को तैयार कराया। तैयार करवा कर उस पर आरूढ़ हुआ। यावत् घोड़ों, हाथियो और बहुत से सुभटों समूह के साथ साकेत नगर से निकला। निकल कर जहां विदेह जनपद था और जहां मिथिला राजधानी थी, वहां जाने का विचार किया–चल दिया।

ते णं काले णं ते णं समए णं अंगे नाम जणवए होत्था। तत्थ णं चंपानामे णयरी होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए चंदच्छाए अंगराया होत्था।

उस काल और उस समय में अंग नामक जनपद था। उसमें चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरी मे चन्द्रछाय नामक अंगराज–अंग देश का राजा–था।

तत्थ णं चंपाए नयरीए अरहन्नकपामोक्खा बहवे संजत्ता णावा-वाणियगा परिवसंति, अड्ढा जाव अपरिभूया। तए णं से अरहन्नगे समणोवासए यावि होत्था, अहिगयजीवाजीवे, वन्नओ।

उस चम्पा नगरी मे अर्हन्नक प्रभृति बहुत–से सांयात्रिक (परदेश जाकर व्यापार करने वाले) नौवणिक् (नौकाओं से व्यापार करने वाले) रहते थे। वे ऋद्धिसम्पन्न थे और किसी से पराभूत होने वाले नहीं थे। उनमे अर्हन्नक श्रमणोपासक (श्रावक) भी था, वह जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता था। यहां श्रावक का वर्णन जान लेना चाहिए।

तए णं तेसिं अरहन्नगपामोक्खाणं संजत्ताणावावाणियगाणं अन्नया कयाइ एगयओ सहियाणं इमे एयारूवे मिहो कहासंलावे समुप्पज्जित्था–

'सेयं खलु अम्हं गणिमं च धरिमं च मेज्जं च परिच्छेज्जं च भंडगं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेण ओगाहित्तए त्ति कट्टु अन्नमन्नं एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गेण्हइ, गेण्हित्ता सगडिसागडियं च सज्जेंति, सज्जित्ता गणिमस्स च धरिमस्स च मेज्जस्स च पारिच्छेज्जस्स च भंडगस्स सगडसागडियं भरेंति, भरित्ता सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तमुहुत्तंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, मित्तणाइभोयणवेलाए भुंजावेंति जाव आपुच्छंति, आपुच्छित्ता सगडिसागडियं जोयंति, चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति।

तत्पश्चात वे अर्हन्नक आदि सांयात्रिक नौवणिक् किसी समय एक बार एक जगह इकट्ठे हुए, तब उनमे आपस में इस प्रकार कथासंलाप (वार्त्तालाप) हुआ:—

'हमें गणिम (गिन-गिन कर बेचने योग्य नारियल आदि), धरिम (तोल कर बेचने योग्य घृत आदि), मेय (पायली आदि मे माप कर-भर कर बेचने योग्य अनाज आदि) और परिच्छेद्य (काट कर बेचने योग्य वस्त्र आदि), यह चार प्रकार का भाड (सौदा) लेकर, जहाज द्वारा लवणसमुद्र में प्रवेश करना योग्य है । इस प्रकार विचार करके उन्होंने परस्पर में यह बात अंगीकार की। अंगीकार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भांड को ग्रहण किया । ग्रहण करके छकड़ा-छकड़ी तैयार किये । तैयार करके गणिम, धरिम मेय और परिच्छेद्य भांड के छकड़ी-छकड़े भरे । भर कर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्त में अशन,पान, खादिम और स्वादिम बनवाया। बनवा कर भोजन की वेला में मित्रों एवं ज्ञातिजनों को जिमाया, यावत् उनकी अनुमति ली । अनुमति लेकर गाड़ो-गाड़े जोते । जोत कर चम्पा नगरी के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर जहां गंभीर नामक पोतपट्टन (बन्दरगाह) था, वहां आये ।

उवागच्छित्ता सगडिसागडियं मोयंति, मोइत्ता पोयवहणं सज्जेंति, सज्जित्ता गणिमस्स य धरिमस्स य मेजस्स य पारिच्छेजस्स य चउव्विहस्स भंडगस्स भरेंति, भरित्ता तंडुलाण य समियस्स य तेल्लस्स य गुलस्स य घयस्स य गोरसस्स य उदयस्स य उदयभायणाण य ओसहाण य भेसज्जाण य तणस्स य कट्ठस्स य आवरणाण य पहरणाण य अन्नेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं दव्वाणं पोयवहणं भरेंति । भरित्ता सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तमुहुत्तंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ० आपुच्छंति, आपुच्छित्ता जेणेव पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति ।

गंभीर नामक पोतपट्टन में आकर उन्होने गाड़ी-गाड़े छोड़ दिये । छोड़ कर जहाज सज्जित किये । सज्जित करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-चार प्रकार का भांड भरा । भर कर उसमें चावल, आटा, तेल, घी, गोरस (दही), पानी, पानी के बरतन, औषध, भेषज, घास, लकड़ी, वस्त्र, शस्त्र और भी जहाज मे रखने योग्य अन्य वस्तुएँ जहाज में भरी। भर कर प्रशस्त तिथि करण नक्षत्र और मुहूर्त्त मे, विपुल अशन, पान खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया । तैयार करवा कर मित्रों एव ज्ञातिजनो आदि को जिमा कर उन से अनुमति ली । अनुमति लेकर जहां नौका का स्थान था, वहाँ (समुद्र-किनारे) आये ।

तए णं तेसिं अरहन्नगपामोक्खाणं जाव वाणियगाणं परियणो जाव तारिसेहिं वग्गूहिं अभिनंदंता य अभिसंथुणमाणा य एवं वयासीः—'अज्ज ! ताय ! भाय ! माउल ! भाइणेज्ज ! भगवया समुद्देणं अभिरक्खिज्जमाणा अभिरक्खिज्जमाणा चिरं जीवह, भद्दं च भे, पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे नियगं घरं हव्वमागए पासामो' त्ति कट्टु ताहिं सोमाहिं निद्धाहिं दीहाहि सप्पिवासाहिं पप्पुयाहिं दिट्ठीहिं निरीक्खमाणा मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठंति।

तत्पश्चात् उन अर्हन्नक आदि यावत् नौका वणिकों के परिजन (परिवार के लोग) यावत् उस प्रकार के मनोहर वचनों से अभिनन्दन करते हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार बोलेः—

'हे आर्य (पितामह) ! हे तात ! हे भ्रात ! हे मामा ! हे भागिनेय ! आप इस भगवान् समुद्र द्वारा पुनः पुनः रक्षण किये जाते हुए चिरजीवी हों। आपका मंगल हो ! हम आपको अर्थ का लाभ करके, इष्ट कार्य करके निर्दोष और ज्यों के त्यों घर पर आया शीघ्र देखें।' इस प्रकार कह कर निर्विकार, स्नेहमय, दीर्घ, पिपासा वाली—सतृष्ण और अश्रुप्लावित दृष्टि से देखते-देखते वे लोग मुहूर्त्त मात्र—थोड़ी देर—वहीं खड़े रहे।

तओ समाणिएसु पुप्फवलिकम्मेसु, दिन्नेसु सरसरत्तचंदणदद्दरपंचंगुलितलेसु, अणुक्खित्तंसि धूवंसि, पूइएसु समुद्दवाएसु, संसारियासु वलयबाहासु, ऊसिएसु सिएसु झयग्गेसु, पडुप्पवाइएसु तूरेसु, जइएसु सव्वसउणेसु, गहिएसु रायवरसासणेसु, महया उक्किट्ठसीहनाय जाव रवेणं पक्खुभियमहासमुद्दरवभूयं पिव मेइणिं करेमाणा एगदिसिं जाव वाणियगा णावं दुरूढा।

तत्पश्चात् नौका में पुष्पबलि (पूजा) कार्य समाप्त होने पर, सरस रक्तचंदन का पाँचों उंगलियों का थापा (छापा) लगाने पर, धूप खेई जाने पर, समुद्र की वायु की पूजा हो जाने पर; बलयवाहा (लम्बे काष्ठ—बल्ले) यथास्थान सँभाल कर रख लेने पर, श्वेत पताकाएँ ऊपर फहरा देने पर, वाद्यों की मधुर ध्वनि होने पर, विजय कारक सब शकुन होने पर, यात्रा के लिए राजा का आदेश पत्र प्राप्त हो जाने पर, महान् और उत्कृष्ट सिंहनाद यावत् ध्वनि से, अत्यंत क्षुब्ध हुए महासमुद्र की गर्जना के समान पृथ्वी को शब्दमय करते हुए यावत् वे वणिक् एक तरफ से नौका पर चढ़े।

तओ पुस्समाणवो वक्कमुदाहु—'हं भो ! सव्वेसिमवि अत्थसिद्धी, उवट्ठियाइं कल्लाणाइं, पडिहयाइं सव्वपावाइं, जुत्तो पूसो विजओ मुहुत्तो अयं देसकालो ।'

तओ पुस्समाणवेणं वक्कमुदाहिए हट्ठतुट्ठे कुच्छिधारकन्नधार-गब्भिजसंजत्ताणावावाणियगा वावारिंसु, तं नावं पुन्नुच्छंगं पुण्णमुहिं बंधणेहिंतो मुंचंति ।

तत्पश्चात् वन्दीजन ने इस प्रकार वचन कहा—हे व्यापारियो ! तुम सब को अर्थ की सिद्धि हो, तुम्हे कल्याण प्राप्त हुए हैं, तुम्हारे समस्त पाप (विघ्न) नष्ट हुए हैं। इस समय पुष्य नक्षत्र चन्द्रमा से युक्त है और विजय नामक मुहूर्त्त है अतः यह देश और काल यात्रा के लिए उत्तम है।

तत्पश्चात् वंदीजन के द्वारा इस प्रकार वाक्य कहने पर हृष्टतुष्ट हुए कुक्षिधार—नौका की बगल में रह कर बल्ले चलाने वाले, कर्णधार (खिवैया), गर्भज—नौका के मध्य में रहकर छोटे-मोटे कार्य करने वाले और वे सांयात्रिक नौकावणिक् अपने—अपने कार्य में लग गये। फिर भांडों से परिपूर्ण मध्य भाग वाली और मंगल से परिपूर्ण अग्रभाग वाली उस नौका को बंधनों से मुक्त किया।

तए णं सा णावा विमुक्कबंधणा पवणबलसमाहया उस्सियसिया विततपक्खा इव गरुडजुवई गंगासलिलतिक्खसोयवेगेहिं संखुब्भमाणी संखुब्भमाणी उम्मीतरंगमालासहस्साइं समतिच्छमाणी समतिच्छमाणी कइवएहिं अहोरत्तेहिं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा ।

तत्पश्चात् वह नौका बन्धनों से मुक्त हुई, एवं पवन के बल से प्रेरित हुई। उस पर सफेद कपड़े का पाल चढ़ा हुआ था, अतएव ऐसी जान पड़ती थी जैसे पंख फैलाये कोई गरुड़-युवती हो ! वह वह गंगा के जल के तीव्र प्रवाह के वेग से क्षुब्ध होती—होती हजारों मोटी तरंगों और छोटी तरंगों के समूह को उल्लघन करती हुई—उल्लंघन करती हुई वह कुछ अहोरात्रों में लवणसमुद्र में कई सौ योजन दूर चली गई।

तए णं तेसिं अरहन्नगपामोक्खाणं संजत्तानावावाणियगाणं लवण-समुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं । तंजहा—

तत्पश्चात् कई सौ योजन लवणसमुद्र में पहुंचे हुए उन अर्हन्नक आदि सांयात्रिक नौकावणिकों को बहुत-से सैकड़ों उत्पात प्रादुर्भूत हुए-होने लगे। वे उत्पात इस प्रकार थेः—

अकाले गज्जिए, अकाले विज्जुए, अकाले थणियसद्दे, अभिक्खणं आगासे देवताओ णच्चंति, एगं च णं महं पिसायरूवं पासंति।

अकाल में गर्जना होने लगी, अकाल में बिजली चमकने लगी, अकाल में गंभीर गड़गड़ाहट होने लगी। वार-वार आकाश में देवता (मेघ) नृत्य करने लगे। एक महान् पिशाच का रूप दिखाई दिया।

तालजंघं दिवं गयाहिं बाहाहिं मसिमूसगमहिसकालगं, भरिय-मेहवन्नं, लंबोट्ठं, निग्गयग्गदंतं, निल्लालियजमलजुयलजीहं, आऊसिय-वयणगंडदेसं, चीणचिपिटनासियं, विगयभुग्गभुग्गभुमयं, खज्जोयग-दित्तचक्खुरागं, उत्तासणगं, विसालवच्छं, विसालकुच्छिं, पलंबकुच्छिं, पहसियपयलियपयडियगत्तं, पणच्चमाणं, अप्फोडंतं, अभिवयंतं, अभि-गज्जंतं, बहुसो बहुसो अट्टट्टहासे विणिम्मुयंतं नीलुप्पलगवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं, खुरधारं असिं गहाय अभिमुहमावयमाणं पासंति।

वह पिशाच ताड़ के समान लंबी जांघों वाला था और उसकी बाहु आकाश तक पहुँची हुई थीं। वह कज्जल, काले चूहे और भैंसे के समान काला था। उसका वर्ण जल-भरे मेघ के समान था। उसके होठ लम्बे थे और दांतों के अग्रभाग बाहर निकले थे। उसने अपनी एक-सी दोनों जीभें मुँह से बाहर निकाल रक्खी थीं। उसके गाल मुँह में धँसे हुए थे। उसकी नाक छोटी और चपटी थी। भृकुटि डरावनी और अत्यन्त वक्र थी। नेत्रों का वर्ण जुगनू के समान चमकता हुआ-लाल था। देखने वाले को घोर त्रास पहुँचाने वाला था। छाती चौड़ी थी, कुक्षि विशाल और लंबी थी। हँसते और चलते समय उसके अवयव ढीले दिखाई देते थे। वह नाच रहा था, आकाश को मानो फोड़ रहा था, सामने आरहा था, गर्जना कर रहा था और बहुत-बहुत ठहाका मार रहा था। काले कमल, भैंस के सींग नील, अलसी के फूल के समान काली तथा छुरा की धार की तरह तीक्ष्ण तलवार लेकर आते हुए ऐसे पिशाच को देखा।

तए णं ते अरहण्णगवज्जा संजत्ताणावावाणियगा एगं च णं महं

तालपिसायं पासंति—तालजंघं, दिवं गयाहिं बाहाहिं, फुट्टसिरं भमर-णिगरवरमासरासिमहिसकालगं, भरियमेहवण्णं, सुप्पणहं, फालसरिस-जीहं, लंबोट्ठं धवलवट्टअसिलिट्ठतिक्खथिरपीणकुडिलदाढोवगूढवयणं, विकोसियधारासिजुयलसमसरिसतणुयचंचलगलंतरसलोलचवलफुरुफुरंत-निल्लालियग्गजीहं अवयच्छियमहल्लविगयबीभच्छलालपगलंतरत्ततालुयं हिंगुलुयसगब्भकंदरबिलं व अंजणगिरिस्स, अग्गिजालुग्गिलंतवयणं आऊसियअक्खचम्मउइट्ठगंडदेसं चीणचिविडवंकभग्गणासं, रोसागय-धमधमेन्तमारुयनिट्ठुरखरफरुसझुसिरं, ओभुग्गणासियपुडं घाडुब्भड-रइयभीसणमुहं, उद्धमुहकन्नसक्कुलियमहंतविगयलोमसंखालगलंबंत-चलियकन्नं, पिंगलदिप्पंतलोयणं, भिउडितडियनिडालं नरसिरमाल-परिणद्धचिद्धं, विचित्तगोणससुबद्धपरिकरं अवहोलंतपुप्फुयायंतसप्प-विच्छुयगोधुंदिरनउलसरडविरइयविचित्तवेयच्छमालियागं, भोगकूर-कण्हसप्पधमधमेंतलंबंतकन्नपूरं, मज्जारसियाललइयखंधं, दित्तघुघु-यंतघूयकयकुंतलसिरं, घंटारवेण भीमं, भयंकरं, कायरजणहिययफोडणं, दित्तमट्टट्टहासं विणिम्मुयंतं, वसा-रुहिर-पूय-मंस-मलमलिणपोच्चडतणुं, उत्तासणयं, विसालवच्छं, पेच्छंताभिन्नणह-मुह-नयण-कन्नवरवग्घ-चित्तकत्तीणिवसणं, सरसरुहिरगयचम्मविततऊसवियबाहुजुयलं, ताहि य खरफरुसअसिणिद्धअणिट्ठदित्तअसुभअप्पियअकंतवग्गूहि य तज्जयंतं पासंति।

(पूर्ववर्णित तालपिशाच का ही यहाँ विशेष वर्णन किया है। यह दूसरा गम है)

तत्पश्चात् अर्हन्नक के सिवाय दूसरे सांयात्रिक नौका वणिकों ने एक बड़े तालपिशाच को देखा। उसकी जांघें ताड़ वृक्ष के समान लम्बी थीं और बाहुएँ आकाश तक पहुंची हुई खूब लम्बी थीं। उसका मस्तक फूटा हुआ था, अर्थात् मस्तक के केश बिखरे थे। वह भ्रमरों के समूह उत्तम उड़द के ढेर और भैंसे के के समान काला था। जल से परिपूर्ण मेघों के समान श्याम था। उसके नाखून सूप (छाजले) के समान थे। उसकी जीभ हल के फाल के समान थी—अर्थात् बावन पल प्रमाण अग्नि में तपाये गये लोहे के फाल के समान लाल, चमचमाती



और लम्बी थी। उसके होठ लंबे थे। उसका मुख धवल गोल, पृथक्-पृथक्, तीखी, स्थिर, मोटी और टेढी दाढों से व्याप्त था। उसके दो जिह्वाओं के अग्रभाग विना म्यान की धारदार तलवार-युगल के समान थे, पतले थे, चपल थे उनमें से निरन्तर लार टपक रही थी। वह रस-लोलुप थे, चंचल थे, लपलपा रहे थे और मुख से बाहर निकले हुए थे। मुख फटा होने से उसका लाल-लाल तालु खुला दिखाई देता था और वह बड़ा, विकृत, वीभत्स और लार झराने वाला था। उसके मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रहीं थीं, अतएव वह ऐसा जान पड़ता था, जैसे हिंगलु से व्याप्त अंजनगिरि की गुफा रूप बिल हो। सिकुड़े हुए मोट (चरस) के समान उसके गाल सिकुड़े हुए थे, अथवा उसकी इन्द्रियाँ, शरीर की चमड़ी, होठ और गाल–सब सल वाले थे। उसकी नाक छोटी थी, चपटी थी, टेढ़ी थी और भग्न थी, अर्थात् ऐसी जान पड़ती थी जैसे लोहे के घन से कूटपीट दी गई हो। उसके दोनो नथुनों (नासिकापुटो) से क्रोध के कारण निकलता हुआ श्वासवायु निष्ठुर और अत्यन्त कर्कश था। उसका मुख मनुष्य आदि के घात के लिए रचित होने से भीषण दिखाई देता था। उसके दोनो कान चपल और लम्बे थे, उनकी शष्कुली ऊँचे मुख वाली थी, उन पर लम्बे-लम्बे और विकृत बाल थे और वे कान नेत्र के पास की हड्डी (शंख) तक को छूते थे। उसके नेत्र पीले और चमकदार थे। उसके ललाट पर भ्रकुटि चढ़ी थी जो बिजली जैसी दिखाई देती थी। उसकी ध्वजा के चारों ओर मनुष्यो के मुंडो की माला लिपटी हुई थी। विचित्र प्रकार के गोनस जाति के सर्पों का उसने बख्तर बना रक्खा था। उसने इधर-उधर फिरते और फुफकारने वाले सर्पों, बिच्छुओं, गोहों, चूहों, नकुलों और गिरगिटों की विचित्र प्रकार की उत्तरासग जैसी माला पहनी थी। उसने भयानक फन वाले और धमधमाते हुए दो काले साँपों के लम्बे लटकते कुंडल धारण किये थे। अपने दोनों कंधो पर विलाव और सियार रखे थे। अपने मस्तक पर देदीप्यमान एवं घू-घू ध्वनि करने वाले उल्लू का मुकुट बनाया था। वह घंटा के शब्द के कारण भीम और भयंकर प्रतीत होता था। कायर जनों के हृदय को दलन करने वाला था। वह देदीप्यमान अट्टहास कर रहा था। उसका शरीर चर्बी, रक्त, मवाद, मांस और मल से मलिन और लिप्त था। वह प्राणियो को त्रास उत्पन्न करता था। उसकी छाती चौड़ी थी। उसने श्रेष्ठ व्याघ्र का ऐसा चित्र विचित्र चमड़ा पहन रक्खा था, जिसमें (व्याघ्र के) नाखून (रोम) मुख, नेत्र और कान आदि अवयव पूरे और साफ दिखाई पड़ते थे। उसने ऊपर उठाये हुए दोनो हाथों पर रस और रुधिर से लिप्त हाथी का चमड़ा फैला रक्खा था। वह पिशाच नौका पर बैठे हुए लोगों को, अत्यन्त कठोर, स्नेहहीन, अनिष्ट, उत्तापजनक, स्वरूप से ही अशुभ, अप्रिय तथा अकान्त-अनिष्ट स्वर वाली (अमनोहर) वाणी से तर्जना

कर रहा था। ऐसा भयानक पिशाच उन लोगों को दिखाई दिया।

तं तालपिसायरूवं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता भीया संजायभया अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा समतुरंगेमाणा बहूणं इंदाण य खंदाण य रुद्दसिववेसमणणागाणं भूयाण य जक्खाण य अज्जकोट्ट-किरियाण य बहूणि उवाइयसयाणि ओवाइयमाणा ओवाइयमाणा चिट्ठंति।

उन लोगों ने तालपिशाच के रूप को नौका की ओर आता देखा। देख कर वे डर गये, अत्यन्त भयभीत हुए, एक दूसरे के शरीर से चिपट गये और बहुत से इन्द्रों की, स्कंदों (कार्तिकेय) की तथा रुद्र, शिव, वैश्रमण, और नागदेवों की, भूतों की, यक्षों की दुर्गा की तथा कोट्टक्रिया (महिषवाहिनी दुर्गा) देवी की बहुत-बहुत सैकड़ों मनौतियाँ मनाने लगे।

तए णं से अरहन्नए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे पोयवहणस्स एगदेसंमि वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता ठाणं ठाइ, ठाइत्ता करयलओ एवं वयासी—

'नमोऽत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं, जइ णं अहं एत्तो उवसग्गाओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वे' त्ति कट्टु सागारं भत्तं पच्चक्खाइ।

उस समय अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस दिव्य पिशाचरूप को आता देखा। उसे देख कर वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ; त्रास को प्राप्त नहीं हुआ, चलायमान नहीं हुआ, सम्भ्रान्त नहीं हुआ, व्याकुल नहीं हुआ, उद्विग्न नहीं हुआ। उसके मुख का राग और नेत्रों का वर्ण बदला नहीं। उसके मन में दीनता या खिन्नता उत्पन्न नहीं हुई। उसने पोतवहन के एक भाग में जाकर वस्त्र के छोर से भूमि का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन करके उस स्थान पर बैठ गया और दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोलाः—

'अरिहन्त भगवंत यावत् सिद्धि को प्राप्त प्रभु को नमस्कार हो (इस

प्रकार नमोत्थुणं का पूरा पाठ उच्चारण किया)। फिर कहा-'यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊँ तो मुझे यह कायोत्सर्ग पारना कल्पता है, और यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊँ तो यही प्रत्याख्यान कल्पता है. अर्थात् कायोत्सर्ग पारना नहीं कल्पता।' इस प्रकार कह कर उसने सागारी अनशन को ग्रहण किया।

तए णं से पिसायरूवे जेणेव अरहन्नए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहन्नगं एवं वयासीः—

'हं भो अरहन्नगा! अपत्थियपत्थिया! जाव परिवज्जिया! णो खलु कप्पइ तव सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणे पोसहोववासाइं चालित्तए वा एवं खोभेत्तए वा, खंडित्तए वा, भंजित्तए वा, उज्झित्तए वा, परिच्चइत्तए वा। तं जइ णं तुमं सीलव्वयं जाव ण परिच्चयसि तो ते अहं एयं पोयवहणं दोहिं अंगुलियाहिं गेण्हामि, गेण्हित्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासे उव्विहामि, उव्विहित्ता अंतो जलंसि णिच्छोलेमि, जेणं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

तत्पश्चात् वह पिशाचरूप वहाँ आया, जहाँ अर्हन्नक श्रमणोपासक था। आकर अर्हन्नक से इस प्रकार बोलाः—

'अरे अप्रार्थित-मौत-की प्रार्थना (इच्छा) करने वाले! यावत् लज्जा कीर्त्ति बुद्धि और लक्ष्मी से परिवर्जित! तुझे शीलव्रत-अणुव्रत, गुणव्रत, विरमण-रागादि की विरति का प्रकार, नवकारसी आदि प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से चलायमान होना अर्थात् जिस भांगे से जो व्रत ग्रहण किया हो उसे बदल कर दूसरे भांगे से कर लेना, क्षोभयुक्त होना अर्थात् 'इस व्रत को इसी प्रकार पालूँ या त्याग दूं' ऐसा सोच कर क्षुब्ध होना, एक देश से खंडित करना; पूरी तरह भंग करना, देशविरति का सर्वथा त्याग करना अथवा सम्यक्त्व का भी परित्याग करना कल्पना नहीं है। परन्तु यदि तू शीलव्रत आदि का परित्याग नहीं करता तो मैं तेरे इस पोतवहन को दो उंगलियों पर उठाए लेता हूं और सात आठ तल की उँचाई तक आकाश में उछाले देता हूँ और उछाल कर इसे जल के अन्दर डुबाए देता हूँ, जिससे तू आर्त्तध्यान के वशीभूत होकर, असमाधि को प्राप्त होकर जीवन से रहित हो जायगा।

तए णं से अरहन्नए समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी–'अहं णं देवाणुप्पिया ! अरहन्नए णामं समणोवासए अहिगयजीवाजीवे, नो खलु अहं सक्का केणइ देवेण वा जाव निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभेत्तए वा विपरिणामेत्तए वा, तुमं णं जा सद्धा तं करेहि त्ति कट्टु अभीए जाव अभिन्नमुहरागणयणवन्ने अदीणविमणमाणसे निच्चले निप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

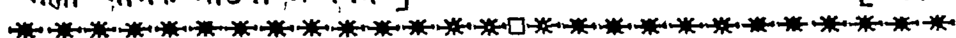
तब अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस देव को मन ही मन इस प्रकार कहा–'देवानुप्रिय ! मै अर्हन्नक नामक श्रावक हूं और जड़–चेतन के स्वरूप का ज्ञाता हूं (मुझे कुछ ऐसा–वैसा अज्ञानी या कायर मत समझना)। निश्चय ही मुझे कोई देव या दानव निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान नहीं कर सकता, क्षुब्ध नहीं कर सकता और विपरीत भाव उत्पन्न नही कर सकता। तुम्हारी जो श्रद्धा (इच्छा) हो सो करो।'

इस प्रकार कह कर अर्हन्नक निर्भय, अपरिवर्त्तित मुख के रंग और नेत्रों के वर्ण वाला, दैन्य और मानसिक खेद से रहित, निश्चल, निस्पंद, मौन और धर्म-ध्यान मे लीन बना रहा।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहन्नगं समणोवासयं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी–'हं भो अरहन्नगा !' जाव अदीणविमणमाणसे निच्चले निप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तत्पश्चात् वह दिव्य पिशाचरूप अर्हन्नक श्रमणोपासक से दूसरी बार और तीसरी बार कहने लगा–'अरे अर्हन्नक !' इत्यादि पूर्ववत्। यावत् अर्हन्नक ने वही उत्तर दिया और वह दीनता एवं मानसिक खेद से रहित, निश्चल, निस्पंद, मौन और धर्मध्यान मे लीन बना रहा।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहन्नगं धम्मज्झाणोवगयं पासइ, पासित्ता बलियतरागं आसुरुत्ते तं पोयवहणं दोहिं अंगुलयाहिं गिण्हइ, गिण्हित्ता सत्तट्ठत(ता)लाइं जाव अरहन्नगं एवं वयासी–'हं भो अरहन्नगा ! अपत्थियपत्थिया ! णो खलु कप्पइ तव सीलव्वय० तहेव जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ।



तत्पश्चात् उस दिव्य पिशाचरूप ने अर्हन्नक को धर्मध्यान में लीन देखा। देखकर उसने और अधिक कुपित होकर उस पोतवहन को दो उंगलियों से ग्रहण किया। ग्रहण करके सात-आठ मंजिल की या ताड़ वृक्षों की ऊँचाई तक ऊपर उठा कर अर्हन्नक से कहा-'अरे अर्हन्नक! मौत की इच्छा करने वाले! तुझे शीलव्रत आदि का त्याग करना नहीं कल्पता है, इत्यादि पूर्ववत्। इस प्रकार कहने पर भी अर्हन्नक किंचित् भी चलायमान न हुआ और धर्मध्यान में ही लीन बना रहा।

तए णं से पिसायरूवे अरहन्नगं जाहे नो संचाएइ निग्गंथाओ० चालित्तए वा० ताहे उवसंते जाव निव्विण्णे तं पोयवहणं सणियं सणियं उवरिं जलस्स ठवेइ, ठवित्ता तं दिव्वं पिसायरूवं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता दिव्वं देवरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता अंतलिक्खपडिवन्ने सखिंखिणियाइं जाव परिहिए अरहन्नगं समणोवासयं एवं वयासीः—

तत्पश्चात् वह पिशाचरूप जब अर्हन्नक को निर्ग्रन्थप्रवचन से चलायमान करने में समर्थ न हुआ, तब वह उपशान्त हो गया, यावत मन मे खेद को प्राप्त हुआ। फिर उसने उस पोतवहन को धीरे-धीरे उतार कर जल के ऊपर रक्खा। रख कर पिशाच के दिव्य रूप का संहरण किया और दिव्य देव के रूप की विक्रिया की। विक्रिया करके, अधर स्थिर होकर घुंघुरुओं की छम्-छम् की ध्वनि से युक्त वस्त्राभूषण धारण करके अर्हन्नक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहाः—

'हं भो अरहन्नगा! धन्नोऽसि णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव जीवियफले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया, एवं खलु देवाणुप्पिया! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए वहुणं देवाणं मज्झगए महया सद्देणं आइक्खइ-'एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए अरहन्नए समणोवासए अहिगयजीवाजीवे, नो खलु सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा जाव विपरिणामित्तए वा।

तए णं अहं देवाणुप्पिया! सक्कस्स देविंदस्स एयमट्ठं णो सद्दहामि, नो रोययामि। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्प-

ज्जित्था–'गच्छामि णं अरहन्नयस्स अंतियं पाउब्भवामि, जाणामि ताव अहं अरहन्नगं किं पियधम्मे ? णो पियधम्मे ? दढधम्मे ? नो दढधम्मे ? सीलव्वयगुणे किं चालेइ जाव परिच्चयइ ? णो परिच्चयइ ? त्ति कट्टु एवं संपेहेमि, संपेहित्ता ओहिं पउंजामि, पउंजित्ता देवाणुप्पिया ! ओहिणा आभोएमि, आभोइत्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं उत्तरवेउव्वियं समुग्घामि, ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव लवणसमुद्दे जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि। उवागच्छित्ता देवाणुप्पियाणं उवसग्गं करेमि। नो चेव णं देवाणुप्पिया भीया वा तत्था वा, तं जं णं सक्के देविंदे देवराया वदइ; सच्चे णं एसमट्ठे। तं दिट्ठे णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसे बले जाव परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतुमरहंतु णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए।' त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो खामेइ, खामित्ता अरहन्नयस्स दुवे कुंडलजुयले दलयइ, दलइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव पडिगए।

'हे अर्हन्नक ! तुम धन्य हो। हे देवानुप्रिय ! तुम्हारा जीवन सफल है कि जिसको अर्थात् तुम को निर्ग्रन्थप्रवचन में इस प्रकार की प्रतिपत्ति लब्ध हुई है, प्राप्त हुई है और आचरण में लाने के कारण सम्यक् प्रकार से सन्मुख आई है। हे देवानुप्रिय ! देवों के इन्द्र और देवों के राजा शक्र ने सौधर्म कल्प में, सौधर्मावतंसक नामक विमान में और सुधर्मा सभा में, बहुत–से देवों के मध्य में स्थित होकर महान् शब्दों से इस प्रकार कहा–इस प्रकार निस्सन्देह जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भरत क्षेत्र में, चम्पा नगरी मे अर्हन्नक नामक श्रमणोपासक जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता है। उसे निश्चय ही कोई देव या दानव निर्ग्रन्थप्रवचन से चलायमान करने मे यावत् सम्यक्त्व से च्युत करने में समर्थ नहीं है।'

'तब हे देवानुप्रिय ! देवेन्द्र शक्र की इस बात पर मुझे श्रद्धा नहीं हुई। यह बात रुची नहीं। तब मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–'मैं जाऊँ और अर्हन्नक के समीप प्रकट होऊँ। पहले जानूँ कि अर्हन्नक को धर्म प्रिय है अथवा धर्म प्रिय नहीं है। वह दृढ़धर्मा है अथवा दृढ़धर्मा नहीं है ? वह शीलव्रत और गुणव्रत आदि से चलायमान होता है, यावत् उनका परित्याग करता

है, अथवा नहीं करता ? मैंने इस प्रकार विचार किया। विचार करके अवधि-ज्ञान का उपयोग लगाया। उपयोग लगा कर हे देवानुप्रिय ! मैंने जाना। जान कर ईशान कोण में जाकर उत्तरवैक्रिय करने के लिए वैक्रिय समुद्घात किया। तत्पश्चात् उत्कृष्ट यावत् शीघ्र गति से जहां लवणसमुद्र था और जहां देवानुप्रिय (तुम) थे, वहां मैं आया। आकर मैंने देवानुप्रिय को उपसर्ग किया। मगर देवानुप्रिय भयभीत न हुए, त्रास को प्राप्त न हुए। अतः देवेन्द्र देवराज ने जो कहा था, वह अर्थ सत्य सिद्ध हुआ। मैंने देखा कि देवानुप्रिय को ऋद्धि-गुण-रूप समृद्धि, द्युति-तेजस्विता, यश, शारीरिक बल यावत् पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उसका भलीभांति सेवन किया गया है। तो हे देवानुप्रिय ! मैं आपको खमाता हूं। आप क्षमा करें। हे देवानुप्रिय ! पुनः पुनः मैं ऐसा नहीं करूँगा।' इस प्रकार कह कर दोनो हाथ जोड़ कर देव अर्हन्नक के पांवों में गिर गया और इस घटना के लिए वार-वार विनयपूर्वक क्षमायाचना करने लगा। क्षमायाचना करके अर्हन्नक को दो कुंडल-युगल भेंट किये। भेंट करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा में लौट गया।

तए णं से अरहन्नए निरुवसग्गमित्ति कट्टु पडिमं पारेइ। तए णं ते अरहन्नगपामोक्खा नाव वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयं लंबंति लंबित्ता सगडिसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं सगडिसागडं संकामेंति, संकामित्ता सगडिसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव मिहिला नगरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए रायहाणीए वहिया अग्गुज्जाणंसि सगडिसागडं मोएइ, मोइत्ता मिहिलाए रायहाणीए तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायरिहं पाहुडं कुंडलजुयलं च गेण्हंति, गेण्हित्ता, मिहिलाए रायहाणीए अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु तं महत्थं दिव्वं कुंडलजुयलं उवणेंति जाव पुरओ ठवेंति।

तत्पश्चात् अर्हन्नक ने उपसर्गरहित जान कर प्रतिमा पारी अर्थात् कायोत्सर्ग पारा। तदनन्तर वे अर्हन्नक आदि यावत् नौकावणिक् दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन के कारण जहां गम्भीर नामक पोतपट्टन था, वहां आये। आकर उस पोत (नौका या जहाज) को रोक रोक कर गाड़ी-गाड़े तैयार किये। तैयार

करके वह गणिम, धरिम, मेय और पारिच्छेद्य भांड को गाड़ी-गाड़ो मे भरा। भर कर गाड़ी-गाड़े जोते। जोत कर जहां मिथिला नगरी थी, वहां आये। आकर मिथिला नगरी के बाहर उत्तम उद्यान में गाड़ी-गाड़े छोड़े। छोड़ कर मिथिला नगरी में जाने के लिए वह महान् अर्थ वाला, महामूल्य वाला, महान् जनों के योग्य, विपुल और राजा के योग्य भेंट और कुंडलों की जोड़ी ली। लेकर मिथिला नगरी मे प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां कुँभ राजा था, वहां आये। आकर दोनो हाथ जोड़ कर—मस्तक पर अंजलि करके यावत् वह महान् अर्थ वाली भेंट और वह दिव्य कुंडलयुगल राजा के समीप ले गये, यावत् राजा के सामने रख दिया।

तए णं कुंभए राया तेसिं संजत्तगाणं जाव पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मल्लीं विदेहवररायकन्नं सद्दावेइ, सद्दावित्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं मल्लीए विदेहवररायकन्नगाए पिणद्धइ, पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने उन नौकावणिकों की वह भेंट यावत् अंगीकार की। अंगीकार करके विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली को बुलाया। बुला कर वह दिव्य कुंडलयुगल विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली को पहनाया। पहना कर उसे विदा कर दिया।

तए णं से कुंभए राया ते अरहन्नगपामोक्खे जाव वाणियगे विपुलेणं असण० वत्थगंधमल्लालंकारेणं जाव उस्सुक्कं वियरेइ, वियरित्ता रायमग्गमोगाढेइ, आवासे वियरइ, पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने उन अर्हन्नक आदि यावत् वणिकों का विपुल अशन आदि से तथा वस्त्र गंध, माला और अलंकार से सत्कार किया। उनका शुल्क माफ कर दिया। राजमार्ग के मध्य में उनको उतारा दिया और फिर उन्हे विदा किया।

तए णं अरहन्नगसंजत्तगा जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भंडववहरणं करेंति, करित्ता पडिभंडं गेण्हंति, गेण्हित्ता सगडिसागडं भरेंति, जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं सज्जेंति, सज्जित्ता भंडं संकामेंति, दक्खिणाणु० जेणेव चंपापोयट्टाणे तेणेव पोयं लंबेंति, लंबित्ता सगडिसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं सगडी-

सागडं संकामेंति, संकामेत्ता जाव महत्थं पाहुडं दिव्वं च कुंडलजुयलं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चंदच्छाए अंगराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव उवणेंति।

तत्पश्चात् वे अर्हन्नक आदि सांयात्रिक वणिक्, जहां राजमार्ग के मध्य में आवास था, वहाँ आये। आकर भांड का व्यापार करने लगे। व्यापार करके उन्होने प्रतिभांड (सौदे के बदले मे दूसरा सौदा) खरीदा। खरीद कर उसके गाड़ी-गाड़े भरे। भर कर जहाँ गभीर पोतपट्टन था, वहाँ आये। आकरके पोतवहन सजाया-तैयार किया। तैयार करके उसमे सब भांड भरा। भर कर दक्षिण दिशा के अनुकूल वायु के कारण जहाँ चम्पा नगरी का पोतस्थान (बन्दरगाह) था, वहाँ आये। आकर पोत को रोक कर गाड़ी-गाड़े ठीक किये। ठीक करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-चार प्रकार का भांड उनमे भरा। भर कर यावत् बड़ी भेंट और दिव्य कुंडलयुगल ग्रहण किया। ग्रहण करके जहाँ अंगराज चन्द्रछाय था, वहाँ आये। आकर वह बड़ी भेंट यावत् राजा के सामने रक्खी।

तए णं चंदच्छाए अंगराया तं दिव्वं महत्थं च कुंडलजुयलं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते अरहन्नगपामोक्खे एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर० जाव आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं अभिक्खणं पोयवहणेहिं ओगाहेह, तं अत्थियाइं भे केइ कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे?'

तत्पश्चात् चन्द्रछाय अंगराज ने उस दिव्य एवं महार्थ कुंडलयुगल (आदि) को स्वीकार किया। स्वीकार करके उन अर्हन्नक आदि से इस प्रकार कहा— हे देवानुप्रियो! आप बहुत-से ग्रामो, आकरो आदि मे भ्रमण करते हो तथा बार-बार लवणसमुद्र में जहाज द्वारा प्रवेश करते हो तो आपने किसी जगह कोई भी आश्चर्य पहले देखा है?'

तए णं ते अरहन्नगपामोक्खा चंदच्छायं अंगरायं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! अम्हे इहेव चंपाए नयरीए अरहन्नगपामोक्खा बहवे संजत्तगा णावावाणियगा परिवसामो, तए णं अम्हे अन्नया कयाइं गणिमं च धरिमं च मेज्जं च परिच्छेज्जं च तहेव अहीणमतिरित्तं जाव कुंभगस्स रण्णो उवणेमो। तए णं से कुंभए मल्लीए विदेह-

रायवरकन्नाए तं दिव्वं कुंडलजुयलं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ। तं एस णं सामी ! अम्हेहिं कुंभरायभवणंसि मल्ली विदेहरायवरकन्ना अच्छेरए दिट्ठे, तं नो खलु अन्ना का वि तारिसिया देवकन्ना वा जाव जारिसिया णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना ।

तब उन अर्हन्नक आदि वणिकों ने चन्द्रच्छाय नामक अंग देश के राजा से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् हम अर्हन्नक आदि बहुत-से सांयात्रिक नौकावणिक् इसी चम्पा नगरी में निवास करते हैं। एक बार किसी समय हम गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य भाण्ड भर कर—इत्यादि सब पहले की भाँति ही न्यूनता--अधिक के बिना कहना,—यावत् कुंभ राजा के पास पहुँचे और भेंट उसके सामने रक्खी। उस समय कुंभ राजा ने मल्ली नामक विदेहराजा की श्रेष्ठ कन्या को वह दिव्य कुंडलयुगल पहनाया। पहना कर उसे विदा कर दिया। तो हे स्वामिन् हमने कुंभ राजा के भवन में विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली आश्चर्य रूप में देखी है। मल्ली नामक विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या जैसी सुन्दर है, वैसी दूसरी कोई देव कन्या, आदि भी नहीं है।

तए णं चंदच्छाए ते अरहन्नगपामोक्खे सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ। तए णं चंदच्छाए वाणियग-जणियहासे दूतं सद्दावेइ, जाव जइ वि य णं सा सयं रज्जसुक्का। तए णं से दूते हट्ठे जाव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् चन्द्रच्छाय राजा ने अर्हन्नक आदि का सत्कार-सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके विदा किया। तदनन्तर वणिकों के कथन से उत्पन्न हुआ है हर्ष जिसको ऐसे चन्द्रच्छाय ने दूत को बुलाकर कहा—इत्यादि सब पहले के समान कहना। यावत् भले ही वह कन्या मेरे सारे राज्य के मूल्य की हो, तो भी स्वीकार करना। दूत हर्षित होकर मल्ली कुमारी की मँगनी के लिए चल दिया।

ते णं काले णं ते णं समए णं कुणाला नाम जणवए होत्था। तत्थ णं सावत्थी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं रुप्पी कुणालाहिवई नामं राया होत्था। तस्स णं रुप्पिस्स धुया धारिणीए देवीए अत्तया सुबाहुनामं दारिया होत्था सुकुमाल० रूवेण य जोव्वणेणं लावण्णेणं य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था। तीसे णं सुबाहुए दारियाए अन्नया चाउम्मासियमज्जणए जाए यावि होत्था।

उस काल और उस समय में कुणाल नामक जनपद था। उस जनपद में श्रावस्ती नामक नगरी थी। उसमे कुणाल देश का अधिपति रुक्मि नामक राजा था। उस रुक्मि राजा की पुत्री और धारिणीदेवी की कूँख से जन्मी सुबाहु नामक कन्या थी। उसके हाथ-पैर आदि सब अवयव सुन्दर थे। वह रूप में यौवन में और लावण्य में उत्कृष्ट थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी। उस सुबाहु बालिका का किसी समय चातुर्मासिक स्नान (जलक्रीड़ा) का उत्सव आया।

तए णं ते रुप्पी कुणालाहिवई सुबाहुए दारियाए चाउम्मासिय-मज्जणयं उवट्ठिइं जाणइ, जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिया! सुबाहुए दारियाए कल्लं चाउम्मासियमज्जणए भविस्सइ, तं कल्लं तुब्भे णं रायमग्गमोगाढंसि चउक्कसंसि (पुप्फमंडवंसि) जलथलयदसद्धवण्णमल्लं साहरेह, जाव सिरिदामगंडं ओलइंति।

तब कुणालाधिपति रुक्मि राजा ने सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव आया जाना। जान कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहाः—हे देवानुप्रियो! कल सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव होगा। अतएव तुम राजमार्ग के मध्य में, चौक में (पुष्प मंडप में) जल और थल में उत्पन्न होने वाले पाँच वर्णों के फूल लाओ और एक श्रीदाम काण्ड (सुशोभित मालाओं का समूह) लटकाओ।' यह आज्ञा सुन कर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार कार्य किया।

तए णं रुप्पी कुणालाहिवई सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायमग्गमोगाढंसि पुप्फ-मंडवंसि णाणाविहपंचवण्णेहिं तंदुलेहिं णगरं आलिहह। तस्स बहुमज्झ-देसभाए पट्टयं रएह।' रइत्ता जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् कुणाल देश के अधिपति रुक्मि राजा ने सु-वर्णकारों की श्रेणी को बुलाया। उसे बुला कर कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजमार्ग के मध्य मे, पुष्पमंडप में विविध प्रकार के पँचरंगे चावलों से नगर का आलेखन करो। उसके ठीक मध्य भाग में एक पाट (बाजौठ) रक्खो।' यह सुन कर उन्होंने इस प्रकार कह कर आज्ञा वापिस लौटाई।

तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई हत्थिखंधवरगए चाउरंगिणीए

सेणाए महया भड० अंतेउरपरियालसंपरिवुडे सुबाहुं दारियं पुरओ कट्टु जेणेव रायमग्गे, जेणेव पुप्फमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पुप्फमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

तत्पश्चात् कुणालाधिपति रुक्मि हाथी के श्रेष्ठ स्कन्ध पर आरूढ़ हुआ। चतुरंगी सेना, बड़े-बड़े योद्धाओं और अतःपुर के परिवार आदि से परिवृत होकर, सुबाहु कुमारी को आगे करके, जहाँ राजमार्ग था और जहाँ पुष्पमंडप था, वहाँ आया। आकर हाथी के स्कन्ध से नीचे उतरा। उतर कर पुष्पमंडप में प्रवेश किया। प्रवेश करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ।

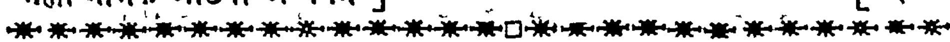
तओ णं ताओ अंतेउरियाओ सुबाहुं दारियं पट्टयंसि दुरूहेंति। दुरूहित्ता सेयपीयएहिं कलसेहिं ण्हाणेंति, ण्हाणित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता पिउणो पायं वंदिउं उवणेंति।

तए णं सुबाहुदारिया जेणेव रुप्पी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पायग्गहणं करेइ। तए णं से रुप्पी राया सुबाहुं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता सुबाहुए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जाव विम्हिए वरिसधरं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुमं णं देवाणुप्पिया! मम दोच्चेणं बहूणि गामागरनगरगिहाणि अणुपविससि, तं अत्थियाइं से कस्सइ रण्णो वा ईसरस्स वा कहिंचि एयारिसए मज्जणए दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं इमीसे सुबाहुदारियाए मज्जणए?'

तत्पश्चात् अन्तःपुर की स्त्रियों ने सुबाहु कुमारी को उस पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत अर्थात् चाँदी और सोने आदि के कलशों से उसे स्नान कराया। स्नान करा कर सब अलकारों से विभूषित किया। फिर पिता के चरणों में प्रणाम करने के लिए लाईं।

तब सुबाहु कुमारी रुक्मि राजा के पास आई। आ करके उसने पिता के चरणों का स्पर्श किया।

उस समय रुक्मि राजा ने सुबाहु कुमारी को अपनी गोद में बिठा लिया। बिठा कर सुबाहु कुमारी के रूप, यौवन और लावण्य को देखने से उसे विस्मय



हुआ। विस्मित होकर उसने वर्षधर को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम मेरे दौत्य कार्य से बहुत-से ग्रामों, आकरों, नगरों और गृहों में प्रवेश करते हो, तो तुमने कहीं भी किसी राजा या ईश्वर (धनवान्) के यहां ऐसा मज्जनक (स्नान महोत्सव) पहले देखा है, जैसा इस सुबाहु कुमारी का मज्जन-महोत्सव है?'

तए णं से वरिसधरे रुप्पिं करयल० एवं वदासी—एवं खलु सामी! अहं अन्नया तुब्भे णं दोच्चेणं मिहिलं गए, तत्थ णं मए कुंभगस्स रण्णो धूयाए, पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहरायवरकन्नयाए मज्जणए दिट्ठे, तस्स णं मज्जणगस्स इमे सुबाहुए दारियाए मज्जणए सयसहस्सइमं पि कलं न अग्घेइ।

तत्पश्चात् वर्षधर (अन्तःपुर के रक्षक षंढ-विशेष) ने रुक्मि राजा से हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन्! एक वार मैं आपके दूत के रूप में मिथिला गया था। मैंने वहाँ कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली का स्नानमहोत्सव देखा था। सुबाहु कुमारी का यह मज्जन-उत्सव उस मज्जनमहोत्सव के लाखवें अंश को भी नहीं पा सकता।

तए णं से रुप्पी राया वरिसधरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सेसं तहेव मज्जणगजणियहासे दूतं सद्दावेइ। सद्दावेत्ता एवं वयासी—जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् वर्षधर से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके, मज्जन-महोत्सव का वृत्तांत सुनने से जनित हर्ष वाले रुक्मि राजा ने दूत को बुलाया। शेष सब वृत्तांत पहले के समान समझना। दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा—(मिथिला नगरी में जाकर मेरे लिए मल्ली कुमारी की मँगनी करो। बदले में सारा राज्य देना पड़े तो उसे भी देना स्वीकार करना, आदि) यह सुन कर दूत ने मिथिला नगरी जाने का निश्चय किया—चल दिया।

ते णं काले णं ते णं समए णं कासी नाम जणवए होत्था। तत्थ णं वाणारसी नाम नयरी होत्था। तत्थ णं संखे नामं राया कासीराया होत्था।

उस काल और उस समय में काशी नामक जनपद था। उस जनपद में वाणारसी नामक नगरी थी। उसमें काशीराज शंख नामक राजा था।

तए णं तीसे मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए अन्नया कयाइं तस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधी विसंघडिए यावि होत्था।

तए णं कुंभए राया सुवन्नगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इमस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधिं संघाडेह।

तत्पश्चात् किसी समय विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली के उस दिव्य कुंडलयुगल का जोड़ खुल गया। तब कुंभ राजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया और कहा—देवानुप्रियो! इस दिव्य कुंडलयुगल के जोड़ को सांध दो।

तए णं सा सुवण्णगारसेणी एयमट्ठं तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सुवण्णगारभिसियाओ तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सुवण्णगारभिसियासु णिवेसेइ, णिवेसित्ता बहूहिं आएहि य जाव परिणामेमाणा इच्छंति तस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधिं घडित्तए, नो चेव णं संचाएंति संघडित्तए।

तत्पश्चात् सुवर्णकारो की श्रेणी ने 'तथा—ठीक है' इस प्रकार कह कर इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार करके उस दिव्य कुंडलयुगल को ग्रहण किया। ग्रहण करके जहाँ सुवर्णकारों के स्थान (औजार रखने के स्थान) थे, वहाँ आये। आकरके उन स्थानों पर कुंडलयुगल रक्खा। रख कर बहुत-से उपायों से उस कुंडलयुगल को परिणत करते हुए उसका जोड़ साँधना चाहा, परन्तु उसे साँधने में समर्थ न हो सके।

तए णं सा सुवन्नगारसेणी जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० वद्धावेत्ता एवं वयासी—'एवं खलु सामी! अज्ज तुब्भे अम्हे सद्दावेह। सद्दावेत्ता जाव संधिं संघाडेत्ता एयमाणं पच्चप्पिणह। तए णं अम्हे तं दिव्वं कुंडलजुयलं गेण्हामो। जेणेव सुवन्नगारभिसियाओ जाव नो संचाएमो संघाडित्तए। तए णं अम्हे सामी! एयस्स दिव्वस्स कुंडलस्स अन्नं सरिसयं कुंडलजुयलं घडेमो।'

तत्पश्चात् वह सुवर्णकार श्रेणी, कुंभ राजा के पास आई। आकर दोनों हाथ जोड़ कर और जय-विजय शब्दो से वधा कर प्रकार कहा-'स्वामिन्! आज आपने हम लोगों को बुलाया था। बुला कर यह आदेश दिया था कि कुंडलयुगल की संधि जोड़ कर मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ। तब हमने वह दिव्य कुंडलयुगल लिया। हम अपने स्थानों पर गये, बहुत उपाय किये, परन्तु उस संधि को जोड़ने के लिए शक्तिमान् न हो सके। अतएव हे स्वामिन्! हम इस दिव्य कुंडलयुगल सरीखा दूसरा कुंडलयुगल बना दें।'

तए णं से कुंभए राया तीसे सुवण्णगारसेणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते, तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासीः-

'से के णं तुब्भे कलायाणं भवह? जे णं तुब्भे इमस्स कुंडल-जुयलस्स नो संचाएह संधिं संघाडेत्तए? ते सुवण्णगारे निव्विसए आणवेइ।

सुवर्णकारों का कथन सुन कर और हृदय में धारण करके कुम्भराजा क्रुद्ध हो गया। ललाट में तीन सलवट डाल कर इस प्रकार कहने लगाः-'तुम कैसे सुनार हो जो इस कुंडलयुगल का जोड़ भी सांध नहीं सकते? अर्थात् तुम लोग बड़े मूर्ख हो! ऐसा कह कर उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।

तए णं ते सुवण्णगारा कुंभेणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा जेणेव साइं साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सभंडमत्तो-वगरणमायाओ मिहिलाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निक्खमंति। निक्खमित्ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कासी जणवए, जेणेव वाणारसी नयरी तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता अग्गुज्जा-णंसि सगडीसागडं मोएंति, मोइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति, गेण्हित्ता वाणारसीनयरीं मज्झंमज्झेणं जेणेव संखे कासीराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल० जाव वद्धावेंति, वद्धावित्ता पाहुडं पुरओ ठावेइ, ठावित्ता संखरायं एवं वयासीः-

तत्पश्चात् कुंभ राजा द्वारा देश निर्वासन की आज्ञा पाये हुए वे स्वर्ण-कार अपने-अपने घर आये। आ करके अपने भांड, पात्र और उपकरण

लेकर मिथिला नगरी के बीचोबीच होकर निकले। निकल कर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ काशी जनपद था और जहाँ वाणारसी नगरी थी, वहाँ आये। वहाँ आकर अग्र (उत्तम) उद्यान में गाड़ी-गाड़े छोड़े। छोड़ कर महान् अर्थ वाला यावत् उपहार लेकर, वाणारसी नगरी के बीचोंबीच होकर जहां काशीराज शंख था वहां आये। आकर दोनो हाथ जोड़ कर यावत् जय-विजय शब्दों से वधाया। वधा कर वह उपहार राजा के सामने रक्खा। रख कर शंख राजा से इस प्रकार निवेदन किया—

'अम्हे णं सामी! मिहिलाओ नयरीओ कुंभएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा इहं हव्वमागया, तं इच्छामो णं सामी! तुब्भं बाहुच्छायापरिग्गहिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं परिवसिउं।'

तए णं संखे कासीराया ते सुवण्णगारे एवं वयासी—'किं णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कुंभएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता?'

तए णं ते सुवण्णगारा संखं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए कुंडलजुयलस्स संधी विसंघडित्तए। तए णं से कुंभए सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता जाव निव्विसया आणत्ता।'

'हे स्वामिन्! राजा कुंभ के द्वारा मिथिला नगरी से निर्वासित किये हुए हम शीघ्र यहां आये हैं। हे स्वामिन्! हम आपकी भुजाओं की छाया मे ग्रहण किये हुए होकर अर्थात् आपके संरक्षण में रह कर निर्भय और उद्वेगरहित होकर सुखपूर्वक निवास करना चाहते हैं।'

तब काशीराज शंख ने उन सुवर्णकारों से कहा—देवानुप्रियो! कुंभ राजा ने तुम्हे देश-निकाले की आज्ञा क्यों दी?'

तब सुवर्णकारों ने शंख राजा से इस प्रकार कहा—स्वामिन्! कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा मल्ली कुमारी के कुंडलयुगल का जोड़ खुल गया था। तब कुंभ राजा ने सुवर्णकारो की श्रेणी को बुलाया। बुला कर (उसे सांधने के लिए कहा। हम उसे सांध न सके, अतः) यावत् देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।'

तए णं से संखे सुवन्नगारे एवं वयासी—केरिसिया णं देवाणुप्पिया! कुंभगस्स धूया पभावईए देवीए अत्तया मल्ली विदेहरायवरकन्ना?'

तए णं ते सुवण्णगारा संखरायं एवं वयासी–णो खलु सामी ! अन्ना काई तारिसिया देवकन्ना वा गंधव्वकन्ना वा जाव जारिसिया णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना ।

तए णं कुंडलजुअलजणियहासे दूतं सद्दावेइ, जाव तहेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् शंख राजा ने सुवर्णकारों से कहा– देवानुप्रियो ! कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा मल्ली विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या कैसी है ?'

तब सुवर्णकारों ने शंखराज से कहा–'स्वामिन् ! जैसी विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है, वैसी कोई देवकन्या अथवा गंधर्वकन्या भी नहीं है ।'

तत्पश्चात् कुंडल की जोड़ी से जनित हर्ष वाले शंख राजा ने दूत को बुलाया । इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् जानना, अर्थात् शख राजा ने भी मल्ली कुमारी की मँगनी के लिए दूत भेज दिया और उससे कह दिया कि मल्ली कुमारी के शुल्क रूप में सारा राज्य देना पड़े तो दे देना । दूत ने मिथिला जाने का निश्चय कर लिया ।

ते णं काले णं ते णं समए णं कुरुजणवए होत्था, हत्थिणाउरे नयरे, अदीणसत्तू नामं राया होत्था, जाव विहरइ ।

उस काल और उस समय में कुरु नामक जनपद था । उसमें हस्तिनापुर नगर था । अदीनशत्रु नामक वहां राजा था । यावत् वह सुखपूर्वक विचरता था ।

तत्थ णं मिहिलाए कुंभगस्स पुत्ते पभावईए अत्तए मल्लीए अणुजायए मल्लदिन्नए नाम कुमारे जाव जुवराया यावि होत्था ।

तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अन्नया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दाविचा एवं वयासी–'गच्छह णं तुब्भे मम पमदवणंसि एगं महं चित्तसभं करेह अणेग०' जाव पच्चप्पिणंति ।

उस मिथिला नगरी में कुंभ राजा का पुत्र, प्रभावती का आत्मज और मल्ली कुमारी का अनुज मल्लदिन्न नामक कुमार यावत युवराज था ।

उस समय एक बार मल्लदिन्न कुमार ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुला कर इस प्रकार कहा–तुम जाओ और मेरे प्रमद वन (घर के उद्यान) में

लेकर मिथिला नगरी के बीचोबीच होकर निकले। निकल कर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ काशी जनपद था और जहाँ वाणारसी नगरी थी, वहाँ आये। वहाँ आकर अग्र (उत्तम) उद्यान में गाड़ी-गाड़े छोड़े। छोड़ कर महान् अर्थ वाला यावत् उपहार लेकर, वाणारसी नगरी के बीचोंबीच होकर जहां काशीराज शंख था वहां आये। आकर दोनो हाथ जोड़ कर यावत् जय-विजय शब्दों से वधाया। वधा कर वह उपहार राजा के सामने रक्खा। रख कर शंख राजा से इस प्रकार निवेदन किया—

'अम्हे णं सामी! मिहिलाओ नयरीओ कुंभएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा इहं हव्वमागया, तं इच्छामो णं सामी! तुब्भं बाहुच्छायापरिग्गहिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं परिवसिउं।'

तए णं संखे कासीराया ते सुवण्णगारे एवं वयासी—'किं णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कुंभएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता?'

तए णं ते सुवण्णगारा संखं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए कुंडलजुयलस्स संधी विसंघडित्तए। तए णं से कुंभए सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता जाव निव्विसया आणत्ता।'

'हे स्वामिन्! राजा कुंभ के द्वारा मिथिला नगरी से निर्वासित किये हुए हम शीघ्र यहां आये हैं। हे स्वामिन्! हम आपकी भुजाओ की छाया मे ग्रहण किये हुए होकर अर्थात् आपके सरक्षण में रह कर निर्भय और उद्वेगरहित होकर सुखपूर्वक निवास करना चाहते हैं।'

तब काशीराज शंख ने उन सुवर्णकारों से कहा—देवानुप्रियो! कुंभ राजा ने तुम्हें देश-निकाले की आज्ञा क्यों दी?'

तब सुवर्णकारों ने शंख राजा से इस प्रकार कहा—स्वामिन्! कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा मल्ली कुमारी के कुंडलयुगल का जोड़ खुल गया था। तब कुंभ राजा ने सुवर्णकारो की श्रेणी को बुलाया। बुला कर (उसे सांधने के लिए कहा। हम उसे सांध न सके, अतः) यावत् देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।'

तए णं से संखे सुवन्नगारे एवं वयासी—केरिसिया णं देवाणुप्पिया! कुंभगस्स धूया पभावईए देवीए अत्तया मल्ली विदेहरायवरकन्ना?'

तए णं [illegible] ऐसी चित्रकारलब्धि (योग्यता) अन्ना काई [illegible] आ चुकी थी कि वह जिस किसी मल्ली विदेह [illegible] भी देख ले तो उस अवयव के अनु-

तए णं [illegible] ए जवणियंतरियाए जालंतरेण गमणाए।

[illegible] रूवे जाव सेयं खलु ममं मल्लीए की पुत्री और [illegible] णोववेयं रूवं निव्वत्तित्तए, एवं [illegible] श्रेष्ठ कन्या [illegible] ज्जिता मल्लीए वि पायंगुट्ठाणु-

[illegible] क ने यवनिका की ओट मे रही बुलाया। [illegible] (छिद्र) मे से देखा। कुमारी की [illegible] विचार उत्पन्न हुआ, यावत् मल्ली के शुल्क रूप [illegible] हूबहू यावत् गुणयुक्त-सुन्दर चित्र निश्चय कर लिया [illegible] । विचार करके भूमि के हिस्से [illegible] अगूठे का अनुसरण करके यावत्

ते णं काले [illegible] नयरे, अदीणसत्तू [illegible] जाव हावभावे चित्तेइ, चित्तित्ता [illegible] इ, उवागच्छित्ता जाव एयमाण-

उस काल और [illegible] नगर था। अदीनशत्रु [illegible]

तत्थ णं मिहिलाए [illegible] जायए मल्लदिन्नए [illegible] (जाति) ने चित्रसभा को यावत् [illegible] करके जहां मल्लदिन्न कुमार था, [illegible] वापिस लौटाई-आज्ञानुसार कार्य हो

तए णं मल्लदिन्ने [illegible] चित्ता एवं वयासी [illegible] करेह अणंग [illegible] सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता [illegible] दलेइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

उस मिथिला [illegible] मल्ली कुमारी का अनुज [illegible] रों की [illegible] सत्कार

उस समय [illegible] बुला कर इस [illegible]

एक बड़ी चित्रसभा का निर्माण करो, जो अनेक स्तंभों से युक्त हो, इत्यादि। यावत् उन्होंने ऐसा ही करके आज्ञा वापिस लौटा दी।

तए णं मल्लदिन्ने कुमारे चित्तगरसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! चित्तसभं हावभावविलासविब्बोय-कलिएहिं रूवेहिं चित्तेह। चित्तित्ता जाव पच्चप्पिणह।'

तए णं सा चित्तगरसेणी तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सयाइं गिहाइं, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तूलियाओ वन्नए य गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अणुपविसंति, अणुपविसित्ता भूमिभागे विरंचंति (विहिंवंति), विरंचित्ता (विहिवित्ता) भूमिं सज्जंति, सज्जित्ता चित्तसभं हावभाव जाव चित्तेउं पयत्ता यावि होत्था।

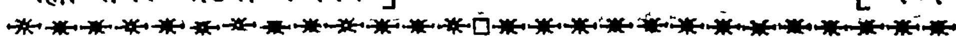
तत्पश्चात् मल्लदिन्न कुमार ने 'चित्रकारों की श्रेणी को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा–'देवानुप्रियो! तुम लोग चित्रसभा को हाव,* भाव, विलास और बिब्बोक से युक्त रूपों से चित्रित करो। चित्रित करके यावत् मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ।

तत्पश्चात् चित्रकारो की श्रेणी ने तथा–बहुत ठीक' इस प्रकार कह कर कुमार की आज्ञा शिरोधार्य की। फिर वे अपने–अपने घर गये। घर जाकर उन्होंने तूलिकाएँ लीं और रंग लिये। लेकर जहां चित्रसभा थी वहां आये। आकर चित्रसभा में प्रवेश किया प्रवेश करके भूमि के विभागों का विभाजन किया। विभाजन करके अपनी–अपनी भूमि को सज्जित किया–चित्रों के योग्य बनाया। सज्जित करके चित्रसभा को हाव–भाव आदि से युक्त चित्र अंकित करने में लग गये।

तए णं एगस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगरलद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया–जस्स णं दुपयस्स वा चउप्पयस्स वा अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं निव्वत्तेइ।

---

* हाव-भाव आदि साधारणतया स्त्रियों की चेष्टाओं को कहते हैं। उनका परस्पर अन्तर यह है-हाव अर्थात् मुख का विकार, भाव अर्थात् चित्त का विकार, विलास अर्थात् नेत्र विकार और बिब्बोक अर्थात् इष्ट अर्थ की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाला अभिमान का भाव।



उन चित्रकारों में से एक चित्रकार को ऐसी चित्रकारलब्धि (योग्यता) लब्ध थी, प्राप्त थी और बारबार उपयोग में आ चुकी थी कि वह जिस किसी द्विपद, चतुष्पद और अपद का एक अवयव भी देख ले तो उस अवयव के अनुसार उसका पूरा चित्र बना सकता था।

तए णं से चित्तगरदारए मल्लीए जवणियंतरियाए जालंतरेण पायंगुट्ठं पासइ।

तए णं तस्स णं चित्तगरस्स इमेयारूवे जाव सेयं खलु ममं मल्लीए वि पायंगुट्ठाणुसारेणं सरिसगं जाव गुणोववेयं रूवं निव्वत्तित्तए, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता भूमिभागं सज्जेइ, सज्जित्ता मल्लीए वि पायंगुट्ठाणुसारेणं जाव निव्वत्तेइ।

उस समय एक बार एक चित्रकारदारक ने यवनिका की ओट में रही हुई मल्ली कुमारी के पैर का अंगूठा जाली (छिद्र) मे से देखा।

तत्पश्चात् उस चित्रकारदारक को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ, यावत् मल्ली कुमारी के पैर के अगूठे के अनुसार उसका हूबहू यावत् गुणयुक्त-सुन्दर चित्र बनाना उचित है। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके भूमि के हिस्से को ठीक किया। ठीक करके मल्ली के पैर के अगूठे का अनुसरण करके यावत् चित्र बनाया।

तए णं सा चित्तगरसेणी चित्तसभं जाव हावभावे चित्तेइ, चित्तित्ता जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् चित्रकारों की उस मंडली (जाति) ने चित्रसभा को यावत् हाव भाव आदि से चित्रित किया। चित्रित करके जहां मल्लदिन्न कुमार था, वहां गई। जाकर यावत् कुमार की आज्ञा वापिस लौटाई–आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी।

तए णं मल्लदिन्ने चित्तगरसेणिं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलेइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् मल्लदत्त कुमार ने चित्रकारों की मंडली का सत्कार किया, सन्मान किया; सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। देकरके विदा कर दिया।

तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अन्नया ण्हाए अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अम्मधाईए सद्धिं जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चित्तसभं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता हावभावविलासविब्बोयकलियाइं रूवाइं पासमाणे पासमाणे जेणेव मल्लीए विदेहवररायकन्नाए तयाणुरूवे निव्वत्तिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे मल्लीए विदेहवररायकन्नाए तयाणुरूवं निव्वत्तियं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एस णं मल्ली विदेहवररायकन्न' त्ति कट्टु लज्जिए वीडिए विअडे सणियं सणियं पच्चोसक्कइ।

तत्पश्चात् किसी समय मल्लदिन्न कुमार स्नान करके, वस्त्राभूषण धारण करके, अन्तःपुर एव परिवार-सहित, धायमाता को साथ लेकर, जहां चित्रसभा थी, वहां आया। आकर चित्रसभा के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके हाव, भाव, विलास और विब्बोक से युक्त रूपो (चित्रो) को देखता-देखता जहां विदेह की श्रेष्ठ राजकन्या मल्ली का, उसी के अनुरूप चित्र बना था, वहां आने को तैयार हुआ।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न कुमार ने विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली का, उसके अनुरूप बना हुआ चित्र देखा। देख कर उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'अरे, यह तो विदेहवरराजकन्या मल्ली है!' यह विचार आते ही वह लज्जित हो गया, व्रीडित हो गया और व्यर्दित हो गया, अर्थात् उसे अत्यन्त लज्जा उत्पन्न हुई। अतएव वह धीरे-धीरे वहाँ से हट गया।

तए णं मल्लदिन्नं अम्मधाई पच्चोसक्कंतं पासित्ता एवं वयासी—'किं णं तुमं पुत्ता! लज्जिए वीडिए विअडे सणियं सणियं पच्चोसक्कइ?'

तए णं से मल्लदिन्ने अम्मधाइं एवं वयासी—'जुत्तं णं अम्मो! मम जेट्ठाए भगिणीए गुरुदेवयभूयाए लज्जणिज्जाए मम चित्तगरणिव्वत्तियं सभं अणुपविसित्तए?'

तत्पश्चात् हटते हुए मल्लदिन्न को देख कर धाय माता ने कहा—'हे पुत्र! तुम लज्जित, व्रीडित और व्यर्दित होकर धीरे-धीरे क्यो हटे?'

तब मल्लदिन्न ने धाय माता से इस प्रकार कहा–'माता ! मेरी गुरु और देवता के समान ज्येष्ठ भगिनी के, जिससे मुझे लज्जित होना चाहिए, सामने, चित्रकारों की बनाई इस सभा में प्रवेश करना क्या योग्य है ?'

तए णं अम्मधाई मल्लदिन्नं कुमारं एवं वयासी–'नो खलु पुत्ता ! एस मल्ली, विदेहवररायकन्ना चित्तगरएणं तयाणुरूवे निव्वत्तिए।

तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अम्मधाईए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते एवं वयासी–'केस णं भो ! चित्तयरए अपत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए ? जेण ममं जेट्ठाए भगिणीए गुरुदेवयभूयाए जाव निव्वत्तिए ? त्ति कट्टु तं चित्तगरं वज्झं आणवेइ।

तब धाय माता ने मल्लदिन्न कुमार से इस प्रकार कहा–'हे पुत्र ! निश्चय ही यह साक्षात् मल्ली नहीं है; परन्तु यह विदेह की उत्तम कुमारी मल्ली चित्रकार ने उसके अनुरूप बनाई है–चित्रित की है।'

तब मल्लदिन्न कुमार धाय माता के इस अर्थ को सुन कर और हृदय में धारण करके एकदम क्रुद्ध हो उठा और बोला–'कौन है वह चित्रकार मौत की इच्छा करने वाला, यावत् लज्जा बुद्धि आदि से रहित, जिसने गुरु और देवता के समान मेरी ज्येष्ठ भगिनी का यावत् चित्र बनाया है ?' इस प्रकार कह कर उसने चित्रकार के वध की आज्ञा दे दी।

तए णं सा चित्तगरस्सेणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी–

'एवं खलु सामी ! तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगरलद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया, जस्स णं दुपयस्स वा जाव णिव्वत्तेति, तं मा णं सामी ! तुब्भे तं चित्तगरं वज्झं आणवेह। तं तुब्भे णं सामी ! तस्स चित्तगरस्स अन्नं तयाणुरूवं दंडं निव्वत्तेह।'

तत्पश्चात् चित्रकारों की वह श्रेणी इस कथा–वृत्तान्तका अर्थ सुन कर और समझ कर जहाँ मल्लदिन्न कुमार था, वहाँ आई। आकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके कुमार को वधाया। वधा कर इस प्रकार कहा—

'स्वामिन्! निश्चय ही उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकारलब्धि लब्ध हुई, प्राप्त हुई और अभ्यास में आई है कि वह जिस किसी द्विपद आदि के एक अवयव को देखता है, यावत् वह वैसा ही पूरा रूप बना देता है। अतएव हे स्वामिन्! आप उस चित्रकार के वध की आज्ञा मत दीजिए। हे स्वामिन्! आप उस चित्रकार को कोई दूसरा योग्य दंड दे दीजिए।'

तए णं से मल्लदिन्ने तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिंदावेइ, निव्विसयं आणवेइ।

तए णं से चित्तगरए मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते समाणे सभंडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाओ नयरीओ णिक्खमइ, णिक्खमित्ता विदेहं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे नयरे, जेणेव कुरुजणवए, जेणेव अदीणसत्तू राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करित्ता चित्तफलगं सज्जेइ, सज्जित्ता मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए पायंगुट्ठाणुसारेणं रूवं णिव्वत्तेइ, णिव्वत्तित्ता कक्खंतरंसि छुब्भइ, छुब्भइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता हत्थिणापुरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तं करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता पाहुडं उवणेइ, उवणित्ता 'एवं खलु अहं सामी! मिहिलाओ रायहाणीओ कुंभगस्स रण्णो पुत्तेणं पभावईए देवीए अत्तएणं मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते समाणे इह हव्वमागए, तं इच्छामि णं सामी! तुब्भं बाहुच्छायापरिग्गहिए जाव परिवसित्तए।'

तत्पश्चात् मल्लदिन्न ने उस चित्रकार के संडासक (दाहिने हाथ का अंगूठा और उसके पास की अंगुली) का छेद करवा दिया और उसे देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न के द्वारा देशनिर्वासन की आज्ञा पाया हुआ वह चित्रकार अपने भांड, पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी से निकला। निकल कर वह विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ हस्तिनापुर नगर था, जहाँ कुरु नामक जनपद था और जहाँ अदीनशत्रु नामक राजा था, वहाँ आया। आकर उसने अपनी भांड आदि वस्तुएँ रक्खीं। रख कर एक चित्रफलक ठीक किया। ठीक करके विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली के पैर के अंगूठे के



अनुसार उसका समग्र रूप चित्रित किया। चित्रित करके वह चित्रफलक (जिस पर चित्र बना था वह पट) अपनी काँख मे दबा लिया। फिर महान् अर्थ वाला यावत् उपहार ग्रहण किया। ग्रहण करके हस्तिनापुर नगर के मध्य मे होकर अदीनशत्रु राजा के पास आया। आकर दोनों हाथ जोड़ कर उसे बधाया और बधा कर उपहार उसके सामने रख दिया। फिर चित्रकार ने कहा—स्वामिन्! मिथिला राजधानी में कुम्भ राजा के पुत्र और प्रभावती देवी के आत्मज मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देश-निकाले की आज्ञा दी, इस कारण मैं शीघ्र यहाँ आया हूं। हे स्वामिन्! आपकी बाहुओं की छाया से परिगृहीत होकर यावत् मैं यहाँ वसना चाहता हूं।

तए णं से अदीनसत्तू राया तं चित्तगरदारयं एवं वयासी—'किं णं तुमं देवाणुप्पिया! मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते?'

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने चित्रकारपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! मल्लदिन्न कुमार ने तुम्हें किस कारण देशनिर्वासन की आज्ञा दी?

तए णं से चित्तयरदारए अदीणसत्तुरायं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाई चित्तगरसेणिं सद्दावेइ, सद्दाविता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम चित्तसभं' तं चेव सव्वं भाणियव्वं, जाव मम संडासगं छिंदावेइ, छिंदावित्ता निव्विसयं आणवेइ, तं एवं खलु सामी! मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते।'

तत्पश्चात् चित्रकारपुत्र ने अदीनशत्रु राजा से इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन्! मल्लदिन्न कुमार ने एक बार किसी समय चित्रकारों की श्रेणी को बुला कर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम मेरी चित्रसभा को चित्रित करो;' आदि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् कुमार ने मेरा संडासक कटवा लिया। कटवा कर देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हे स्वामिन् मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देशनिर्वासन की आज्ञा दी है।

तए णं अदीणसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी—से केरिसए णं देवाणुप्पिया! तुमे मल्लीए तदाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए?'

तए णं से चित्तगरे कक्खंतराओ चित्तफलयं णीणेइ, णीणित्ता अदीणसत्तुस्स उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी—'एस णं सामी! मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवस्स रूवस्स केइ आगारभावपडोयारे निव्व-

त्तिए, णो खलु सक्का केणइ देवेण वा जाव मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तित्तए ।'

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने उस चित्रकार से इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिय ! तुमने मल्ली कुमारी का उसके अनुरूप चित्र कैसा बनाया था ?'

तब चित्रकार ने अपनी काँख में से चित्रफलक निकाला । निकाल कर अदीनशत्रु राजा के पास रख दिया । और रख कर कहा—हे स्वामिन् ! विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली का उसी के अनुरूप यह चित्र मैंने कुछ आकार, भाव और प्रतिबिम्ब के रूप मे चित्रित किया है । विदेहराज की श्रेष्ठ कुमारी मल्ली का हूबहू रूप तो कोई देव अथवा दानव भी चित्रित नहीं कर सकता ।

तए णं अदीणसत्तू राया पडिरूवजणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—तहेव जाव पहारेत्थ गमणाए ।

अर्थ—तत्पश्चात् चित्र को देख कर हर्ष उत्पन्न होने के कारण अदीनशत्रु राजा ने दूत को बुलाया । बुला कर इस प्रकार कहा—(अपने लिए मल्ली कुमारी की मँगनी करने के लिए भेजा) इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए । यावत् दूत जाने के लिए तैयार हुआ ।

ते णं काले णं ते णं समए णं पंचाले जणवए, कंपिल्ले पुरे नाम नयरे होत्था । तत्थ णं जियसत्तू णामं राया होत्था पंचालाहिवई । तस्स णं जियसत्तूस्स धारिणीपामोक्खं देविसहस्सं ओरोहे होत्था ।

उस काल और उस समय में पंचाल नामक जनपद में काम्पिल्यपुर नामक नगर था । वहाँ जितशत्रु नामक राजा था, वही पंचाल देश का अधिपति था । उस जितशत्रु राजा के अन्तःपुर में एक हजार रानियाँ थीं ।

तत्थ णं मिहिलाए चोक्खा नामं परिव्वाइया रिउव्वेय जाव परिणिट्ठिया यावि होत्था ।

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी पण्णवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ ।

मिथिला नगरी में चोक्खा (चोक्षा) नामक परिव्राजिका रहती थी । वह चोक्खा परिव्राजिका मिथिला नगरी में बहुत-से राजा, ईश्वर (ऐश्वर्य-

शाली धनाढ्य या युवराज) यावत् सार्थवाह आदि के सामने दानधर्म, शौच-धर्म और तीर्थस्नान का कथन करती, प्रज्ञापना करती, प्ररूपणा करती और उपदेश करती हुई रहती थी ।

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया अन्नया कयाई तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरत्ताओ य गिण्हइ, गिण्हित्ता परिव्वाइगावसहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पविरलपरिव्वाइया सद्धिं संपरिवुडा मिहिलं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे, जेणेव कण्णंतेउरे, जेणेव मल्ली विदेहवररायकन्ना, तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता उदयपरिफासियाए, दब्भोवरि पच्चत्थुयाए भिसियाए निसियति, निसिइत्ता मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए पुरओ दाणधम्मं च जाव विहरइ ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय वह चोक्खा परिव्राजिका त्रिदण्ड, कुंडिका यावत् धातु (गेरू) से रंगे वस्त्र लेकर परिव्राजिकाओं के मठ से निकली । निकल कर थोड़ी-परिव्राजिकाओं के साथ घिरी हुई मिथिला राजधानी के मध्य में होकर जहाँ कुम्भ राजा का भवन था, जहाँ कन्याओं का अन्तःपुर था और जहाँ विदेह की उत्तम राजकन्या मल्ली थी, वहां आई । आकर भूमि पर पानी छिड़का, उस पर डाभ बिछाया और उस पर आसन रख कर बैठी । बैठ कर विदेहवरराजकन्या मल्ली के सामने दानधर्म आदि का उपदेश देती हुई विचरने लगी—उपदेश देने लगी ।

तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी—'तुब्भं णं चोक्खे ! किंमूलए धम्मे पन्नत्ते ?' तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लिं विदेहरायवरकन्नं एवं वयासी अम्हं णं देवाणुप्पिए ! सोयमूलए धम्मे पण्णवेमि, जं णं अम्हं किंचि असुई भवइ, तं णं उदएण य मट्टियाए जाव अविग्घेणं सग्गं गच्छामो ।'

तब विदेहराजवरकन्या मल्ली ने चोक्खा परिव्राजिका से पूछा-'हे चोक्खा ! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है ?'

तब चोक्खा परिव्राजिका ने विदेहराजवरकन्या मल्ली को उत्तर दिया-'देवानुप्रिये ! मैं शौचमूलक धर्म का उपदेश करती हूँ । हमारे मत मे जो कोई भी वस्तु अशुचि होती है, उसे जल से और मिट्टी से शुद्ध किया जाता है, यावत् इस धर्म का पालन करने से हम निर्विघ्न स्वर्ग जाते हैं ।'



तए णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी–'चोक्खा ! से जहानामए केइ पुरिसे रुहिरकयं वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा, अत्थि णं चोक्खा ! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं धोव्वमाणस्स काई सोही ?'

'णो इणट्ठे समट्ठे ।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने चोक्खा परिव्राजिका से कहा–'चोक्खा ! जैसे कोई अमुक नामधारी पुरुष रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोवे, तो हे चोक्खा ! उस रुधिरलिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कुछ शुद्धि होती है ?'

परिव्राजिका ने उत्तर दिया–'नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता ।'

'एवामेव चोक्खा ! तुब्भे णं पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसण-सल्लेणं नत्थि काई सोही, जहा व तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव धोव्वमाणस्स ।'

मल्ली ने कहा–इसी प्रकार चोक्खा ! तुम्हारे मत में प्राणातिपात (हिंसा) से यावत मिथ्यादर्शनशल्य से अर्थात् अठारह पापों के सेवन का निषेध न होने से कोई शुद्धि नहीं है, जैसे रुधिर से लिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि नहीं होती ।

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए एवं वुत्ता समाणा संकिया कंखिया विइगिच्छिया भेयसमावण्णा जाया यावि होत्था । मल्लीए णो संचाएइ किंचिवि पामोक्खमाइक्खए, तुसिणीया संचिट्ठइ ।

तत्पश्चात विदेहराजवरकन्या मल्ली के ऐसा कहने पर उस चोक्खा परिव्राजिका को शंका उत्पन्न हुई, कांक्षा (अन्य धर्म की आकांक्षा) हुई और चिकित्सा (अपने धर्म के फल में संदेह) हुई और वह भेद को प्राप्त हुई अर्थात् उसके मन में तर्क–वितर्क होने लगा । वह मल्ली को कुछ भी उत्तर देने में समर्थ नहीं हो सकी, अतएव मौन रह गई ।

तए णं तं चोक्खं मल्लीए बहुओ दासचेडीओ हीलेंति, निंदंति,



खिसंति, गरहंति, अप्पेगइया हेरुयालंति, अप्पेगइया मुहमक्कडिया करेंति, अप्पेगइया वग्घाडीओ करेंति, अप्पेगइया तज्जमाणीओ करेंति, अप्पेगइया तालेमाणीओ करेंति, अप्पेगइया निच्छुभंति।

तत्पश्चात् मल्ली की बहुत-सी दासियाँ चोक्खा परिव्राजिका की (जाति आदि प्रकट करके) हीलना करने लगीं, मन से निन्दा करने लगी, खिंसा (वचन से निन्दा) करने लगीं, गर्हा (उसके सामने ही दोष कथन) करने लगी, कितनीक दासियाँ उसे क्रोधित करने लगी—चिढ़ाने लगी, कोई-कोई मुँह मटकाने लगीं, कोई-कोई उपहास करने लगीं, कोई उंगलियो से तर्जना करने लगीं, कोई ताड़ना करने लगीं और किसी-किसी ने अर्धचन्द्र देकर उसे बाहर कर दिया।

तए णं सा चोक्खा मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए दासचेडियाहिं जाव गरहिज्जमाणी हीलिज्जमाणी आसुरुत्ता जाव मिसमिसेमाणा मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए पओसमावज्जइ, भिसियं गेण्हइ, गेण्हित्ता कण्णंतेउराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता मिहिलाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता परिव्वाइयासंपरिवुडा जेणेव पंचालजणवए जेणेव कंपिल्लपुरे बहूणं राईसर जाव परूवेमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली की दासियो द्वारा यावत् गर्हा की गई और अवहेलना की गई वह चोक्खा एकदम क्रुद्ध हो गई और क्रोध से मिसमिसाती हुई विदेहराजवर कन्या मल्ली के प्रति द्वेष को प्राप्त हुई। उसने अपना आसन उठाया और कन्याओ के अन्तःपुर से निकल गई। वहाँ से निकल कर मिथिला नगरी से भी निकली और परिव्राजिकाओं के साथ जहाँ पंचाल जनपद था, जहाँ काम्पिल्यपुर नगर था वहाँ आई और बहुत-से राजाओ एवं ईश्वरों आदि के सामने यावत् अपने धर्म की प्ररूपणा करने लगी।

तए णं से जियसत्तू अन्नया कयाई अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे एवं जाव विहरइ।

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइयासंपरिवुडा जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो भवणे, जेणेव जियसत्तू तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जियसत्तुं जएणं विजएणं वद्धावेइ।



तए णं से जियसत्तू चोक्खं परिव्वाइयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता चोक्खं परिव्वाइयं सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारित्ता संमाणित्ता आसणेणं उवनिमंतेइ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा एक बार किसी समय अपने अन्तःपुर और परिवार से परिवृत होकर यावत् बैठा था।

तत्पश्चात् पारिव्राजिकाओं से परिवृत वह चोक्खा जहाँ जितशत्रु राजा का भवन था और जहाँ जितशत्रु राजा था, वहाँ आई। आकर भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जय-विजय के शब्दों से जितशत्रु का अभिनन्दन किया-उसे वधाया।

तब जितशत्रु राजा ने चोक्खा परिव्राजिका को आते देखा। देख कर सिंहासन से उठा। उठ कर चोक्खा परिव्राजिका का सत्कार किया। सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके आसन से निमंत्रण किया-बैठने को आसन दिया।

तए णं सा चोक्खा उदगपरिफासियाए जाव भिसियाए निविसइ, जियसत्तुं रायं रज्जे य जाव अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ। तए णं सा चोक्खा जियसत्तुस्स रण्णो दाणधम्मं च जाव विहरइ।

तत्पश्चात वह चोक्खा परिव्राजिका जल छिड़क कर यावत् अपने आसन पर बैठी। फिर उसने जितशत्रु राजा, राज्य यावत् अन्तःपुर के कुशल-समाचार पूछे। इसके बाद चोक्खा ने जितशत्रु राजा को दानधर्म आदि का उपदेश किया।

तए णं से जियसत्तू अप्पणो ओरोहंसि जाव विम्हिए चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी-'तुमं णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर जाव अडह, बहूण य राईसर गिहाइं अणुपविससि, तं अत्थियाइं ते कस्स वि रण्णो वा जाव एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे जारिसए णं इमे मह उवरोहे?'

तत्पश्चात् वह जितशत्रु राजा अपने रनवास में अर्थात् रनवास की रानियों के सौन्दर्य आदि में विस्मय युक्त था, अतः उसने चोक्खा परिव्राजिका से पूछाः—'हे देवानुप्रिये! तुम बहुत-से गाँवों, आकरों आदि में यावत् पर्यटन करती हो और बहुत-से राजाओं एवं ईश्वरों के घरों में प्रवेश करती हो तो किसी भी राजा आदि का ऐसा अन्तःपुर तुमने कभी पहले देखा है, जैसा मेरा यह अन्तःपुर है?'

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया जियसत्तुं रायं (एवं वयासी) ईसिं अवहसियं करेइ, करित्ता एवं वयासी–'एवं च सरिसए णं तुमे देवाणुप्पिया ! तस्स अगडदद्दुरस्स ।'

'केस णं देवाणुप्पिए ! से अगडदद्दुरे ?'

'जियसत्तू ! से जहानामए अगडदद्दुरे सिया, से णं तत्थ जाए तत्थेव वुड्ढे अण्णं अगडं वा तलागं वा दहं वा सरं वा सागरं वा अपासमाणे एवं मण्णइ–'अयं चेव अगडे वा जाव सागरे वा ।'

तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए दद्दुरे हव्वमागए । तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्ददद्दुरं एवं वयासी–'से केस णं तुमं देवाणुप्पिया ! कत्तो वा इह हव्वमागए ?' तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी–'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सामुद्दए दद्दुरे ।

तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्दयं दद्दुरं एवं वयासी–'के महालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?'

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी–'महालए णं देवाणुप्पिया ! समुद्दे ।'

तए णं से कूवदद्दुरे पाएणं लीहं कड्ढेइ, कड्ढित्ता एवं वयासी–'ए महालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?'

'णो इणट्ठे समट्ठे, महालए णं से समुद्दे ।'

तए णं से कूवदद्दुरे पुरच्छिमिल्लाओ तीराओ उप्फिडित्ता णं गच्छइ, गच्छित्ता एवं वयासी–ए महालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?

'णो इणट्ठे समट्ठे ।' तहेव ।

तब चोक्खा परिव्राजिका ने जितशत्रु राजा (से कहा) के प्रति मुस्करा कर कहा—' हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार कहते हुए तुम उस कूप-मंडूक के समान हो । '

जितशत्रु ने पूछा–देवानुप्रिय ! कौन-सा वह कूपमंडूक ?

चोक्खा बोली—जितशत्रु ! यथानामक अर्थात् कुछ भी नाम वाला एक

कुएँ का मेंढक था। वह मेंढक उसी कूप में उत्पन्न हुआ था, उसी में बढ़ा था। उसने दूसरा कूप, तालाब, ह्रद, सर अथवा समुद्र देखा नहीं था। अतएव वह मानता था कि यही कूप है और यही सागर है—इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है।

तत्पश्चात् किसी समय उस कूप मे एक समुद्री मेंढक एकदम आ गया। तब कूप के मेंढक ने कहा– हे देवानुप्रिय ! तुम कौन हो ? कहाँ से एकदम यहां आये हो ? तब समुद्र के मेंढक ने कूप के मेंढक से कहा—'देवानुप्रिय ! मैं समुद्र का मेंढक हूं।'

तब कूप-मण्डूक ने समुद्रमण्डूक से कहा—'देवानुप्रिय ! वह समुद्र कितना बड़ा है ?'

तब समुद्री मण्डूक ने कूपमण्डूक से कहा–'देवानुप्रिय समुद्र बहुत बड़ा है।'

तब कूपमण्डूक ने अपने पैर से एक लकीर खींची और कहा— 'देवानुप्रिय ! क्या इतना बड़ा है ?'

समुद्री मण्डूक बोला–'यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् समुद्र तो इससे बहुत बड़ा है।

तब कूपमण्डूक पूर्व दिशा के किनारे से उछल कर दूर गया और फिर बोला–'देवानुप्रिय ! वह समुद्र क्या इतना बड़ा है ?

समुद्री मेंढक ने कहा–'यह अर्थ समर्थ नहीं।' इसी प्रकार (इससे भी अधिक कूद-कूद कर कूपमण्डूक ने समुद्र की विशालता के विषय में पूछा, मगर समुद्र-मण्डूक हर बार उसी प्रकार उत्तर देता गया।)

एवामेव तुमं पि जियसत्तू ! अन्नेसिं बहूणं राईसर जाव सत्थवाह-पभिईणं भज्जं वा भगिणीं वा धूयं वा सुण्हं वा अपासमाणे जाणेसि– जारिसए मम चेव णं ओरोहे तारिसए णो अण्णस्स। तं एवं खलु जियसत्तू ! मिहिलाए नयरीए कुंभगस्स धूआ पभावईए अत्तिया मल्ली नामं ति रूवेण य जुव्वणेण जाव नो खलु अण्णा काई देवकन्ना वा जारिसिया मल्ली। विदेहवररायकण्णाए छिण्णस्स वि पायंगुट्ठगस्स इमे तवोरोहे सयसहस्सइमं पि कलं न अग्घइ त्ति कट्टु जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

'इसी प्रकार हे जितशत्रु ! दूसरे बहुत-से राजाओं एवं ईश्वरों यावत्

सार्थवाह आदि की पत्नी, भगिनी, पुत्री अथवा पुत्रवधू को तुमने देखी नहीं। इस कारण समझते हो कि जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा दूसरे का नहीं है। सो हे जितशत्रु ! मिथिला नगरी मे कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा मल्ली नाम की कुमारी रूप और यौवन में जैसी है, वैसी दूसरी कोई देवकन्या वगैरह भी नहीं है। विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या के काटे हुए पैर के अंगुल के लाखवें अंश की बराबर भी तुम्हारा यह अन्तपुर नहीं है।' इस प्रकार कह कर वह परिव्राजिका जिस दिशा से प्रकट हुई थी आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

तए णं जियसत्तू परिव्वाइयाजणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता जाव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् परिव्राजिका के द्वारा उत्पन्न किये गये हर्ष वाले राजा जितशत्रु ने दूत को बुलाया। बुला कर पहले के समान ही सब कहा। यावत् उस दूत ने मिथिला जाने का निश्चय किया।

[इस प्रकार मल्ली कुमारी के पूर्वभव के साथी छहों राजाओं ने अपने-अपने लिए कुमारी की मँगनी करने के लिए अपने-अपने दूत रवाना किये।]

तए णं तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

इस प्रकार उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओ के दूत, जहाँ मिथिला नगरी थी वहां जाने के लिए रवाना हो गये।

तए णं छप्पि य दूयगा जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए अग्गुज्जाणंसि पत्तेयं पत्तेयं खंधावारनिवेसं करेंति, करित्ता मिहिलं रायहाणिं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पत्तेयं पत्तेयं करयल० साणं साणं राईणं वयणाइं निवेदेंति।

तत्पश्चात् छहो दूत जहाँ मिथिला थी, वहाँ आये। आकर मिथिला के प्रधान उद्यान में सब ने अलग-अलग पड़ाव डाले। फिर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश करके कुम्भ राजा के पास आये। आकर प्रत्येक-प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़े और अपने-अपने राजाओं के वचन निवेदन किये। (मल्ली कुमारी की माँग की।)

तए णं से कुंभए राया तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते जाव तिवलियं भिउडिं एवं वयासी—'न देमि णं अहं तुब्भं मल्लीं विदेहरायवरकन्नं' ति कट्टु ते छप्पि दूते असक्कारिय असंमाणिय अवद्दारेणं णिच्छुभावेइ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा उन दूतों से यह बात सुनकर एकदम क्रुद्ध हुआ। यावत् ललाट पर तीन सल डाल कर उसने कहा—मैं तुम्हे (छह में से किसी भी राजा को) विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली नहीं देता।' ऐसा कह कर छहों दूतों का सत्कार-सम्मान न करके उन्हें पीछे के द्वार से निकाल दिया।

तए णं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया कुंभएणं रण्णा असक्कारिया असम्माणिया अवद्दारेणं निच्छुभाविया समाणा जेणेव सगा सगा जाणवया, जेणेव सयाइं सयाइं णगराइं, जेणेव सगा सगा रायाणो तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता करयलपरि० एवं वयासी—

कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और अपद्वार (पिछले द्वार) से निष्कासित वे छहो राजाओं के दूत जहां अपने-अपने जनपद थे, जहां अपने-अपने नगर थे और जहां अपने-अपने राजा थे, वहां पहुँचे। पहुँच कर हाथ जोड़ कर एवं मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहने लगेः—

एवं खलु सामी! अम्हे जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जमगसमगं चेव जेणेव मिहिला जाव अवदारेणं निच्छुभावेइ, तं न देइ णं सामी! कुंभए राया मल्लीं विदेहवररायकन्नं' साणं साणं राईणं एयमट्ठं निवेदेंति।

'इस प्रकार हे स्वामिन्! हम जितशत्रु वगैरह छह राजाओं के दूत एक ही साथ जहां मिथिला नगरी थी, वहां पहुंचे। मगर यावत् राजा कुम्भ ने सत्कार-सन्मान न करके हमें अपद्वार से निकाल दिया। सो हे स्वामिन्! कुम्भ राजा विदहराजवरकन्या मल्ली आप को नहा देता।' दूतों ने अपने-अपने राजाओं से यह अर्थ-वृत्तान्त निवेदन किया।

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता अण्णमण्णस्स दूयसंपेसणं करेंति, करित्ता एवं वयासीः—

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं छण्हं राईणं दूया जमगसमगं चेव जाव णिच्छूढा, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं कुंभगस्स जत्तं गेण्हित्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ण्हाया सण्णद्धा हत्थिखंधवरगया सकोरंटमल्लदामा जाव सेयवरचामराहिं० महयामहयाहयगयरहपवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं सएहिं सएहिं नगरेहिंतो जाव निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता एगयओ मिलायंति, मिलाइत्ता जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु वगैरह छहों राजा उन दूतों से इस अर्थ को सुन कर और समझ कर एकदम कुपित हुए। उन्होंने एक दूसरे के पास दूत भेजे और इस प्रकार कहलाया–'हे देवानुप्रिय ! हम छहो राजाओं के दूत एक साथ (मिथिला पहुंचे और अपमानित करके) यावत् निकाल दिये गये। अतएव हे देवानुप्रिय ! हम लोगों को कुम्भ राजा की ओर प्रयाण करना (चढ़ाई करना) योग्य है।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की बात स्वीकार की। स्वीकार करके स्नान किया (वस्त्रादि धारण किये) सन्नद्ध हुए अर्थात् कवच आदि पहन कर तैयार हुए। हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाला छत्र धारण किया। श्वेत चामर उन पर ढोरे जाने लगे। बड़े-बड़े घोड़ों, हाथियों, रथों और उत्तम योद्धाओं सहित चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर, सर्व ऋद्धि के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ अपने-अपने नगरों से निकले। निकल कर एक जगह इकट्ठे हुए। इकट्ठे होकर जहां मिथिला नगरी थी, वहां जाने के लिए तैयार हुए।

तए णं कुंभए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे वलवाउयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हयगय जाव सेण्णं सन्नाहेह।' जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने इस कथा का अर्थ जान कर अर्थात् छह राजाओं की चढ़ाई का समाचार जान कर अपने सैनिक कर्मचारी (सेनापति) को बुलाया। बुला कर कहा—हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही घोड़ों हाथियों आदि से युक्त यावत् चतुरंगी सेना तैयार करो।' यावत् सेनापति ने सेना तैयार करके आज्ञा वापिस लौटाई।

तए णं कुंभए राया ण्हाए सण्णद्धे हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्ल-

दामेणं छत्तेणं धारिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं महया० मिहिलं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता विदेहं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसअंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंधावारनिवेसं करेइ, करित्ता जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो पडिवालेमाणे जुज्झसज्जे पडिचिट्ठइ ।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने स्नान किया। कवच धारण करके सन्नद्ध हुआ। श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुआ। कोरंट के फूलों की माला का छत्र धारण किया। उसके ऊपर श्रेष्ठ और श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। यावत् विशाल चतुरंगी सेना के साथ मिथिला राजधानी के मध्य में होकर निकला। निकल कर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ अपने देश का अंत (सीमा-भाग) था, वहाँ आया। आकर वहाँ पड़ाव डाला। पड़ाव डाल कर जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं की प्रतीक्षा करता हुआ, युद्ध के लिए सज्ज होकर ठहर गया।

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुंभएणं रण्णा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था ।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु प्रभृति छहों राजा, जहाँ कुंभ राजा था, वहाँ आये। आकर कुंभ राजा के साथ युद्ध करने में प्रवृत हो गए।

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो कुंभयं रायं हयमहियपवरवीरघाइयनिवडियचिंधद्धयप्पडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसो दिसिं पडिसेहिंति ।

तए णं से कुंभए राया जियसत्तुपामोक्खेहिं छहिं राईहिं हयमहिय जाव पडिसेहिए समाणे अत्थामे अबले अवीरिए जाव अधारणिज्जमिति कट्टु सिग्घं तुरियं जाव वेइयं जेणेव मिहिला णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मिहिलं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता मिहिलाए दुवाराइं पिहेइ, पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं ने कुंभ राजा का हनन किया अर्थात् उसके सैन्य का हनन किया, मथन किया अर्थात् मान का मर्दन



किया, उसके अत्युत्तम योद्धाओं का घात किया, उसकी चिह्न रूप ध्वजा और पताका को छिन्नभिन्न करके नीचे गिरा दिया। उसके प्राण संकट मे पड़ गये। उसकी सेना चारों दिशाओं मे भाग निकली।

तत्पश्चात् वह कुंभ राजा जितशत्रु आदि छह राजाओं के द्वारा हत, मानमर्दित यावत् जिसकी सेना चारों ओर भाग खड़ी हुई है ऐसा होकर, सामर्थ्यहीन, बलहीन, पराक्रमहीन यावत् शत्रुसेना का सामना करने मे असमर्थ हो गया। अतः वह शीघ्रतापूर्वक, त्वरा के साथ यावत् वेग के साथ जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ आया। मिथिला नगरी में प्रविष्ट हुआ और प्रविष्ट होकर उसने मिथिला के द्वारा बन्द कर लिये। द्वार बन्द करके किले का रोध करने में सज्ज होकर ठहरा।

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलं रायहाणिं णिस्संचारं णिरुच्चारं सव्वओ समंता ओरुंभित्ता णं चिट्ठंति।

तए णं कुंभए राया मिहिलं रायहाणिं रुद्धं जाणित्ता अब्भंतरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं छिद्दाणि य विवराणि य मम्माणि य अलभमाणे बहूहिं आएहि य उवाएहि य उप्पत्तियाहि य ४ बुद्धीहिं परिणामेमाणे परिणामेमाणे किंचि आयं वा उवायं वा अलभमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव-झियायइ।

तत्पश्चात् जितशत्रु प्रभृति छहों नरेश जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ आये। आकर मिथिला राजधानी को मनुष्यों के गमनागमन से रहित कर दिया, यहाँ तक कि कोट के ऊपर से भी आवागमन रोक दिया, अथवा मल त्यागने के लिए भी आना-जाना रोक दिया। वे नगरी को चारों ओर से घेर करके ठहरे।

तत्पश्चात् कुंभ राजा मिथिला राजधानी को घिरी जान कर आभ्यन्तर उपस्थानशाला (अन्दर की सभा) मे श्रेष्ट सिंहासन पर बैठा। वह जितशत्रु आदि छहों राजाओं के छिद्रों को, विवरों को और मर्म को पा नहीं सका। अतएव बहुत से आयों से, उपायों से तथा औत्पत्तिकी आदि चारो प्रकारो की बुद्धि से विचार करते-करते कोई भी आय या उपाय न पा सका। तब उसके मन का संकल्प क्षीण हो गया, यावत् वह आर्त्तध्यान करने लगा।

इमं च णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना ण्हाया जाव बहूहिं खुज्जाहिं परिवुडा जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कुंभगस्स पायग्गहणं करेइ। तए णं कुंभए राया मल्लिं विदेहरायवरकन्नं णो आढाइ, नो परियाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

इधर विदेहराजवर कन्या मल्ली ने स्नान किया, (वस्त्राभूषण धारण किये, यावत् बहुत-सी कुब्जा आदि दासियों से परिवृत होकर जहाँ कुंभ राजा था, वहाँ आई। आकर उसने कुंभ राजा के चरण ग्रहण किये-पैर छुए। तब कुंभ राजा ने विदेहराजवरकन्या मल्ली का आदर नहीं किया, उसे उसका आना भी मालूम नहीं हुआ, अतएव वह मौन ही रहा।

तए णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना कुंभयं रायं एवं वयासी—'तुब्भे णं ताओ! अण्णया ममं एज्जमाणं जाव निवेसेह, किं णं तुब्भं अज्ज ओहयमणसंकप्पे जाव झियायह?'

तए णं कुंभए राया मल्लिं विदेहरायवरकन्नं एवं वयासी—'एवं खलु पुत्ता! तव कज्जे जियसत्तुपामोक्खेहिं छहिं राईहिं दूया संपेसिया, ते णं मए असक्कारिया जाव णिच्छूढा। तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा परिकुविया समाणा मिहिलं रायहाणिं निस्संचारं जाव चिट्ठन्ति। तए णं अहं पुत्ता! तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं अंतराणि अलभमाणे जाव झियामि।

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने राजा कुम्भ से इस प्रकार कहा—'हे तात! दूसरे समय मुझे आती देख कर आप यावत् गोद में बिठलाते थे, परन्तु क्या कारण है कि आज आप अवहत मानसिक संकल्प वाले होकर चिन्ता कर रहे हैं?'

तब राजा कुम्भ ने विदेहराजवरकन्या मल्ली से इस प्रकार कहा—'हे पुत्री! इस प्रकार तुम्हारे लिए-तुम्हारी मँगनी करने के लिए जितशत्रु प्रभृति छह राजाओं ने दूत भेजे थे। मैं ने उन दूतों को अपमानित करके यावत् निकलवा दिया। तब वे जितशत्रु वगैरह राजा उन दूतों से यह वृत्तान्त सुन कर कुपित हो गये। उन्होंने मिथिला राजधानी को गमनागमनहीन बना दिया है, यावत् वे चारों ओर घेरा डाल कर बैठे हैं। अतएव हे पुत्री! मैं उन जितशत्रु प्रभृति नरेशों के अन्तर-छिद्र आदि न पाता हुआ यावत् चिन्ता कर रहा हूँ।'

तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना कुंभयं रायं एवं वयासी—'मा णं तुब्भे ताओ ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह, तुब्भे णं ताओ ! तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं पत्तेयं पत्तेयं रहसियं दूयसंपेसे करेह, एगमेगं एवं वयह—'तव देमि मल्लिं विदेहरायवरकन्नं' ति कट्टु संझाकालसमयंसि पविरलमणुसंसि निसंतंसि पडिनिसंतंसि पत्तेयं पत्तेयं मिहिलं रायहाणिं अणुप्पवेसेह। अणुप्पवेसित्ता गब्भघरएसु अणुप्पवेसेह, मिहिलाए रायहाणीए दुवाराइं पिधेह, पिधित्ता रोहसज्जे चिट्ठह।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने राजा कुम्भ से इस प्रकार कहा—'तात ! आप अवहत मानसिक संकल्प वाले होकर चिन्ता न कीजिए। हे तात ! आप उन जितशत्रु आदि छहों राजाओं में से प्रत्येक के पास गुप्त रूप से दूत भेज दीजिए और प्रत्येक को यह कह दीजिए कि—'मैं विदेहराजवरकन्या तुम्हें देता हूं।' ऐसा कह कर संध्याकाल के अवसर पर जब विरले मनुष्य गमनागमन करते हों और विश्राम के लिए अपने-अपने घरों में मनुष्य बैठे हों, उस समय प्रत्येक-प्रत्येक राजा का मिथिला राजधानी के भीतर प्रवेश कराइए। प्रवेश करा कर उन्हें गर्भगृह के अन्दर ले जाइए। फिर मिथिला राजधानी के द्वार बंद करा दीजिए और नगरी के रोध में सज्ज होकर ठहरिए।

तए णं कुंभए राया एवं तं चेव जाव पवेसेइ, रोहसज्जे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् राजा कुम्भ ने इसी प्रकार किया। यावत् छहो राजाओं का मिथिला के भीतर प्रवेश कराया। वह नगरी के रोध में सज्ज हो कर ठहरा।

तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो कल्लं पाउब्भूया जाव जालंतरेहिं कणगमयं मत्थयछिड्डं पउमुप्पलपिहाणं पडिमं पासइ। 'एस णं मल्ली विदेहरायवरकन्न' त्ति कट्टु मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिया गिद्धा जाव अज्झोववन्ना अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणा पेहमाणा चिट्ठंति।

तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजा कल अर्थात् दूसरे दिन प्रातःकाल (उन्हे जिस मकान में ठहराया था उसकी) जालियों में से वह स्वर्णमयी मस्तक पर छिद्रवाली और कमल के ढक्कन वाली मल्ली की प्रतिमा देखने लगे। 'यही विदेहराज को श्रेष्ठ कन्या मल्ली है' ऐसा जान कर विदेहराज-

वरकन्या मल्ली के रूप यौवन और लावण्य में मूर्छित, गृद्ध यावत् अत्यन्त लालायित हो कर अनिमेष दृष्टि से बार-बार उसे देखने लगे।

तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना ण्हाया जाव पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता जेणेव जाल-घरए, जेणेव कणयपडिमा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तीसे कणगपडिमाए मत्थयाओ तं पउमं अवणेइ। तए णं गंधे णिद्धावइ से जहानामए अहिमडेइ वा जाव असुभतराए चेव।

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने स्नान किया, यावत् प्रायश्चित किया। वह समस्त अलंकारों से विभूषित होकर बहुत-सी कुब्जा आदि दासियों से यावत् परिवृत होकर जहाँ जालगृह था और जहां स्वर्ण की वह प्रतिमा थी, वहाँ आई। आकर उस स्वर्णप्रतिमा के मस्तक से वह कमल का ढक्कन हटा दिया। ढक्कन हटाते ही उसमें से ऐसी दुर्गन्ध छूटी कि जैसे मरे साँप की दुर्गंध हो, यावत् उससे भी अधिक अशुभ!

तए णं जियसत्तुपामोक्खा तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेंति, पिहित्ता परम्मुहा चिट्ठंति।

तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी—'किं णं तुब्भं देवाणुप्पिया! सएहिं सएहिं उत्तरिज्जेहिं जाव परम्मुहा चिट्ठह?'

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा मल्लिं विदेहरायवरकन्नं एवं वयंति—'एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हे इमेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं सएहिं जाव चिट्ठामो।'

तत्पश्चात् जितशत्रु वगैरह ने उस अशुभ गंध से अभिभूत होकर-घबरा कर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रों से मुँह ढँक लिया। मुँह ढँक कर वे मुख फेर कर खड़े हो गये।

तब विदेहराजवरकन्या मल्ली ने उन जितशत्रु आदि से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! किस कारण आप अपने-अपने उत्तरीय वस्त्र से मुँह ढँक कर यावत् मुँह फेर कर खड़े हो गये?'

तब जितशत्रु आदि ने विदेहराजवरकन्या मल्ली से कहा–'देवानुप्रिये! हम इस अशुभ गंध से घबरा कर अपने-अपने यावत् वस्त्र से मुख ढँककर विमुख हुए हैं।'

तए णं मल्ली विदेहरायवरकन्ना ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी–'जइ ताव देवाणुप्पिया! इमीसे कणगमयाए जाव पडिमाए कल्लाकल्लिं ताओ मणुण्णाओ असणपाणखाइमसाइमाओ एगमेगे पिंडे पक्खिप्पमाणे पक्खिप्पमाणे इमेयारूवे असुभे पोग्गलपरिणामे, इमस्स पुण ओरालियसरीरस्स खेलासवस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कसोणियपूयासवस्स दुरूवऊसासनीसासस्स दुरूवमुत्तपुतियपुरीसपुण्णस्स सडण जाव धम्मस्स केरिसए परिणामे भविस्सइ? तं मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! माणुस्सएसु कामभोगेसु रज्जह, गिज्झह, मुज्झह, अज्झोववज्जह।'

तत्पश्चात् विदेहराजवरकन्या मल्ली ने उन जितशत्रु आदि राजाओं से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! इस स्वर्णमयी यावत् प्रतिमा में प्रतिदिन मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार में से एक-एक पिण्ड डालते-डालते यह ऐसा अशुभ पुद्गल का परिणमन हुआ है, तो यह औदारिक शरीर तो कफ को झराने वाला है, पित्त को झराने वाला है, शुक्र, शोणित और पीव को झराने वाला है, खराब उच्छ्वास और निश्वास निकालने वाला है, अमनोज्ञ मूत्र एवं दुर्गंधित मल से परिपूर्ण है, सड़ना (पड़ना और नष्ट होना) यावत् इसका स्वभाव है, तो इसका परिणमन कैसा होगा? अतएव हे देवानुप्रियो! आप मनुष्य संबंधी कामभोगों में राग मत करो, गृद्धि मत करो, मोह मत करो और अतीव आसक्त मत होओ।'

एवं खलु देवाणुप्पिया! तुम्हे अम्हे इमाओ तच्चे भवग्गहणे अवरविदेहवासे सलिलावईंसि विजए वीयसोगाए रायहाणीए महब्बलपामोक्खा सत्त वि य बालवयंसगा रायाणो होत्था, सह जाया जाव पव्वइया।

तए णं अहं देवाणुप्पिया! इमेणं कारणेणं इत्थीनामगोयं कम्मं निव्वत्तेमि–जइ णं तुब्भं चोत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरह, तए णं अहं छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरामि। सेसं तहेव सव्वं।

मल्ली कुमारी ने पूर्वभव का स्मरण कराते हुए आगे कहा—'इस प्रकार हे देवानुप्रियो ! तुम और हम इससे पहले के तीसरे भव में, पश्चिम महाविदेह-वर्ष में, सलिलावती विजय में, वीतशोका नामक राजधानी में महाबल आदि सातों-मित्र राजा थे। हम सातों साथ जन्मे थे, यावत् साथ ही दीक्षित हुए थे।

हे देवानुप्रियो ! उस समय इस कारण से मैं ने स्त्रीनामगोत्र कर्म का उपार्जन किया था—अगर तुम लोग एक उपवास करके विचरते थे, तो मैं बेला करके विचरती थी। शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझना चाहिए।

तए णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कालमासे कालं किच्चा जयंते विमाणे उववण्णा। तत्थ णं तुब्भे देसूणाइं बत्तीसाइं सागरोवमाइं ठिई। तए णं तुब्भे ताओ देवलोयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे जाव साइं साइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरह।

तए णं अहं देवाणुप्पिया ! ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं जाव दारियत्ताए पच्चायाया:-

किं थ तयं पम्हुट्ठं, जं थ तया भो जयंत पवरम्मि।
वुत्था समयनिबद्धं, देवा तं संभरह जाइं॥ १॥

तत्पश्चात् हे देवानुप्रियो ! तुम कालमास में काल करके जयन्त विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ तुम्हारी कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई। तत्पश्चात् तुम उस देवलोक से अनन्तर (तुरंत ही) शरीर त्याग करके-चय करके-इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्पन्न हुए, यावत् अपने-अपने राज्य प्राप्त करके विचर रहे हो।

तत्पश्चात् मैं उस देवलोक से आयु का क्षय होने से कन्या के रूप में आई हूँ-जन्मी हूँ।

'क्या तुम वह भूल गये ? जिस समय हे देवानुप्रियो ! तुम जयन्त नामक अनुत्तर विमान मे वास करते थे ? वहाँ रहते हुए 'हमें एक दूसरे को प्रतिबोध देना चाहिए' ऐसा परस्पर में संकेत किया था। तो तुम उस देवभव का स्मरण करो।'

तए णं तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं रायाणं मल्लीए विदेहराय-वरकन्नाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सुभेणं परिणामेणं; पसत्थेणं

अज्झवसाणेणं, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहावूह जाव सण्णिजाइस्सरणे समुप्पन्ने। एयमट्ठं सम्मं अभिसमागच्छंति।

तत्पश्चात् विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली से यह पूर्वभव का वृत्तान्त सुनने और हृदय में धारण करने से, शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं और जातिस्मरण को आच्छादित करने वाले कर्मों के क्षयोपशम के कारण, ईहा-अपोह (सद्भूत-असद्भूत धर्मों की पर्यालोचना) करने से जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को ऐसा जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ कि जिससे वे संज्ञी अवस्था के अपने भव देख सकें। इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर मल्ली कुमारी द्वारा कथित अर्थ को उन्होने सम्यक् प्रकार से जान लिया।

तए णं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो समुप्पण्णजाइसरणे जाणित्ता गब्भघराणं दाराइं विहाडावेइ। तए णं जियसत्तुपामोक्खा जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति। तए णं महब्बलपामोक्खा सत्त वि य (जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य) बालवयंसा एगयओ अभिसमन्नागया यावि होत्था।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहंत ने जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया जानकर गर्भगृहों के द्वारा खुलवा दिये। तब जितशत्रु वगैरह छहों राजा मल्ली अरिहंत के पास आये। उस समय (पूर्वजन्म के) महाबल आदि सातों (अथवा इस भव के जितशत्रु आदि छहों) बालमित्रों का परस्पर मिलन हुआ।

तए णं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि य रायाणो एवं वयासी—'एवं खलु अहं देवाणुप्पिया। संसारभयउव्विग्गा जाव पव्वयामि, तं तुब्भे णं किं करेह ? किं वसह ? जाव किं भे हियसामत्थे ?'

तत्पश्चात् अरिहत मल्ली ने जितशत्रु वगैरह छहों राजाओं से कहा—हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार निश्चित्त रूप से मै संसार के भय से (जन्म-जरा-मरण से) उद्विग्न हुई हूँ, यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। तो आप क्या करेंगे ? कैसे रहेंगे ? आपके हृदय का सामर्थ्य कैसा है ? अर्थात् भाव या उत्साह कैसा है ?'

अवधिज्ञान से जाना। जान कर इन्द्र को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ:- जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारत वर्ष मे, मिथिला राजधानी में कुम्भ राजा की (पुत्री) मल्ली अरहन्त ने एक वर्ष के अन्त में 'दीक्षा लूँगी' ऐसा विचार किया है।

'तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पन्नमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं–अरहंताणं भगवंताणं णिक्खममाणाणं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलित्तए। तं जहा—

तिण्णेव य कोडिसया, अट्ठासीइं च होंति कोडीओ।
असिइं च सयसहस्सा, इंदा दलयंति अरहाणं॥

(शक्रेन्द्र ने आगे विचार किया—) तो अतीत काल, वर्त्तमान काल और भविष्यत् काल के शक्र देवेन्द्र देवराजों का यह परम्परागत आचार है कि–अरिहन्त भगवंत जब दीक्षा अंगीकार करने को हों, तो उन्हें इतनी अर्थ-सम्पदा (दान देने के लिए) देनी चाहिए। वह इस प्रकारः—

'तीन सौ करोड़ अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख द्रव्य (स्वर्ण-मोहरें) इन्द्र अरिहंतों को देते हैं।'

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता वेसमणं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे जाव असीइं च सयसहस्साइं दलइत्तए, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे कुंभगभवणंसि इमेयारूवं अत्थसंपयाणं साहराहि, साहरित्ता खिप्पामेव मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।'

शक्रेन्द्र ने ऐसा विचार किया। विचार करके उसने वैश्रमण देव को बुलाया और बुला कर कहा–'देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, यावत् तीन सौ अठासी करोड़ और अस्सी लाख देना उचित है। सो हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और जम्बू द्वीप में, भारतवर्ष में, कुंभ राजा के भवन में इतने द्रव्य का संहरण करो–इतना धन लेकर डाल दो। संहरण करके शीघ्र ही मेरी यह आज्ञा वापिस सौंपो।'

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयल जाव पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जंभए देवे सद्दावेइ, सद्दा-



वित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवं दीवं भारहं वासं मिहिलं रायहाणिं, कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिन्नेव य कोडिसया, अट्ठासीयं च कोडीओ असीइं च सयसहस्साइं अयमेयारूवं अत्थसंपयाणं साहरह, साहरित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।'

तत्पश्चात् वैश्रमण देव, शक्र देवेन्द्र देवराज के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। हाथ जोड़ कर उसने यावत् आज्ञा स्वीकार की। स्वीकार करके जृंभक देवों को बुलाया। बुला कर उनसे इस प्रकार कहा-'देवानुप्रियो ! तुम जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में और मिथिला राजधानी में जाओ और कुंभ राजा के भवन में तीन सौ करोड़ और अठासी करोड़ अस्सी लाख अर्थ सम्प्रदान का संहरण करो, अर्थात् इतनी सम्पत्ति वहाँ पहुँचा दो। संहरण करके यह आज्ञा मुझे वापिस लौटाओ।'

तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं जाव सुणेत्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव वीइवयमाणा जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, जेणेव मिहिला रायहाणी, जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिन्नि कोडिसया जाव साहरंति। साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् वे जृंभक देव, वैश्रमण देव की आज्ञा सुन कर उत्तरपूर्व दिशा में गये। जाकर उत्तरवैक्रिय रूपों की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके देव संबंधी उत्कृष्ट गति से जाते हुए जहाँ जम्बूद्वीप नामक द्वीप था, भरत क्षेत्र था, जहाँ मिथिला राजधानी थी और जहाँ कुंभ राजा का भवन था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर कुंभ राजा के भवन में तीन सौ करोड़ आदि पूर्वोक्त द्रव्यसम्पत्ति पहुँचा दी। पहुंचा कर वे जृंभक देव, वैश्रमण देव के पास आये और उसकी आज्ञा वापिस लौटाई।

तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव पच्चप्पिणइ।

तत्पश्चात् वह वैश्रमण देव जहाँ शक्र देवेन्द्र देवराज था, वहाँ आया। आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् उसने इन्द्र की आज्ञा वापिस सौंपी।



तए णं मल्ली अरहा कल्लाकल्लिं जाव मागहओ पायरासो त्ति बहूणं सणाहाणं य अणाहाण य पंथियाण य पहियाण य करोडियाण य कप्पडियाण य एगमेगं हिरण्णकोडिं अट्ठ य अणूणाइं सयसहस्साइं इमेयारूवं अत्थसंपदाणं दलयइ।

तत्पश्चात मल्ली अरिहंत ने प्रतिदिन प्रातःकाल से प्रारंभ करके मगध देश के प्रातराश (प्रातःकालीन भोजन) के समय तक अर्थात् दोपहर पर्यन्त बहुत-से सनाथों, अनाथों, पांथिकों-निरन्तर मार्ग पर चलने वाले पथिकों, पथिको राहगीरो अथवा किसी के द्वारा किसी प्रयोजन से भेजे गये पुरुषों, करोटिक-कपाल हाथ में लेकर भिक्षा माँगने वालो, कार्पटिक-कंथा कोपीन या गेरुये धारण करने वालों अथवा कपट से भिक्षा माँगने वालों अथवा एक प्रकार के भिक्षुकविशेषों को पूरी एक करोड़ और आठ लाख स्वर्णमोहरें दान में देना आरंभ किया।

तए णं से कुंभए राया मिहिलाए रायहाणीए तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे देसे बहूओ महाणससालाओ करेइ। तत्थ णं बहवे मणुया दिण्ण-भइभत्तवेयणा विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेंति। उवक्ख-डित्ता जे जहा आगच्छंति तंजहा—पंथिया वा, पहिया वा, करोडिया वा, कप्पडिया वा, पासंडत्था वा, गिहत्था वा, तस्स य तहा आसत्थस्स वीसत्थस्स सुहासणवरगयस्स तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं परिभाएमाणा परिवेसेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने मिथिला राजधानी मे तत्र तत्र अर्थात् विभिन्न मुहल्लों या उपनगरो में, तहिं तहिं अर्थात् महामार्गों में तथा अन्य अनेक स्थानों में, देशे देशे अर्थात् त्रिक चतुष्क आदि स्थानों-स्थानों में बहुत-सी भोजनशालाएँ बनवाईं। उन भोजनशालाओं में बहुत-से मनुष्य, जिन्हें भृति-धन, भक्त-भोजन और वेतन-मूल्य दिया जाता था, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनाते थे। बना करके जो लोग जैसे-जैसे आते जाते थे जैसे कि—पांथिक (निरन्तर रास्ता चलने वाले), पथिक (मुसाफिर), करोटिक (कपाल खोपड़ी लेकर भीख मांगने वाले), कार्पटिक (कंथा, कोपीन या कषायवस्त्र धारने करने वाले), पाखण्डी (साधु, बाबा, सन्यासी) अथवा गृहस्थ, उन्हें आश्वासन देकर, विश्राम देकर और सुखद आसन पर बिठला कर विपुल अशन पान खाद्य और स्वाद्य दिया जाता था, परोसा जाता था। वे मनुष्य वहां भोजन आदि देते हुए रहते थे।

तए णं मिहिलाए सिंघाडग जाव बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ–'एवं खलु देवाणुप्पिया! कुंभगस्स रण्णो भवणंसि सव्वकामगुणियं किमिच्छियं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं बहूणं समणाण य जाव परिवेसिज्जइ।'

वरवरिया घोसिज्जइ, किमिच्छियं दिज्जए बहुविहीयं।
सुर-असुर-देव-दाणव-नरिंदमहियाण निक्खमणे ॥

तत्पश्चात् मिथिला राजधानी में शृङ्गाटक, त्रिक आदि मार्गों में बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रियो! कुम्भ राजा के भवन में सर्वकामगुणित अर्थात् सब प्रकार के रूप रस गंध और स्पर्श वाले मनोवांछित रसपर्याय वाला तथा इच्छानुसार दिया जाने वाला विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बहुत-से श्रमणों आदि को यावत् परोसा जाता है। तात्पर्य यह है कि कुम्भ राजा द्वारा जगह-जगह भोजनशालाएँ खुलवा देने और भोजनदान देने की सर्वत्र चर्चा होने लगी।

'वैमानिक, भवनपति, ज्योतिष्क और व्यन्तर देवों तथा नरेन्द्रों अर्थात् चक्रवर्त्ती आदि राजाओं द्वारा पूजित तीर्थकरो की दीक्षा के अवसर पर वरवरिका की घोषणा कराई जाती है, और याचकों को यथेष्ट दान दिया जाता है। अर्थात् 'जिसे जो वरदान माँगना हो सो माँगो' ऐसी घोषणा करवा दी जाती है और 'तुम्हें क्या चाहिए, तुम्हें क्या चाहिए' इस प्रकार पूछ कर याचक की इच्छा के अनुसार दान दिया जाता है।

तए णं मल्ली अरहा संवच्छरेणं तिन्नि कोडिसया अट्ठासीइं च होंति कोडीओ असिइं च सयसहस्साइं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलइत्ता निक्खमामि त्ति मणं पहारेइ।

तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने तीन सौ करोड़, अठासी करोड़ और अस्सी लाख जितनी अर्थसम्पदा दान देकर 'मैं दीक्षा ग्रहण करूँ' ऐसा मन मे निश्चय किया।

ते णं काले णं ते णं समए णं लोगंतिया देवा बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे सएहिं सएहिं विमाणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं, पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेव-

साहस्सीहिं, अन्नेहि य बहूहिं लोगंतिएहिं देवेहिं सद्धिं संपरिवुडा महयाहयनट्टगीयवाइय जाव रवेणं भुंजमाणा विहरंति। तंजहा–

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य॥

उस काल और उस समय में लौकान्तिक देव ब्रह्मदेव नामक पाँचवें स्वर्ग में, अरिष्ट नामक विमान के पाथड़े में अपने-अपने विमानो से, अपने-अपने उत्तम प्रासादो से. प्रत्येक-प्रत्येक चार-चार हजार सामानिक देवों से, तीन-तीन परिषदों से, सात-सात अनीकों से, सात-सात अनीकाधिपतियो (सेनापतियों) से, सोलह-सोलह हजार आत्मरक्षक देवों से तथा अन्य अनेक लौकान्तिक देवो से युक्त-परिवृत होकर खूब जोर से बजाये हुए नृत्य-गीत के वाद्यों के यावत् शब्द के साथ भोग भोगते हुए विचार रहे थे। उन लौकान्तिक देवो के नाम इस प्रकार हैं:—(१) सारस्वत (२) आदित्य (३) वह्नि (४) वरुण (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) आग्नेय और (९) रिष्ट।

तए णं तेसिं लोयंतियाणं देवाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति, तहेव जाव 'अरहंताणं निक्खममाणाणं संबोहणं करेत्तए त्ति तं गच्छामो णं अम्हे वि मल्लिस्स अरहओ संबोहणं करेमि।' त्ति कट्टु एवं संपेहेंति, संपेहित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभायं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं एवं जहा जंभगा जाव जेणेव मिहिला रायहाणी, जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे, जेणेव मल्ली अरहा, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवन्ना सखिंखिणियाइं जाव वत्थाइं पवरपरिहिया करयल ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी–

तत्पश्चात् उन लौकान्तिक देवों मे से प्रत्येक के आसन चलायमान हुए; इत्यादि उसी प्रकार जानना, यावत् दीक्षा लेने की इच्छा करने वाले तीर्थंकरों को संबोधन करना हमारा आचार है; अतः हम जाएँ और अरहन्त मल्ली को संबोधन करें; ऐसा लौकान्तिक देवों ने विचार किया। ऐसा विचार करके उन्होंने ईशान दिशा मे जाकर वैक्रियसमुद्घात से विक्रिया की—उत्तरवैक्रिय शरीर धारण किया। समुद्घात करके संख्यात योजन उल्लंघन करके, जृंभक देवों की तरह जहाँ मिथिला राजधानी थी, जहाँ कुंभ राजा का भवन था और जहाँ मल्ली नामक अरहंत थे, वहाँ आये। आकरके आकाश-अधर में स्थित रहे हुए

घुंघरुओं के शब्द सहित यावत् श्रेष्ठ वस्त्र धारण करके, दोनों हाथ जोड़कर, इष्ट यावत् वाणी से इस प्रकार बोले:—

'बुज्झाहि भयवं! लोगनाहा! पवत्तेहि धम्म तित्थं, जीवाणं हियसुहनिस्सेयसकरं भविस्सइ' त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयंति। वइत्ता मल्लिं अरहं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

'हे लोकनाथ! हे भगवन्! बूझो-बोध पाओ। धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करो। वह धर्मतीर्थ जीवों के लिए हितकारी, सुखकारी और निश्रेयसकारी (मोक्षकारी) होगा।' इस प्रकार कह कर दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा। कह कर अरहन्त मल्ली को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये।

तए णं मल्ली अरहा तेहिं लोगंतिएहिं देवेहिं संबोहिए समाणे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल—'इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए मुंडे भवित्ता जाव पव्वइत्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया। मा पडिबंधं करेह।'

तत्पश्चात् लौकान्तिक देवों द्वारा संबोधित हुए मल्ली अरहन्त जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आये। आकर दोनों हाथ जोड़कर कहा—'हे माता-पिता! आपकी आज्ञा से मुंडित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करने की मेरी इच्छा है।'

तब माता-पिता ने कहा—'हे देवानुप्रिये! जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबंध-विलम्ब मत करो।'

तए णं कुंभए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं जाव भोमेज्जाणं ति। अण्णं च महत्थं जाव तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह।' जाव उवट्ठवेंति।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर कहा—शीघ्र ही एक हजार आठ सुवर्णकलश यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलश लाओ। इसके अतिरिक्त महान् अर्थ वाली यावत् तीर्थङ्कर के अभिषेक की सब सामग्री उपस्थित करो।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया, अर्थात् अभिषेक की समस्त सामग्री तैयार कर दी।

ते णं काले णं ते णं समए णं चमरे असुरिंदे जाव अच्चुयपज्ज-वसाणा आगया।

उस काल और उस समय चमर नामक असुरेन्द्र से लेकर अच्युत स्वर्ग तक के इन्द्र–सभी अर्थात् चौंसठ इन्द्र वहाँ आ गये।

तए णं सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–'खिप्पामेव अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव अण्णं च तं विउलं उवट्ठवेह।' जाव उवट्ठवेंति। ते वि कलसा ते चेव कलसे अणुपविट्ठा।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा–शीघ्र ही एक हजार आठ स्वर्णकलश आदि यावत् दूसरी अभिषेक के योग्य सामग्री उपस्थित करो। यह सुन कर आभियोगिक देवों ने भी सब सामग्री उपस्थित की। वे देवों के कलश उन्हीं मनुष्यों के कलशों में (दैवी माया से) समा गये।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया कुंभराया य मल्लिं अरहं सीहा-सणंसि पुरत्थाभिमुहं निवेसेइ, अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं जाव अभि-सिंचइ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र और कुंभ राजा ने मल्ली अरहन्त को पूर्वाभिमुख बिठलाया। फिर सुवर्ण आदि के एक हजार आठ कलशों से यावत् अभिषेक किया।

तए णं मल्लिस्स भगवओ अभिसेए वट्टमाणे अप्पेगइया देवा मिहिलं च सब्भिंतरं बाहिरियं जाव सव्वओ समंता परिधावंति।

तत्पश्चात् जब मल्ली भगवान् का अभिषेक हो रहा था, उस समय कोई–कोई देव मिथिला नगरी के भीतर और बाहर यावत् सब दिशाओं–विदि-शाओं में दौड़ने लगे इधर–उधर फिरने लगे।

तए णं कुंभए राया दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं जाव सव्वालंकार-विभूसियं करेइ, करित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ। सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव मणोरमं सीयं उवट्ठवेह।' ते उवट्ठवेंति।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने दूसरी बार उत्तर दिशा में जाकर यावत् भगवान् मल्ली को सर्व अलंकारों से विभूषित किया। विभूषित करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा-'शीघ्र ही मनोरमा नाम की शिबिका (तैयार करके) लाओ।'

तए णं सक्के देविंदे देवराया आभियोगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव अणेगखंभं जाव मनोरमं सीयं उवट्ठवेह।' जाव सावि सीया तं चेव सीयं अणुपविट्ठा।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा-शीघ्र ही अनेक खंभों वाली यावत मनोरमा नामक शिबिका उपस्थित करो।' तब वे देव भी मनोरमा शिबिका लाये और वह शिबिका भी उसी मनुष्यों की शिबिका में समा गई।

तए णं मल्ली अरहा सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव मणोरमा सीया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मणोरमं सीयं अणुपयाहिणी करेमाणा मणोरमं सीयं दुरूहइ। दुरूहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त सिंहासन से उठे। उठ कर जहाँ मनोरमा शिबिका थी, उधर आये। आकर मनोरमा शिबिका को प्रदक्षिणा करके मनोरमा शिबिका पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर विराजमान हुए।

तए णं कुंभए राया अट्ठारस सेणिप्पसेणिओ सद्दावेइ। सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया मल्लिस्स सीयं परिवहह।' जाव परिवहंति।

तत्पश्चात कुम्भ राजा ने अठारह जातियों-उपजातियों को बुलवाया। बुलवा कर कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग स्नान करके यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मल्ली कुमारी की शिबिका वहन करो।' यावत् उन्होंने शिबिका वहन की।

तए णं सक्के देविंदे देवराया मणोरमाए दक्खिणिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, ईसाणे उत्तरिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, चमरे दाहिणिल्लं

हेट्ठिल्लं, वली उत्तरिल्लं हेट्ठिल्लं । अवसेसा देवा जहारिहं मणोरमं सीयं परिवहंति ।

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने मनोरमा शिबिका की दक्षिण तरफ की ऊपरी बाहा ग्रहण की (वहन की), ईशान इन्द्र ने उत्तर तरफ की ऊपर की बाहा ग्रहण की, चमरेन्द्र ने दक्षिण तरफ की नीचली बाहा ग्रहण की। शेष देवो ने यथायोग्य उस मनोरमा शिबिका को वहन किया ।

पुव्विं उक्खित्ता माणुस्सेहिं, तो हट्ठरोमकूवेहिं ।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदनागेंदा ॥ १ ॥
चलचवलकुंडलधरा, सच्छंदविउव्वियाभरणधारी ।
देविंददाणविंदा, वहन्ति सीयं जिणिंदस्स ॥ २ ॥

जिनके रोमकूप (रोंगटे) हर्ष के कारण विकस्वर हो गये हैं ऐसे मनुष्यो ने सर्वप्रथम वह शिबिका उठाई। उसके बाद असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र ने उसे वहन किया ॥ १ ॥

चलायमान चपल कुण्डलों को धारण करने वाले तथा अपनी इच्छा के अनुसार विक्रिया से बनाये हुए आभरणों को धारण करने वाले देवेन्द्रो और दानवेन्द्रों ने जिनेन्द्र देव की शिबिका वहन की।

तए णं मल्लिस्स अरहओ मणोरमं सीयं दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा अहाणुपुव्वीए, एवं निग्गमो जहा जमालिस्स ।

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत जब मनोरमा शिबिका पर आरूढ़ हुए, उस समय उनके आगे आठ-आठ मंगल अनुक्रम से चले। भगवतीसूत्र में वर्णित जमालि के निर्गमन की तरह यहाँ मल्ली अरहंत के निर्गमन का वर्णन कहना चाहिए ।

तए णं मल्लिस्स अरहओ निक्खममाणस्स अप्पेगइया देवा मिहिलं नयरिं आसियसंमज्जियं अब्भिंतरवासविहिगाहा जाव परिधावंति ।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त जब दीक्षा धारण करने के लिए निकले तो किन्ही-किन्ही देवो ने मिथिला नगरी को पानी से सींच दी साफ कर दी और भीतर तथा बाहर की विधि करके यावत् चारो ओर दौड़ धूप करने लगे। (यह सब वर्णन राजप्रश्नीय आदि सूत्रों से जान लेना चाहिए।)

तए णं मल्ली अरहा जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे, जेणेव असोग-वरपायवे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चो-रुहित्ता आभरणालंकारं पभावई पडिच्छइ।

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत जहां सहस्राम्रवन नामक उद्यान था, और जहां श्रेष्ठ अशोकवृक्ष था वहाँ आये। आकर शिविका से नीचे उतरे। नीचे उतर कर समस्त आभरणों का त्याग किया। प्रभावती देवी ने वह आभरण ग्रहण किये।

तए णं मल्ली अरहा सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ। तए णं सक्के देविंदे देवराया मल्लिस्स केसे पडिच्छइ। पडिच्छित्ता खीरोदगसमुद्दं पक्खिवइ।

तए णं मल्ली अरहा 'णमोऽत्थु णं सिद्धाणं' ति कट्टु सामाइय-चरित्तं पडिवज्जइ।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। तब शक्र देवेन्द्र देवराज ने मल्ली के केशों को ग्रहण किया। ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्र में प्रक्षेप कर दिया।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहन्त ने 'नमोऽत्थु णं सिद्धाणं' अर्थात् 'सिद्धों को नमस्कार हो' इस प्रकार कह कर सामायिक चारित्र अंगीकार किया।

जं समयं च णं मल्ली अरहा चरित्तं पडिवज्जइ, तं समयं च णं देवाणं मणुस्साण य णिग्घोसे तुरियणिणायगीयवाइयनिग्घोसे य सक्कस्स वयणसंदेसेणं णिलुक्के यावि होत्था। जं समयं च णं मल्ली अरहा सामाइयं चरित्तं पडिवन्ने तं समयं च णं मल्लिस्स अरहओ माणुस-धम्माओ उत्तरिए मणपज्जवनाणे समुप्पन्ने।

जिस समय अरहंत मल्ली ने चारित्र अंगीकार किया, उस समय देवों और मनुष्यों के निर्घोष (शब्द-कोलाहल) वाद्यों की ध्वनि, और गाने-बजाने का शब्द शक्रेन्द्र के आदेश से बिलकुल बन्द हो गया। अर्थात् शक्रेन्द्र ने सब को शान्त रहने का आदेश दिया, अतएव चारित्र ग्रहण करते समय पूर्ण नीरवता व्याप्त हो गई। जिस समय मल्ली अरहन्त ने सामायिक चारित्र अंगीकार किया, उसी समय मल्ली अरहन्त को मनुष्य धर्म से ऊपर का अर्थात् साधारण अव्रती मनुष्यों को न होने वाला-लोकोत्तर, अथवा मनुष्य क्षेत्र संबंधी उत्तम, मनःपर्यय

ज्ञान (मनुष्य क्षेत्र—अढ़ाई द्वीप मे स्थित संज्ञी जीवो के मन के पर्यायों को साक्षात् जानने वाला ज्ञान) उत्पन्न हो गया।

मल्ली णं अरहा जेसे हेमंताणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे पोससुद्धे, तस्स णं पोससुद्धस्स एक्कारसीपक्खे णं पुव्वण्हकालसमयंसि अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं, अस्सिणीहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं तिहिं इत्थीसएहिं अब्भितरियाए परिसाए, तिहिं पुरिससएहिं बाहिरियाए परिसाए सद्धिं मुंडे भवित्ता पव्वइए।

मल्ली अरहन्त ने हेमन्त ऋतु के दूसरे मास में, चौथे पखवाड़े में अर्थात् पौष मास के शुद्ध (शुक्ल) पक्ष में और पौष मास के शुद्ध पक्ष की एकादशी के पक्ष में अर्थात् अर्द्ध भाग में (रात्रि का भाग छोड़ कर दिन में), पूर्वाह्न काल के समय में, निर्जल अष्टमभक्त तप करके, अश्विनी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग प्राप्त होने पर, तीन सौ आभ्यन्तर परिषद् की स्त्रियों के साथ और तीन सौ बाह्य परिषद् के पुरुषों के साथ मुंडित होकर दीक्षा अंगीकार की।

मल्लिं अरहं इमे अट्ठ णायकुमारा अणुपव्वइंसु, तं जहा—

णंदे य णंदिमित्ते, सुमित्त बलमित्त भाणुमित्ते य।
अमरवइ अमरसेणे महसेणे चेव अट्ठमए ॥

मल्ली अरहन्त का अनुसरण करके यह आठ ज्ञात कुमार दीक्षित हुए। वह इस प्रकार हैं:—

(१) नन्द (२) नन्दिमित्र (३) सुमित्र (४) बलमित्र (५) भानुमित्र (६) अमरपति (७) अमरसेन और (८) आठवें महासेन। इन आठ ज्ञातकुमारों (इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारों) ने दीक्षा अंगीकार की।

तए णं से भवणवई ४ मल्लिस्स अरहओ निक्खमणमहिमं करेंति, करित्ता जेणेव नंदीसरवरे० अट्ठाहियं करेंति, करित्ता जाव पडिगया।

तत्पश्चात् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक—इन चार निकाय के देवों ने मल्ली अरहन्त का दीक्षा—महोत्सव किया। महोत्सव करके जहाँ नंदीश्वर द्वीप था, वहाँ गये। जाकर अष्टाह्निका महोत्सव किया। महोत्सव करके यावत् अपने—अपने स्थान पर लौट गये।

तए णं मल्ली अरहा जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स

पच्चावरण्हकालसमयंसि असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहासणवरगयस्स सुहेणं परिणामेणं, पसत्थेहिं अज्झवसाणेणं, पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणकम्मरयविकरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते जाव केवलनाणदंसणे समुप्पन्ने।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त, जिस दिन दीक्षा अंगीकार की, उसी दिन के प्रत्यपराह्णकाल के समय अर्थात् दिन के अन्तिम भाग में, श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक के ऊपर बैठे हुए थे; उस समय शुभ परिणामों के कारण, प्रशस्त अध्यवसाय के कारण तथा विशुद्ध एवं प्रशस्त लेश्याओं के कारण, तदावरण (ज्ञानावरण और दर्शनावरण) कर्म की रज को दूर करने वाले, अपूर्व करण (आठवें गुणस्थान) को प्राप्त हुए अरहन्त मल्ली को अनन्त यावत् केवल-ज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति हुई।

ते णं काले णं ते णं समए णं सव्वदेवाणं आसणाइं चलंति। समोसढा, सुणेंति, अट्ठाहियमहिमा नंदीसरे, जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। कुंभए वि निग्गच्छइ।

उस काल और उस समय में सब देवों के आसन चलायमान हुए। तब वे सब वहां आये। सब ने धर्मोपदेश श्रवण किया। नंदीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निका महोत्सव किया। फिर जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में लौट गये। कुम्भ राजा भी वन्दना करने के लिए निकला।

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो जेट्ठपुत्ते रज्जे ठावित्ता पुरिससहस्सवाहिणीयाओ दुरूढा सव्विड्ढीए जाव रवेणं जेणेव मल्ली अरहा जाव पज्जुवासंति।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु वगैरह छहों राजा अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्य पर स्थापित करके, हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविकाओं पर आरूढ़ होकर समस्त ऋद्धि (पूरे ठाठ) के साथ यावत् गीत-वादित्र के शब्दों के साथ जहाँ मल्ली अरहन्त थे, यावत् वहाँ आकर उनकी उपासना करने लगे।

तए णं मल्ली अरहा तीसे महइ महालियाए कुंभगस्स रन्नो तेसिं च जियसत्तुपामोक्खाणं धम्मं कहेइ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूआ

तामेव दिसिं पडिगया। कुंभए समणोवासए जाए, पडिगए, पभावई य समणोवासिया जाया, पडिगया।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त ने उस बड़ी भारी परिषद् को, कुम्भ राजा को और उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं को धर्म का उपदेश दिया। परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई। कुम्भ राजा श्रमणोपासक हुआ। वह भी लौट गया। प्रभावती श्रमणोपासिका हुई। वह भी वापिस चली गई।

तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो धम्मं सोच्चा आलित्तए णं भंते! जाव पव्वइया। चोद्दसपुव्विणो, अणंते केवले, सिद्धा।

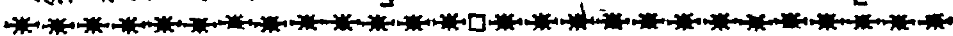
तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने धर्म श्रवण करके कहा—'भगवन्! यह संसार आदीप्त है, प्रदीप्त है' इत्यादि। यावत् वे दीक्षित हो गए। चौदह पूर्वों के ज्ञानी हुए, फिर अनन्त केवल ज्ञान प्राप्त करके यावत् सिद्ध हुए।

तए णं मल्ली अरहा सहसंबवणाओ निक्खमइ, निक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त सहस्राम्रवन उद्यान से बाहर निकले। निकल कर जनपद में विहार करने लगे।

मल्लिस्स णं अरहओ भिसग (किंसुय) पामोक्खा अट्ठावीसं गणा, अट्ठावीसं गणहरा होत्था। मल्लिस्स णं अरहओ चत्तालीसं समणसाहस्सीओ उक्कोसियाओ, बंधुमतीपामोक्खाओ पणपण्णं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया होत्था। मल्लिस्स णं अरहओ सावयाणं एगा सयसाहस्सीओ चुलसीइं च सहस्सा उक्कोसिया सावया होत्था। मल्लिस्स णं अरहओ सावियाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ पण्णट्ठिं च सहस्सा संपया होत्था। मल्लिस्स णं अरहओ छस्सया चोद्दसपुव्वीणं, वीससया ओहिनाणीणं, बत्तीसं सया केवलणाणीणं, पणतीसं सया वेउव्वियाणं, अट्ठसया मणपज्जवणाणीणं, चोद्दससया वाईणं, वीसं सया अणुत्तरोववाइयाणं (संपया होत्था)।

मल्ली अरहन्त के भिषक (या किंशुक) आदि अट्ठाईस गण और



अट्ठाईस गणधर थे। मल्ली अरहन्त की चालीस हजार साधुओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी। बंधुमती आदि पचपन हजार आर्यिकाओं की सम्पदा थी। मल्ली अरहंत की एक लाख चौरासी हजार श्रावकों की उत्कृष्ट संपदा थी। मल्ली अरहंत की तीन लाख पैंसठ हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी। मल्ली अरहंत की छहसौ चौदहपूर्वी साधुओं की, दो हजार अवधिज्ञानी, बत्तीस सौ केवलज्ञानी, पैंतीस सौ वैक्रियलब्धिधारी, आठ सौ मनःपर्यायज्ञानी, चौदह सौ वादी और बीस सौ अनुत्तरौपपातिक (सर्वार्थसिद्ध विमान मे जाकर फिर एक भव लेकर मोक्ष जाने वाले) साधुओं की संपदा थी।

मल्लिस्स अरहओ दुविहा अंतगडभूमी होत्था। तंजहा–जुगंतकरभूमी, परियायंतकरभूमी य। जाव वीसइमाओ पुरिसजुगाओ जुयंतकरभूमी, दुवासपरियाए अंतमकासी।

मल्ली अरहंत के तीर्थ मे दो प्रकार की अन्त–कर भूमि हुई। वह इस प्रकार–युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि। इनमें से शिष्य–प्रशिष्य आदि बीस पुरुषों रूप युगों तक अर्थात् बीसवें पाट तक युगांतकर भूमि हुई, अर्थात् बीस पाट तक साधुओं ने मुक्ति प्राप्त की। (बीसवे पाट के पश्चात् उनके तीर्थ में किसी ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया।) और दो वर्ष का पर्याय होने पर अर्थात् मल्ली अरहंत को केवलज्ञान प्राप्त किये दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर पर्यायान्तकरभूमि हुई–भवपर्याय का अन्त करने वाले–मोक्ष जाने वाले साधु हुए। (इससे पहले कोई जीव मोक्ष नहीं गया।)

मल्ली णं अरहा पणुवीसं धणूणि उड्ढं उच्चत्तेणं, वण्णेणं पियंगुसमे, समचउरंससंठाणे, वज्जरिसभनारायसंघयणे, मज्झदेसे सुहं सुहेणं विहरित्ता जेणेव संमेए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता संमेयसेलसिहरे पाओवगमणमणुववन्ने।

मल्ली अरहंत पच्चीस धनुष ऊँचे थे। उनके शरीर का वर्ण प्रियंगु के समान था। समचतुरस्र संस्थान और वज्रऋषभनाराच संहनन था। वह मध्यदेश में सुखे–सुखे विचर कर जहाँ सम्मेदशिखर पर्वत था, वहाँ आये आकर उन्होंने सम्मेदशैल के शिखर पर पादोपगमन अनशन अंगीकार कर लिया।

मल्ली णं एगं वाससयं आगारवासमज्झे पणपण्णं वाससहस्साइं वाससयऊणाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता पणपण्णं वाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे, तस्स

नवम माकन्दी अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—हे भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाण को प्राप्त भगवान् महावीर ने आठवें ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो हे भगवन् ! नौवे ज्ञात-अध्ययन का श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने क्या अर्थ प्ररूपण किया है ?

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं चंपा नामं नयरी होत्था। तीसे णं चंपाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था।

तत्थ णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था।

श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरी में कोणिक राजा था।

उस चम्पा नगरी के बाहर उत्तरपूर्व-ईशान-दिक्कोण में पूर्णभद्र नामक चैत्य था।

तत्थ णं माकंदी नामं सत्थवाहे परिवसइ, अड्ढे। तस्स णं भद्दा नामं भारिया होत्था। तीसे णं भद्दाए भारियाए अत्तया दुवे सत्थवाहदारया होत्था। तंजहा—जिणपालिए य जिणरक्खिए य। तए णं तेसिं मागंदियदारगाणं अण्णया कयाई एगयओ इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—

उस चम्पा नगरी में माकंदी नामक सार्थवाह निवास करता था। वह यावत् समृद्धिशाली था। उसकी भद्रा नामक भार्या थी। उस भद्रा भार्या के आत्मज (कूंख से उत्पन्न) दो सार्थवाहपुत्र थे। उनके नाम इस प्रकार थे—

जिनपालित और जिनरक्षित। तत्पश्चात् वे दोनों माकंदीपुत्र एक बार किसी समय इकट्ठे हुए तो उनमें आपस में इस प्रकार कथासमुल्लाप (वार्तालाप) हुआः—

'एवं खलु अम्हे लवणसमुद्दं पोयवहणेणं एक्कारस वारा ओगाढा, सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! दुवालसमं पि लवण-समुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए।' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्सेयमट्ठं पडि-सुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छंति, उवा-गच्छित्ता एवं वयासीः—

'हम लोगों ने पोतवहन (जहाज) से लवणसमुद्र को ग्यारह वार अवगाहन किया है। सभी वार हम लोगों ने अर्थ (धन) की प्राप्ति की, करने योग्य कार्य किये और फिर शीघ्र बिना विघ्न के अपने घर आ गये। तो हे देवानुप्रिय! बारहवी बार भी पोतवहन से लवण समुद्र में अवगाहन करना हमारे लिए अच्छा रहेगा।' इस प्रकार विचार करके उन्होंने परस्पर इस अर्थ (विचार) को स्वीकार किया। स्वीकार करके जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आये और आकर इस प्रकार वोलेः—

'एवं खलु अम्हे अम्मयाओ! एक्कारस वारा तं चेव जाव नियगं घरं हव्वमागया, तं इच्छामो णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा दुवालसमं लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए।'

तए णं ते मागंदियदारए अम्मापियरो एवं वयासी—'इमे ते जाया! अज्जग० जाव परिभाएत्तए, तं अणुहोह ताव जाया! विउले माणुस्सए इड्ढीसक्कारसमुदए। किं भे सपच्चवाएणं निरालंबणेणं लवणसमुद्दोत्तारेणं? एवं खलु पुत्ता! दुवालसमी जत्ता सोवसग्गा यावि भवइ। तं मा णं तुब्भे दुवे पुत्ता! दुवालसमं पि लवणसमुद्दं जाव ओगाहेह, मा हु तुब्भं सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने उन माकंदीपुत्रों से इस प्रकार कहा-हे पुत्रों! यह तुम्हारे बाप-दादा आदि के द्वारा उपार्जित प्रचुर धन है, जो यावत् भोगने एवं बँटवारा करने के लिए पर्याप्त है। अतएव पुत्रो! मनुष्य संबंधी विपुल



ऋद्धि-सत्कार के समुदाय वाले भोगों को भोगो। विघ्न-बाधाओं से युक्त और जिसमें कोई आलंबन नहीं, ऐसे लवणसमुद्र में उतरने से क्या लाभ है? हे पुत्रो! बारहवीं (बार की) यात्रा सोपसर्ग (कष्टकारी) भी होती है। अतएव हे पुत्रो! तुम दोनो बारहवीं बार लवणसमुद्र में प्रवेश मत करो, जिससे तुम्हारे शरीर को व्यापत्ति (विनाश या पीड़ा) न हो।

तए णं मागंदियदारगा अम्मापियरो दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—'एवं खलु अम्हे अम्मयाओ! एक्कारस वारा लवणसमुद्दं ओगाहित्तए।'

तत्पश्चात् माकंदीपुत्रो ने माता-पिता से दूसरो बार और तीसरी बार इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता! हमने ग्यारह बार लवणसमुद्र में प्रवेश किया है, बारहवीं बार प्रवेश करने की हमारी इच्छा है।' इत्यादि।

तए णं ते मागंदीदारए अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा, ताहे अकामा चेव एयमट्ठं अणुजाणित्था।

तत्पश्चात् माता-पिता जब उन माकंदीपुत्रों को सामान्य कथन और विशेष कथन के द्वारा, सामान्य या विशेष रूप से समझाने में समर्थ न हुए; तब इच्छा न होने पर भी उन्होंने उस बात की अनुमति दे दी।

तए णं ते मागंदियदारगा अम्मापिऊहिं अब्भणुण्णाया समाणा गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च जहा अरहण्णगस्स जाव लवणसमुद्दं बहूइं जोयणसयाइं ओगाढा। तए णं तेसिं मागंदियदारगाणं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं अणेगाइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं।

तत्पश्चात् वे माता-पिता की अनुमति पाये हुए माकंदीपुत्र, गलिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य—चार प्रकार का माल जहाज में भर कर अर्हन्नक की भांति लवणसमुद्र में अनेक सैकड़ों योजन तक चले गये। तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रों के अनेक सैकड़ों योजन तक अवगाहन कर जाने पर सैकड़ों उत्पात (उपद्रव) उत्पन्न हुए।

तं जहा—अकाले गज्जियं जाव थणियसद्दे कालियवाए तत्थ समुट्ठिए।

वह उत्पात इस प्रकार थे—अकाल में गर्जना होने लगी, यावत् अकाल में स्तनित शब्द (गहरी गर्जना की ध्वनि) होने लगी। प्रतिकूल तेज हवा चलने लगी।

तए णं सा णावा तेणं कालियवाएणं आहुणिज्जमाणी आहुणिज्जमाणी संचालिज्जमाणी संचालिज्जमाणी संखोभिज्जमाणी संखोभिज्जमाणी सलिलतिक्खवेगेहिं आयट्टिज्जमाणी आयट्टिज्जमाणी कोट्टिमंसि करतलाहते विव तेंदूसए तत्थेव तत्थेव ओवयमाणी य उप्पयमाणी य, उप्पयमाणीविव धरणीयलाओ सिद्धविज्जाविज्जाहरकन्नगा, ओवयमाणीविव गगणतलाओ भट्ठविज्जा विज्जाहरकन्नगा, विपलायमाणीविव महागरुलवेगवित्तासिया भुयगवरकन्नगा, धावमाणीविव महाजणरसियसद्दवित्तत्था ठाणभट्ठा आसकिसोरी, णिगुंजमाणीविव गुरुजणदिट्ठावराहा सुयणकुलकन्नगा, घुम्ममाणीविव वीचीपहारसततालिया, गलियलंबणाविव गगणतलाओ, रोयमाणीविव सलिलगंठिविप्पइरमाणघोरंसुवाएहिं णववहू उवरतभत्तुया, विलवमाणीविव परचक्करायाभिरोहिया परममहब्भयाभिद्दुया महापुरवरी, झायमाणीविव कवडच्छोमप्पओगजुत्ता जोगपरिव्वाइया, णिसासमाणीविव महाकंतारविणिग्गयपरिस्संता परिणयवया अम्मया, सोयमाणीविव तवचरणखीणपरिभोगा चयणकाले देववरवहू, संचुण्णियकट्ठकूवरा, भग्गमेढिमोडियसहस्समाला, सूलाइयवंकपरिमासा, फलहंतरतडतडेंतफुट्टंतसंधिवियलंतलोहकीलिया, सव्वंगवियंभिया, परिसडियरज्जुविसरंतसव्वगत्ता, आमगमल्लगभूया, अकयपुण्णजणमणोरहो विव चिंतिज्जमाणगुरूई, हाहाकयकण्णधारनावियवाणियगजणकम्मगारविलविया, णाणाविहरयणपणियसंपुण्णा, बहूहिं पुरिससएहिं रोयमाणेहि कंदमाणेहिं सोयमाणेहिं तिप्पमाणेहिं विलवमाणेहिं एगं महं अंतोजलगयं गिरिसिहरमासायइत्ता संभग्गकूवतोरणा मोडियझयदंडा वलयसयखंडिया करकरस्स तत्थेव विद्दवं उवगया।

तत्पश्चात वह नौका (पोतवहन) प्रतिकूल तूफानी वायु से बार-बार

काँपने लगी, बार-बार एक जगह से दूसरी जगह चलायमान होने लगी, बार बार संक्षुब्ध होने लगी-नीचे डूबने लगी, जल के तीक्ष्ण वेग से बार-बार टकराने लगी, हाथ से भूतल पर पछाड़ी हुई गेंद के समान जगह-जगह नीची ऊँची होने लगी। जिसे विद्या सिद्ध हुई है ऐसी विद्याधर-कन्या जैसे पृथ्वीतल से ऊपर उछलती है उसी प्रकार वह ऊपर उछलने लगी और विद्या से भ्रष्ट विद्याधर-कन्या जैसे आकाशतल से नीचे गिरती है, उसी प्रकार वह नौका भी नीचे गिरने लगी। जैसे महान् गरुड़ के वेग से त्रास पाई नाग की उत्तम कन्या भय की मारी भागती है, उसी प्रकार वह भी इधर-उधर दौड़ने लगी। जैसे अपने स्थान से बिछुड़ी हुई बछेरी बहुत लोगों के (बड़ी भीड़ के) कोलाहल से त्रस्त होकर इधर-उधर भागती है, उसी प्रकार वह भी इधर-उधर दौड़ने लगी। माता-पिता के द्वारा जिसका अपराध (दुराचार) जान लिया गया है, ऐसी सज्जन-पुरुष के कुल की कन्या के समान नीचे नमने लगी। तरंगों के सैकड़ों प्रहारो से ताड़ित होकर वह थरथराने लगी। जैसे बिना आलंबन की वस्तु आकाश से नीचे गिरती है, उसी प्रकार वह नौका भी नीचे गिरने लगी। जिसका पति मर गया हो ऐसी नवविवाहिता वधू जैसें आँसू बहाती है, उसी प्रकार पानी से भींगी ग्रन्थियों (जोड़ों) में से झरने वाली जलधारा के कारण वह नौका भी अश्रुपात-सा करती प्रतीत होने लगी। पर चक्री (शत्रु) राजा के द्वारा अवरुद्ध (घिरी हुई) और इस कारण घोर महा भय से पीड़ित किसी उत्तम महानगरी के समान वह नौका विलाप करती हुई सी प्रतीत होने लगी। कपट (वेषपरिवर्त्तन) से किये प्रयोग (परवंचना रूप व्यापार) से युक्त, योग साधने वाली परिव्राजिका जैसे ध्यान करती है, उसी प्रकार वह भी कभी-कभी स्थिर हो जाने के कारण ध्यान करती-सी जान पड़ती थी। किसी बड़े जंगल में से चल कर निकली हुई और थकी हुई बड़ी उम्र वाली माता (पुत्रवती स्त्री) जैसे हाँफती है, उसी प्रकार वह नौका भी निश्वास-से छोड़ने लगी, या नौकारूढ़ लोगों के निश्वास के कारण नौका भी निश्वास छोड़ती-सी दिखाई देने लगी। तपश्चरण के फल स्वरूप प्राप्त स्वर्ग के भोग क्षीण होने पर जैसे श्रेष्ठ देवी अपने च्यवन के समय शोक करती है, उसी प्रकार वह नौका भी शोक-सा करने लगी, अर्थात् नौका पर सवार लोग शोक करने लगे। उसके काष्ठ और मुखभाग चूर-चूर हो गये। उसकी मेढ़ी[१] भंग हो गई और माल[२] सहसा मुड़ गई, या सहस्रों मनुष्यों की आधार भूत माल मुड़ गई। वह नौका पर्वत के शिखर पर चढ़ जाने के कारण ऐसी मालूम होने लगी मानो शूली पर चढ़ गई हो। उसे जल का स्पर्श

१-एक बडा और मोटा लट्ठा, जो सब पटियों का आधार होता है।

२-मनुष्यों के बैठने का ऊपरी भाग।

वक्र (वांका) होने लगा, अर्थात् नौका वांकी हो गई। एक दूसरे के साथ जुड़े पाटियो मे तड़--तड़ शब्द होने लगा, उनके जोड़ टूटने लगे, लोहे की कीलें निकल गईं, उसके सब भाग अलग-अलग हो गये। उसके पटियो के साथ बँधी रस्सियाँ गीली होकर (गल कर) टूट गईं, अतएव उसके सब हिस्से बिखर गये। वह कच्चे सिकोरे जैसी हो गई-पानी में विलीन हो गई। अभागे मनुष्य के मनोरथ के समान वह अत्यन्त चिन्तनीय हो गई। नौका पर आरूढ़ कर्णधार, मल्लाह, वणिक और कर्मचारी हाय--हाय करके विलाप करने लगे। वह नाना प्रकार के रत्नों और मालों से भरी हुई थी। इस विपदा के समय सैकड़ो मनुष्य रुदन करने लगे-रुदन शब्द के साथ अश्रुपात करने लगे, आक्रन्दन करने लगे, शोक करने लगे, भय के कारण उनका पसीना झरने लगा, वे विलाप करने लगे, अर्थात् आर्त्तध्वनि करने लगे। उसी समय जल के भीतर विद्यमान एक वड़े पर्वत के शिखर के साथ टकरा कर नौका का मस्तूल और तोरण भग्न हो गया और ध्वजदंड मुड़ गया। नौका के वलय जैसे सैकड़ो टुकड़े हो गये । वह नौका 'कड़ाक' का शब्द करके उसी जगह नष्ट हो गई, अर्थात् डूब गई।

तए णं तीए णावाए भिज्जमाणीए वहवे पुरिसा विपुलपडियभंड-मायाए अंतोजलम्मि णिमज्जा यावि होत्था। तए णं मागंदियदारगा छेया दक्खा पत्तट्ठा कुसला मेहावी निउणसिप्पोवगया वहुसु पोतवहण-संपराएसु कयकरणा लद्धविजया अमूढा अमूढहत्था एगं महं फलग-खंडं आसादेंति ।

तत्पश्चात् उस नौका के भग्न होकर डूब जाने पर बहुत-से लोग बहुत-से रत्नों, भांडो और माल के साथ जल में डूब गये। दोनों माकन्दीपुत्र चतुर, दक्ष, अर्थ को प्राप्त, कुशल, बुद्धिमान्, निपुण, शिल्प को प्राप्त, बहुत-से पोत वहन के युद्ध जैसे खतरनाक कार्यों में कृतार्थ, विजयी, मूढ़तारहित और फुर्तीले थे। अतएव उन्होंने एक वड़ा-सा पट्टिया का टुकड़ा पा लिया।

जंसि च णं पदेसंसि से पोयवहणे विवन्ने, तंसि च णं पदेसंसि एगे महं रयणदीवे णामं दीवे होत्था। अणेगाइं जोअणाइं आया-मविक्खंभेणं, अणेगाइं जोअणाइं परिक्खेवेणं, नानादुमखंडमंडिउद्देसे सस्सिरीए पासाईए दंसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए तत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए होत्था-

अब्भुग्गयमूसियए जाव सस्सिरीभूयरूवे पासाईए दंसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

जिस प्रदेश में वह पोतवहन नष्ट हुआ था, उसी प्रदेश में-उसके पास ही, एक रत्नद्वीप नामक बड़ा द्वीप था। वह अनेक योजन लम्बा-चौड़ा और अनेक योजन के घेरे वाला था। उसके प्रदेश अनेक प्रकार के वृत्तों के वनों से मंडित थे। वह द्वीप सुन्दर सुषमा वाला प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, दर्शनीय, मनोहर और प्रतिरूप था अर्थात् दर्शकों को नये-नये रूप में दिखाई देता था।

उस द्वीप के एकदम मध्यभाग में एक उत्तम प्रासाद था। उसकी ऊँचाई प्रकट थी-वह बहुत ऊँचा था। वह भी सश्रीक, प्रसन्नताप्रदायी दर्शनीय, मनोहर रूप वाला और प्रतिरूप था।

तत्थ णं पासायवडेंसए रयणद्दीवदेवया नामं देवया परिवसइ-पावा, चंडा, रुद्दा, खुद्दा, साहसिया।

तस्स णं पासायवडेंसयस्स चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा किण्हा, किण्होभासा।

उस उत्तम प्रासाद में रत्नद्वीपदेवता नाम की एक देवी रहती थी। वह पापिनी, चंडा-अति पापिनी, भयंकर, तुच्छ स्वभाव वाली और साहसिक थी। (इस देवी के शेष विशेषण विजय चोर के समान जान लेने चाहिए।)

उस उत्तम प्रासाद की चारों दिशाओं में चार वनखंड थे। वे श्याम वर्ण वाले और श्याम कान्ति वाले थे (यहाँ वनखण्ड के अन्य विशेषण जान लेना चाहिए।)

तए णं ते मागंदियदारग तेणं फलयखंडेणं उवुज्झमाणा उवुज्झमाणा रयणदीवंतेणं संवूढा यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे दोनों माकन्दीपुत्र (जिनपालित और जिनरक्षित) पटिया के सहारे तिरते-तिरते रत्नद्वीप के समीप आ पहुंचे।

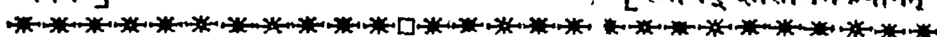
तए णं ते मांगदियदारगा थाहं लभंति, लभित्ता मुहुत्तंतरं आससंति, आससित्ता फलगखंडं विसज्जेंति, विसज्जित्ता रयणद्दीवं उत्तरंति, उत्तरित्ता फलाणं मग्गणगवेसणं करेंति, करित्ता फलाइं गेण्हंति, गेण्हित्ता आहारेंति, आहारित्ता णालिएराणं मग्गणगवेसणं करेंति,

करित्ता नालिएराइं फोडेंति, फोडित्ता नालिएरतेल्लेणं अण्णमण्णस्स गत्ताइं अब्भंगंति, अब्भंगित्ता पोक्खरणीओ ओगाहिंति, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेंति, करित्ता जाव पच्चुत्तरंति, पच्चुत्तरित्ता पुढविसिला-पट्टयंसि निसीयंति, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया चंपा-नयरिं अम्मापिउआपुच्छणं च लवणसमुद्दोत्तारं च कालियवायसमुत्थणं च पोयवहणविवत्तिं च फलयखंडस्स आसायणं च रयणदीवुत्तारं च अणुचिंतेमाणा अणुचिंतेमाणा ओहयमणसंकप्पा जाव झियाएंति ।

तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रों को थाह मिली । थाह पाकर उन्होंने घड़ी भर विश्राम किया । विश्राम करके पटिया के टुकड़े को छोड़ दिया । छोड़ कर रत्न-द्वीप में उतरे । उतर कर फलों की मार्गणा-गवेषणा (खोज-ढूँढ़) की । फिर फलों को ग्रहण किया । ग्रहण करके फल खाये । खाकर नारियलों की मार्गणा-गवेषणा की । नारियल फोड़े । फिर उनके तेल से दोनों ने आपस में मालिश की । मालिश करके वावड़ी में प्रवेश किया । प्रवेश करके स्नान किया । स्नान करके वावड़ी से बाहर निकले । एक पृथ्वी-शिला रूप पाट पर बैठे । बैठ कर शान्त हुए, विश्राम लिया और श्रेष्ठ सुखासन पर आसीन हुए । वहाँ बैठे-बैठे चम्पा नगरी, माता-पिता से आज्ञा लेना, लवणसमुद्र में उतरना, तूफानी वायु का उत्पन्न होना, नौका का भग्न होकर डूब जाना, पटिया का टुकड़ा मिल जाना और अन्त में रत्न द्वीप में आना, इन सब बातों का वार-वार बिचार करते हुए भग्नमनः-संकल्प होकर चिन्ता में डूब गये ।

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदियदारए ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता असिफलगवग्गहत्था सत्तट्ठतालप्पमाणं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीइवयमाणी वीइवयमाणी जेणेव मागंदियदारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आसुरुत्ता मागं-दियदारए खरफरुसनिट्ठुरवयणेहिं एवं वयासीः—

तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकंदी पुत्रों को अवधिज्ञान से देखा । देख कर उसने हाथ मे ढाल और तलवार ली । सात-आठ ताड़ जितनी ऊँचाई पर आकाश में उड़ी । उड़ कर उत्कृष्ट यावत् देवगति से चलती-चलती जहाँ माकंदीपुत्र थे, वहाँ आई । आकर तत्काल कुपित हुई और माकंदी पुत्रों को तीखे, कठोर और निष्ठुर वचनों से इस प्रकार कहने लगीः—



'हं भो मागंदियदारगा ! अप्पत्थियपत्थिया ! जइ णं तुब्भे मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरह, तो भे अत्थि जीवियं, अहण्णं तुब्भे मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा नो विहरह, तो भे इमेणं नीलुप्पलगवलगुलिय जाव खुरधारेणं असिणा रत्तगंड-मंसुयाइं माउयाहिं उवसोहियाइं तालफलाणीव सीसाइं एगंते एडेमि ।'

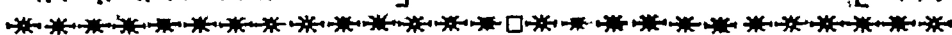
'अरे माकंदी के पुत्रो ! अप्रार्थित (मौत) की इच्छा करने वालो ! यदि तुम मेरे साथ विपुल कामभोग भोगते हुए रहोगे तो तुम्हारा जीवन है-तुम जीते बचोगे, और यदि तुम मेरे साथ विपुल कामभोग भोगते हुए नहीं रहोगे तो इस नील कमल, भैंस के सींग और नील द्रव्य की गुटिका (गोली) के समान काली और छुरे की धार के समान तीखी तलवार से तुम्हारे इन मस्तकों को ताड़फल की तरह काट कर एकान्त में डाल दूंगी, जो गंडस्थलों को और दाढ़ी-मूछों को लाल करने वाले हैं और मूछों से सुशोभित हैं, अथवा जो माता आदि के द्वारा सँवार कर सुशोभित किये हुए केशों से शोभायमान हैं ।'

तए णं ते मागंदियदारगा रयणदीवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म भीया संजायभया करयल जाव एवं वयासी—जं णं देवाणुप्पिया वइस्ससि तस्स आणाउववायवयणनिद्देसे चिट्ठिस्सामो ।

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र रत्नद्वीप की देवी से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके भयभीत हुए। उन्हें भय उत्पन्न हुआ । उन्होंने दोनो हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिया जो कहेगी, हम आपकी आज्ञा, उपपात सेवा, वचन-आदेश और निर्देश (कार्य करने) में तत्पर रहेंगे ।' अर्थात् आपके सभी आदेशों का पालन करेंगे ।

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदियदारए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असुभपुग्गला-वहारं करेइ, करित्ता सुभपोग्गलपक्खेवं करेइ, करित्ता पच्छा तेहिं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ । कल्लाकल्लिं च अमयफलाइं उवणेइ ।

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने उन माकन्दी के पुत्रों को ग्रहण किया । ग्रहण करके जहाँ अपना उत्तम प्रासाद था, वहाँ आई । आकर अशुभ पुद्गलों को दूर किया और शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण किया और फिर उनके साथ विपुल



काम-भोगों का सेवन करने लगी। प्रतिदिन उनके लिए अमृत जैसे मधुर फल लाने लगी।

तए णं सो रयणद्दीवदेवया सक्कवयणसंदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा लवणसमुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टियव्वे त्ति जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइं पूइयं दुरभिगंधमचोक्खं तं सव्वं आहुणिय आहुणिय तिसत्तखुत्तो एगंते एडेयव्वं ति कट्टु णिउत्ता।

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की उस देवी को शक्रेन्द्र के वचन-आदेश से, सुस्थित नामक लवणसमुद्र के अधिपति देव ने कहा-'तुम्हे इक्कीस बार लवणसमुद्र का चक्कर काटना है। वह इसलिए कि वहाँ जो कुछ भी तृण (घास) पत्ता, काष्ठ, कचरा, अशुचि (अपवित्र वस्तु), सड़ी-गली वस्तु या दुर्गंधित वस्तु आदि गंदी चीज़ हो, वह सब इक्कीस बार हिला-हिला कर, समुद्र से निकाल कर एक तरफ डाल देना।' इस प्रकार कह कर उस देवी को समुद्र की सफाई के कार्य मे नियुक्त किया।

तए णं सा रयणद्दीवदेवया ते मागंदियदारए एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! सक्कवयणसंदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा तं चेव जाव णिउत्ता। तं जाव अहं देवाणुप्पिया! लवणसमुद्दे जाव एडेमि जाव तुब्भे इहेव पासायवडिंसए सुहंसुहेणं अभिरममाणा चिट्ठह। जइ णं तुब्भे एयंसि अंतरंसि उव्विग्गा वा, उस्सुया वा, उप्पुया वा भवेज्जाह, तो णं तुब्भे पुरच्छिमिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह।

तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकन्दीपुत्रों से कहा-'हे देवानुप्रियो! मैं शक्रेन्द्र के वचनादेश (आज्ञा) से, सुस्थित नामक लवणसमुद्र के अधिपति देव द्वारा यावत् (पूर्वोक्त प्रकार से सफाई के कार्य में) नियुक्त की गई हूं। सो हे देवानुप्रियो! मैं जब तक लवणसमुद्र में से यावत् कचरा आदि दूर करने जाऊँ, तब तक तुम इसी उत्तम प्रसाद में आनन्द के साथ रमण करते हुए रहना। यदि तुम इस बीच मे ऊब जाओ, उत्सुक होओ, या कोई उपद्रव हो, तो तुम पूर्वदिशा के वनखण्ड में चले जाना।

तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा, तंजहा-पाउसे य वासारत्ते य। तत्थ उ—

कंदलसिलिंधदंतो णिउरवरपुप्फपीवरकरो,
कुडयज्जुणणीवसुरभिदाणो, पाउसउउगयवरो साहीणो ॥ १ ॥

तत्थ य—

सुरगोवमणिविचित्तो, दरदुदुकुलरसियउज्झररवो ।
बरहिणविंदपरिणद्धसिहरो, वासाउउपव्वतो साहीणो ॥ २ ॥

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बहुसु वावीसु य जाव सरसरपंतियासु बहुसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य जाव कुसुमघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा विहरेज्जाह ।

उस पूर्वदिशा के वनखण्ड में दो ऋतुएँ सदा स्वाधीन हैं–विद्यमान रहती हैं । वे यह हैं–प्रावृष् ऋतु अर्थात् आषाढ़ और श्रावण का मौसिम तथा वर्षारात्र अर्थात् भाद्रपद और आश्विन का मौसिम । उनमें से–(उस वनखण्ड में सदैव) प्रावृष ऋतु रूपी हाथी स्वाधीन है । कंदल–नवीन लताएँ और सिलिंध्र–भूमिफोड़ा उस प्रावृष्–हाथी के दांत हैं । निउर नामक वृक्ष के उत्तम पुष्प ही उसकी उत्तम सूंड़ है । कुटज, अर्जुन और नीप वृक्षों के पुष्प ही उसका सुगंधित मद–जल है । (यह सब वृक्ष प्रावृष् ऋतु में फूलते हैं, किन्तु उस वनखण्ड में सदैव फूले रहते हैं । इस कारण प्रावृष् को वहाँ सदा स्वाधीन कहा है ।) और–उस वनखण्ड में वर्षाऋतु रूपी पर्वत भी सदा स्वाधीन-विद्यमान रहता है, क्योंकि वह इन्द्र गोप (सावन की डोकरी) रूपी पद्मराग आदि मणियों से विचित्र वर्ण वाला रहता है, और उसमें मेंढकों के समूह के शब्द रूपी झरने की ध्वनि होती रहती है । वहाँ मयूरों के समूह सदैव शिखरों पर विचरते रहते हैं ।

हे देवानुप्रियो ! उस पूर्व दिशा के उद्यान में तुम बहुतसी बावड़ियों में, यावत् बहुत–सी सरोवरों की श्रेणियों में, बहुत–से लतामण्डपों में, वल्लियों के मंडपों में यावत् बहुत–से पुष्पमंडपों में सुखे–सुखे रमण करते हुए समय व्यतीत करना ।

जइ णं तुब्भे एत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे उत्तरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह । तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा, तंजहा-सरदो य हेमंतो य ।

तत्थ उ—

सणसत्तवण्णकउओ, नीलुप्पलपउमनलिणसिंगो ।
सारसचक्कवायरवितघोसो, सरयउऊगोवती साहीणो ॥ १ ॥

तत्थ य—

सियकुंदधवलजोण्हो, कुसुमितलोद्धवणसंडमंडलतलो ।
तुसारदगधारपीवरकरो, हेमंतउऊ-ससी सया साहीणो ॥ २ ॥

अगर तुम वहाँ भी ऊब जाओ, उत्सुक हो जाओ या कोई उपद्रव हो जाय–भय हो जाय, तो तुम उत्तर दिशा के वनखण्ड मे चले जाना । वहाँ दो ऋतुएँ सदा स्वाधीन हैं । वे यह हैं—शरद् और हेमन्त । उनमें से शरद् (कार्तिक और मार्ग शीर्ष) इस प्रकार है:—

शरद ऋतु रूपी गोपति–वृषभ सदा स्वाधीन है । सन और सप्तच्छद वृक्षों के पुष्प उसका ककुद (कांधला) है, नीलोत्पल पद्म और नलिन उसके सींग हैं, सारस और चक्रवाक पक्षियों का कूजन ही उसका घोष (दलांक) है । उसमें-हेमन्तऋतु रूपी चन्द्रमा उस वन में सदा स्वाधीन है । श्वेत कुन्द के फूल उसकी धवल ज्योत्स्ना—चांदनी है । प्रफुल्लित लोध्र वाला वनप्रदेश उसका मंडलतल (बिम्ब) है और तुषार के जलबिन्दु की धाराएँ उसकी स्थूल किरणें हैं ।

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! वावीसु य जाव विहराहि ।

हे देवानुप्रियो ! तुम उत्तर दिशा के उस वनखण्ड में यावत् क्रीड़ा करना ।

जइ णं तुब्भे तत्थ वि उव्विग्गा वा जाव उस्सुया वा भवेज्जाह, तो णं तुब्भे अवरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह । तत्थ णं दो उऊ साहीणा, तंजहा–वसंते य गिम्हे य । तत्थ उ—

सहकारचारुहारो, किंसुयकण्णियारासोगमउडो ।
उसियतिलगबउलायवत्तो, वसंतउऊणरवई साहीणो ॥ १ ॥

तत्थ य—

पाडलसिरीससलिलो, मलियावासंतियधवलवेलो ।
सीयलसुरभिअनलमगरचरिओ, गिम्हउऊसागरो साहीणो ॥ २ ॥

यदि तुम उत्तर दिशा के वनखण्ड में भी उद्विग्न हो जाओ, यावत्

तत्पश्चात् वे माकन्दीपुत्र देवी के चले जाने पर एक मुहूर्त में ही (थोड़ी ही देर में) उस उत्तम प्रासाद में सुखद स्मृति, रति और धृति नहीं पाते हुए आपस मे इस प्रकार कहने लगे–'देवानुप्रिय ! रत्नद्वीप की देवी ने हमसे इस प्रकार कहा है कि–शक्रेन्द्र के वचनादेश से लवणसमुद्र के अधिपति देव सुस्थित ने मुझे यह कार्य सौंपा है, यावत् तुम दक्षिण दिशा के वनखण्ड मे मत जाना, ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय।' तो हे देवानुप्रिय ! हमें पूर्व दिशा के वनखण्ड मे चलना चाहिए।' दोनों भाइयों ने आपस के इस विचार को अंगीकार किया। वे पूर्व दिशा के वनखण्ड में आये। आकर उस वन के अंदर बावड़ी आदि में यावत् क्रीड़ा करते हुए वल्ली मंडप आदि में यावत् विहार करने लगे।

तए णं ते मागंदियदारगा तत्थ वि सइं वा जाव अलभमाणा जेणेव उत्तरिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तत्थ णं वावीसु य जाव आलीघरएसु य विहरंति।

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र वहाँ भी सुखद स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए उत्तर दिशा के वनखण्ड में गये। वहाँ जाकर बावड़ियों में यावत् वल्लीमंडपों में विहार करने लगे।

तए णं ते मागंदियदारया तत्थ वि सइं वा जाव अलभमाणा जेणेव पच्चत्थमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जाव विहरंति।

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र वहाँ भी सुखद स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए पश्चिम दिशा के वनखण्ड में गये। जाकर यावत् विहार करने लगे।

तए णं ते मागंदियदारया तत्थ वि सइं वा जाव अलभमाणा अण्णमण्णं एवं वदासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे रयणदीवदेवया एवं वयासी–'एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! सक्कस्स वयणसंदेसेणं सुट्ठिएण लवणाहिवइणा जाव मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ।' तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु अम्हं दक्खिणिल्लं वणसंडं गमित्तए, त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तब वे माकंदीपुत्र वहाँ भी स्मृति यावत् शान्ति न पाते हुए आपस में इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रिय! रत्नद्वीप की देवी ने हमसे ऐसा कहा है कि—'देवानुप्रियो! शक्र के वचनादेश से लवणाधिपति सुस्थित ने मुझे समुद्र की स्वच्छता के कार्य में नियुक्त किया है। यावत् तुम दक्षिण दिशा के वनखण्ड में मत जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय।' तो इसमें कोई कारण होना चाहिए। अतएव हमें दक्षिण दिशा के वनखण्ड में भी जाना चाहिए।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे के इस विचार को स्वीकार किया। स्वीकार करके उन्होंने दक्षिण दिशा के वनखण्ड में जाने का संकल्प किया—रवाना हुए।

तए णं गंधे निद्धाति से जहानामए अहिमडेइ वा जाव अणिट्ठतराए चेव।

तए णं ते मागंदियदारया तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेंति, पिहित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव उवागया।

तत्पश्चात् दक्षिण दिशा से दुर्गंध फूटने लगी, जैसे कोई साँप का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अनिष्ट दुर्गंध आने लगी।

तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रों ने उस अशुभ दुर्गंध से घबरा कर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रों से मुँह ढँक लिये। मुँह ढँक कर वे दक्षिण दिशा के वनखण्ड में पहुँचे।

तत्थ णं महं एगं आवायणं पासंति, पासित्ता अट्ठियरासिसतसंकुलं भीमदरिसणिज्जं एगं च तत्थ सूलाइतयं पुरिसं कलुणाइं विस्सराइं कट्ठाइं कुव्वमाणं पासंति, पासित्ता भीया जाव संजायभया जेणेव से सूलाइयपुरिसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी—'एस णं देवाणुप्पिया! कस्साघायणे? तुमं च णं के कओ वा इहं हव्वमागए? केण वा इमेयारूवं आवइं पाविए?'

वहाँ उन्होंने एक बड़ा वधस्थान देखा। देख कर सैकड़ों हाड़ों के समूह से व्याप्त और देखने में भयंकर उस स्थान पर शूली पर चढ़ाये हुए एक पुरुष को करुण, विरस और कष्टमय शब्द करते देखा। उसे देख कर वे डर गये।

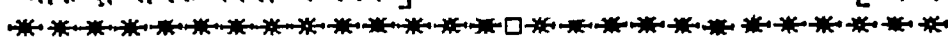
उन्हें बड़ा भय उत्पन्न हुआ। फिर वे, जहाँ शूली पर चढ़ाया पुरुष था, वहाँ पहुँचे और शूली पर चढ़े पुरुष से इस प्रकार बोले-'हे देवानुप्रिय ! यह वधस्थान किसका है ? तुम कौन हो ? किसलिए यहाँ आये थे ? किसने तुम्हे इस विपत्ति को पहुंचाया है ?

तए णं से सूलाइयपुरिसे मागंदियदारए एवं वयासी-'एस णं देवाणुप्पिया ! रयणदीवदेवयाए आघायणे, अहण्णं देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवाओ भारहाओ वासाओ कागंदीए आसवाणियए विपुलं पणियभंडमायाए पोतवहणेणं लवणसमुद्दं ओयाए। तए णं अहं पोयवहणविवत्तीए निब्बुडडभंडसारे एगं फलगखंडं आसाएमि। तए णं अहं उवुज्झमाणे उवुज्झमाणे रयणदीवंतेणं संवूढे। तए णं सा रयणदीवदेवया ममं ओहिणा पासइ, पासित्ता ममं गेण्हइ, गेण्हित्ता मए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। तए णं सा रयणदीवदेवया अन्नया कयाई अहालहुसगंसि अवराहंसि परिकुविया समाणी ममं एयारूवं आवइं पावेइ। तं ण णज्जइ णं देवाणुप्पिया ! तुम्हं पि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सइ ?'

तब शूली पर चढ़े उस पुरुष ने माकन्दीपुत्रों से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियो ! यह रत्नद्वीप की देवी का वधस्थान है। देवानुप्रियो ! जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित काकंदी नगरी का निवासी अश्वों का व्यापारी हूं। मै वहुत-से अश्व और भाण्डोपकरण पोतवहन मे भर कर लवणसमुद्र में चला। तत्पश्चात् पोतवहन के भंग हो जाने से मेरा सब उत्तम भाण्डोपकरण डूब गया। मुझे पटिया का एक टुकड़ा मिल गया। उसी के सहारे तिरता-तिरता मैं रत्नद्वीप के समीप आ पहुँचा। उसी समय रत्नद्वीप की देवी ने मुझे अवधिज्ञान से देखा।' देख कर उसने मुझे ग्रहण कर लिया, वह मेरे साथ विपुल कामभोग भोगने लगी।

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की वह देवी एक बार, किसी समय, एक छोटे-से अपराध पर अत्यन्त कुपित हो गई और उसी ने मुझे इस विपदा में पहुँचाया है। हे देवानुप्रियो ! नही मालूम तुम्हारे इस शरीर को भी कौन-सी आपत्ति प्राप्त होगी ?'

तए णं ते मागंदियदारया तस्स सूलाइयगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म बलियतरं भीया जाव संजातभया सूलाइयं पुरिसं एवं



वयासी–'कहं णं देवाणुप्पिया ! अम्हे रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं णित्थरिज्जामो !'

तत्पश्चात् वह माकन्दीपुत्र शूली पर चढ़े उस पुरुष से यह अर्थ (वृत्तांत) सुन कर और हृदय में धारण करके और अधिक भयभीत हो गए और उनके मन मे भय उत्पन्न हो गया। तब उन्होंने शूली पर चढ़े पुरुष से इस प्रकार कहा–'देवानुप्रिय ! हम लोग रत्नद्वीप की देवता के हाथ से किस प्रकार अपने हाथ से–अपने–आप निस्तार पाएँ–छुटकारा पा सकते हैं ?'

तए णं से सूलाइयए पुरिसे ते मागंदियदारगे एवं वयासी–एस णं देवाणुप्पिया ! पुरच्छिमिल्ले वणसंडे सेलगस्स जक्खस्स जक्खाय-यणे सेलए नामं आसरूवधारी जक्खे परिवसइ।

तए णं से सेलए जक्खे चोद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु आगयसमए पत्तसमए महया महया सद्देणं एवं वदइ–'कं तारयामि ? कं पालयामि ?'

तत्पश्चात् शूली पर चढ़े पुरुष ने उन माकन्दीपुत्रों से कहा–'देवानुप्रियो ! इस पूर्व दिशा के वनखण्ड में शैलक यक्ष का यक्षायतन है। उसमे अश्व का रूप धारण किये शैलक नामक यक्ष निवास करता है।

वह शैलक यक्ष चौदस, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन आगत समय और प्राप्त समय होकर अर्थात एक नियत समय आने पर जोर के शब्द कह कर इस प्रकार बोलता है–'किसको तारूँ ? किसको पालूँ ?'

तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! पुरच्छिमिल्लं वणसंडं सेलगस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणियं करेह, करित्ता जण्णुपायवडिया पंजलि-उडा विणएणं पज्जुवासमाणा चिट्ठह।

जाहे णं से सेलए जक्खे आगयसमए एवं वएज्जा–'कं तारयामि ? कं पालयामि ?' ताहे तुब्भे वदह–'अम्हे तारयाहि, अम्हे पालयाहि।' सेलए भे जक्खे परं रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं णित्थारेज्जा। अण्णहा भे न याणामि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सइ।

तो हे देवानुप्रियो ! तुम लोग पूर्व दिशा के वनखण्ड में जाना और शैलक यक्ष की महान् जनों के योग्य पुष्पों से पूजा करना। पूजा करके घुटने और

पैर नमा कर, दोनों हाथ जोड़ कर, विनय के साथ, उसकी सेवा करते हुए ठहरना।

जब शैलक यक्ष आगत समय और प्राप्त समय होकर—नियत समय आने पर कहे कि—'किसे तारूँ, किसे पालूँ' तब तुम कहना—'हमें तारो, हमें पालो।' इस प्रकार शैलक यक्ष ही केवल रत्नद्वीप की देवी के हाथ से, अपने हाथ से स्वयं तुम्हारा निस्तार करेगा। अन्यथा मैं नहीं जानता कि तुम्हारे इस शरीर को क्या आपत्ति हो जाएगी?'

तए णं ते मागंदियदारगा तस्स सूलाइयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सिग्घं चंडं चवलं तुरियं वेइयं जेणेव पुरच्छिमिल्ले वणसंडे, जेणेव पोक्खरिणी, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोक्खरिणिं गाहंति, गाहित्ता जलमज्जणं करेंति, करित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव सेलगस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेंति, करित्ता महरिहं पुप्फच्चणियं करेंति, करित्ता जण्णुपायवडिया सुस्सूसमाणा णमंसमाणा पज्जुवासंति।

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र शूली पर चढ़े पुरुष से इस अर्थ को सुन कर और मन में धारण करके शीघ्र, प्रचण्ड, चपल, त्वरा वाली और वेगवाली गति से जहाँ पूर्व दिशा का वनखण्ड था और उसमें पुष्करिणी थी, वहाँ आये। आकर पुष्करिणी में प्रवेश किया। प्रवेश करके स्नान किया। स्नान करने के बाद वहाँ जो कमल आदि थे, उन्हें ग्रहण किया। ग्रहण करके शैलक यक्ष के यक्षायतन में आए। यक्ष पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रणाम किया। फिर महान् जनों के योग्य पुष्प-पूजा की। वे घुटने और पैर नमा कर यक्ष की सेवा करते हुए, नमस्कार करते हुए उपासना करने लगे।

तए णं से सेलए जक्खे आगयसमए पत्तसमए एवं वयासी—'कं तारयामि, कं पालयामि?'

तए णं ते मागंदियदारया उट्ठाए उट्ठेंति, करयल जाव एवं वयासी—'अम्हे तारयाहि, अम्हे पालयाहि।'

तए णं से सेलए जक्खे ते मागंदियदारए एवं वयासी—एवं खलु

देवाणुप्पिया ! तुब्भे मए सद्धिं लवणसमुद्देणं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणेणं सा रयणद्दीवदेवया पावा चंडा रूद्दा खुद्दा साहसिया बहूहिं खरएहि य मउएहि य अणुलोमेहि य पडिलोमेहि य सिंगारेहिं य कलुणेहि य उवसग्गेहि य उवसग्गं करेहिइ । तं जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं आढाह वा परियाणह वा अवएक्खह वा तो भे अहं पिट्ठातो विधुणामि। अह णं तुब्भे रयणदीवदेवयाए एयमट्ठं णो आढाह, णो परियाणह, णो अवक्खेह, तो भे रयणदीवदेवयाहत्थाओ साहत्थिं णित्थारेमि ।'

जिसका समय समीप आया है और साक्षात् प्राप्त हुआ है ऐसे शैलक यक्ष ने कहा—'किसे तारूँ, किसे पालूँ ?'

तत्पश्चात् माकंदीपुत्रों ने खड़े होकर और हाथ जोड़ कर कहा—' हमें तारिए, हमें पालिए । '

तब शैलक यक्ष ने माकंदीपुत्रों से कहा—देवानुप्रियो ! तुम मेरे साथ लवण समुद्र के बीचोबीच गमन करोगे, तब वह पापिनी, चण्डा, रुद्रा, क्षुद्रा और साहसिका रत्नद्वीप की देवी तुम्हें कठोर, कोमल, अनुकूल, प्रतिकूल, शृङ्गारमय और मोहजनक उपसर्गों से उपसर्ग करेगी । हे देवानुप्रियो ! अगर तुम रत्नद्वीप की देवी के उस अर्थ का आदर करोगे, उसे अंगीकार करोगे या अपेक्षा करोगे, तो मैं तुम्हें अपनी पीठ से नीचे गिरा दूंगा । और यदि तुम रत्नद्वीप की देवता के उस अर्थ का आदर न करोगे, अंगीकार न करोगे और अपेक्षा न करोगे तो मैं अपने हाथ से, रत्नद्वीप की देवी से तुम्हारा निस्तार कर दूंगा ।

तए णं ते मागंदियदारया सेलगं जक्खं एवं वयासी—जं णं देवाणुप्पिया ! वइस्संति तस्स णं उववायवयणणिद्देसे चिट्ठिस्सामो ।'

तब माकन्दीपुत्रों ने शैलक यक्ष से कहा—'देवानुप्रिय ! आप जो कहेंगे, हम उसके उपपात-सेवन, वचन-आदेश और निर्देश में रहेंगे । अर्थात् हम सेवक की भाँति आपकी आज्ञा का पालन करेंगे ।

तए णं से सेलए जक्खे उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं

जोयणाइं दंडं निस्सरइ, दोच्चं पि तच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता एगं महं आसरूवं विउव्वइ। विउव्वित्ता ते मागंदियदारए एवं वयासी—'हं भो मागंदियदारया ! आरूह णं देवाणुप्पिया ! मम पिट्ठंसि।'

तत्पश्चात् शैलक यक्ष उत्तर पूर्व दिशा में गया। वहाँ जाकर उसने वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात योजन का दंड किया। दूसरी बार और तीसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात से विक्रिया की। समुद्घात करके एक बड़े अश्व के रूप की विक्रिया और फिर माकन्दीपुत्रों से इस प्रकार कहा—हे माकन्दीपुत्रो ! देवानुप्रियो ! मेरी पीठ पर चढ़ जाओ।'

तए णं ते मागंदियदारए हट्ठतुट्ठ सेलगस्स जक्खस्स पणामं करेंति, करित्ता सेलगस्स पिट्ठिं दुरूढा।

तए णं से सेलए ते मागंदियदारए दुरूढे जाणित्ता सत्तट्ठतालप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहायं उप्पयइ, उप्पइत्ता य ताए उक्किट्ठाए तुरियाए देवयाए देवगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव चंपानयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तब माकंदीपुत्रो ने हर्षित और सन्तुष्ट होकर शैलक यक्ष को प्रणाम किया। प्रणाम करके वे शैलक की पीठ पर आरूढ़ हो गये।

तत्पश्चात् अश्वरूपधारी शैलक यक्ष माकंदीपुत्रो को पीठ पर आरूढ़ हुआ जान कर सात–आठ ताड़ के बराबर ऊँचा आकाश में उड़ा। उड़ कर उत्कृष्ट, शीघ्रता वाली देव सबंधी दिव्य गति से लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था, भरत क्षेत्र था और जिधर चम्पा नगरी थी, उसी ओर रवाना हो गया।

तए णं सा रयणदीवदेवया लवणसमुद्दं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टइ, जं तत्थ तणं वा जाव एडेइ, एडित्ता जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते मागंदियदारया पासायवडेंसए अपासमाणी जेणेव पुरच्छिमिल्ले वणसंडे जाव सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ, करित्ता तेसिं मागंदियदारगाणं कत्थइ सुइं वा अलभमाणी जेणेव उत्तरिल्ले वणसंडे, एवं चेव पच्चत्थिमिल्ले वि जाव अपासमाणी ओहिं

पउंजइ, पउंजित्ता ते मागंदियदारए सेलएणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणे वीइवयमाणे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ता असि-खेडगं गेण्हइ, गेण्हित्ता सत्तट्ठ जाव उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए जेणेव मागंदियदारगा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी–

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने लवणसमुद्र के चारों तरफ इक्कीस चक्कर लगा कर, उसमें जो कुछ भी तृण आदि था, वह सब यावत् दूर किया। दूर करके अपने उत्तम प्रासाद में आई। आकर माकंदीपुत्रों को उत्तम प्रासाद में न देख कर पूर्व दिशा के वनखण्ड में गई वहाँ सब जगह उसने मार्गणा-गवेषणा की। गवेषणा करने पर उन माकंदीपुत्रों की कहीं भी श्रुति आदि न पाकी हुई उत्तर दिशा के वनखंड में गई। इसी प्रकार पश्चिम के वनखंड में भी गई, पर वे कहीं दिखाई न दिये। तब उसने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। प्रयोग करके उसने माकंदीपुत्रों को शैलक के साथ लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर चले जाते देखा। देखते ही वह तत्काल क्रुद्ध हुई। उसने ढाल-तलवार ली और सात-आठ ताड़ जितनी ऊँचाई पर आकाश में उड़ कर उत्कृष्ट एवं शीघ्र गति करके जहाँ माकंदीपुत्र थे, वहाँ आई। आकर इस प्रकार कहने लगीः—

'हं भो मागंदियदारगा ! अपत्थियपत्थिया ! किं णं तुब्भे जाणह ममं विप्पजहाय सेलएणं जक्खेणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीई-वयमाणा ? तं एवमवि गए जइ णं तुब्भे ममं अवयक्खह तो भे अत्थि जीवियं, अहण्णं णावयक्खह तो भे इमेण नीलुप्पलगवल जाव एडेमि।

अरे माकंदी के पुत्रो ! अरे मौत की कामना करने वालो ! क्या तुम समझते हो कि मेरा त्याग करके, शैलक यक्ष के साथ, लवण समुद्र के मध्य में होकर तुम चले जाओगे ? इतने चले जाने पर भी (इतना होने पर भी) अगर तुम मेरी अपेक्षा रखते हो तो तुम जीवित रहोगे, और यदि मेरी अपेक्षा न रखते होओ तो इस नील कमल एवं भैंस के सींग जैसी काली तलवार से यावत् तुम्हारा मस्तक काट कर फैंक दूंगी।

तए णं ते मागंदियदारए रयणदीवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अभीया अतत्था अणुव्विग्गा अक्खुभिया असंभंता रयणदीव-देवयाए एयमट्ठं नो आढंति, नो परियाणंति, नो अवयक्खंति, अणा-

ढायमाणा अपरियाणमाणा अणवयक्खमाणा सेलएण जक्खेण सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीइवयंति ।

तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र रत्नद्वीप की देवी के इस कथन को सुन कर और मन मे धारण करके भयभीत नहीं हुए, त्रास को प्राप्त नहीं हुए, उद्विग्न नहीं हुए, संभ्रान्त नहीं हुए। अतएव उन्होंने रत्नद्वीप की देवी के इस अर्थ का आदर नहीं किया, उसे अंगीकार नहीं किया, उसकी पर्वाह नहीं की। वे आदर न करते हुए शैलक यक्ष के साथ लवण समुद्र के मध्य में होकर चले जाने लगे।

तए णं सा रयणद्दीवदेवया ते मागंदिया जाहे नो संचाएइ बहूहिं पडिलोमेहि य उवसग्गेहि य चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा लोभित्तए वा ताहे महुरेहि सिंगारेहि य कलुणेहि य उवसग्गेहि य उवसग्गेउं पयत्ता यावि होत्था—'हं भो मागंदियदारगा ! जइ णं तुब्भेहिं देवाणुप्पिया ! मए सद्धिं हसियाणि य, रमियाणि य, ललियाणि य, कीलियाणि य, हिंडियाणि य, मोहियाणि य, ताहे णं तुब्भे सव्वाइं अगणेमाणा ममं विप्पजहाय सेलएणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीइवयह ?'

तत्पश्चात वह रत्नद्वीप की देवी जब उन माकंदीपुत्रों को बहुत-से प्रतिकूल उपसर्गों द्वारा चलित करने, क्षुब्ध करने, पलटने और लुभाने में समर्थ न हुई, तब अपने मधुर शृङ्गारमय और अनुरागजनक अनुकूल उपसर्गों से उन पर उपसर्ग करने में प्रवृत्त हुई।

देवी कहने लगी—'हे माकंदीपुत्रो ! हे देवानुप्रियो ! तुमने मेरे साथ हास्य किया है, चौपड़ आदि खेल खेले हैं, मनोवांछित क्रीड़ा की है, क्रीडित-झूला आदि झूल कर मनोरंजन किया है, उद्यान आदि में भ्रमण किया है और रतिक्रीड़ा की है, इन सब को कुछ भी न गिनते हुए, मुझे छोड़ कर तुम शैलक यक्ष के साथ लवण समुद्र के मध्य में होकर जा रहे हो ?

तए णं सा रयणदीवदेवया जिणरक्खियस्स मणं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता एवं वयासी—'णिच्चं पि य णं अहं जिनपालियस्स अणिट्ठा ५, णिच्चं मम जिणपालिए अणिट्ठे ५, णिच्चं पि य णं अहं जिणरक्खियस्स इट्ठा ५, णिच्चं पि य णं ममं जिणरक्खिए इट्ठे ५।

जइ णं ममं जिणपालिए रोयमाणीं कंदमाणीं सोयमाणीं तिप्पमाणीं विलवमाणीं णावयक्खइ, किं णं तुमं जिणरक्खिया ! ममं रोयमाणिं जाव णावयक्खसि ?'

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने जिन रक्षित का मन अवधिज्ञान से (कुछ शिथिल) देखा। यह देख कर वह इस प्रकार कहने लगी–मैं सदैव जिनपालित के लिए अनिष्ट, अकान्त आदि थी और जिनपालित मेरे लिए अनिष्ट अकान्त आदि था, परन्तु जिनरक्षित की तो मैं सदैव इष्ट आदि थी और जिनरक्षित मुझे इष्ट आदि था। अतएव जिनपालित यदि मुझे रोती, आक्रन्दन करती, शोक करती, अनुताप करती और विलाप करती हुई की परवाह नहीं करता, तो हे जिनरक्षित ! तुम भी मुझ रोती हुई की यावत् परवाह नहीं करते ?'

तए णं—

सा पवररयणदीवस्स देवया ओहिणा उ जिनरक्खिस्स मणं।
नाऊण वधनिमित्तं उवरिं मागंदियदारयाणं दोण्हं पि ॥ १ ॥

तत्पश्चात्–वह श्रेष्ठ रत्नद्वीप की देवी अवधिज्ञान द्वारा जिनरक्षित का मन जान कर, दोनो माकंदीपुत्रों के प्रति, उनका वध करने के निमित्त (कपट से इस प्रकार बोली।)

दोसकलिया सलीलयं, णाणाविहचुण्णवासमीसियं दिव्वं।
घाणमणणिव्वुइकरं, सव्वोउयसुरभिकुसुमवुट्ठिं पमुंचमाणी ॥२॥

द्वेष से युक्त वह देवी लीला सहित, विविध प्रकार के चूर्णवास से मिश्रित, दिव्य, नासिका और मन को तृप्ति देने वाले और सर्व ऋतुओं सवंधी सुगंधित फूलों की वृष्टि करती हुई (बोली) ॥ २ ॥

णाणामणिकणगरयणघंटियखिंखिणिणेऊरमेहलभूसणरवेणं।
दिसाओ विदिसाओ पूरयंती वयणमिणं बेति सा सकलुसा ॥३॥

नाना प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की घंटियो, घुंघुरुओं, नूपुरों और मेखला–इन सब आभूषणों के शब्दो से समस्त दिशाओं और विदिशाओं को व्याप्त करती हुई वह पापिनी देवी इस प्रकार कहने लगी ॥ ३ ॥

होल वसुल गोल णाह दइत पिय रमण कंत सामिय णिग्घिण

णित्थक्क । छिण्ण निक्किन्न अकयण्णुय सिढिलभाव निल्लज्ज लुक्ख अकलुण जिणरक्खिय ! मज्झं हिययरक्खगा ॥ ४ ॥

हे होल ! वसुल गोल[1] हे नाथ ! हे दयित (प्यारे !) हे प्रिय ! हे रमण ! हे कान्त (मनोहर) ! हे स्वामिन् (अधिपति) ! हे निघृ ण (मुझ स्नेहवती का त्याग करने के कारण निर्दय) ! हे नित्थक्क (अकस्मात् मेरा परित्याग करने के कारण अवसर को न जानने वाले) ! हे स्त्यान (मेरे हार्दिक राग से भी तेरा हृदय आर्द्र न हुआ, अतएव कठोर हृदय) ! हे निष्कृप (दयाहीन) ! हे अकृतज्ञ ! हे शिथिलभाव (अकस्मात मेरा त्याग कर देने के कारण ढीले मन वाले) ! हे निर्लज्ज (मुझे स्वीकार करके त्याग देने के कारण लज्जाहीन) हे रूक्ष (स्नेहहीन हृदय वाले) ! हे अकरुण ! जिनरक्षित ! हे मेरे हृदय के रक्षक (वियोग व्यथा से फटते हुए हृदय को फिर अंगीकार करके बचाने वाले) ! ॥४॥

न हु जुज्जसि एक्कियं अणाहं अबंधवं तुज्झ चलणओवायकारियं उज्झिउमहण्णं । गुणसंकर ! अहं तुमे विहूणा ण समत्था वि जीविउं खणं पि । ५ ॥

मुझ अकेली, अनाथ, बान्धवविहीन, तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाली और अधन्या (हतभागिनी) को त्याग देना तुम्हारे लिए योग्य नहीं है । हे गुणों के समूह ! तुम्हारे बिना मैं क्षण भर भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ ॥ ५ ॥

इमस्स उ अणेगझसमगरविविधसावयसयाउलघरस्स । रयणागरस्स मज्झे अप्पाणं वहेमि तुज्झ पुरओ एहि, णियत्ताहि जइ सि कुविओ खमाहि एक्कावराहं मे ॥ ६ ॥

अनेक सैकड़ों मत्स्य मगर और विविध क्षुद्र जलचर प्राणियों से व्याप्त गृह रूप या मत्स्य आदि के घर-स्वरूप इस रत्नाकर के मध्य मे तुम्हारे सामने मैं अपना वध करती हूं । (अगर तुम ऐसा नहीं चाहते तो) आओ, वापिस लौट चलो । अगर तुम कुपित हो गये होओ तो मेरा एक अपराध क्षमा करो ॥६॥

तुज्झ य विगयघणविमलससिमंडलगारसस्सिरीयं सारयनवकमल-कुमुदकुवलयविमलदलनिकरसरिसनिभं । नयणं (निभनयणं) वयणं पिवासागयाए सद्धा मे पेच्छिउं जे अवलोएहि ता इओ ममं णाह जा ते पेच्छामि वयणकमलं ॥ ७ ॥

---

[1] इन तीनों शब्दों का निन्दा-स्तुति गर्भित अर्थ होता है ।

तुम्हारा मुख मेघ-विहीन विमल चन्द्रमा के समान है। तुम्हारे नेत्र शरदृऋतु के सद्यःविकसित कमल (सूर्य विकासी), कुमुद (चन्द्रविकासी), और कुवलय (नील कमल) के पत्तों के समान अत्यन्त शोभायमान हैं। ऐसे नेत्र वाले तुम्हारे मुख के दर्शन की प्यास (इच्छा) से मैं यहाँ आई हूं। तुम्हारे मुख को देखने की मेरी अभिलाषा है। हे नाथ! तुम इस ओर मुझे देखो, जिससे मैं तुम्हारा मुख-कमल देख लूँ ॥ ७ ॥

एवं सप्पणयसरलमहुराइं पुणो पुणो कलुणाइं।
वयणाइं जंपमाणी सा पावा मग्गओ समण्णेइ पावहियया ॥८॥

इस प्रकार प्रेम पूर्ण, सरल और मधुर वचन बार-बार बोलती हुई वह पापिनी और पापपूर्ण हृदय वाली देवी मार्ग में उसके पीछे-पीछे चलने लगी ॥ ८ ॥

तए णं से जिणरक्खिए चलमणे तेणेव भूसणरवेणं कण्णसुहमणोहरेणं तेहि य सप्पणयसरलमहुरभणिएहिं संजायविउणराए रयणदीवस्स देवयाए तीसे सुंदरथणजहणवयणकरचरणनयणलावण्णरूवजोव्वणसिरिं च दिव्वं सरभसउवगूहियाइं जाइं विब्बोयविलसियाणि य विहसियसकडक्खदिट्ठिनिस्ससियमलियउवललियठियगमणपणयखिज्जियपासादियाणि य सरमाणे रागमोहियमई अवसे कम्मवसगए अवयक्खइ मग्गओ सविलियं।

तत्पश्चात् पूर्वोक्त कानों को सुख देने वाले और मन को हरण करने वाले आभूषणों के शब्द से तथा उन प्रणययुक्त, सरल और मधुर वचनों से जिनरक्षित का मन चलायमान हो गया। उसे पहले की अपेक्षा उस पर दुगुना राग उत्पन्न हो गया। वह रत्नद्वीप की देवी के सुन्दर स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर और नेत्र के लावण्य की, रूप (शरीर के सौन्दर्य) की और यौवन की लक्ष्मी (शोभा-सुन्दरता) को स्मरण करने लगा। उसके द्वारा हर्ष या उतावली के साथ किये गये आलिंगनों को, विब्बोकों (चेष्टाओं) को, विलासों (नेत्र के विकारों) को, विहसित (मुस्कराहट) को, कटाक्षों को, कामक्रीडाजनित निःश्वासों को, स्त्री के इच्छित अंग के मर्दन को, उपललित (विशेष प्रकार की क्रीड़ा) को, स्थित (गोद में या भवन मे बैठने) को, गति को, प्रणय कोप को तथा प्रसादित (कुपित को रिझाने) को, स्मरण करते हुए जिनरक्षित की मति राग से मोहित हो गई। वह विवश हो गया—अपने पर काबू न रख सका,

कर्म के अधीन हो गया और वह लज्जा के साथ, पीछे की ओर, उसके मुख की तरफ देखने लगा।

तए णं जिणरक्खियं समुप्पन्नकलुणभावं मच्चुगलत्थल्लणोल्लियमइं अवयक्खंतं तहेव जक्खे य सेलए जाणिऊण सणियं सणियं उव्विहइ नियगपिट्ठाहि विगयसत्थं (डूढे)।

तत्पश्चात् जिनरक्षित को देवी पर अनुराग उत्पन्न हुआ, अतएव मृत्यु रूपी राक्षस ने उसके गले में हाथ डाल कर उसकी मति फेर दी, अर्थात् उसकी बुद्धि मृत्यु की तरफ जाने की हो गई। उसने देवी की ओर देखा, यह बात शैलक यक्ष ने अवधिज्ञान से जान ली और स्वस्थता से रहित उसको धीरे-धीरे अपनी पीठ से फेंक दिया।

तए णं सा रयणदीवदेवया निस्संसा कलुणं जिणरक्खियं सकलुसा सेलगपिट्ठाहि उवयंतं 'दास! मओसि' त्ति जंपमाणी, अप्पत्तं सागरसलिलं, गेण्हिय बाहाहिं आरसंतं उड्ढं उव्विहइ। अंबरतले ओवयमाणं च मंडलग्गेण पडिच्छित्ता नीलुप्पलगवलअयसिप्पगासेण असिवरेणं खंडाखंडिं करेइ, करित्ता तत्थ विलवमाणं तस्स य सरसवहियस्स घेत्तूण अंगमंगाइं सरुहिराइं उक्खित्तबलिं चउद्दिसिं करेइ सा पंजली पहिट्ठा।

तत्पश्चात् उस निर्दय और पापिनी रत्नद्वीप की देवी ने दयनीय जिनरक्षित को शैलक की पीठ से गिरता देख कर कहा—'रे दास! तू मरा।' इस प्रकार कह कर, समुद्र के जल तक पहुँचने से पहले ही, दोनों हाथों से पकड़ कर, चिल्लाते हुए जिनरक्षित को ऊपर उछाला। जब वह नीचे की ओर आने लगा तो उसे तलवार की नोंक पर झेल लिया। नील कमल, भैंस के सींग और अलसी के फूल के समान श्याम रंग की श्रेष्ठ तलवार से विलाप करते हुए उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। टुकड़े-टुकड़े करके अभिमान-रस से वध किये हुए जिनरक्षित के रुधिर से व्याप्त अंगोपांगों को ग्रहण करके, दोनों हाथों की अंजलि करके, हर्षित होकर उसने उत्क्षिप्त-बलि-देवता को उद्देश्य करके आकाश में फेंकी हुई बलि की तरह, चारों दिशाओं को बलिदान दिया।

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अंतिए पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे आसायइ, पत्थयइ,

पीहेइ, अभिलसइ, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं जाव संसारं अणुपरियट्टिस्सइ, जहा वा से जिणरक्खिए।

छलिओ अवयक्खंतो, निरावयक्खो गओ अविग्घेणं।
तम्हा पवयणसारे, निरावयक्खेण भवियव्वं ॥ १ ॥
भोगे अवयक्खंता, पडंति संसार-सायरे घोरे।
भोगेहिं निरवयक्खा, तरंति संसारकंतारं ॥ २ ॥

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारे निर्ग्रंथ या निर्ग्रंथी के समीप प्रव्रजित होकर, फिर से मनुष्य संबधी कामभोगों का आश्रय लेता हैं, याचना करता है, स्पृहा करता हैं अर्थात् कोई बिना माँगे कामभोग के पदार्थ दे दे, ऐसो अभिलाषा करता है, या दृष्ट अथवा अदृष्ट शब्दादिक के भोग की इच्छा करता है, वह मनुष्य इसी भव में बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं द्वारा निन्दनीय होता है, यावत् अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है। उसकी दशा जिनरक्षित जैसी है।

पीछे देखने वाला जिनरक्षित छला गया और पीछे नहीं देखने वाला जिनपाल निर्विघ्न अपने स्थान पर पहुँच गया। अतएव प्रवचनसार (चारित्र) में आसक्तिरहित होना चाहिए, अर्थात् चारित्रवान् को अनासक्त रह कर चारित्र का पालन करना चाहिए ॥ १ ॥

चारित्र ग्रहण करके भी जो भोगों की इच्छा करते हैं, वे घोर संसार-सागर में गिरते हैं और जो भोगों की इच्छा नहीं करते, वे संसार रूपी कान्तार को पार कर जाते है ॥ २ ॥

तए णं सा रयणदीवदेवया जेणेव जिणपालिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहूहिं अणुलोमेहि य पडिलोमेहि य खरमहुरसिंगारेहिं कलुणेहि य उवसग्गेहि य जाहे नो संचाएइ चालित्तए वा खोभित्तए वा विप्परिणामित्तए वा, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तत्पश्चात् वह रत्नद्वीप की देवी जिनपालित के पास आई। आकर बहुत-से अनुकूल, प्रतिकूल, कठोर, मधुर, शृङ्गार वाले और करुणा जनक उपसर्गों द्वारा जब उसे चलायमान करने, क्षुब्ध करने एवं मन को पलटने में असमर्थ रही,

तब वह मन में थक गई, शरीर से थक गई सर्वथा ग्लानि को प्राप्त हुई और अतिशय खिन्न हो गई। तब जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा मे लौट गई।

तए णं से सेलए जक्खे जिणपालिएणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ, वीईवइत्ता जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चंपाए नयरीए अग्गुज्जाणंसि जिणपालियं पिट्ठाओ ओयारेइ, ओयारित्ता एवं वयासीः—

'एस णं देवाणुप्पिया! चंपा नयरी दीसइ' त्ति कट्टु जिणपालियं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् वह शैलक यक्ष, जिनपालित के साथ, लवण समुद्र के बीचोबीच होकर चला। चल कर जहाँ चम्पा नगरी थी, वहाँ आया। आकर चम्पा नगरी के बाहर श्रेष्ठ उद्यान मे जिनपालित को अपनी पीठ से नीचे उतारा। उतार कर उसने इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! देखो, यह चम्पा नगरी दिखाई देती है। यह कह कर उसने जिनपालित से छुट्टी ली। छुट्टी लेकर जिधर से आया था, उधर ही लौट गया।'

तए णं जिणपालिए चंपं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव अम्मापियरो, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं रोयमाणे जाव विलवमाणे जिणरक्खियवावत्तिं निवेदेइ।

तए णं जिणपालिए अम्मापियरो मित्तणाइ जाव परियणेणं सद्धिं रोयमाणा बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेन्ति, करित्ता कालेणं विगयसोया जाया।

तत्पश्चात् जिनपालित ने और उसके माता-पिता ने मित्र, ज्ञाति, स्वजन यावत् परिवार के साथ रोते-रोते बहुत से लौकिक मृतककृत्य किये। मृतककृत्य करके वे कुछ समय बाद शोकरहित हुए।

तए णं जिणपालियं अन्नया कयाइ सुहासणवरगयं अम्मापियरो एवं वयासी—'कहं णं पुत्ता! जिणरक्खिए कालगए?'

तत्पश्चात् एक वार किसी समय सुखासन पर बैठे जिनपालित से उसके माता-पिता ने इस प्रकार प्रश्न किया—'हे पुत्र! जिनरक्षित किस प्रकार कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुआ?'

तए णं जिणपालिए अम्मापिऊणं लवणसमुद्दोत्तारं च कालियवाय-समुत्थणं च पोयवहणविवत्तिं च फलगखंडआसायणं च रयणदीवुत्तारं च रयणदीवदेवयागिहं च भोगविभूइं च रयणदीवदेवयाप्पयाणं च सूलाइयपुरिसदरिसणं च सेलगजक्खआरूहणं च रयणदीवदेवयाउव-सग्गं च जिणरक्खियविवत्तिं च लवणसमुद्दउत्तरणं च चंपागमणं च सेलगजक्खआपुच्छणं च जहाभूयमवितहमसंदिद्धं परिकहेइ।

तब जिनपालित ने माता-पिता से अपना लवण समुद्र मे प्रवेश करना, तूफानी हवा का उठना, पोतवहन का नष्ट होना, पटिया का टुकड़ा मिलना, रत्नद्वीप में जाना, रत्नद्वीप की देवी के घर जाना, वहाँ के भोगो का वैभव रत्नद्वीप की देवी का समुद्र की सफाई के लिए जाना, शूली पर चढ़े पुरुष को देखना, शैलक यक्ष की पीठ पर आरूढ़ होना, रत्नद्वीप की देवी द्वारा उपसर्ग होना, जिनरक्षित का मरण होना, लवणसमुद्र को पार करना, चम्पा में आना और शैलक यक्ष के द्वारा छुट्टी लेना, आदि सर्व वृत्तान्त ज्यों का त्यों, सच्चा और असंदिग्ध कह सुनाया।

तए णं जिणपालिए जाव अप्पसोगे जाव विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् जिनपालित यावत् शोक रहित होकर यावत् विपुल कामभोग भोगता हुआ रहने लगा।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे जाव जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव समोसढे। परिसा निग्गया। कूणिओ वि राया निग्गओ। जिणपालिए धम्मं सोच्चा पव्वइए। एक्कारसअंगविऊ, मासिएणं भत्तेणं जाव सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उव-वन्ने, दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, जाव महाविदेहे सिज्झिहिइ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर, जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पधारे। भगवान् को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। कूणिक राजा भी निकला। जिनपालित ने धर्मोपदेश श्रवण करके दीक्षा अंगीकार की। क्रमशः ग्यारह अंग के ज्ञाता होकर, अन्त में एक मास का अनशन करके यावत् सौधर्म कल्प मे देव के रूप मे उत्पन्न हुए। वहाँ



दो सागरोपम की उसकी स्थिति कही गई है। वहाँ से च्यवन करके यावत् महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

एवामेव समणाउसो! जाव माणुस्सए कामभोगे णो पुणरवि आसाइ, से णं जाव वीइवइस्सइ, जहा वा से जिणपालिए।

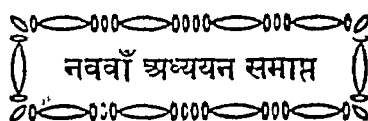
इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो मनुष्य यावत् मनुष्य संबंधी कामभोगों की (दीक्षित होकर) पुनः अभिलाषा नहीं करता, वह जिनपालित की भाँति यावत् संसार-समुद्र को पार करेगा।

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं नवमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि॥

इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नौवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ प्ररूपण किया है। जैसा मैंने सुना है, उसी प्रकार तुमसे कहता हूँ। (ऐसा सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा।)

अध्ययन का उपनय

इस संसार मे रत्नद्वीप की देवी के समान अविरति है। लाभार्थी माकंदीपुत्रों के समान संसारी जीव हैं। जैसे माकंदीपुत्रों को शूली पर चढ़ा पुरुष उद्धार का मार्ग बताने वाला मिला, उसी प्रकार संसार के दुखी जीवों को सद्गुरु की प्राप्ति होती है। वह गुरु अविरति से जीवों को विरत करते हैं। जैसे माकंदीपुत्रों को लवणसमुद्र पार करके अपने घर पहुँचना था, उसी प्रकार संसारी जीवों को संसार-सागर पार करके निर्वाण प्राप्त करना है। जैसे जिनरक्षित विषयासक्त होकर शैलक की पीठ से गिरा, उसी प्रकार कोई-कोई जीव चारित्र से भ्रष्ट होकर अपना जीव नष्ट करते हैं। किन्तु जो जीव जिनपालित के समान चारित्र मे दृढ़ रहते हैं और अविरति के वशीभूत नहीं होते, वे अपने घर-निर्वाण में पहुँच कर सुखी होते हैं।



दशम चन्द्र-अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं णवमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दसमस्स णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं–'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने नौवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो दसवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णामं णयरे होत्था। तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए णामं राया होत्था। तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं गुणसीलए णामं चेइए होत्था।

श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं–'हे जम्बू ! इस प्रकार निश्चय ही उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा–ईशान कोण–में गुणशील नामक चैत्य–उद्यान था।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहं सुहेणं विहरमाणे, जेणेव गुणसीलए चेइए तेणेव समोसढे। परिसा निग्गया। सेणिओ वि राया निग्गओ। धम्मं सोच्चा परिसा पडिगया।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहाँ गुणशील चैत्य था, वही पधारे। भगवान् की वन्दना-उपासना करने के लिए परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी निकला। धर्मोपदेश सुन कर परिषद् लौट गई।

तए णं गोयमसामी समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—'कहं णं भंते ! जीवा वड्ढंति वा हायंति वा ?'

तत्पश्चात् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा (प्रश्न किया)—'भगवन् ! जीव किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं और किस प्रकार हानि को प्राप्त होते हैं ?' (जीव शाश्वत, अनादि और अनन्त हैं, अतएव उनकी संख्या मे वृद्धि-हानि नहीं होती। एक-एक जीव असंख्यात-असंख्यात प्रदेश वाला है। उसके प्रदेशो मे भी कभी वृद्धि-हानि नहीं होती। तथापि गौतम स्वामी ने वृद्धि-हानि के कारणो के सबध में प्रश्न किया है। अतएव इस प्रश्न का आशय गुणों के विकास और ह्रास से है। जीव के गुणो का विकास ही जीव की वृद्धि और गुणों का ह्रास ही जीव की हानि है।)

गोयमा ! से जहाणामए बहुलपक्खस्स पडिवयाचंदे पुण्णिमाचंदं पणिहाय हीणे वण्णेणं, हीणे सोम्मयाए, हीणे निद्धयाए, हीणे कंतीए, एवं दित्तीए जुत्तीए छायाए पभाए ओयाए लेस्साए मंडलेणं तयाणंतरं च णं बीयाचंदे पाडिवयं चंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव मंडलेणं, तयाणंतरं च णं तइयाचंदे बिइयाचंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव मंडलेणं, एवं खलु एएणं कमेणं परिहायमाणे परिहायमाणे जाव अमावस्साचंदे चाउद्दसिचंदं पणिहाय नट्ठे वण्णेणं जाव नट्ठे मंडलेणं। एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पव्वइए समाणे हीणे खंतीए एवं मुत्तीए गुत्तीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सच्चेणं तवेणं चियाए अकिंचणयाए बंभचेरवासेणं, तयाणंतरं च णं हीणे हीणतराए खंतीए जाव हीणतराए बंभचेरवासेणं, एवं खलु एएणं कमेणं परिहीयमाणे परिहीयमाणे णट्ठे खंतीए जाव णट्ठे बंभचेरवासेणं।

भगवान्, गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हैं—'हे गौतम ! जैसे कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र, पूर्णिमा के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण (शुक्लता) से हीन होता है, सौम्यता से हीन होता है, स्निग्धता (अरूक्षता) से हीन होता है, कान्ति (मनोहरता) से हीन होता है, इसी प्रकार दीप्ति (चमक) से, युक्ति (आकाश के साथ सयोग) से, छाया (प्रतिविम्ब या शोभा) से, प्रभा (उदय-काल में कान्ति की स्फुरणा) से, ओजस (दाहशमन आदि करने के सामर्थ्य)

से, लेश्या (किरणरूप लेश्या) से और मंडल (गोलाई) से हीन होता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा, प्रतिपद् के चन्द्रमा की अपेक्षा वर्ण से हीन होता है यावत् मंडल से भी हीन होता है। तत्पश्चात् तृतीया का चन्द्र द्वितीया के चन्द्र की अपेक्षा भी वर्ण से हीन यावत् मंडल से हीन होता है। इस प्रकार आगे-आगे इसी क्रम से हीन-हीन होता हुआ यावत् अमावस्या का चन्द्र, चतुर्दशी के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण आदि से सर्वथा नष्ट होता है, यावत् मंडल से नष्ट होता है, अर्थात् उसमें वर्ण आदि का अभाव हो जाता है।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर क्षान्ति-क्षमा से हीन होता है, इसी प्रकार मुक्ति (निर्लोभता) से, आर्जव से, मार्दव से, लाघव से, सत्य से, तप से, त्याग से, आकिंचन्य से और ब्रह्मचर्य से, अर्थात् दस मुनिधर्मों से हीन होता है, वह उसके पश्चात् क्षान्ति से हीन और अधिक हीन होता जाता है, यावत् ब्रह्मचर्य से भी हीन अतिहीन होता जाता है। इस प्रकार इसी क्रम से हीन-हीनतर होते हुए उसके क्षमा-आदि गुण नष्ट हो जाते हैं, यावत् उसका ब्रह्मचर्य भी नष्ट हो जाता है।

से जहा वा सुक्कपक्खस्स पाडिवयाचंदे अमावासाए चंदं पणिहाय अहिए वण्णेणं जाव अहिए मंडलेणं, तयाणंतरं च णं बिइयाचंदे पडिवयाचंदं पणिहाय अहिययराए वण्णेणं जाव अहियतराए मंडलेणं। एवं खलु एएणं कमेणं परिवुड्ढेमाणे जाव पुण्णिमाचंदे चाउद्दसिं चंदं पणिहाय पडिपुण्णे वण्णेणं जाव पडिपुण्णे मंडलेणं।

एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे अहिए खंतीए जाव बंभचेरवासेणं, तयाणंतरं च णं अहिययराए खंतीए जाव बंभचेरवासेणं। एवं खलु एएणं कमेणं परिवड्ढेमाणे पडिवड्ढेमाणे जाव पडिपुण्णे बंभचेरवासेणं, एवं खलु जीवा वड्ढंति वा हायंति वा।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमण ! जो हमारा साधु या साध्वी यावत् दीक्षित होकर क्षमा से अधिक-वृद्धि प्राप्त होता है, यावत् ब्रह्मचर्य से अधिक होता है, तत्पश्चात् वह क्षमा से यावत् ब्रह्मचर्य से और अधिक-अधिक होता है। निश्चय ही इस क्रम से बढ़ते-बढ़ते यावत् वह क्षमा आदि एवं ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार जीव वृद्धि को और हानि को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि सद्गुरु की उपासना से, निरन्तर प्रमादहीन रहने से तथा चारित्रावरण

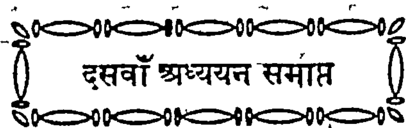
कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम से क्षमा आदि-गुणों की वृद्धि होती है और क्रमशः वृद्धि होते--होते अन्त में वे गुण पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दसवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। मैंने जैसा सुना, वैसा ही मैं कहता हूं।

उपनय

इस अध्ययन का उपनय स्पष्ट है। चन्द्रमा के स्थान पर साधु समझना चाहिए। प्रमाद साधु-चन्द्रमा के लिए राहु के समान है। जैसे चन्द्रमा प्रतिपूर्ण होकर भी क्रमशः हानि को प्राप्त होता-होता सर्वथा क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार गुणों से प्रतिपूर्ण साधु भी कुशील जनों के संसर्ग आदि से चारित्र-हीन होता-होता अन्ततः चारित्र से सर्वथा हीन हो जाता है। किन्तु हीन गुण वाला होकर भी सुशील साधु का संसर्ग आदि पाकर क्रमशः पूर्ण गुणों वाला बन जाता है।



ग्यारहवाँ दावद्रव-अध्ययन



जइ णं भंते ! दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, एक्कारसस्स णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बू स्वामी अपने गुरु श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं—'भगवन् ! यदि दसवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने यह अर्थ कहा है, तो हे भगवन् ! ग्यारहवें अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णामं णयरे होत्था। तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए णामं राया होत्था। तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं गुणसीलए णामं चेइए होत्था।

इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में गुणशील नामक उद्यान था।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव गुणसीलए णामं चेइए तेणे व समोसढे। राया निग्गओ, परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विचरते हुए, यावत् गुणशील नामक उद्यान में समवसृत हुए-आये। वन्दना करने के लिए राजा श्रेणिक निकला। भगवान् ने धर्म का उपदेश किया। जनसमूह वापिस लौट गया।

तए णं गोयमे समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—'कहं णं भंते ! जीवा आराहगा वा विराहगा वा भवंति ?'

तत्पश्चात् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से कहा—'भगवन् ! जीव किस प्रकार आराधक अथवा विराधक होते हैं ?'

गोयमा ! से जहाणामए एगंसि समुद्दकूलंसि दावद्दवा नामं रुक्खा पण्णत्ता–किण्हा जाव निउरंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।

भगवान् उत्तर देते हैं–'हे गौतम ! जैसे एक समुद्र के किनारे दावद्रव नामक वृक्ष कहे गये हैं । वे कृष्ण वर्ण वाले यावत् निकुरंब (गुच्छा) रूप हैं। पत्तों वाले, फूलों वाले, फलों वाले, अपनी हरियाली के कारण मनोहर और श्री से अत्यन्त शोभित–शोभित होते हुए स्थित हैं।

जया णं दीविच्चगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति, तदा णं बहवे दावद्दवा रुक्खा पत्तिया जाव चिट्ठंति । अप्पेगइया दावद्दवा रूक्खा जुन्ना झोडा परिसडियपंडुपत्तपुप्फफला सुक्करूक्खओ विव मिलायमाणा चिट्ठंति ।

जब द्वीप संबंधी ईषत् पुरोवात अर्थात् कुछ–कुछ स्निग्ध अथवा पूर्व दिशा संबंधी वायु, पथ्यवात अर्थात् सामान्यतः वनस्पति के लिए हितकारक या पछाहीं वायु, मंद (धीमी–धीमी) वायु और महावात–प्रचण्डवायु चलती है, तब बहुत–से दावद्रव नामक वृक्ष पत्रयुक्त यावत् होकर खड़े रहते हैं। उनमें से कोई–कोई दावद्रव वृक्ष जीर्ण जैसे हो जाते हैं, झोड अर्थात् सड़े पत्तों वाले हो जाते हैं, अतएव वे खिरे हुए पीले पत्तो पुष्पो और फलो वाले हो जाते हैं और सूखे पेड़ों की तरह मुरझाते हुए खड़े रहते हैं।

एवामेव समणाउसो ! जे अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं सम्मं सहइ जाव अहियासेइ, बहूणं अण्णउत्थियाणं बहूणं गिहत्थाणं नो सम्मं सहइ जाव नो अहियासेइ, एस णं मए पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते समणाउसो !

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी यावत् दीक्षित होकर बहुत–से साधुओं बहुत–सी साध्वियों, बहुत–से श्रावकों और बहुत–सी श्राविकाओं के प्रतिकूल वचनो को सम्यक् प्रकार से सहन करता है, यावत् विशेष रूप से सहन करता है, किन्तु बहुत–से अन्य तीर्थिको के तथा गृहस्थो के दुर्वचन को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता है यावत् विशेष रूप

से सहन नहीं करता है, ऐसे पुरुष को, हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैंने देश विराधक कहा है।

जया णं सामुद्दगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया मंदावाया महावाया वायंति, तया णं बहवे दावद्दवा रुक्खा जुण्णा झोडा जाव मिलायमाणा मिलायमाणा चिट्ठंति। अप्पेगइया दावद्दवा रुक्खा पत्तिया पुप्फिया जाव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

जब समुद्र संबंधी ईषत्पुरोवात, पथ्य या पश्चात् वात, मंदवात, और महावात बहती है, तब बहुत-से दावद्रव वृक्ष जीर्ण-से हो जाते है, झोड हो जाते हैं, यावत् मुरझाते-मुरझाते खड़े रहते हैं। किन्तु कोई-कोई दावद्रव वृक्ष पत्रित, पुष्पित यावत् अत्यन्त शोभायमान होते हुए रहते हैं।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए समाणे बहूणं अण्णउत्थियाणं, बहूणं गिहत्थाणं सम्मं सहइ, बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं नो सम्मं सहइ, एस णं मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते समणाउसो !

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु अथवा साध्वी दीक्षित होकर बहुत-से अन्य तीर्थिकों के और बहुत-से गृहस्थों के दुर्वचन सम्यक् प्रकार से सहन करता है और बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों तथा बहुत-सी श्राविकाओं के दुर्वचन सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता, उस पुरुष को मैंने देशाराधक कहा है आयुष्मान् श्रमणो !

जया णं नो दीविच्चगा णो सामुद्दगा ईसिं पुरेवाया पच्छावाया जाव महावाया वायंति, तए णं सव्वे दावद्दवा रुक्खा झोडा जाव मिलायमाणा मिलायमाणा चिट्ठंति।

जब द्वीप संबंधी और समुद्र संबंधी एक भी ईषत् पुरोवात, पथ्य या पश्चात् वात, यावत् महावात नहीं बहती, तब सब दावद्रव वृक्ष जीर्ण सरीखे हो जाते हैं, यावत् मुरझाये-मुरझाये रहते हैं।

एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं अन्नउत्थियाणं

बहूणं गिहत्थाणं नो सम्मं सहइ, एस णं मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते समणाउसो !

इसी प्रकार हे आयुष्मान् श्रमणो ! जो हमारा साधु या साध्वी यावत् प्रव्रजित होकर बहुत-से साधुओं, बहुत-सी साध्वियों, बहुत-से श्रावकों, बहुत-सी श्राविकाओं, बहुत-से अन्य तीर्थियों एवं बहुत-से गृहस्थों के दुर्वचन शब्दों को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करता, उस पुरुष को, हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने सर्वविराधक कहा है।

जया णं दीविच्चगा वि सामुद्दगा वि ईसिंपुरेवाया पच्छावाया जाव वायंति, तदा णं सव्वे दावद्दवा रुक्खा पत्तिया जाव चिट्ठंति।

जब द्वीप संबंधी भी और समुद्र संबंधी भी ईषत् पुरोवात, पथ्य या पश्चात् वात, यावत् बहती है, तब सभी दावद्रव वृक्ष पत्रित पुष्पित फलित यावत् सुशोभित रहते हैं।

एवामेव समणाउसो ! जे अम्हं पव्वइए समाणे बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं अन्नउत्थियाणं बहूणं गिहत्थाणं सम्मं सहइ, एस णं मए पुरिसे सव्वाराहए पण्णत्ते समणाउसो ! एवं खलु गोयमा ! जीवा आराहगा वा विराहगा वा भवंति।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! इसी प्रकार जो हमारा साधु या साध्वी बहुत-से श्रमणों के, बहुत-सी श्रमणियों के, बहुत-से श्रावकों के, बहुत-सी श्राविकाओं के, बहुत-से अन्य तीर्थिकों के और बहुत-से गृहस्थों के दुर्वचन सम्यक् प्रकार से सहन करता है, उस पुरुष को मैंने सर्वाराधक कहा है आयुष्मान् श्रमणो !

इस प्रकार हे गौतम ! जीव आराधक और विराधक होते हैं।

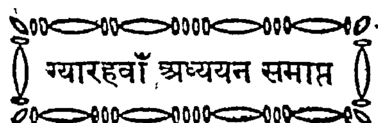
एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं एक्कारसमस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, त्ति बेमि।

श्रीसुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने ग्यारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वैसा ही कहता हूँ।

उपनय

इस अध्ययन में कथित दावद्रव वृक्षों के समान साधु हैं। द्वीप की वायु के समान स्वपक्षी साधु आदि के वचन, समुद्री वायु के समान अन्य तीर्थिकों के वचन और पुष्प-फल आदि के समान मोक्षमार्ग की आराधना समझना चाहिए। पुष्प आदि के नाश के समान मोक्षमार्ग की विराधना समझना चाहिए।

जैसे द्वीप की वायु के संसर्ग से वृक्षों की समृद्धि बताई, उसी प्रकार साधर्मी के दुर्वचन सहने से मोक्षमार्ग की आराधना और दुर्वचन न सहने से विराधना समझना चाहिए। अन्य तीर्थियों के दुर्वचन न सहन करने से मोक्षमार्ग की अल्प-विराधना होती है। जैसे समुद्री वायु से पुष्प आदि की थोड़ी समृद्धि और बहुत असमृद्धि बताई, उसी प्रकार परतीर्थिकों के दुर्वचन सहन करने और स्वपक्ष के सहन न करने से थोड़ी आराधना और बहुत विराधना होती है। दोनों के दुर्वचन सहन न करके क्रोध आदि करने से सर्वथा विराधना और सहन करने से सर्वथा आराधना होती है। अतएव साधु को सभी के दुर्वचन क्षमाभाव से सहन करने चाहिए।


ग्यारहवाँ अध्ययन समाप्त

बारहवाँ उदक ज्ञाताध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं एक्कारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, बारसमस्स णं नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी, श्रीसुधर्मा स्वामी के प्रति प्रश्न करते हैं-'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने ग्यारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो बारहवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं कालेणं ते णं समए णं चंपा णामं णयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। तीसे णं चंपाए णयरीए जियसत्तू णामं राया होत्था। तस्स णं जियसत्तुस्स रन्नो धारिणी नामं देवी होत्था, अहीणा जाव सुरूवा। तस्स णं जियसत्तुस्स रन्नो पुत्ते धारिणीए अत्तए अदीणसत्तू णामं कुमारे जुवराया वि होत्था सुबुद्धी अमच्चे जाव रज्जधुराचिंतए समणोवासए अहिगयजीवाजीवे।

श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं-हे जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उस चम्पा नगरी में जितशत्रु नामक राजा था। जितशत्रु राजा की धारिणी नामक रानी थी, वह परिपूर्ण पाँचों इन्द्रियों वाली यावत् सुन्दर रूप वाली थी। जितशत्रु राजा का पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज अदीन शत्रु नामक कुमार युवराज था। सुबुद्धि नामक मंत्री था। वह यावत् राज्य की धुरा का चिन्तक श्रमणोपासक और जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता था।

तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमेणं एगे फरिहोदए यावि होत्था, मेयवसामंसरुहिरपूयपडलपोच्चडे मयगकलेवरसंछण्णे अमणुण्णे वण्णेणं जाव फासेणं। से जहानामए अहिमडेइ वा गोमडेइ वा जाव मयकुहियविणट्ठकिमिणवावण्णदुरभिगंधे किमिजालाउले संसत्ते असुइविगयबीभत्थदरिसणिज्जे, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो अणिट्ठतराए चेव जाव गंधेणं पण्णत्ते।



चम्पा नगरी के बाहर उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा मे एक खाई का पानी था। वह चर्बी, नसो, मांस, रुधिर और पोब के समूह से युक्त था। मृतक-शरीरों से व्याप्त था। वर्ण से यावत् स्पर्श से अमनोज्ञ था। वह जैसे कोई सर्प का मृत कलेवर हो, गाय का कलेवर हो, यावत् मरे हुए, सड़े हुए, गले हुए, कीड़ों से व्याप्त और जानवरो के खाये हुए किसी मृत कलेवर के समान दुर्गन्ध वाला था! कृमियों के समूह से परिपूर्ण था। जीवों से भरा हुआ था। अशुचि, विकृत और बीभत्स-डरावना दिखाई देता था। क्या वह ऐसे स्वरूप वाला था? नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं। वह जल इससे भी अधिक अनिष्ट यावत् गंध आदि वाला था। अर्थात् खाई का वह पानी इससे भी अधिक अमनोज्ञ रूप, रस, गंध वर्ण वाला कहा गया है।

तए णं से जियसत्तू राया अण्णया कयाइ ण्हाए कयबलिकम्मे जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे बहूहिं राईसर जाव सत्थवाहपभिइहिं सद्धिं भोयणवेलाए सुहासणवरगए विपुल असणं पाणं खाइमं साइमं जाव विहरइ, जिमितभुत्तुत्तराए जाव सुईभूए तंसि विपुलंसि असण जाव जायविम्हए ते बहवे ईसर जाव पभिईए एवं वयासी–

तत्पश्चात् वह जितशत्रु राजा एक बार किसी समय स्नान करके, बलिकर्म (गृहदेवता का पूजन) करके, यावत् अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणो से शरीर को अलंकृत करके, अनेक राजा ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि के साथ, भोजन के समय पर, सुखद आसन पर बैठ कर, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन जीम रहा था। यावत् भोजन जीमने के अनन्तर, हाथ-मुँह धोकर शुचि हो कर, उस विपुल अशन पान आदि भोजन के विषय में वह विस्मय को प्राप्त हुआ। अतएव उन बहुत-से ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि से इस प्रकार कहने लगा-

'अहो णं देवाणुप्पिया! इमे मणुण्णे असणं पाणं खाइमं साइमं वण्णेणं उववेए जाव फासेणं उववेए अस्सायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे दीवणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिंहणिज्जे सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे।

'अहो देवानुप्रियो! यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम उत्तम वर्ण से युक्त है यावत् उत्तम स्पर्श से युक्त है, अर्थात् इसका रूप, रस, गंध और वर्ण सभी कुछ श्रेष्ठ है, यह आस्वादन करने योग्य है, विशेष रूप से आस्वादन

करने योग्य है। पुष्टि कारक है, बल को दीप्त करने वाला है, दर्प उत्पन्न करने वाला है, काम-मद का जनक है और बलवर्धक है तथा समस्त इन्द्रियों को और गात्र को विशिष्ट आह्लाद उत्पन्न करने वाला है।'

तए णं ते बहवे ईसर जाव पभिइओ जियसत्तुं एवं वयासी-'तहेव णं सामी! जं णं तुब्भे वदह। अहो णं इमे मणुण्णे असणं पाणं खाइमं साइमं वण्णेणं उववेए जाव पल्हायणिज्जे।

तत्पश्चात् बहुत-से ईश्वर यावत् सार्थवाह प्रभृति जितशत्रु से इस प्रकार कहने लगे-'आप जो कहते हैं, बात वैसी ही है। अहा, यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम उत्तम वर्ण से युक्त है, यावत् विशिष्ट आह्लाद जनक है।'

तए णं जितसत्तू सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी-'अहो णं सुबुद्धी! इमे मणुण्णे असणं पाणं खाइमं साइमं जाव पल्हायणिज्जे।'

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्सेयमट्ठं नो आढाइ, जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से कहा-'अहो सुबुद्धि! यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम उत्तम वर्णादि से युक्त और यावत् समस्त इन्द्रियों को एवं गात्र को विशिष्ट आह्लादजनक है।'

तब सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु के इस अर्थ (कथन) का आदर (अनुमोदन) नहीं किया। यावत् वह चुप रहा।

तए णं जियसत्तुणा सुबुद्धी दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे जियसत्तुं रायं एवं वयासी-'नो खलु सामी अहं एयंसि मणुण्णंसि असणपाणखाइमसाइमंसि केइ विम्हए। एवं खलु सामी! सुब्भिसद्दा वि पुग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा वि पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति। सुरूवा वि पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा वि पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति। सुब्भिगंधा वि पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति, दुब्भिगंधा वि पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति। सुरसा वि पोग्गला दुरसत्ताए परिणमंति, दुरसा वि पोग्गला सुरसत्ताए परिणमंति। सुहफासा वि पोग्गला दुहफासत्ताए परिणमंति, दुहफासा

वि पोग्गला सुहफासत्ताए परिणमंति। पओगवीससापरिणया वि य णं सामी! पोग्गला पण्णत्ता।'

जितशत्रु राजा के द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहने पर सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु राजा से इस प्रकार कहा–'स्वामिन्! मैं इस मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम में कुछ भी विस्मित नहीं हूँ। हे स्वामिन्! सुरभि (उत्तम–शुभ) शब्द वाले भी पुद्गल दुरभि (अशुभ) शब्द के रूप में परिणत हो जाते हैं और दुरभि शब्द वाले पुद्गल भी सुरभि शब्द के रूप में परिणत हो जाते हैं। उत्तम रूप वाले पुद्गल भी खराब रूप के रूप में परिणत हो जाते हैं और खराब रूप वाले पुद्गल उत्तम रूप के रूप में परिणत हो जाते हैं। सुरभि गंध वाले भी पुद्गल दुरभि गंध के रूप में परिणत हो जाते है और दुरभि गंध वाले पुद्गल भी सुरभि गंध के रूप में परिणत हो जाते है। सुन्दर रस वाले भी पुद्गल खराब रस के रूप में परिणत होते हैं और खराब रस वाले भी सुन्दर रस के रूप में परिणत हो जाते हैं। शुभ स्पर्श वाले भी पुद्गल अशुभ स्पर्श वाले पुद्गल बन जाते हैं और अशुभ स्पर्श वाले पुद्गल भी शुभ स्पर्श वाले बन जाते हैं। हे स्वामिन्! सब पुद्गलो में प्रयोग (जीव के प्रयत्न) से और विस्रसा (स्वाभाविक रूप से) परिणमन होता ही रहता है।

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवमाइक्खमाणस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

उस समय राजा जितशत्रु ने ऐसा कहते हुए सुबुद्धि अमात्य के इस कथन का आदर नहीं किया, अनुमोदन नहीं किया और वह चुपचाप बना रहा।

तए णं से जियसत्तू अण्णया कयाई ण्हाए आसखंधवरगए महया भडचडगरपह-आसवाहणियाए निज्जायमाणे तस्स फरिहोदगस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।

तए णं जियसत्तू राया तस्स फरिहोदगस्स असुभेणं गंधेणं अभिभूए समाणे सएणं उत्तरिज्जेणं आसगं पिहेइ, एगंतं अवक्कमइ, ते बहवे ईसर जाव पभिइओ एवं वयासी–'अहो णं देवाणुप्पिया! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं गंधेणं रसेणं फासेणं। से जहानामए अहिमडेइ वा जाव अमणामतराए चेव।'

तत्पश्चात् एक बार किसी समय जितशत्रु स्नान करके, (विभूषित होकर) उत्तम अश्व की पीठ पर सवार होकर, बहुत भटों-सुभटों के साथ, घुड़सवारी के लिए निकला और उसी खाई के पानी के पास पहुंचा।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने खाई के पानी की अशुभ गंध से घबरा कर अपने उत्तरीय वस्त्र से मुँह ढँक लिया। वह एक तरफ चला गया और साथ के राजा ईश्वर यावत् सार्थवाह वगैरह से इस प्रकार कहने लगा-'अहो देवानुप्रियो! यह खाई का पानी वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से अमनोज्ञ-अत्यन्त अशुभ है। जैसे किसी सर्प का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अमनोज्ञ है।'

तए णं ते बहवे राईसरपभिइ जाव एवं वयासी—'तहेव णं तं सामी! जं णं तुब्भे एवं वयह, अहो णं इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं गंधेणं रसेणं फासेणं से जहा नामए अहिमडे इ वा जाव अमणामतराए चेव।'

तत्पश्चात वे राजा ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि इस प्रकार बोले—हे स्वामिन् आप जो ऐसा कहते हैं सो सत्य ही है कि—अहो! यह खाई का पानी वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से अमनोज्ञ है। यह ऐसा अमनोज्ञ है, जैसे साँप का मृतक कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अतीव अमनोज्ञ है।

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—'अहो णं सुबुद्धी! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं से जहानामए अहिमडेइ वा जाव अमणामतराए चेव।

तए णं सुबुद्धी अमच्चे जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् अर्थात् राजा, ईश्वर आदि ने जब जितशत्रु की हाँ में हाँ मिलादी तब, राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा—'अहो सुबुद्धि! यह खाई का पानी वर्ण आदि से अमनोज्ञ है, जैसे किसी सर्प आदि का मृत कलेवर हो, यावत् उससे भी अधिक अत्यन्त अमनोज्ञ है।'

तब सुबुद्धि अमात्य यावत् मौन रहा।

तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—'अहो णं तं चेव।'

तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुणा रण्णा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे एवं वयासी–'नो खलु सामी ! अम्हं एयंसि फरिहोदयंसि केइ विम्हए । एवं खलु सामी ! सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, तं चेव जाव पओगवीससापरिणया वि य णं सामी ! पोग्गला पण्णत्ता ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से दूसरी बार और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा–'अहो सुबुद्धि यह खाई का पानी अमनोज्ञ है' इत्यादि पूर्ववत् ।

तब सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु के दूसरी बार और तीसरी बार ऐसा कहने पर इस प्रकार कहा–'हे स्वामिन् ! मुझे इस खाई के पानी के विषय में–इसके मनोज्ञ या अमनोज्ञ होने में कोई विस्मय नहीं है । क्योंकि शुभ शब्द के पुद्गल भी अशुभ रूप से परिणत हो जाते हैं, इत्यादि पहले के समान सब कथन यहाँ समझ लेना चाहिए, यावत् मनुष्य के प्रयत्न से और स्वाभाविक रूप से भी पुद्गलों मे परिणमन होता रहता है; ऐसा कहा है ।

तए णं जितसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी–मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अप्पाणं च परं च तदुभयं च बहूहि य असब्भावुब्भावणाहि मिच्छत्ताभिणिवेसेण य वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहराहि ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा–'देवानुप्रिय ! तुम अपने आपको, दूसरे को और स्व–पर दोनों को, असत् वस्तु या वस्तुधर्म की उद्भावना करके अर्थात् असत् को सत् के रूप में प्रकट करके और मिथ्या अभिनिवेश (दुराग्रह) करके भ्रम में मत डालो, चतुर मत समझो ।'

तए णं सुबुद्धिस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–'अहो णं जितसत्तू संते तच्चे तहिए अवितहे सब्भूते जिणपण्णत्ते भावे णो उवलभइ, तं सेयं खलु मम जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अवितहाणं सब्भूताणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए ।'

जितशत्रु की बात सुनने के पश्चात् सुबुद्धि को इस प्रकार का अध्यवसाय–विचार–उत्पन्न हुआ–अहो, जितशत्रु राजा सत् (विद्यमान) तत्त्वरूप (वास्त-

के कर्मचारी को बुलवाया। बुलवा कर कहा–'देवानुप्रिय ! तुम यह उदकरत्न लो। इसे लेकर राजा जितशत्रु के भोजन की वेला में उन्हे देना।'

तए णं से पाणियघरए सुबुद्धियस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं उदयरयणं गिण्हाइ, गिण्हित्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवट्ठवेइ।

तए णं से जियसत्तू राया तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणे जाव विहरइ।

जिमियभुत्तुत्तराय यावि य णं जाव परमसुइभूए तंसि उदयरयणे जायविम्हए ते वहवे राईसर जाव एवं वयासी–'अहो णं देवाणुप्पिया ! इमे उदयरयणे अच्छे जाव सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे।'

तए णं बहवे राईसर जाव एवं वयासी–'तहेव णं सामी ! जं णं तुब्भे वयह, जाव एवं चेव पल्हायणिज्जे।'

तत्पश्चात् जलगृह के उस कर्मचारी ने सुबुद्धि के इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके वह उदकरत्न ग्रहण किया और ग्रहण करके जितशत्रु राजा के भोजन की वेला में उपस्थित किया।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आस्वादन करता हुआ विचर रहा था। जीम चुकने के अनन्तर अत्यन्त शुचि–स्वच्छ होकर जलरत्न का पान करने से राजा को विस्मय हुआ। उसने बहुत-से राजा, ईश्वर आदि से यावत् कहा–'अहो देवानुप्रियो ! यह उदकरत्न स्वच्छ है यावत् समस्त इन्द्रियों को और गात्र को अह्लाद उत्पन्न करने वाला है।'

तब वे बहुत–से राजा, ईश्वर आदि यावत् इस प्रकार कहने लगे–'स्वामिन् ! जैसा आप कहते है, बात ऐसी ही है। यह जलरत्न यावत् आह्लाद-जनक है।'

तए णं जियसत्तू राया पाणियघरियं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'एस णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! उदयरयणे कओ आसाइए ?

तए णं पाणियघरिए जियसत्तुं एवं वयासी–'एस णं सामी ! मए उदयरयणे सुबुद्धिस्स अंतियाओ आसाइए।'



तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'अहो णं सुबुद्धी ! केणं कारणेणं अहं तव अणिट्ठे ५, जेण तुमं मम कल्लाकल्लिं भोयणवेलाए इमं उदयरयणं न उवट्ठवेसि ? तए णं देवाणुप्पिया ! उदयरयणे कओ उवलद्धे ?'

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी–'एस णं सामी ! से फरिहोदए।'

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी–'केणं कारणेणं सुबुद्धी ! एस से फरिहोदए ?

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी–'एवं खलु सामी ! तुम्हे तया मम एवमाइक्खमाणस्स ४ एयमट्ठं नो सद्दहह, तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए ६–'अहो णं जियसत्तू संते जाव भावे नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, तं सेयं खलु ममं जियसत्तुस्स रण्णो संताणं जाव सब्भूयाणं जिणपन्नत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए। एवं संपेहेमि, संपेहित्ता तं चेव जाव पाणियघरियं सद्दावेमि, सद्दावित्ता एवं वदामि–'तुमं णं देवाणुप्पिया ! उदगरयणं जियसत्तुस्स रन्नो भोयणवेलाए उवणेहि।' तं एएणं कारणेणं सामी ! एस से फरिहोदए।'

तत्पश्चात् राजा जितशत्रु ने जलगृह के कर्मचारी को बुलवाया और बुलवा कर पूछा–देवानुप्रिय ! तुमने यह जल–रत्न कहाँ से पाया ?'

तब जलगृह के कर्मचारी ने जितशत्रु से कहा–'स्वामिन् ! यह जलरत्न मैंने सुबुद्धि अमात्य के पास से पाया है।,

तत्पश्चात् राजा जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य को बुलाया और उससे इस प्रकार कहा–'अहो सुबुद्धि ! किस कारण से मैं तुम्हे अनिष्ट, अकान्त अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम हूं, जिससे तुम मेरे लिए प्रतिदिन, भोजन के समय यह उदकरत्न नहीं भेजते ? देवानुप्रिय ! तुमने यह उदकरत्न कहाँ से पाया है ?

तब सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु से कहा–'स्वामिन् ! यह वही खाई का पानी है।'

तब जितशत्रु ने सुबुद्धि से कहा–'हे सुबुद्धि ! किस-
खाई का पानी है ?'

तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से कहा–हे स्वामिन् ! उस
के पानी का वर्णन करते समय मैंने आपको पुद्गलों का प
परन्तु आपने उस पर श्रद्धा नहीं की थी। तब मेरे मन
अध्यवसाय उत्पन्न हुआ–अहो ! जितशत्रु राजा सत् याव
नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं रखता, अतएव मे
है कि जितशत्रु राजा को सत् यावत सद्भूत जिनभाषित भ
पुद्गलों के परिणमन रूप अर्थ को अंगीकार कराऊँ।' मैंने
विचार करके पहले कहे अनुसार पानी को सँवार कर तै
आपके जलगृह के कर्मचारी को बुलाया और उससे कहा
उदकरत्न तुम भोजन की वेला राजा जितशत्रु को देना।' इस
यह वही खाई का पानी है।'

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवम
एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, असद्द
माणे अरोयमाणे अब्भिंतरट्ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ,
वयासी–'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अंतरावणाओ
य गेण्हह जाव उदगसंभारणिज्जेहिं दव्वेहिं संभारेह
संभारेंति, संभारित्ता जियसत्तुस्स उवणेंति।

तए णं जियसत्तू राया तं उदगरयणं करतलंसि
यणिज्जं जाव सव्विंदियगायपल्हायणिज्जं जाणित्ता
सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'सुबुद्धी ! एए णं
जाव सब्भूआ भावा कओ उवलद्धा ?'

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी–'एए णं
जाव भावा जिणवयणाओ उवलद्धा।'

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य के क

रास्ते वाली कुंभार की दुकान से नये घड़े लाओ और यावत् जल को सँवारने-सुन्दर बनाने वाले द्रव्यों से उस जल को सँवारो।' उन पुरुषों ने राजा के कथनानुसार पूर्वोक्त विधि से जल को सँवारा और सँवार कर वे जितशत्रु के समीप लाये।

तब जितशत्रु राजा ने उस उदकरत्न को हथेली में लेकर आस्वादन किया। उसे आस्वादन करने योग्य यावत् सब इन्द्रियों को और गात्र को आह्लादकारी जान कर सुबुद्धि अमात्य को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा-सुबुद्धि ! तुमने यह सत्, तथ्य यावत् सद्भूत भाव (पदार्थ) कहाँ से जाने ?'

तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से कहा-'स्वामिन् ! मैंने यह सत् यावत् भाव जिन भगवान् के वचन से जाने हैं।'

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी-'इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तव अंतिए जिणवयणं निसामेत्तए।'

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवलिपन्नत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ, तमाइक्खइ, जहा जीवा बज्झंति जाव पंच अणुव्वयाइं।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि से कहा-'देवानुप्रिय ! तो मैं तुमसे जिनवचन सुनना चाहता हूँ।'

तब सुबुद्धि मंत्री ने जितशत्रु राजा को केवली-भाषित चातुर्याम रूप अद्भुत धर्म कहा। जिस प्रकार जीव कर्म बंध करते हैं, यावत् पाँच अणुव्रत हैं, इत्यादि धर्म का कथन किया।

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी-'सद्दहामि णं देवाणुप्पिया ! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्त सिक्खावइयं जाव उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।'

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से धर्म सुन कर और मन में धारण करके, हर्षित और संतुष्ट होकर सुबुद्धि अमात्य से कहा-देवानुप्रिय ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं। जैसा तुम कहते हो वह वैसा ही है। सो

मैं तुम से पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को यावत् ग्रहण करके विचरने की अभिलाषा करता हूँ।'

(तब सुबुद्धि प्रधान ने कहा-) हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबंध मत करो।

तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ। तए णं जियसत्तू समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से पाँच अणुव्रत वाले (और सात शिक्षाव्रत वाले) यावत् बारह प्रकार का श्रावकधर्म अंगीकार किया। तत्पश्चात् जितशत्रु श्रावक हो गया, जीव-अजीव का ज्ञाता हो गया, यावत् निर्ग्रन्थ साधु-साध्वियों को आहार आदि का प्रतिलाभ देता हुआ रहने लगा।

ते णं काले णं ते णं समए णं थेरा जेणेव चंपा णयरी जेणेव पुण्णभद्दचेइए तेणेव समोसढे, जियसत्तू राया सुबुद्धी य निग्गच्छइ। सुबुद्धी धम्मं सोच्चा जं णवरं जियसत्तुं आपुच्छामि जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया!

उस काल और उस समय में, जहाँ चंपा नगरी और पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ स्थविर पधारे। जितशत्रु राजा और सुबुद्धि उनको वन्दना करने के लिए निकले। सुबुद्धि ने धर्मोपदेश सुन कर (निवेदन किया-) 'मैं जितशत्रु राजा से पूछ लूँ-उनकी आज्ञा ले लूँ और फिर दीक्षा अंगीकार करूँगा।' तब स्थविर मुनि ने कहा-देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो।'

तए णं सुबुद्धी अमच्चे जेणेव जियसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी-'एवं खलु सामी! मए थेराणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य धम्मे इच्छियपडिच्छिए ३, तए णं अहं सामी! संसारभउव्विग्गे जाव इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे जाव पव्वइत्तए।'

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी-अच्छासु ताव देवाणुप्पिया! कइवयाइं वासाइं जाव भुंजमाणा तओ पच्छा एगयओ थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वइस्सामो।



तत्पश्चात् सुबुद्धि अमात्य जितशत्रु राजा के पास गया और बोला-'स्वामिन् ! मैंने स्थविर मुनि से धर्मोपदेश श्रवण किया है और उस धर्म की मैंने पुनः पुनः इच्छा की है। इस कारण हे स्वामिन् ! मैं संसार के भय से उद्विग्न हुआ हूं तथा जन्म-मरण से भयभीत हुआ हूं। यावत् आपकी आज्ञा पाकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ।'

तब जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय ! अभी कुछ वर्षों तक यावत् भोग भोगते हुए ठहरो, उसके अनन्तर हम दोनों साथ-साथ स्थविर मुनि के निकट मुंडित होकर प्रव्रज्या अंगीकार करेंगे।

तए णं सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेइ। तए णं तस्स जियसत्तुस्स रन्नो सुबुद्धिणा सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पच्चणुब्भवमाणस्स दुवालस वासाइं वीइक्कंताइं।

ते णं काले णं ते णं समए णं थेरागमणं, तए णं जियसत्तू धम्मं सोच्चा एवं जं नवरं देवाणुप्पिया ! सुबुद्धिं आमंतेमि, जेट्ठपुत्तं रज्जे ठवेमि, तए णं तुब्भं जाव पव्वयामि। 'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

तए णं जियसत्तू राया जेणेव सए गिहे (तेणेव) उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबुद्धिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'एवं खलु मए थेराणं जाव पव्वज्जामि, तुमं णं किं करेसि?'

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी-'जाव के अन्ने आहारे वा जाव पव्वयामि।'

तब सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु राजा के इस अर्थ को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् सुबुद्धि प्रधान के साथ, जितशत्रु राजा को मनुष्य संबंधी कामभोग भोगते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

तत्पश्चात् उस काल और उस समय में स्थविर मुनि का आगमन हुआ। तब जितशत्रु धर्मोपदेश सुन कर प्रतिबोध पाया किन्तु उसने कहा हे देवानुप्रिय ! मैं सुबुद्धि अमात्य को दीक्षा के लिए आमंत्रित करता हूं और ज्येष्ठ पुत्र को राजसिंहासन पर स्थापित करता हूं, तदन्तर आपके निकट दीक्षा अंगीकार करूँगा।' तब स्थविर मुनि ने कहा-'देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे वही करो।'

तब जितशत्रु राजा अपने घर आया। आकर सुबुद्धि को बुलवाया और कहा-'मैंने स्थविर भगवान् से-धर्मोपदेश श्रवण किया है। यावत् मैं प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा करता हूँ। तुम क्या करोगे-तुम्हारी क्या इच्छा है? तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से कहा-'यावत् आपके सिवाय मेरा दूसरा कौन आधार है? यावत् मैं भी प्रव्रज्या अंगीकार करूँगा।'

तं जइ णं देवाणुप्पिया! जाव पव्वयह, गच्छह णं देवाणुप्पिया! जेट्ठपुत्तं च कुडुंबे ठावेहि, ठावेत्ता सीयं दुरूहित्ता णं ममं अंतिए सीया जाव पाउब्भवेह। तए णं सुबुद्धी अमच्चे सीया जाव पाउब्भवइ।

तए णं जियसत्तू कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! अदीणसत्तुस्स कुमारस्स रायाभिसेयं उवट्ठवेह।' जाव अभिसिंचंति, जाव पव्वइए।

राजा जितशत्रु ने कहा-देवानुप्रिय! यदि तुम्हें प्रव्रज्या अंगीकार करनी है तो जाओ देवानुप्रिय! और अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करो और शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे समीप प्रकट होओ-आओ तब सुबुद्धि अमात्य शिविका पर आरूढ़ होकर यावत् आ गया।

तत्पश्चात् जितशत्रु ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर उनसे कहा-'जाओ देवानुप्रियो! अदीनशत्रु कुमार के राज्याभिषेक की सामग्री उपस्थित—तैयार करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने सामग्री तैयार की, यावत् कुमार का अभिषेक किया, यावत् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य के साथ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

तए णं जियसत्तू एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाणि परियाओ पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सिद्धे।

तए णं सुबुद्धी एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाणि परियाओ पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सिद्धे।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् जितशत्रु मुनि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक दीक्षापर्याय पाल कर अन्त में एक मास की संलेखना करके सिद्धि प्राप्त की।

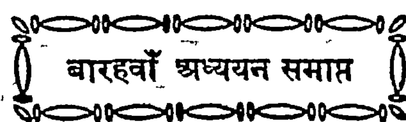
दीक्षा अंगीकार करने के अनन्तर सुबुद्धि मुनि ने भी ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक दीक्षा पर्याय पाली और अन्त मे एक मास की संलेखना करके सिद्धि पाई।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं बारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, त्ति बेमि।

श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी से कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने बारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह (उपर्युक्त) अर्थ कहा है। मैंने जैसा सुना, वैसा कहा।

उपनय

जो मिथ्यादृष्टि हैं, जो पाप में आसक्त हैं और जो गुणहीन हैं, वे भी सत्संग से खाई के जल के समान उज्ज्वल, पवित्र और गुणवान् बन जाते हैं।



तेरहवाँ दर्दुर अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं बारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तेरसमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

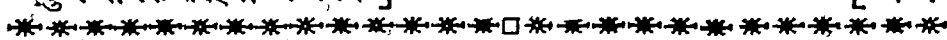
जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत सिद्धि को प्राप्त ने बारहवें ज्ञाताध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो सिद्धि को प्राप्त भगवान् ने तेरहवें ज्ञात-अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णामं णयरे होत्था। तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए णामं राया होत्था। तस्स णं रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं गुणसीलए नामं चेइए होत्था।

सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देना प्रारम्भ किया—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा था। राजगृह के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में गुणशील नामक उद्यान था।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे चउदसहिं समणसाहस्सीहिं जाव सद्धिं पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव रायगिहे णयरे, जेणेव गुणसीलए चेइए तेणेव समोसढे। अहापडिरूवं उवग्गहं गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर चौदह हजार साधुओं के यावत साथ अनुक्रम से विचरते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था और गुणशील उद्यान था, वहाँ पधारे। यथायोग्य अवग्रह (स्थानक) की याचना करके संयम और



तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। भगवान् को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली और धर्मोपदेश सुन कर वापिस लौट गई।

ते णं काले णं ते णं समए णं सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए दद्दुरंसि सीहासणंसि दद्दुरे देवे चउहिं समाणिय-साहस्सीहिं, चउहिं अग्गमहिसीहिं, तिहिं परिसाहिं, एवं जहा सुरियाभो जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणो विहरइ। इमं च णं केवल-कप्पं जंबुद्दीवं दीवं विपुलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगए जहा सुरियाभे।

उस काल और उस समय सौधर्म कल्प में, दद्दुरावतंसक नामक विमान में, सुधर्मा नामक सभा मे, दद्दुर नामक सिंहासन पर, दद्दुर नामक देव चार हजार सामानिक देवों, चार अग्र महिषियों और तीन परिषदों के साथ अर्थात् अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ, सूर्याभ देव के समान दिव्य भोगोपभोग भोगता हुआ विचर रहा था। उस समय उसने इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को अपने विपुल अवधिज्ञान से देखते-देखते राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में भगवान् महावीर को देखा। तब वह परिवार के साथ भगवान् के पास आया और सूर्याभ देव के समान नाट्यविधि दिखला कर वापिस लौट गया।

भंते त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'अहो णं भंते! दद्दुरे देवे महिड्ढिए ६, दद्दुरस्स णं भंते! देवस्स सा दिव्वा देविड्ढी ३ कहिं गया? कहिं अणुपविट्ठा?'

'गोयमा! सरीरं गया, सरीरं अणुपविट्ठा कूडागार दिट्ठंतो।'

'भगवन्!' इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'अहो भगवन्! दद्दुर देव महान् ऋद्धिमान् आदि है, तो हे भगवन्! दद्दुर देव की विक्रिया की हुई वह दिव्य देव-ऋद्धि कहाँ चली गई? कहाँ समा गई?

भगवान् ने उत्तर दिया-गौतम! वह देव-ऋद्धि शरीर मे गई, शरीर में समा गई। इस विषय में * कूटागार का दृष्टान्त समझना चाहिए।

---

*कूटागार (कूटाकार) शाला का स्पष्टीकरण इस प्रकार है एक कूट (शिखर)

'दद्दुरेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी किण्णा लद्धा जाव अभिसमन्नागया ?'

गौतमस्वामी ने पुनः प्रश्न किया-'भगवन् ! दद्दु र देव ने वह दिव्य देव-ऋद्धि किस प्रकार प्राप्त की ? किस प्रकार वह उसके समक्ष आई ?'

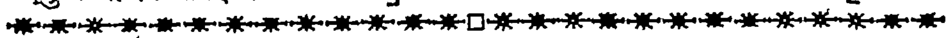
'एवं खलु गोयमा ! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नामं नयरे होत्था, गुणसीलए चेइए, तस्स णं रायगिहस्स सेणिए नामं राया होत्था। तत्थ णं रायगिहे णंदे णामं मणियारसेट्ठी परिवसइ, अड्ढे दित्ते जाव अपरिभूए।

ते णं काले णं ते णं समए णं अहं गोयमा समोसढे, परिसा निग्गया, सेणिए वि राया निग्गए। तए णं से णंदे मणियारसेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए पायचारेणं जाव पज्जुवासइ, णंदे धम्मं सोच्चा समणोवासए जाए। तए णं अहं रायगिहाओ पडिणिक्खंते बहिया जणवयविहारं विहरामि।

भगवान् उत्तर देते हैं-हे गौतम ! इसी जम्बू द्वीप में, भरत क्षेत्र में, राजगृह नगर था। गुणशील चैत्य था। राजगृह नगर का श्रेणिक नामक राजा था। उस राजगृह नगर मे नन्द नामक मणिकार (मणियार) सेठ रहता था। वह समृद्ध था, तेजस्वी था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था।

हे गौतम ! उस काल और उस समय में मैं गुणशील उद्यान में आया। परिषद् वन्दना करने के लिए निकली और श्रेणिक राजा भी निकला। तब नन्द मणियार सेठ इस कथा का अर्थ जान कर अर्थात मेरे आगमन का वृत्तान्त जान कर, स्नान करके विभूषित होकर, पैदल चलता हुआ आया, यावत मेरी उपासना करने लगा। फिर वह नन्द धर्म सुन कर श्रमणोपासक होगया। तत्पश्चात् मैं राजगृह से बाहर निकल कर बाहर जनपद में विचरण करने लगा।

के आकार की शाला थी। वह बाहर से गुप्त थी, पर भीतर से लिपी-पुती थी। उसके चारों ओर कोट था। उसमें वायु का भी प्रवेश नहीं हो पाता था। उसके समीप बहुत बडा जनसमूह रहता था। एक बार मेघ और तूफान बहुत जोर के आये तो सब लोग उसमें घुस गये और निर्भय हो गये। तो जैसे सब लोग उस शाला में समा गये, उसी प्रकार देवऋद्धि देवशरीर में समा गई।



तए णं से णंदे मणियारसेट्ठी अन्नया कयाई असाहुदंसणेण य अपज्जुवासणाए य अणणुसासणाए य असुस्सूसणाए य सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं मिच्छत्तं विप्पडिवन्ने जाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार श्रेष्ठी साधुओं का दर्शन न होने से, उनकी उपासना न करने से, उनका उपदेश न मिलने से, और वीतराग के वचन सुनने की इच्छा न होने से, क्रमशः सम्यक्त्व के पर्यायों की हीनता होती चली जाने से और मिथ्यात्व के पर्यायों की क्रमशः वृद्धि होते रहने से, एक बार किसी समय, मिथ्यात्वी हो गया।

तए णं णंदे मणियारसेट्ठी अन्नया गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलंसि मासंसि अट्ठमभत्तं परिगेण्हइ, परिगेण्हित्ता पोसहसालाए जाव विहरइ।

तए णं णंदस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि तण्हाए छुहाए य अभिभूयस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'धन्ना णं ते जाव ईसरपभिइओ जेसिं णं रायगिहस्स बहिया बहूओ वावीओ पोक्खरणीओ जाव सरसरपंतियाओ जत्थ णं बहुजणो ण्हाइ य पियइ य पाणियं च संवहति। तं सेयं खलु ममं कल्लं पाउप्पभाए सेणियं रायं आपुच्छित्ता रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए वेभारपव्वयस्स अदूरसामंते वत्थुपाढगरोइतंसि भूमिभागंसि जाव नंदं पोक्खरणिं खणावेत्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ।

तत्पश्चात् नन्द मणिकार श्रेष्ठी ने किसी समय ग्रीष्म ऋतु के अवसर पर, ज्येष्ठ मास में अष्टम भक्त (तेला) ग्रहण किया। ग्रहण करके वह पौषधशाला में विचरने लगा।

तत्पश्चात् नन्द श्रेष्ठी का अष्टमभक्त जब परिणत हो रहा था—पूरा होने को था, तब प्यास और भूख से पीडित हुए उसके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ-'वे यावत् ईश्वर सार्थवाह आदि धन्य हैं, जिनकी राजगृह नगर से बाहर बहुत सी वावडियाँ हैं पुष्कारिणियाँ हैं, यावत् सरोवरों की पंक्तियाँ हैं, जिनमें बहुतेरे लोग स्नान करते हैं, पानी पीते हैं और जिनसे पानी भर ले जाते हैं। तो मैं भी कल प्रभात होने पर श्रेणिक राजा की आज्ञा लेकर, राजगृह नगर

से बाहर, उत्तर पूर्व दिशा में, वैभार पर्वत से कुछ समीप में, वास्तु शास्त्र के पाठक के पसंद किये हुए भूमि भाग में, यावत् नंदा पुष्करिणी खुदवाऊँ, यह मेरे लिए उचित होगा।' नन्द श्रेष्ठी ने इस प्रकार विचार किया।

एवं संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभाए जाव पोसहं पारेइ, पारित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे मित्तणाइ जाव संपरिवुडे महत्थ जाव पाहुडं रायारिहं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव पाहुडं उवट्ठवेइ, उवट्ठवित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे रायगिहस्स बहिया जाव खणावेत्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया।'

इस प्रकार विचार करके, दूसरे दिन प्रभात होने पर पौषध पारा। पौषध पार कर स्नान किया, बलिकर्म किया, फिर मित्र ज्ञाति आदि से यावत परिवृत हो कर बहुमूल्य और राजा के योग्य उपहार लिया और श्रेणिक राजा के पास पहुँचा। उपहार राजा के समीप रक्खा और इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! आपकी अनुमति पाकर राजगृह नगर के बाहर यावत् पुष्करिणी खुदवाना चाहता हूँ।'

राजा ने उत्तर दिया-जैसे सुख उपजे, वैसा करो।'

तए णं णंदे सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठ-तुट्ठ राय-गिहं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता वत्थुपाढयरोइयंसि भूमि-भागंसि णंदं पोक्खरणिं खणाविउं पयत्ते यावि होत्था।

तए णं सा णंदा पोक्खरणी अणुपुव्वेणं खणमाणा खणमाणा पोक्खरणी जाया यावि होत्था—चाउक्कोणा समतीरा अणुपुव्वसुजाय-वप्पसीयलजला संछण्णपत्तबिसमुणाला बहुप्पलपउमकुमुदनलिणीसुभग-सोगंधियपुंडरीयमहापुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तपफुल्लकेसरोववेया परि-हत्थभमंतमत्तछप्पयअणेगसउणगणमिहुणवियरियसद्दुन्नइयमहुरसरनाइया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तत्पश्चात नंद मणिकार सेठ श्रेणिक राजा से आज्ञा पाकर हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह राजगृह नगर के बीचों बीच होकर निकला। निकल कर वास्तुशास्त्र

के पाठकों (शिल्प शास्त्र के ज्ञाताओं) द्वारा पसंद किये हुए भूमि भाग में नंदा नामक पुष्करिणी खुदवाने में प्रवृत्त हो गया-उसने पुष्करिणी का खनन-कार्य आरंभ करवा दिया ।

तत्पश्चात् नन्दा पुष्करिणी अनुक्रम से खुदती-खुदती चतुष्कोण और समान किनारों वाली पूरी पुष्करिणी हो गई। अनुक्रम से उसके चारों ओर घूमा हुआ परकोटा बन गया, उसका जल शीतल हुआ। जल पत्तों, बिसतंतुओं और मृणालों से आच्छादित हो गया। वह वापी बहुत से खिले हुए उत्पल (कमल)' पद्म (सूर्य विकासी कमल), कुमुद (चन्द्रविकासी कमल), नलिनी (कमलिनी-सुन्दर कमल), सुभग जातीय कमल, सौगंधिक कमल, पुण्डरीक (श्वेत कमल), महापुण्डरीक, शतपत्र (सौ पांखुड़ियों वाले) कमल, सहस्रपत्र (हजार पांखुड़ियों वाले) कमल की केसर से युक्त हुई। परिहत्थ नामक जल-जंतुओं, भ्रमण करते हुए मदोन्मत्त भ्रमरों और अनेक पक्षियों के युगलों द्वारा किये हुए शब्दों से उन्नत और मधुर स्वर से वह पुष्करिणी गूंजने लगी। वह प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो गई।

तए णं से णंदे मणियारसेट्ठी णंदाए पोक्खरणीए चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडे रोवावेइ। तए णं ते वणसंडा अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा य संगोविज्जमाणा य संवड्ढियमाणा य से वणसंडा जाया-किण्हा जाव निकुरंबभूया पत्तिया पुप्फिया जाव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

तत्पश्चात् नंद मणिकार श्रेष्ठी ने नंदा पुष्करिणी की चारो दिशाओं में चार वनखण्ड रुपवाये-लगवाये। उन वनखण्डो की क्रमशः अच्छी रखवाली की गई, संगोपन-सार-सँभाल की गई अच्छी तरह उन्हे बढ़ाया गया, अतएव वे वनखण्ड कृष्ण वर्ण वाले तथा गुच्छा रूप हो गये-खूब घने हो गये। वे पत्तों वाले, पुष्पों वाले यावत् पुनः पुनः शोभायमान हो गये।

तए णं नंदे मणियारसेट्ठी पुरच्छिमिल्ले वणसंडे एगं महं चित्तसभं करावेइ, अणेगखंभसयसंनिविट्ठं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं। तत्थ णं बहूणि किण्हाणि य जाव सुक्किलाणि य कट्ठ-कम्माणि य पोत्थकम्माणि य चित्तकम्माणि य लिप्पकम्माणि य गंथिमवेढिमपूरिमसंघातिम० उवदंसिज्जमाणाइं उवदंसिज्जमाणाइं चिट्ठंति।

तत्पश्चात् नन्द मणियार सेठ ने पूर्व दिशा के वनखण्ड मे एक विशाल चित्रसभा बनवाई। वह कई सौ खंभो की बनी हुई थी, प्रसन्नताजनक थी,

दर्शनीय थी, अभिरूप थी और प्रतिरूप थी। उस चित्रसभा मे बहुत-से कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठकर्म थे-पुतलियाँ वगैरह बनी थीं, पुस्त कर्म-वस्त्रों के पर्दे आदि थे, चित्रकर्म थे, लेप्यकर्म-मिट्टी के पुतले आदि थे, ग्रंथित कर्म थे-डोरा गूंथ कर बनाई हुई कलाकृतियाँ थीं, वेष्टित कर्म-फूलों की गेंद की तरह लपेट-लपेट कर बनाई हुई कलाकृतियाँ थी, इसी प्रकार पूरिम कर्म (स्वर्ण प्रतिमा के समान) और संघातिम कर्म-जोड़-जोड़ कर बनाई कला-कृतियाँ थीं। वह कलाकृतियाँ इतनी सुन्दर थीं कि दर्शकगण उन्हें एक दूसरे को दिखा-दिखा कर वर्णन करते थे।

तत्थ णं बहूणि आसणाणि य सयणीयाणि य अत्थुयपच्चत्थुयाइं चिट्ठंति। तत्थ णं बहवे नडा य णट्टा य जाव दिन्नभइभत्तवेयणा तालायरकम्मं करेमाणा विहरंति। रायगिहविणिग्गओ य जत्थ बहू जणो तेसु पुव्वन्नत्थेसु आसणसयणेसु संनिसन्नो य संतुयट्टो य सुण-माणो य पेच्छमाणो य सोहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ।

उस चित्रसभा में बहुत-से आसन (बैठने योग्य) और शयन (लेटने-सोने के योग्य) निरन्तर बिछे रहते थे। वहाँ बहुत-से नाटक करने वाले और नृत्य करने वाले जीविका भोजन एवं वेतन देकर रक्खे हुए थे। वे तालाचर (एक प्रकार का नाटक) किया करते थे। राजगृह से बाहर सैर के लिए निकले हुए बहुत लोग उस जगह आकर पहले से ही बिछे हुए आसनों और शयनों पर बैठ कर और लेट कर कथा-वार्त्ता सुनते थे और नाटक आदि देखते थे और शोभा (आनन्द) का अनुभव करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते थे।

तए णं णंदे मणियारसेट्ठी दाहिणिल्ले वणसंडे एगं महं महाणस-सालं करावेइ, अणेगखंभ० जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेंति, बहूणं समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगाणं परिभाएमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् णंद मणियार सेठ ने दक्षिण तरफ के वनखंड में एक बड़ी भोजनशाला बनवाई। वह भी अनेक सैकड़ों खंभों वाली यावत् प्रतिरूप थी। वहाँ भी बहुत-से लोग जीविका, भोजन और वेतन दे कर रक्खे थे। विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार पकाते थे और बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, दरिद्रों और भिखारियों को देते-देते रहते थे।

तए णं णंदे मणियारसेट्ठी पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं तेगिच्छिय-सालं करेइ, अणेगखंभसय० जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे वेज्जा य, वेज्जपुत्ता य, जाणुया य, जाणुयपुत्ता य, कुसला य, कुसलपुत्ता य, दिन्नभइभत्तवेयणा बहूणं वाहियाणं, गिलाणाण य, रोगियाण य, दुब्बलाण य, तेइच्छं करेमाणा विहरंति। अण्णे य एत्थ बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा तेसिं बहूणं वाहियाणं य रोगियाणं य, गिलाणाण य, दुब्बलाण य ओसहभेसज्जभत्तपाणेणं पडियारकम्मं करेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् नंद मणिकार सेठ ने पश्चिम दिशा के वनखंड में एक विशाल चिकित्साशाला (औषधालय) बनवायी। वह भी अनेक सौ खंभों वाली यावत् मनोहर थी। उस चिकित्सा शाला में बहुत-से वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञायक (वैद्यक शास्त्र न पढ़ने पर भी अनुभव के आधार से चिकित्सा करने वाले अनुभवी) ज्ञायकपुत्र, कुशल (अपने तर्क से ही चिकित्सा के ज्ञाता) और कुशलपुत्र आजीविका, भोजन और वेतन पर नियुक्त किये हुए थे। वे बहुत-से व्याधितों (शोक आदि से उत्पन्न चित्त-पीड़ा से पीड़ितों) की, ग्लानो (अशक्तो) की, रोगियों (ज्वर आदि से ग्रस्तो) की, और दुर्बलो की चिकित्सा करते रहते थे। उस चिकित्सा शाला में दूसरे भी बहुत-से लोग आजीविका, भोजन और वेतन देकर रक्खे थे। वे उन व्याधितो, रोगियों, ग्लानों, और दुर्बलों की औषध, भेषज, भोजन और पानी से सेवा-शुश्रूषा करते थे।

तए णं णंदे मणियारसेट्ठी उत्तरिल्ले वणसंडे एगं महं अलंकारिय-सभं करेइ, अणेगखंभसय० जाव पडिरूवं। तत्थ णं बहवे अलंकारिय-पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा बहूणं समणाण य, अणाहाण य, गिलाणाण य, रोगियाण य, दुब्बलाण य अलंकारियकम्मं करेमाणा करेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् नंद मणियार सेठ ने उत्तर दिशा के वनखंड में एक बड़ी अलंकारसभा (हजामत आदि की सभा) बन वाई। वह भी अनेक सैकड़ों स्तंभों वाली यावत् मनोहर थी। उसमें बहुत-से आलंकारिक पुरुष (शरीर का शृङ्गार करने वाले प्रभृति) पुरुष जीविका, भोजन और वेतन देकर रक्खे गये थे। वे बहुत-से श्रमणों, अनाथों, ग्लानो, रोगियों और दुर्बलों का अलंकार कर्म (शरीर की शोभा बढ़ाने के कार्य) करते थे।



तए णं तीए णंदाए पोक्खरणीए बहवे सणाहा य, अणाहा य, पंथिया य, पहिया य, करोडिया य, कारिया य, तणाहारा य, पत्तहारा य, कट्ठहारा य अप्पेगइया ण्हायंति अप्पेगइया पाणियं पियंति, अप्पेगइया पाणियं संवहंति, अप्पेगइया विसज्जियसेयजल्लमलपरिस्सम-निद्दखुप्पिवासा सुहंसुहेणं विहरंति।

रायगिहविणिग्गओ वि जत्थ बहुजणो, किं ते? जलरमणविविह-मज्जण-कयलिलयाघरय-कुसुमसत्थरय--अणेगसउणगणरुयरिभितसंकु--लेसु सुहंसुहेणं अभिरममाणो अभिरममाणो विहरइ।

उस नंदा पुष्करिणी में बहुत सनाथ, अनाथ, पथिक, पांथिक, करोटिका (कावड़ उठाने वाले), कारीगर, घसियारे, पत्तो के भारे वाले, लकड़हारे आदि आते थे; उनमे से कोई-कोई स्नान करते थे, कोई-कोई पानी पीते थे और कोई-कोई पानी भर ले जाते थे, कोइ-कोई पसीने, जल्ल (प्रवाही मैल), मल (जमा हुआ मैल), परिश्रम, निद्रा, क्षुधा और पिपासा को दूर करके सुखपूर्वक रहते थे।

नंदा पुष्करिणी में राजगृह नगर से भी निकले-आये हुए बहुत-से लोग क्या करते थे? वे लोग जल मे रमण करते थे, विविध प्रकार से स्नान करते थे, कदलीगृहों लतागृहों, पुष्पशय्या और अनेक पक्षियों के समूह के मनोहर शब्दो से युक्त नन्दा पुष्करिणी और चारो वनखंडों में क्रीड़ा करते-करते विचरते थे।

तए णं णंदाए पोक्खरणीए बहुजणो ण्हायमाणो य, पीयमाणो य, पाणियं च संवहमाणो य अन्नमन्नं एवं वयासी--'धण्णे णं देवाणु-प्पिया! णंदे मणियारसेट्ठी कयत्थे जाव जम्मजीवियफले जस्स णं इमेयारूवा णंदा पोक्खरणी चाउक्कोणा जाव पडिरूवा, जस्स णं पुरत्थिमिल्ले तं चेव सव्वं, चउसु वि वणसंडेसु जाव रायगिहविणिग्गओ जत्थ बहुजणो आसणेसु य सयणेसु य सन्निसन्नो य संतुयट्टो य पेच्छ-माणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ, तं धन्ने कयत्थे कयपुन्ने, कया णं लोया! सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले नंदस्स मणियारस्स।'

तए णं रायगिहे संघाडग जाव बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइ-क्खइ--धण्णे णं देवाणुप्पिया! णंदे मणियारे सो चेव गमओ जाव सुहंसुहेणं विहरइ।

तए णं णंदे मणियारे बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ धाराहयकलंबगं पिंव समूससियरोमकूवे परं सायासोक्खमणुभवमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् नंदा पुष्करिणी में स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भर कर ले जाते हुए बहुत-से लोग आपस में इस प्रकार कहते थे-'हे देवानुप्रिय ! नन्द मणियार सेठ धन्य है, कृतार्थ है, यावत् उसका जन्म और जीवन सफल है, जिसकी इस प्रकार की चौकोर यावत् मनोहर यह नन्दा पुष्करिणी है; जिसकी पूर्व दिशा में वनखड है-इत्यादि पूर्वोक्त चारो वनखंडों और उनमें बनी हुई चारों शालाओं का वर्णन यहाँ कहना चाहिये। यावत् राजगृह नगर से भी बाहर निकल कर बहुत-से लोग आसनों पर बैठते हैं, शयनीयो पर लेटते हैं, नाटक आदि देखते हैं और कथा-वार्त्ता कहते हैं और सुखपूर्वक विहार करते हैं। अतएव नन्द मणियार धन्य है, कृतार्थ है। लोको ! नन्द मणियार का मनुष्य भव सुलब्ध-सराहनीय है और उसका जन्म तथा जीवन भी सुलब्ध है।'

उस समय राजगृह में भी शृङ्गाटक आदि मार्गों मे गली-गली मे बहुतेरे लोग परस्पर इस प्रकार कहते थे-देवानुप्रिय ! नंद मणियार धन्य है, इत्यादि पूर्ववत् ही कहना चाहिए, यावत् जहाँ आकर लोग सुखपूर्वक विचरते हैं।

तब नंद मणियार बहुत लोगों से यह अर्थ (अपनी प्रशंसा की बातें) सुन कर हृष्ट-तुष्ट हुआ। मेघ की धारा से आहत कदम्ब वृक्ष के समान उसके रोम कूप विकसित हो गये-उसकी कली-कली खिल उठी। वह साता-जनित परम सुख का अनुभव करने लगा।

तए णं तस्स नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स अन्नया कयाई सरीरगंसि सोलस रोगायंका पाउब्भूया, तंजहा—

सासे कासे जरे दाहे, कुच्छिसूले भगंदरे।
अरिसा अजीरए दिट्ठि-मुद्धसूले अगारए ॥ १ ॥
अच्छिवेयणा कन्नवेयणा कंडू दउदरे कोढे।

तए णं से णंदे मणियारसेट्ठी सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूते समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव महापहपहेसु महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिया !

णंदस्स मणियारसेट्ठिस्स सरीरगंसि सोलस रोगायंका पाउब्भूया, तंजहा सासे य जाव कोढे। तं जो णं इच्छइ देवाणुप्पिया! वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुअपुत्तो वा कुसलो वा कुसलपुत्तो वा नंदस्स मणियारस्स तेसिं च णं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामेत्तए, तस्स णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारे विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह। घोसित्ता जाव पच्चप्पिणह।' ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।

कुछ समय के पश्चात् किसी समय नंद मणियार सेठ के शरीर में सोलह रोगांतक अर्थात् ज्वर आदि रोग और शूल आदि आतंक उत्पन्न हुए। वे इस प्रकारः—(१) श्वास (२) कास-खांसी (३) ज्वर (४) दाह-जलन (५) कुक्षिशूल-कूंख का शूल (६) भगंदर (७) अर्ष-बवासीर (८) अजीर्ण (६) नेत्रशूल (१०) मस्तक शूल (११) भोजन विषयक अरुचि (१२) नेत्र वेदना (१३) कर्ण वेदना (१४) कंडू-खाज (१५) दकोदर-जलोदर और (१६) कोढ़।

नंद मणियार सेठ इन सोलह रोगातंकों से पीड़ित हुआ। तब उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा—'देवानुप्रियो! तुम जाओ और राजगृह नगर में शृङ्गाटक यावत् छोटे-मोटे मार्गों में, ऊँची आवाज से घोषणा करते हुए कहो कि—'हे देवानुप्रियो! नंद मणियार श्रेष्ठी के शरीर में सोलह रोगातंक उत्पन्न हुए हैं, यथा—श्वास से कोढ़ तक। तो हे देवानुप्रियो! जो कोई वैद्य या वैद्यपुत्र, जानकार या जानकार का पुत्र, कुशल या कुशल का पुत्र, नंद मणियार के उन सोलह रोगातंको में से एक भी रोगातंक को उपशान्त करना चाहे—मिटा देगा, देवानुप्रियो! नंद मणियार उसे विपुल धनसम्पत्ति प्रदान करेगा।' इस प्रकार दूसरी बार और तीसरी बार घोषणा करो। घोषणा करके मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ।' कौटुम्बिक पुरुषों के आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपो।

तए णं रायगिहे नयरे इमेयारूवं घोसणं सोच्चा णिसम्म वहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाव कुसलपुत्तो य सत्थकोसहत्थगया य कोसगपायहत्थगया य सिलियाहत्थगया य गुलियाहत्थगया य ओसहभेसज्जहत्थगया य सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निक्खमंति, निक्खमित्ता रायगिहं मज्झंमज्झेणं जेणेव णंदस्स मणियारसेट्ठिस्स गिहे तेणेव उवा-

गच्छंति, उवागच्छित्ता णंदस्स मणियारसेट्ठिस्स सरीरं पासंति, तेसिं रोगायंकाणं नियाणं पुच्छंति, णंदस्स मणियारसेट्ठिस्स बहूहिं उव्वलणेहि य उव्वट्टणेहि य सिणेहपाणेहि य वमणेहि य विरेयणेहि य सेयणेहि य अवदहणेहि य अवण्हाणेहि य अणुवासणेहि य वत्थिकम्मेहि य निरूहेहि य सिरावेहेहि य तच्छणाहि य सिरावेढेहि य तप्पणाहि य पुढ (ट) वाएहि य छल्लीहि य वल्लीहि य मूलेहि य कंदेहि य पत्तेहि य पुप्फेहि य फलेहि य बीएहि य सिलियाहि य गुलियाहि य ओसहेहि य भेसज्जेहि य इच्छंति तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए। नो चेव णं संचाएंति उवसामेत्तए।

राजगृह नगर में इस प्रकार की घोषणा सुन कर और हृदय में धारण करके वैद्य, वैद्यपुत्र, यावत् कुशलपुत्र हाथ मे शस्त्र कोश (शस्त्रों की पेटी) लेकर, कोशक का पात्र हाथ में लेकर शिलिका (शस्त्रों को तीखा करने का पाषाण हाथ में लेकर गोलियाँ हाथ में लेकर और औषध तथा भैषज हाथ में लेकर अपने-अपने घरों से निकले। निकल कर राजगृह के बीचोंबीच होकर नंद मणियार के घर आये। उन्होंने नंद मणियार के शरीर को देखा और नंद मणियार सेठ से रोग उत्पन्न होने का कारण पूछा। फिर उद्वलन (एक विशेष प्रकार के लेप) द्वारा, उद्वर्तन (उबटन जैसे लेप) द्वारा, स्नेहपान (औषधियाँ डाल कर पकाये हुए घी-तेल आदि) द्वारा, वमन द्वारा, विरेचन द्वारा, स्वेदन से (पसीना निकाल कर), अवदहन से (डाम लगा कर), अपस्नान (जल में चिकनापन दूर करने वाली वस्तुएँ मिला कर किये हुए स्नान) से, अनुवासना से (गुदा मार्ग से चमड़े के यंत्र द्वारा उदर में तेल आदि पहुँचा कर), वस्ति कर्म से (गुदा मे वत्ती आदि डाल कर भीतरी सफाई करके), निरुह द्वारा (चर्म यंत्र का प्रयोग करके अनुवासना की तरह गुदामार्ग से पेट में कोई वस्तु पहुंचा कर), शिरावेध से (नस काट कर रक्त निकाल कर या रक्त उपर से डाल कर), तक्षण से (छुरा आदि से चमड़ी आदि छील कर) प्रतक्षण (थोड़ी चमड़ी काटने) से, शिरोवस्ति से (मस्तक पर बांधे चमड़े पर पकाये हुए तेल आदि के सिंचन से), तर्पण (स्निग्ध पदार्थों के चुपड़ने) से पुटपाक (आग में पकाई औषधों) से रोहिणी आदि की छालों से, गिलोय आदि वेलों से, मूलों से, कंदों से, पत्तो से, पुष्पों से, फलों से, बीजों से, शिलिका (घास विशेष) से, गोलियों से, औषधों से, भेषजों से, (अनेक औषधें मिला कर तैयार की हुई दवाओं) से, उन सोलह रोगातंकों में से एक-एक रोगा-

तंक को उन्होंने शान्त करना चाहा, परन्तु वे एक भी रोगातंक को शान्त करने में समर्थ न हो सके।

तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया अ जाणुयपुत्ता य कुसला य कुसलपुत्ता य जाहे नो संचाएंति तेसिं सोलसण्हं रोगाणं एगमवि रोगायंकं उवसामेत्तए ताहे संता तंता जाव पडिगया।

तए णं णंदे तेहिं सोलसेहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे नंदा-पोक्खरणीए मुच्छिए तिरिक्खजोणिएहिं निबद्धाउए, बद्धपएसिए अट्ट-दुहट्टवसट्टे कालमासे कालं किच्चा नंदाए पोक्खरणीए दद्दुरीए कुच्छिंसि दद्दुरत्ताए उववन्ने।

तत्पश्चात् बहुत-से वैद्य, वैद्यपुत्र, जानकार, जानकारों के पुत्र, कुशल और कुशलपुत्र, जब उन सोलह रोगों में से एक भी रोग को उपशान्त करने में समर्थ न हुए तो थक गये, खिन्न हुए, यावत् अपने-अपने घर लौट गये।

तत्पश्चात नन्द मणियार उन सोलह रोगातंकों से अभिभूत हुआ और नन्दा पुष्करिणी में अतीव मूर्छित हुआ। इस कारण उसने तिर्यंच योनि संबधी आयु का बध किया, प्रदेशो का बंध किया। आर्त्तध्यान के वशीभूत हो कर मृत्यु के समय में काल करके, उसी नन्दा पुष्करिणी में, एक मेंढकी की कूंख मे मेंढक के रूप में उत्पन्न हुआ।

तए णं णंदे दद्दुरे गब्भाओ विणिम्मुक्के समाणे उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते नंदाए पोक्खरणीए अभिरममाणे अभिरममाणे विहरइ।

तत्पश्चात नंद मण्डूक गर्भ से बाहर निकला और अनुक्रम से बाल्या-वस्था से मुक्त हुआ। उसका ज्ञान परिणत हुआ-वह समझदार हो गया और यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। तब नंदा पुष्करिणी मे रमण करता-करता विचरने लगा।

तए णं णंदाए पोक्खरणीए बहू जणे ण्हायमाणो अ पियमाणो य पाणियं संवहमाणो य अन्नमन्नस्स एवं आइक्खइ-'धन्ने णं देवाणु-प्पिया णंदे मणियारे जस्स णं इमेयारूवा णंदा पुक्खरणी चाउक्कोणा

जाव पडिरूवा, जस्स णं पुरत्थिमिल्ले वणसंडे चित्तसभा अणेगखंभ० तहेव चत्तारि सहाओ जाव जम्मजीविअफले ।'

तत्पश्चात् नन्दा पुष्करिणी में बहुत-से लोग स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भर कर ले जाते हुए आपस में इस प्रकार कहते थे-देवानुप्रिय ! नंद मणियार धन्य है, जिसकी यह चतुष्कोण यावत् मनोहर पुष्करिणी है, जिसके पूर्व के वनखंड मे अनेक सैकड़ो खंभों की बनी चित्रसभा है । इसी प्रकार चारो वनखंडो और चारो सभाओ के विषय में कहना चाहिए । यावत् नन्द मणियार का जन्म और जीवन सफल है । '

तए णं तस्स दद्दुरस्स तं अभिक्खणं अभिक्खणं बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जेत्था–'से कहिं मन्ने मए इमेयारूवे सद्दे णिसंतपुव्वे' त्ति कट्टु सुभेणं परिणामेणं जाव जाइसरणे समुप्पन्ने, पुव्वजाइं सम्मं समागच्छइ ।

तत्पश्चात् बार-बार बहुत लोगों के पास से यह बात सुन कर और मन में समझ कर उस मेंढ़क को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'जान पड़ता है कि मैंने इस प्रकार के शब्द पहले भी कहीं सुने है ।' इस तरह विचार करने से, शुभ परिणाम के कारण उसे यावत् जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे अपना पूर्व जन्म अच्छी तरह याद हो आया ।

तए णं तस्स दद्दुरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जेत्था–'एवं खलु अहं इहेव रायगिहे नगरे णंदे णामं मणियारे अड्ढे । ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे समोसढे, तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइए सत्तसिक्खावइए जाव पडिवन्ने । तए णं अहं अन्नया कयाई असाहुदंसणेण य जाव मिच्छत्तं विप्पडिवन्ने । तए णं अहं अन्नया कयाई गिम्हे कालसमयंसि जाव उवसंपज्जित्ता णं विहरामि । एवं जहेव चिंता आपुच्छणा नंदा पुक्खरणी वणसंडा सहाओ तं चेव सव्वं जाव नंदाए पुक्खरणीए दद्दुरत्ताए उववन्ने ।

तं अहो ! णं अहं अहन्ने अपुन्ने अकयपुन्ने निग्गंथाओ पावय-

णाओ नट्ठे भट्ठे परिब्भट्ठे, तं सेयं खलु ममं सयमेव पुव्वपडिवन्नाइं पंचाणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।'

तत्पश्चात् उस मेंढक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ-'मैं इसी राजगृह नगर में नन्द नामक मणियार सेठ था-धन-धान्य आदि से समृद्ध था। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का आगमन हुआ। तब मैं ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत यावत् अंगीकार किये थे। कुछ समय बाद किसी समय साधु के दर्शन न होने से मैं यावत् मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय ग्रीष्म काल के अवसर पर मैं तेले की तपस्या करके विचर रहा था। तब मुझे पुष्करिणी खुदवाने का विचार हुआ, श्रेणिक राजा से आज्ञा ली, नन्दा पुष्करणी खुदवाई, वनखण्ड लगवाये, चार सभाएँ बनवाईं, इत्यादि सब पूर्ववत् समझना चाहिए; यावत् पुष्करिणी के प्रति आसक्ति होने के कारण मैं नन्दा पुष्करिणी मे मेंढक पर्याय में उत्पन्न हुआ। अतएव मैं अधन्य हूं, अपुण्य हूं, मैंने पुण्य नहीं किया, अतः मैं निर्ग्रंथ प्रवचन से नष्ट हुआ, भ्रष्ट हुआ और एकदम भ्रष्ट हो गया। तो अब मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि पहले अंगीकार किये पांच अणुव्रतों को और सात शिक्षाव्रतों को मैं स्वयं ही पुनः अंगीकार करके विचरूँ।'

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता पुव्वपडिवन्नाइं पंचाणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-'कप्पइ मे जावजीवं छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए। छट्ठस्स वि य णं पारणगंसि कप्पइ मे णंदाए पोक्खरणीए परिपेरंतेसु फासुएणं ण्हाणोदएणं उम्मद्दणाइं लोलियाहि य वित्तिं कप्पेमाणस्स विहरित्तए।' इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ, जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरइ।

नंद मणियार के जीव उस मेंढक ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके पहले अगीकार किये हुए पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को पुनः अंगीकार किया। अंगीकार करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया-'आज से जीवन-पर्यन्त मुझे वेले-वेले की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरना कल्पता है। वेले की पारणा में भी नंदा पुष्करिणी के पर्यन्त भागों में, प्रासुक (अचित्त) हुए स्नान के जल से और मनुष्यों के उन्मदन आदि द्वारा

उतारे मैल से अपनी आजीविका चलाना कल्पता है।' उसने ऐसा अभिग्रह धारण किया। अभिग्रह धारण करके वेले-वेले की तपस्या करता हुआ विचरने लगा।

ते णं काले णं ते णं समए णं अहं गोयमा! गुणसीलए चेइए समोसढे। परिसा णिग्गया। तए णं णंदाए पुक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं संवहमाणो य अन्नमन्नं एवमाइक्खइ-जाव समणे भगवं महावीरे इहेव गुणसीलए चेइए समोसढे। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामो जाव पज्जुवासामो, एयं मे इहभवे परभवे य हियाए जाव आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

हे गौतम! उस काल और उस समय में मैं गुणशील चैत्य में आया। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। उस समय नन्दा पुष्करिणी में बहुत-से जन नहाते, पानी पीते और पानी ले जाते हुए आपस में इस प्रकार बातें करने लगे कि—यावत् श्रमण भगवान महावीर यहीं गुणशील उद्यान में समवसृत हुए हैं। सो हे देवानुप्रिय! हम चलें और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करें, यावत् उनकी उपासना करें। यह हमारे लिए इह भव में और परभव में हित के लिए एवं सुख के लिए होगा और अनुगामीपन के लिए होगा-साथ जाएगा।

तए णं तस्स दद्दुरस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे, तं गच्छामि णं वंदामि' जाव एवं संपेहेइ, संपेहित्ता णंदाओ पुक्खरिणीओ सणियं सणियं उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव दद्दुरगईए वीइवयमाणे जेणेव ममं अंतिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर और हृदय में धारण करके उस मेंढक को ऐसा विचार यावत् उत्पन्न हुआ-निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर यावात् पधारे हैं, तो मैं जाऊँ और भगवान् को वन्दना करूँ। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके वह धीरे-धीरे नन्दा पुष्करिणी से बाहर निकला। निकल कर जहाँ राजमार्ग था, वहाँ आया। आकर उस उत्कृष्ट यावत् दद्दुरगति

से अर्थात् मेंढक के योग्य तीव्र चाल से चलता हुआ मेरे पास आने के लिए कृत संकल्प हुआ–रवाना हुआ।

इमं च णं सेणिए राया भंभसारे ण्हाए कयकोउय जाव सव्वालंकारविभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं सेयवरचामराहि य हयगयरह० महया भडचडगर० चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे मम पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से दद्दुरे सेणियस्स रण्णो एगेणं आसकिसोरएणं वामपाएणं अक्कंते समाणे अंतनिग्घाइए कए यावि होत्था।

इधर भंभसार अपरनामा श्रेणिक राजा ने स्नान किया एवं कौतुक-मंगल किया। यावत् वह सब अलंकारों से विभूषित हुआ और श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुआ। कोरंट वृक्ष के फूलों की माला वाले छत्र से, श्वेत चामरों से शोभित होता हुआ, अश्व, हाथी, रथ और बड़े-बड़े सुभटों के समूह रूप चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर मेरे चरणों की वन्दना करने के लिए शीघ्र आ रहा था। तब वह मेंढक श्रेणिक राजा के एक अश्वकिशोर (नौजवान घोड़े) के बाएँ पैर से दब गया। उसकी आँतें बाहर निकल गईं।

तए णं से दद्दुरे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु एगंतमवक्कमइ, करयलपरिग्गहियं तिक्खुत्तो सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

नमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स मम धम्मायरियस्स जाव संपाविउकामस्स पुव्विं पि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए, जाव थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए, तं इयाणिं पि तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, जावज्जीवं सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं पच्चक्खामि, जावजीवं जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं जाव मा फुसंतु एयं पि णं चरिमेहिं ऊसासेहिं वोसिरामि' त्ति कट्टु।

घोड़े के पैर के नीचे दबने के बाद वह मेंढक शक्तिहीन, बलहीन, वीर्य (उद्यम) हीन और पुरुषकार-पराक्रम से हीन हो गया। 'अब इस जीवन को

धारण करना शक्य नहीं है' ऐसा जानकर वह एक तरफ गया। वहाँ दोनो हाथ जोड़ कर, तीन बार, मस्तक पर आवर्त्तन करके, मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोला–'अरुहंत (जिन्हे संसार मे पुनः उत्पन्न नहीं होना है ऐसे) यावत् निर्वाण को प्राप्त समस्त तीर्थंकर भगवन्तो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य यावत् मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीर के समीप स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया था, यावात् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया था; तो अब भी मैं उन्ही के निकट समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूं, यावत् समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ; जीवन पर्यन्त के लिए सर्व अशन, पान, खादिम और स्वादिम-चारों प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ। यह जो मेरा इष्ट और कान्त शरीर है, जिसके विषय में चाहा था कि इसे रोग आदि स्पर्श न करें, इसे भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक त्यागता हूँ।' इस प्रकार कह कर दद्दुर ने पूर्ण प्रत्याख्यान किया*।

तए णं से दद्दुरे कालमासे कालं किच्चा जाव सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे उववायसभाए दद्दुरदेवत्ताए उववन्ने। एवं खलु गोयमा! दद्दुरेणं सा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता जाव अभिसमन्नागया।

तत्पश्चात् वह मेंढक मृत्यु के समय काल करके, यावत् सौधर्म कल्प में, दद्दुरावतंसक नामक विमान में, उपपातसभा में, दद्दुरदेव के रूप मे उत्पन्न हुआ। हे गौतम! दद्दुर देव ने इस प्रकार वह दिव्य देवर्धि लब्ध की है, प्राप्त की है और पूर्णरूपेण प्राप्त की है-उसके समक्ष आई है।

'दद्दुरस्स णं भंते! देवस्स केवइकालं ठिई पण्णत्ता?'

'गोयमा! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। से णं दद्दुरे देवे आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं, अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, वुज्झिहिइ, जाव अंतं करिहिइ।

---

*तिर्यंचगति में देशविरति हो सकती है, सर्वविरति नही, फिर मेंढक ने सर्वविरति रूप प्रत्याख्यान कैसे कर लिया? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि यद्यपि तिर्यंचो का कहीं-कहीं महाव्रतों का धारण करना आगम में सुना जाता है, तो भी उनमें चारित्र रूप परिणाम सभव नही है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया-'भगवान्! दर्दुर देव की उस देवलोक में कितनी स्थिति कही है ?

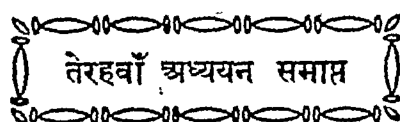
भगवान् उत्तर देते हैं-गौतम! चार पल्योपम की स्थिति कही गई है। तत्पश्चात् वह दर्दुर देव आयु के क्षय से, भव के क्षय से और स्थिति के क्षय से, तुरंत वहाँ से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, यावत् जन्म-मरण का अन्त करेगा।

एवं खलु समणेणं भगवया महावीरेणं तेरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, त्ति बेमि।

श्रीसुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं-इस प्रकार निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर ने तेरहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वैसा कहता हूं।

उपनय

सम्यक्त्व पाकर भी जीव सुसाधुओं के दर्शन और समागम के अभाव में मिथ्यादृष्टि हो जाते है। ममत्व दुर्गति का कारण है। भावशुद्धि से सद्गति प्राप्त होती है। यही इस अध्ययन का सार है।



चौदहवाँ तेतलिपुत्र-अध्ययन

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं तेरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चोद्दसमस्स णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

जम्बू स्वामी श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं-'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने तेरहवें ज्ञात-अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है, तो चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

'एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं तेयलिपुरे णामं णयरे होत्था। तस्स णं तेयलिपुरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पमयवणे णामं उज्जाणे होत्था।

श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं-'हे जम्बू ! उस काल और उस समय में तेतलिपुर नामक नगर था। उस तेतलिपुर नगर से बाहर उत्तरपूर्व-ईशान-दिशा में प्रमदवन नामक उद्यान था।

तत्थ णं तेयलिपुरे णयरे कणगरहे णामं राया होत्था। तस्स णं कणगरहस्स रण्णो पउमावई णामं देवी होत्था। तस्स णं कणगरहस्स रण्णो तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे होत्था सामदामभेयदंडे।

उस तेतलिपुर नगर में कनकरथ नामक राजा था। कनकरथ राजा की पद्मावती नामक देवी (रानी) थी। कनकरथ राजा का तेतलिपुत्र नामक अमात्य था, जो साम, दाम, भेद और दंड-इन चारों नीतियों में निष्णात था।

तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूसियारदारए होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए। तत्स णं भद्दा नामं भारिया होत्था। तस्स णं कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया होत्था, रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा।

तेतलिपुर नगर में कलाद नामक एक मूषिकारदारक (स्वर्णकार) था। वह धनाढ्य था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। उस कलाद मूषिकारदारक की पुत्री और भद्रा की आत्मजा (उदरजात) पोट्टिला नाम की लड़की थी। वह रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट और शरीर से भी उत्कृष्ट थी।

तए णं पोट्टिला दारिया अन्नया कयाइ ण्हाया सव्वालंकारविभूसिया चेडियाचक्कवालसंपरिवुडा उप्पिं पासायवरगया आगासतलगंसि कणगमएणं तिंदूसएणं कीलमाणी कीलमाणी विहरइ।

इमं च णं तेयलिपुत्ते अमच्चे ण्हाए आसखंधवरगए महया भडचडगरआसवाहणियाए णिज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।

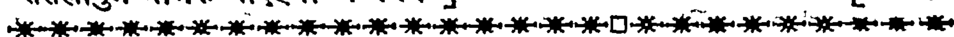
एक बार किसी समय पोट्टिला दारिका (लड़की) स्नान करके और सब अलंकारो से विभूपित होकर, दासियों के समूह से परिवृत होकर, प्रासाद के ऊपर रही हुई अगासी की भूमि में सोने की गेंद से क्रीड़ा कर रही थी।

इधर तेतलिपुत्र अमात्य स्नान करके, उत्तम अश्व के स्कंध पर आरूढ़ होकर, बड़े-सुभटों के समूह के साथ घुड़सवारी के लिए निकला। वह कलाद मूषिकारदारक के घर के कुछ समीप होकर जा रहा था।

तए णं से तेयलिपुत्ते मूसियारदारगगिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे वीईवयमाणे पोट्टिलं दारियं उप्पिं पासायवरगयं आगासतलगंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणीं पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जाव अज्झोववन्ने कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एस णं देवाणुप्पिया ! कस्स दारिया किंनामधेज्जा ?'

तए णं कोडुंबियपुरिसे तेतलिपुत्तं एवं वयासी—'एस णं सामी ! कलायस्स मूसियारदारगस्स धूआ भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा।'

तत्पश्चात तेतलिपुत्र ने मूषिकार दारक के घर के कुछ पास से जाते हुए प्रसाद की ऊपर की भूमि पर अगासी में सोने की गेंद से क्रीड़ा करती



पोट्टिला दारिका को देखा। देख कर पोट्टिला दारिका के रूप, यौवन और लावण्य में यावत् अतीव मोहित होकर कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलाया और उनसे पूछा-'देवानुप्रियो ! यह किसकी लड़की है ? इसका नाम क्या है ?'

तब कौटुम्बिक पुरुषो ने तेतलिपुत्र से कहा-'स्वामिन् ! यह कलाद मूषिकार दारक की पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नामक लड़की है। रूप, यौवन और लावण्य से उत्तम है और उत्कृष्ट शरीर वाली है।'

तए णं से तेतलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिनियत्ते समाणे अब्भितरट्ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कलादस्स मूसियारदारगस्स धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह ।'

तए णं ते अब्भितरठाणिज्जा पुरिसा तेतलिणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव करयल० तह त्ति जेणेव कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहे तेणेव उवागया। तए णं कलाए मूसियारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता आसणेणं उवनिमंतेइ, उवनिमंतित्ता आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी-'संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं ?'

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र घुड़सवारी से पीछे लौटा तो उसने अभ्यन्तर स्थानीय (खानगी काम करने वाले) पुरुषों को बुला कर कहा-'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और कलाद मूषिकार दारक की पुत्री भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका को मेरी पत्नी के रूप में मँगनी करो।

तब वे अभ्यन्तर स्थानीय पुरुष तेतलिपुत्र के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए। यावत् दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर अंजलि करके 'तह त्ति' (बहुत अच्छा) कह कर मूषिकार दारक कलाद के घर आये। मूषिकार दारक कलाद ने उन पुरुषों को आते देखा तो वह हृष्ट-तुष्ट हुआ, आसन से उठ खड़ा हुआ, सात-आठ कदम सामने गया; उसने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रण किया। जब वे आसन पर बैठे स्वस्थ हुए और विश्राम ले चुके तो कलाद ने पूछा-'देवानुप्रियो ! आज्ञा दीजिए। आपके आने का क्या प्रयोजन है ?'

तए णं ते अब्भिंतरट्ठाणिज्जा पुरिसा कलायस्स मूसियारदारयस्स एवं वयासी—'अम्हे णं देवाणुप्पिया! तव धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइ णं जाणसि देवाणुप्पिया! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो ता दिज्जउ णं पोट्टिला दारिया तेयलिपुत्तस्स, ता भण देवाणुप्पिया! किं दलामो सुक्कं?'

तब उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों ने कलाद मूषिकार दारक से इस प्रकार कहा – 'देवानुप्रिय! हम तुम्हारी दुहिता भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका की, तेतलिपुत्र की पत्नी के रूप में मंगनी करते हैं। देवानुप्रिय! अगर तुम समझते हो कि यह संबध उचित है, प्राप्त या पात्र है, प्रशसनीय है दोनों का संयोग सदृश है. तो तेतलिपुत्र को पोट्टिला दारिका प्रदान करो। प्रदान करते हो तो, देवानुप्रिय! कहो, इसके बदले क्या शुल्क (धन) देवें?

तए णं कलाए मूसियारदारए ते अब्भिंतरट्ठाणिज्जे पुरिसे एवं वयासी—'एस चेव णं देवाणुप्पिया! मम सुक्के जं णं तेतलिपुत्ते मम दारियानिमित्तेणं अणुग्गहं करेइ।' ते ठाणिज्जे पुरिसे विपुलेणं असण-पाणखाइमसाइमेणं पुप्फवत्थ जाव मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता संमाणित्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कलाद मूषिकारदारक ने उन अभ्यन्तर-स्थानीय पुरुषों से कहा – 'देवानुप्रियो! यही मेरे लिए शुल्क है जो तेतलिपुत्र, दारिका के निमित्त से मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं।' इस प्रकार कह कर उसने उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से, पुष्प, वस्त्र आदि से यावत् माला और अलंकार से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन्हें विदा किया।

तए णं कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव तेतलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तं एयमट्ठं निवेयंति।

तत्पश्चात् वे अभ्यन्तरस्थानीय पुरुष कलाद मूषिकारदारक के घर से निकले। निकल कर तेतलिपुत्र अमात्य के पास पहुँचे। तेतलिपुत्र को यह अर्थ (वृत्तान्त) निवेदन किया।



तए णं कलाए मूसियारदारए अन्नया कयाइं सोहणंसि तिहि-नक्खत्तमुहुत्तंसि पोट्टिलं दारियं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं सीयं दुरूहइ, दुरुहित्ता मित्तणाइसंपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सव्विड्ढीए तेयलिपुरं मज्झंमज्झेणं जेणेव तेतलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं दारियं तेतलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ ।

तत्पश्चात् कलाद मूषिकारदारक ने अन्यदा कदाचित शुभ तिथि नक्षत्र और मुहूर्त्त में पोट्टिला दारिका को स्नान करा कर और समस्त अलकारों से विभूषित करके शिविका मे आरूढ़ किया। वह मित्रों और ज्ञातिजनों से परिवृत होकर अपने घर से निकल कर, पूरे ठाठ के साथ, तेतलिपुर के बीचोंबीच होकर तेतलिपुत्र अमात्य के पास पहुँचा। पहुँच कर कर पोट्टिला दारिका को स्वयमेव तेतलिपुत्र की पत्नी के रूप में प्रदान किया।

तए णं तेतलिपुत्ते पोट्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए सद्धिं पट्टयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्गिहोमं करेइ, करित्ता पोट्टिलाए भारियाए मित्तणाइ जाव परिजणं विपुलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पुप्फ जाव पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पोट्टिला दारिका को भार्या के रूप में आई देखी। देख कर वह पोट्टिला के साथ पट्ट पर बैठा। बैठ कर श्वेत-पीत (चांदी सोने के) कलशों से उसने स्वयं स्नान किया। स्नान करके अग्नि मे होम किया। तत्पश्चात् पोट्टिला भार्या के मित्रजनों, ज्ञातिजनों यावत् परिजनों को अशन पान खादिम स्वादिम से तथा पुष्प वस्त्र और अलंकार आदि से सत्कार – सन्मान करके विदा किया।

तए णं से तेतलिपुत्ते, पोट्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाइं जाव विहरइ ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अमात्य पोट्टिला भार्या में अनुरक्त होकर, अविरक्त-आसक्त होकर यावत् उदार भोग भोगने लगा।

तए णं से कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे

य कोट्ठागारे य अंतेउरे य मुच्छिए ४ जाए जाए पुत्ते वियंगेइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ, एवं पायंगुलियाओ पायंगुट्ठए वि कन्नसक्कुलीए वि नासापुडाइं फालेइ, अंगमंगाइं वियंगेइ।

वह कनकरथ राजा राज्य में, राष्ट्र में, बल (सेना) मे, वाहनो में, कोष में, कोठार में तथा अन्तःपुर में अत्यन्त आसक्त हो गया। अतएव वह जो जो पुत्र उत्पन्न होते उन्हें विकलांग कर देता था। किन्हीं की हाथ की अंगुलियाँ काट देता किन्हीं के हाथ का अगूठा काट देता, इसी प्रकार पैर की उंगलियाँ, पैर का अंगूठा, कर्णशष्कुली (कान की पपड़ी) और किसी का नासिकापुट काट देता था। इस प्रकार उसने सभी पुत्रों को अवयवविकल कर दिया।

तए णं तीसे पउमावईए देवीए अन्नया पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था–'एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगेइ जाव अंगमंगाइं वियंगेइ, तं जइ अहं दारयं पयायामि, सेयं खलु ममं तं दारगं कणगरहस्स रहस्सियं चेव सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–

तत्पश्चात् पद्मावती देवी को एक वार मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–कनकरथ राजा राज्य आदि मे आसक्त होकर यावत् पुत्रों को विकलांग कर देता है, यावत् उनके अंग-अंग काट लेता है, तो यदि मेरे अब पुत्र उत्पन्न हो तो मेरे लिए यह श्रेयस्कार होगा कि उस पुत्र को मैं कनकरथ से छिपा कर पालूँ-पोसूँ।' पद्मावती देवी ने ऐसा विचार किया और विचार करके तेतलिपुत्र अमात्य को बुलवाया। बुलवा कर उससे कहा–

'एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, तं जइ णं अहं देवाणुप्पिया! दारगं पयायामि, तए णं तुमं कणगरहस्स रहस्सियं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे संवड्ढेहि, तए णं से दारए उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते तव य मम य भिक्खाभायणे भविस्सइ।' तए णं से तेतलिपुत्ते अमच्चे पउमावईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता पडिगए।



'हे देवानुप्रिय ! कनकरथ राजा राज्य और राष्ट्र आदि में अत्यन्त आसक्त होकर सब पुत्रों को अपंग कर देता है, अतः मैं यदि अब पुत्र को जन्म दूं तो तुम कनकरथ से छिपा कर ही अनुक्रम से उसका संरक्षण, संगोपन एवं सवर्धन करना। ऐसा करने से वह बालक बाल्यावस्था पार करके, यौवन को प्राप्त होकर तुम्हारे लिए भी और मेरे लिए भी भिक्षा का भाजन बनेगा, अर्थात् वह तुम्हारा-हमारा पालन-पोषण करेगा।' तब तेतलिपुत्र अमात्य ने पद्मावती के इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके वह वापिस लौट गया।

तए णं पउमावई य देवी पोट्टिला य अमच्ची सममेव गब्भं गेण्हंति, सममेव गब्भं परिवहंति, सममेव गब्भं परिवड्ढंति। तए णं सा पउमावई देवी नवण्हं मासाणं जाव पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाया।

जं रयणिं च णं पउमावई देवी दारयं पयाया तं रयणिं च पोट्टिला वि अमच्ची नवण्हं मासाणं विणिहायमावन्नं दारियं पयाया।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने और पोट्टिला नामक अमात्यी (अमात्य की पत्नी) ने एक ही साथ गर्भ धारण किया, एक ही साथ गर्भ वहन किया और साथ-साथ ही गर्भ की वृद्धि की। तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने नौ मास और साढ़े सात दिन पूर्ण हो जाने पर देखने में प्रिय और सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया।

जिस रात्रि में पद्मावती ने पुत्र को जन्म दिया, उसी रात्रि में पोट्टिला अमात्यपत्नी ने भी नौ मास और साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर मरी हुई बालिका का प्रसव किया।

तए णं सा पउमावई देवी अम्मधाइं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुमे अम्मो ! तेयलिपुत्तगिहे, तेयलिपुत्तं रहस्सियं चेव सद्दावेह।'

तए णं सा अम्मधाई तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता अंतेउरस्स अवद्दारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव तेयलिपुत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिया ! पउमावई देवी सद्दावेइ।'

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने अपनी धाय माता को बुलाया और कहा-'माँ, तुम तेतलिपुत्र के घर जाओ और तेतलिपुत्र को गुप्त रूप से बुला लाओ।'

तब धाय माता ने 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कह कर पद्मावती का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके वह अन्तःपुर के पिछले द्वार से निकल कर तेतलिपुत्र के घर पहुँची। वहाँ पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ कर उसने यावत् इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! आप को पद्मावती देवी ने बुलाया है।'

तए णं तेयलिपुत्ते अम्मधाईए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ तुट्ठ अम्मधाईए सद्धिं साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता अंतेउरस्स अवद्दारेणं रहस्सियं चेव अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल एवं वयासी—'सदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।'

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र, धाय माता से यह अर्थ सुन कर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट होकर धाय माता के साथ अपने घर से निकला। निकल कर अन्तःपुर के पिछले द्वार से, गुप्त रूप से उसने प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ पद्मावती देवी थी, वहाँ आया। आकर दोनों हाथ जोड़ कर बोला—'देवानुप्रियो! मुझे जो करना है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।'

तए णं पउमावई देवी तेयलिपुत्तं एवं वयासी—'एवं खलु कणगरहे राया जाव वियंगेइ, अहं च णं देवाणुप्पिया! दारगं पयाया, तं तुमं णं देवाणुप्पिया! तं दारगं गिण्हाहि, जाव तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सइ' त्ति कट्टु तेयलिपुत्तस्स हत्थे दलयइ।

तए णं तेयलिपुत्ते पउमावईए हत्थाओ दारगं गेण्हइ, गेण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता अंतेउरस्स रहस्सियं अवदारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव पोट्टिला भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं एवं वयासी—

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने तेतलिपुत्र से इस प्रकार कहा—'इस प्रकार कनकरथ राजा यावत् सब पुत्रों को विकलांग कर देता है, तो हे देवानुप्रिय! तुम उस बालक को ग्रहण करो—सँभालो। यावत् यह बालक तुम्हारे लिए और मेरे लिए भिक्षा का भाजन सिद्ध होगा।' ऐसा कह कर उसने वह बालक तेतलिपुत्र के हाथ में सौंप दिया।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पद्मावती के हाथ से उस बालक को ग्रहण किया और अपने उत्तरीय वस्त्र से ढँक लिया। ढँक कर गुप्त रूप से अन्तःपुर के पिछले

द्वार से बाहर निकल गया। निकल कर जहाँ अपना घर था और जहाँ पोट्टिला भार्या थी, वहाँ आया। आकर पोट्टिला से इस प्रकार कहने लगाः—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, अयं च णं दारए कणगरहस्स पुत्ते पउमावईए अत्तए, तेणं तुमं देवाणुप्पिया! इमं दारगं कणगरहस्स रहस्सियं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खाहि य, संगोवेहि य, संवड्ढेहि य। तए णं एस दारए उम्मुक्कबालभावे तव य मम य पउमावईए य आहारे भविस्सइ' त्ति कट्टु पोट्टिलाए पासे णिक्खिवइ, पोट्टिलाओ पासाओ तं विणिहायमावन्नियं दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता अंतेउरस्स अवद्दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमावईए देवीए पासे ठावेइ, ठावित्ता जाव पडिनिग्गए।

'इस प्रकार हे देवानुप्रिय! कनकरथ राजा राज्य आदि में यावत् अतीव आसक्त हो कर अपने पुत्रों को यावत् अपग कर देता है। और यह बालक कनकरथ का पुत्र और पद्मावती का आत्मज है, अतएव देवानुप्रिय! इस बालक का, कनकरथ से गुप्त रख कर, अनुक्रम से, संरक्षण संगोपन और संवर्धन करना। इससे यह बालक बाल्यावस्था से मुक्त होकर तुम्हारे लिए, मेरे लिए, और पद्मावती के लिए आधारभूत होगा।' इस प्रकार कह कर उस बालक को पोट्टिला के पास रख दिया और पोट्टिला के पास से मरी हुई लड़की उठा ली। उठा कर उसे उत्तरीय वस्त्र से ढँक कर अन्तःपुर के पिछले छोटे द्वार से प्रविष्ट हुआ और पद्मावती देवी के पास पहुँचा। मरी लड़की पद्मावती देवी के पास रख दी और वह यावत वापिस चला गया।

तए णं तीसे पउमावईए अंगपडियारियाओ पउमावइं देविं विणिहायमावन्नियं च दारियं पयायं पासंति, पासित्ता जेणेव कणगरहे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—'एवं खलु सामी! पउमावई देवी मइल्लियं दारियं पयाया।'

तत्पश्चात् पद्मावती की अंगपरिचारिकाओं ने पद्मावती देवी को और विनिघात को प्राप्त (मृत) जन्मी हुई बालिका को देखा। देख कर वे जहाँ कनकरथ राजा था, वहाँ पहुँचीं। पहुँच कर दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगीं—'हे स्वामिन्! पद्मावती देवी ने मृत बालिका का प्रसव किया है।'

तए णं कणगरहे राया तीसे मइल्लियाए दारियाए नीहरणं करेइ, बहूणि लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ, कालेणं विगयसोए जाए।

तत्पश्चात् कनकरथ राजा ने मरी हुई लड़की का नीहरण किया उसे श्मशान में ले गया। बहुत-से मृतक संबंधी लौकिक कार्य किये। कुछ समय के पश्चात् राजा शोक-रहित हो गया।

तए णं तेतलिपुत्ते कल्ले कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव चारगसोधनं जाव ठिइवडियं, जम्हा णं अम्हं एस दारए कणगरहस्स रज्जे जाए, तं होउ णं दारए नामेणं कणगज्झए जाव अलं भोगसमत्थे जाए।

तत्पश्चात् दूसरे दिन तेतलिपुत्र ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर कहा-'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चारक शोधन करो, अर्थात् कैदियों को कारागार से मुक्त करो। यावत् दस दिनों की स्थितिपतिका करो-पुत्र-जन्म का उत्सव करो। हमारा यह बालक राजा कनकरथ के राज्य में उत्पन्न हुआ है, अतएव इस बालक का नाम कनकध्वज हो।' धीरे-धीरे वह बालक बड़ा हुआ, कलाओं में कुशल हुआ, यौवन को प्राप्त होकर भोग भोगने में समर्थ हो गया।

तए णं सा पोट्टिला अन्नया कयाई तेतलिपुत्तस्स अणिट्ठा जाया यावि होत्था, णेच्छइ य तेतलिपुत्ते पोट्टिलाए नामगोत्तमवि सवणयाए, किं पुण दरिसणं वा परिभोगं वा?

तए णं तीसे पोट्टिलाए अन्नया कयाई पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं तेतलिपुत्तस्स पुव्विं इट्ठा आसि, इयाणिं अणिट्ठा जाया, नेच्छइ य तेयलिपुत्ते मम नामं जाव परिभोगं वा।' ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

तत्पश्चात् किसी समय पोट्टिला तेतलिपुत्र को अप्रिय हो गई। तेतलिपुत्र उसका नाम-गोत्र भी सुनना पसन्द नहीं करता था, तो दर्शन और भोग की तो बात ही क्या?

तब एक बार मध्यरात्रि के समय पोट्टिला के मन में यह विचार आया कि—तेतलिपुत्र को मैं पहले प्रिय थी; किन्तु आजकल अप्रिय हो गई हूं। अतएव तेतलिपुत्र मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहते, तो यावत् परिभोग तो चाहेंगे

ही क्या ?' इस प्रकार, जिसके मन के संकल्प नष्ट हो गये हैं ऐसी वह पोट्टिला चिन्ता में डूब गई।

तए णं तेतलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा, तुमं णं मम महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेहि, उवक्खडावित्ता बहूणं समणमाहण जाव वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि।'

तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कल्लाकल्लिं महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव दवावेमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने भग्नमनोरथा पोट्टिला को चिन्ता में डूबी देखकर इस प्रकार कहा— देवानुप्रिये ! भग्नमनोरथ मत होओ। तुम मेरी भोजनशाला मे विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवाओ और तैयार करवा कर बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, यावत् भिखारियों को दान देती-दिलाती हुई रहा करो।'

तेतलिपुत्र के ऐसा कहने पर पोट्टिला हर्षित और संतुष्ट हुई। उसने तेतलिपुत्र के इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके प्रतिदिन भोजनशाला मे वह विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवा कर दान देती और दिलाती रहती थी।

ते णं काले णं ते णं समए णं सुव्वयाओ नामं अज्जाओ ईरियासमियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं जेणामेव तेयलिपुरे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति।

उस काल और उस समय मे, ईर्या-समिति से युक्त, यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुत, बहुत परिवार वाली सुव्रता नामक आर्या अनुक्रम से विहार करती-करती तेतलिपुर नगर मे आईं। आकर यथोचित उपाश्रय ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

नमंसित्ता पडिवज्जइ, ताओ अज्जाओ वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

तए णं सा पोट्टिला समणोवासिया जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ।

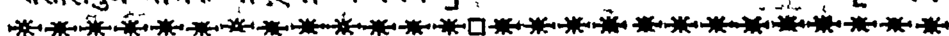
तत्पश्चात् उस पोट्टिला ने उन आर्याओं से पाँच अणुव्रत यावत् श्रावक-धर्म अंगीकार किया। उन आर्याओं को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् पोट्टिला श्रमणोपासिका हो गई, यावत् साधु-साध्वियों को आहार आदि प्रदान करती हुई विचरने लगी।

तए णं तीसे पोट्टिलाए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं तेतलिपुत्तस्स पुव्विं इट्ठा ५ आसि, इयाणिं अणिट्ठा ५ जाव परिभोगं वा, तं सेयं खलु मम सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए।' एवं संपेहेइ। संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभाए जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरि० एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! मए सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए धम्मे निसंते जाव अब्भणुन्नाया पव्वइत्तए।'

तत्पश्चात् एक बार किसी समय, मध्य रात्रि के समय, जब वह कुटुम्ब के विषय में चिन्ता करती जाग रही थी तब उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'मैं पहले तेतलिपुत्र को इष्ट थी, अब अनिष्ट हो गई हूँ; यावत् दर्शन और परिभोग का तो कहना ही क्या है? अतएव मेरे लिए सुव्रता आर्या के निकट दीक्षा ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है।' पोट्टिला ने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन, प्रभात होने पर, वह तेतलिपुत्र के पास गई। जाकर दोनों हाथ जोड़ कर बोली—हे देवानुप्रिय! मैं ने सुव्रता आर्या से धर्म सुना है, यावत् आपकी आज्ञा पाकर मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं।

तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी—'एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! मुंडा पव्वइया समाणी कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जिहिसि, तं जइ णं तुमं देवाणुप्पिए! ममं



ताओ देवलोयाओ आगम्म केवलिपन्नत्ते धम्मे बोहिहि, तो हं निसज्जेमि, अह णं तुमं ममं ण संबोहेसि तो ते ण विसज्जेमि।'

तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ।

तब तेतलिपुत्र ने पोट्टिला से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिय ! तुम मुंडित और प्रव्रजित होकर मृत्यु के समय काल करके किसी भी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होओगी, सो यदि देवानुप्रिये ! तुम उस देवलोक से आकर मुझे केवलि-प्ररूपित धर्म का बोध करो तो मैं तुम्हे छुट्टी देता हूँ। अगर तुम मुझे प्रतिबोध न दो तो मैं आज्ञा नहीं देता।'

तब पोट्टिला ने तेतलिपुत्र का अर्थ स्वीकार कर लिया।

तए णं तेयलिपुत्ते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ जाव आमंतेइ, आमंतित्ता जाव संमाणेइ, संमाणित्ता पोट्टिलं ण्हायं जाव पुरिससहस्सवाहणीयं सीयं दुरूहित्ता मित्तणाइ जाव परिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं तेतलिपुरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव सुव्वया अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिए ! मम पोट्टिला भारिया इट्ठा, एस णं संसारभउव्विग्गा जाव पव्वइत्तए। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिए ! सिस्सिणिभिक्खं दलयामि।'

'अहासुहं मा पडिबंधं करेह।'

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बनवाया। मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमंत्रित किया। यावत् उनका यथोचित सन्मान किया। सन्मान करके पोट्टिला को स्नान कराया यावत् हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिबिका पर आरूढ़ करा कर मित्रों तथा ज्ञातिजनों आदि से परिवृत होकर, समस्त ऋद्धि-लवाजमे-के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ तेतलिपुर के मध्य में होकर सुव्रता के उपाश्रय में आया। वहाँ आकर

आर्या को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा:—

'हे देवानुप्रिये! यह मेरी पोट्टिला भार्या मुझे इष्ट है। यह संसार के भय से उद्वेग को प्राप्त हुई है, यावत् दीक्षा अंगीकार करना चाहती है। सो हे देवानुप्रिये! मैं आपको शिष्या रूप भिक्षा देता हूँ। इसे आप अंगीकार कीजिए।'

आर्या ने कहा-'जैसे सुख उपजे वैसा करो; प्रतिबंध मत करो-विलम्ब न करो।'

तए णं सा पोट्टिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठ उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-'आलित्ते णं भंते! लोए' एवं जहा देवाणंदा, जाव एक्कारस अंगाइं, बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाइं, आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ना।

तत्पश्चात सुव्रता आर्या के इस प्रकार कहने पर पोट्टिला हृष्ट-तुष्ट हुई। उसने उत्तरपूर्व-ईशान दिशा में जाकर अपने आप आभरण, माला और अलंकार उतार डाले, उतार कर स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। यह सब करके जहाँ सुव्रता आर्या थी, वहाँ आई। आकर उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा-'हे भगवती (पूज्ये)! यह संसार चारो ओर से जल रहा है,' इत्यादि भगवती सूत्र मे कथित देवानन्दा की दीक्षा के समान वर्णन कह लेना चाहिए। यावत् पोट्टिला ने दीक्षा लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया। बहुत वर्षो तक चारित्र का पालन किया। पालन करके एक मास की संलेखना करके, अपने शरीर को कृश करके, साठ भक्त का अनशन करके, पापकर्म की आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिपूर्वक, मृत्यु के अवसर पर काल करके, किसी देवलोक मे देवता के रूप में उत्पन्न हुई।

तए णं से कणगरहे राया अन्नया कयाई कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था। तए णं राईसर जाव णीहरणं करेंति, करित्ता अन्नमन्नं

एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था, अम्हे णं देवाणुप्पिया ! रायाहीणा रायाहिट्ठिया, रायाहीणकज्जा, अयं च णं तेतली अमच्चे कणगरहस्स रण्णो सव्व-ट्ठाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए दिन्नवियारे सव्वकज्जवट्टावए यावि होत्था। तं सेयं खलु अम्हं तेतलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तए' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तं एवं वयासी—

तत्पश्चात् किसी समय कनकरथ राजा कालधर्म से युक्त हो गया—मर गया। तब राजा, ईश्वर आदि ने उसका नीहरण किया—मृतककृत्य किये। मृतककृत्य करके वे परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'देवानुप्रियो ! कनकरथ राजा ने राज्य आदि में आसक्त होने के कारण अपने पुत्रों को विकलांग कर दिया है। देवानु-प्रियो ! हम लोग तो राजा के अधीन है, राजा से अधिष्ठित होकर रहने वाले हैं और राजा के अधीन रह कर कार्य करने वाले हैं। और तेतलिपुत्र अमात्य, राजा कनकरथ का, सब स्थानों में और सब भूमिकाओं में विश्वासपात्र रहा है, परामर्श—विचार देने वाला—विचारक है और सब काम चलाने वाला है। अतएव हमें तेतलिपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करना उचित है।' इस प्रकार विचार करके उन्होंने आपस की यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके जहाँ तेतलिपुत्र अमात्य था, वहाँ आये। आकर तेतलिपुत्र से इस प्रकार कहने लगेः—

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य जाव वियंगेइ, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! रायाहीणा जाव रायाहीणकज्जा, तुमं च णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो सव्वट्ठाणेसु जाव रज्ज-धुराचिंतए। तं जइ णं देवाणुप्पिया ! अत्थि केइ कुमारे रायलक्खण-संपन्ने अभिसेयारिहे, तं णं तुमं अम्हं दलाहि, जा णं अम्हे महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचामो।'

'हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार कनकरथ राजा राज्य में तथा राष्ट्र आदि में आसक्त था, अतएव उसने सब पुत्रों को विकलांग कर दिया है। और हम लोग तो देवानुप्रिय ! राजा के अधीन रहने वाले यावत् राजा के अधीन रह कर कार्य करने वाले है। हे देवानुप्रिय ! तुम कनकरथ राजा के सभी स्थानो में विश्वास-पात्र रहे हो, यावत् राज्य की धुरा के चिन्तक हो। अतएव हे देवानुप्रिय ! यदि

कोई कुमार राजलक्षणों से युक्त और अभिषेक के योग्य हो तो हमें दो, जिससे महान्-महान् राज्याभिषेक से हम उसका अभिषेक करें।'

तए णं तेतलिपुत्ते तेसिं ईसर एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कणगज्झयं कुमारं ण्हायं जाव सस्सिरीयं करेइ, करित्ता तेसिं ईसर जाव उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी—

'एस णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए कणगज्झए कुमारे अभिसेयारिहे रायलक्खणसंपन्ने मए कणगरहस्स रण्णो रहस्सियं संवड्ढिए, एयं णं तुब्भे महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचह।' सव्वं च तेसिं (से) उट्ठाणपरियावणियं परिकहेइ।

तए णं ते ईसर० कणगज्झयं कुमारं महया महया अभिसिंचंति।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने उन ईश्वर आदि के इस कथन को अंगीकार किया। अंगीकार करके कनकध्वज कुमार को स्नान कराया और विभूषित किया। फिर उसे उन ईश्वर आदि के पास लाया। लाकर कहा—

'देवानुप्रियो ! यह कनकरथ राजा का पुत्र और पद्मावती देवी का आत्मज कनकध्वज कुमार अभिषेक के योग्य है और राजलक्षणों से सम्पन्न है। मैंने कनकरथ राजा से छिपा कर इसका संवर्धन किया है। तुम लोग महान्-महान् राज्याभिषेक से इसका अभिषेक करो।' इस प्रकार कह कर उसने कुमार के जन्म का और पालन-पोषण आदि का वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया।

तए णं ते ईसर कणगज्झयं कुमारं महया महया अभिसिंचंति। तए णं से कणगज्झए कुमारे राया जाए, महया हिमवंतमलय वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ। तए णं सा पउमावई देवी कणगज्झयं रायं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एस णं पुत्ता ! तव रज्जे जाव अंतेउरे य तुमं च तेतलिपुत्तस्स पहावेणं, तं तुमं णं तेतलिपुत्तं अमच्चं आढाहि, परिजाणाहि, सक्कारेहि, सम्माणेहि, इंतं अब्भुट्ठेहि, ठियं पज्जुवासाहि, वच्चंतं पडिसंसाहेहि, अद्धासणेणं उवनिमंतेहि, भोगं च से अणुवड्ढेहि।

तत्पश्चात् उन ईश्वर आदि ने कनकध्वज कुमार का महान्-महान् राज्याभिषेक किया। तब कनकध्वज कुमार राजा हो गया। महाहिमवान् और मलय पर्वत के समान, इत्यादि राजा का वर्णन यहाँ कहना चाहिए। यावत् वह राज्य का पालन करता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने कनकध्वज राजा को बुलाया और बुलाकर कहा-'पुत्र! तुम्हारा यह राज्य यावत् अन्तःपुर और स्वयं तू भी तेतलिपुत्र के प्रभाव से ही है। अतएव तू तेतलिपुत्र अमात्य का आदर करना, उन्हें अपना हितैषी जानना, उनका सत्कार करना, सन्मान करना, उन्हें आते देख कर खड़े होना आकर खड़ा होने पर उनकी उपासना करना, उनके जाने पर पीछे-पीछे जाना, बोलने पर वचनों की प्रशंसा करना, उन्हे आधे आसन पर बिठलाना और उनके भोग की (वेतन तथा जागीर आदि की) वृद्धि करना।

तए णं से कणगज्झए पउमावईए देवीए तह त्ति पडिसुणेइ, जाव भोगं च से वड्ढेइ।

तत्पश्चात् कनकध्वज ने पद्मावती देवी के कथन को 'बहुत अच्छा' कह कर अंगीकार किया। यावत् तेतलिपुत्र के भोग की वृद्धि कर दी।

तए णं से पोट्टिले देवे तेतलिपुत्तं अभिक्खणं अभिक्खणं केवलिपन्नत्ते धम्मे संबोहेइ, नो चेव णं से तेतलिपुत्ते संबुज्झइ। तए णं तस्स पोट्टिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-'एवं खलु कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं आढाइ, जाव भोगं च संवड्ढेइ तए णं से तेयली अभिक्खणं अभिक्खणं संबोहिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुज्झइ, तं सेयं खलु कणगज्झयं तेतलिपुत्ताओ विप्परिणामित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कणगज्झयं तेतलिपुत्ताओ विप्परिणामेइ।

तत्पश्चात् पोट्टिल देव ने तेतलिपुत्र को बार-बार केवलि-प्ररूपित धर्म का प्रतिबोध दिया, परन्तु तेतलिपुत्र को प्रतिबोध हुआ ही नहीं। तब पोट्टिल देव को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ-'इस प्रकार कनकध्वज राजा, तेतलिपुत्र का आदर करता है, यावत् उसने भोग बढ़ा दिया है, इस कारण तेतलिपुत्र बार-बार प्रतिबोध देने पर भी धर्म में प्रतिबुद्ध नहीं होता। अतएव यह उचित होगा कि कनकध्वज को तेतलिपुत्र से विरुद्ध (विमुख) कर दिया जाय। देव ने ऐसा विचार किया और कनकध्वज को तेतलिपुत्र से विरुद्ध कर दिया।

तए णं तेतलिपुत्ते कल्लं ण्हाए जाव पायच्छित्ते आसखंधवरगए बहूहिं पुरिसेहिं संपरिवुडे साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र दूसरे दिन स्नान करके, यावत् अमंगल-निवारण के लिए प्रायश्चित्त करके, श्रेष्ठ अश्व की पीठ पर सवार होकर और बहुत-से पुरुषों से परिवृत होकर अपने घर से निकला। निकल कर जहाँ कनकध्वज राजा था, उसी ओर रवाना हुआ।

तए णं तेतलिपुत्तं अमच्चं से जहा बहवे राईसरतलवर जाव पभिइओ पासंति, ते तहेव आढायंति, परिजाणंति, अब्भुट्ठेंति, अब्भुट्ठित्ता अंजलिपरिग्गहं करेंति, करित्ता इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं आलवेमाणा संलवेमाणा य पुरतो य पिट्ठतो य पासतो य मग्गतो य समणुगच्छंति।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अमात्य को (मार्ग में) जो जो बहुत-से राजा, ईश्वर या तलवर आदि देखते हैं, वे उसी तरह अर्थात् सदैव की भाँति उसका आदर करते हैं, उसे हितकारक जानते हैं और खड़े होते हैं। खड़े होकर हाथ जोड़ते हैं और हाथ जोड़ कर इष्ट एवं कान्त यावत् वाणी से बोलते हैं और बार-बार बोलते हैं। वे सब उसके आगे, पीछे और अगल-बगल में अनुसरण करके चलते हैं।

तए णं से तेतलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए तेणेव उवागच्छइ। तए णं कणगज्झए तेतलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भुट्ठायमाणे परंमुहे संचिट्ठइ।

तए णं तेतलिपुत्ते कणगज्झयं विप्परिणयं जाणित्ता भीए जाव संजायभए एवं वयासी—'रुट्ठे णं मम कणगज्झए राया, हीणे णं मम कणगज्झए राया, अवज्झाए णं कणगज्झए राया। तं ण णज्जइ णं मम केणइ कु-मारेण मारेहि' त्ति कट्टु भीए तत्थे य जाव सणियं सणियं पच्चोसक्केइ, पच्चोसक्कित्ता तमेव आसखंधं दुरूहेइ, दुरूहित्ता तेतलिपुरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् वह तेतलिपुत्र जहाँ कनकध्वज था, वहाँ आया। कनकध्वज ने तेतलिपुत्र को आते देखा, मगर देख कर उसका आदर नहीं किया, उसे हितैषी नहीं जाना, खड़ा नहीं हुआ, बल्कि आदर न करता हुआ, न जानता हुआ और खड़ा न होता हुआ पराङ्मुख (पीठ फेर कर बैठा रहा।

तब तेतलिपुत्र, कनकध्वज को विपरीत हुआ जान कर भयभीत हुआ। उसके हृदय में खूब भय उत्पन्न हो गया। वह इस प्रकार बोला—कनकध्वज राजा मुझसे रुष्ट हो गया है, कनकध्वज राजा मुझ पर हीन हो गया है, कनकध्वज राजा ने मेरा बुरा सोचा है। सो न मालूम यह मुझे किस बुरी मौत से मारेगा।' इस प्रकार विचार करके वह डर गया, त्रास को प्राप्त हुआ और धीरे-धीरे वहाँ से खिसक गया। खिसक कर उसी अश्व की पीठ पर सवार हुआ। सवार होकर तेतलिपुर के मध्यभाग मे होकर अपने घर की तरफ रवाना हुआ।

तए णं तेयलिपुत्तं से जहा ईसर जाव पासंति, ते तहा नो आढायंति, नो परियाणंति, नो अब्भुट्ठेंति, नो अंजलिपरिग्गहियं करेंति, इट्ठाहिं जाव णो संलवंति, नो पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य समणुगच्छंति।

तए णं तेयलिपुत्ते जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। जा वि य से बाहिरिया परिसा भवइ, तंजहा—दासेइ वा, पेसेइ वा भाइल्लएइ वा, सा वि य णं नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ। जा वि य से अब्भिंतरिया परिसा भवइ, तंजहा—पियाइ वा मायाइवा जाव सुण्हाइ वा, सा वि य णं नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र को वे ईश्वर आदि जैसे देखते हैं, तो वे पहले की तरह उसका आदर नहीं करते, उसे नहीं जानते, सामने नहीं खड़े होते, हाथ नहीं जोड़ते, और इष्ट यावत् वाणी से बात नहीं करते। आगे, पीछे और अगल-बगल में उसके साथ नहीं चलते।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र जिधर अपना घर था, उधर आया। बाहर की जो परिषद् होती है, जैसे कि दास, प्रेष्य (बाहर जाने-आने का काम करने वाले), तथा भागीदार आदि; उस बाहर की परिषद् ने भी उसका आदर नहीं किया, उसे नहीं जाना और न खड़ी हुई। और जो आभ्यन्तर परिषद् होती है, जैसे कि पिता, माता, पुत्रवधू आदि; उसने भी उसका आदर नहीं किया, उसे नहीं जाना और न उठ कर खड़ी हुई!

ध्वज के द्वारा जिसका बुरा विचारा गया है, ऐसे तेतलिपुत्र अमात्य ने अपने मुख में विष डाला, मगर उस विष ने कुछ भी प्रभाव न दिखलाया, मेरे इस कथन पर कौन विश्वास करेगा ? तेतलिपुत्र ने अपने गले में नीलकमल जैसी तलवार का प्रहार किया, मगर उसकी धार खंडित हो गई, कौन मेरी इस बात पर श्रद्धा करेगा ? तेतलिपुत्र ने अपने गले में फाँसी लगाई, मगर रस्सी टूट गई, मेरी इस बात पर कौन भरोसा करेगा ? तेतलिपुत्र ने गले में भारी शिला यावत् बाँध कर अथाह यावत् जल में अपने आपको छोड़ दिया, मगर वह पानी थाह-छिछला हो गया; मेरी यह बात कौन मानेगा ? तेतलिपुत्र सूखे घास में आग लगा कर उसमें कूद गया, मगर आग बुझ गई, कौन इस बात पर विश्वास करेगा ? इस प्रकार तेतलिपुत्र भग्नमनोरथ होकर चिन्ता करने लगा।

तए णं से पोट्टिले देवे पोट्टिलारूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता तेतलिपुत्तस्स अदूरसामंते ठिच्चा एवं वयासी—'हं भो तेयलिपुत्ता ! पुरओ पवाए, पिट्ठओ हत्थिभयं, दुहओ अचक्खुफासे, मज्झे सराणि वरिसयंति, गामे पलित्ते रन्ने झियाइ, रन्ने पलित्ते गामे झियाइ, आउसो तेयलिपुत्ता ! कओ वयामो ?'

तत्पश्चात् पोट्टिल देव ने पोट्टिला के रूप की विक्रिया की। विक्रया करके तेतलिपुत्र से न बहुत दूर और न बहुत पास स्थित होकर तेतलिपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे तेतलिपुत्र ! आगे प्रपात (गड़हा) है और पीछे हाथी का भय है। दोनों बगलों मे ऐसा घोर अंधकार है कि आँखों से दिखाई नहीं देता। मध्य भाग में वाणों की वर्षा हो रही है। गाँव में आग लगी है और वन धधक रहा है। तो आयुष्मन् तेतलिपुत्र ! हम कहाँ जाएँ ? कहाँ शरण लें ? अभिप्राय यह है कि जिसके चारों ओर घोर भय का वायुमंडल हो और कहीं भी क्षेम-कुशल न दिखाई दे, उसे क्या करना चाहिए ? उसके लिए हितकर मार्ग क्या है ?

तए णं से तेतलिपुत्ते पोट्टिलं देवं एवं वयासी—'भीयस्स खलु भो पव्वज्जा सरणं, उक्कंठियस्स सदेसगमणं, छुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेसज्जं, माइयस्स रहस्सं, अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धाणपरिसंतस्स वाहणगमणं, तरिउकामस्स पवहणं (ण) किच्चं, परं अभिओजितुकामस्स सहायकिच्चं, खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एत्तो एगमवि ण भवइ।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र ने पोट्टिल देव से इस प्रकार कहा–अहो ! इस प्रकार सर्वत्र भयग्रस्त पुरुष के लिए दीक्षा ही शरणभूत है। जैसे उत्कंठित हुए पुरुष के लिए स्वदेशगमन शरणभूत है, भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, बीमार को औषध, मायावी को गुप्तता, अभियुक्त (जिस पर आरोप लगाया गया हो उसे) को विश्वास उपजाना, थके–मांदे को वाहन कर चढ़ कर गमन करना, तिरने के इच्छुक को जहाज और शत्रु का पराभव करने की इच्छा करने वाले को सहायकृत्य (मित्रों की सहायता) शरणभूत है।

सर्वत्र भयग्रस्त को दीक्षा क्यों शरणभूत है ? इसका स्पष्टीकरण यह है कि क्रोध का निग्रह करने वाले क्षमाशील, इन्द्रियों का और मन का दमन करने वाले तथा जितेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों के विषय में राग न रखने वाले पुरुष को इनमें से एक भी भय नहीं है। (भय काया और माया के लिए ही होता है। जिसने दोनों की ममता त्याग दी, वह सदैव और सर्वत्र निर्भय है।)

तए णं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी–सुट्ठु णं तुमं तेयलिपुत्ता ! एयमट्ठं आयाणिहि त्ति कट्टु दोच्चं पि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् पोट्टिल देव ने तेतलिपुत्र अमात्य से इस प्रकार कहा–'हे तेतलिपुत्र ! तुम ठीक कहते हो। अर्थात् भयग्रस्त के लिए प्रव्रज्या शरणभूत है, यह तुम्हारा कथन सत्य है। मगर इस अर्थ को तुम भलीभाँति जानो, अर्थात् इस समय तुम भयभीत हो तो अनुष्ठान करके यह बात समझो–दीक्षा ग्रहण करो। इस प्रकार कह कर देव ने दूसरी बार भी ऐसा ही कहा। कह कर देव जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा में वापिस लौट गया।

तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स सुभेणं परिणामेणं जाइसरणे समुप्पन्ने। तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पन्ने–'एवं खलु अहं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे पोक्खलावती विजए पोंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था। तए णं अहं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामन्नपरियाए पाउणित्ता मासिआए संलेहणाए महासुक्के कप्पे देवे उववन्ने।

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र को शुभ परिणाम उत्पन्न होने से जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई। तब तेतलिपुत्र के मन में इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न

तत्पश्चात् तेतलिपुत्र अनगार ने कनकध्वज राजा को और उपस्थित महती परिषद् को धर्म का उपदेश दिया।

तत्पश्चात् कनकध्वज राजा ने तेतलिपुत्र केवली से धर्म सुन कर और उसे हृदय में धारण करके पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया। श्रावकधर्म अंगीकार करके वह यावत् जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया।

तए णं तेतलिपुत्ते केवली बहूणि वासाणि केवलिपरियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे।

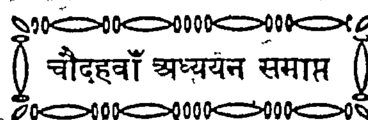
तत्पश्चात् तेतलिपुत्र केवली बहुत वर्षों तक केवली-अवस्था में रह कर यावत् सिद्ध हुए।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं चोद्दसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि।

श्रीसुधर्मा स्वामी अपने उत्तर का उपसंहार करते हुए कहते हैं-हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ कहा है। जैसा मैंने सुना, वैसा ही कहा।

उपनय

इस अध्ययन का उपनय स्पष्ट है। प्राणी जब तक किसी प्रकार के दुःख के शिकार नहीं होते या किसी कारण से उनके मान-सन्मान को ठेस नहीं लगती, तब तक वे तेतलिपुत्र के समान बार-बार प्रतिबोध पा करके भी धर्म की शरण ग्रहण नहीं करते।



पन्द्रहवाँ नन्दीफल अध्ययन

'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं चोद्दसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पन्नरसमस्स णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?'

श्रीजम्बू स्वामी ने श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया–'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने चौदहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं चंपा णामं नयरी होत्था। पुन्नभद्दे नामं चेइए। जियसत्तू नामं राया होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए धन्ने नामं सत्थवाहे होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए।

श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते है–हे जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य था। जितशत्रु नामक राजा था। उस चम्पा नगरी में धन्य नामक सार्थवाह था, जो सम्पन्न था यावत् किसी से पराभूत होने वाला नहीं था।

तीसे णं चंपाए नयरीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए अहिच्छत्ता नाम नयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा, वन्नओ। तत्थ णं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था, महया वन्नओ।

उस चम्पा नगरी से उत्तर-पूर्व दिशा में अहिच्छत्रा नामक नगरी थी। वह भवनों आदि से युक्त तथा समृद्धि से परिपूर्ण थी। यहाँ नगरी का वर्णन कह लेना चाहिए। उस अहिच्छत्रा नगरी में कनककेतु नामक राजा था। वह महा हिमवन्त पर्वत के समान आदि विशेषणों से युक्त था। यहाँ राजा का वर्णन कहना चाहिए।

तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्प-

ज्जित्था-'सेयं खलु मम विपुलं पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं नगरं वाणिज्जाए गमित्तए' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च चउव्विहं भंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सगडीसागडं सज्जेइ, सज्जित्ता सगडीसागडं भरेइ, भरित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासीः—

अन्यदा कदाचित् धन्य सार्थवाह के मन में मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तित (मन में स्थित) प्रार्थित (मन को इष्ट), मनोगत (मन में ही गुप्त रहा हुआ) संकल्प (विचार) उत्पन्न हुआ —'विपुल घी तेल गुड़ खांड आदि माल लेकर मुझे अहिच्छत्रा नगरी में व्यापार करने के लिए जाना श्रेयस्कर है।' उसने ऐसा विचार किया। विचार कर के गणिम (गिन-गिन कर वेचने योग्य नारियल आदि), धरिम (तोल कर वेचने योग्य), मेय (पायली आदि से माप कर वेचने योग्य-अन्न आदि और पारिच्छेद्य (काट-काट कर वेचने योग्य वस्त्र वगैरह) माल को ग्रहण किया। ग्रहण करके गाड़ी-गाड़े तैयार किये। तैयार करके गाड़ी-गाड़े भरे। भर कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा—

'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु एवं खलु देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे विपुले पणिय० इच्छइ अहिच्छत्तं नगरं वाणिज्जाए गमित्तए। तं जो णं देवाणुप्पिया ! चरए वा, चीरिए वा, चम्मखंडिए वा, भिच्छुंडे वा, पंडुरगे वा, गोयमे वा, गोवईए वा, गिहिधम्मे वा, गिहिधम्मचिंतए वा, अविरुद्ध-विरुद्ध-वुड्ढ-सावग-रत्तपड-निग्गंथप्पभिइपासंडत्थे वा गिहत्थे वा, तस्स णं धण्णेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धण्णे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलाइ, अणुवाहणस्स उवाहणाउ दलयइ, अकुंडियस्स कुंडियं दलयइ, अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ, अपक्खेवगस्स पक्खेवं दलयइ, अंतरा वि य से पडियस्स वा भग्गलुग्गसाहेज्जं दलयइ, सुहंसुहेण य णं अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसेह, घोसित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।'

'देवानुप्रियो ! तुम जाओ। चम्पा के शृङ्गाटक यावत् सब मार्गों में घोषणा कर दो कि-'हे देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाह विपुल माल भर कर

अहिच्छत्र नगर मे वाणिज्य के निमित्त जाने की इच्छा करता है। अतएव हे देवानुप्रियो! जो भी चरक (चरक मत का भिक्षुक) चोरिक (गली में पड़े चोथड़ों को पहनने वाला) चर्मखंडिक (चमड़े का टुकड़ा पहनने वाला), भिक्षांड (बौद्ध-भिक्षुक), पांडुरक (शैवमतावलम्बी भिक्षाचर), गोतम (बैल को विचित्र प्रकार की करामत सिखा कर उससे आजीविका चलाने वाला), गोव्रती (जब गाय खाय तो आप खाय, गाय पानी पीए तो आप पानी पीए, गाय सोए तो आप सोए, गाय चले तो आप चले, इस प्रकार के व्रत का आचरण करने वाला), गृहिधर्मा (गृहस्थधर्म को श्रेष्ठ मानने वाला), गृहस्थधर्म का चिन्तन करने वाला, अविरुद्ध (विनयवान्), विरुद्ध (अक्रियावादी-नास्तिक आदि, वृद्ध-तापस, श्रावक-ब्राह्मण, अथवा वृद्ध-श्रावक अर्थात् ब्राह्मण, रक्तपट (परिव्राजक), निर्ग्रन्थ (साधु) आदि व्रतवान् या गृहस्थ-जो भी कोई-धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी में जाना चाहे, उसे धन्य सार्थवाह अपने साथ ले जायगा। जिसके पास छतरी न होगी उसे छतरी दिलाएगा, वह बिना जूते वाले को जूते दिलाएगा, जिसके पास कमंडलु नहीं होगा, उसे कमंडलु दिलाएगा, जिसक पास पथ्यदन मार्ग मे खाने के लिए भोजन) न होगा उसे पथ्यदन दिलाएगा, जिसके पास प्रक्षेप (चलते-चलते पथ्यदन समाप्त हो जाने पर रास्ते मे पथ्यदन खरीदने के लिए आवश्यक धन-) न होगा, उसे प्रक्षेप दिलाएगा, जो पड़ जायगा, भग्न हो जायगा या रुग्ण हो जायगा, उसकी सहायता करेगा और सुखपूर्वक अहिच्छत्रा नगरी तक पहुँचायगा।' दो वार और तीन वार ऐसी घोषणा कर दो। घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापिस लौटाओ।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव एवं वयासी-हंदि! सुणंतु भगवंतो चंपानगरीवत्थव्वा बहवे चरगा य जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् इस प्रकार घोषणा की-'हे चम्पा नगरी के निवासी भगवंतो! चरक आदि! सुनो .... यावत् घोषणा करके उन्होने धन्य सार्थवाह की आज्ञा उसे वापिस सौंपी।

तए णं से कोडुंबियघोसणं सुच्चा चंपाए णयरीए बहवे चरगा य जाव गिहत्था य जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति। तए णं धण्णे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण अच्छत्तगस्स छत्तं दलयइ, जाव पत्थयणं दलाइ। 'गच्छह णं देवाणुप्पिया! चंपाए नयरीए बहिया अग्गुज्जाणंसि ममं पडिवालेमाणा चिट्ठह।'

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों की घोषणा सुन कर चम्पा नगरी के बहुत-से चरक यावत् गृहस्थ धन्य सार्थवाह के समीप पहुँचे। तत्पश्चात् उन चरक यावत् गृहस्थों में से जिनके पास जूते नहीं थे, उन्हें धन्य सार्थवाह ने जूते दिलवाये, यावत् पथ्यदन, दिलवाया। फिर उनसे कहा-'देवानुप्रियो! तुम जाओ और चम्पा नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरो।'

तए णं चरगा य जाव गिहत्था य धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा जाव चिट्ठंति।

तए णं धण्णे सत्थवाहे सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तंसि विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तनाई आमंतेइ, आमंतित्ता भोयणं भोयावेइ, भोयावित्ता आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सगडीसागडं जोयावेइ, जोयावित्ता चंपानगरीओ निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता णाइविप्पगिट्ठेहिं अद्धाणेहिं वसमाणे वसमाणे सुहेहिं वसहि-पायरासेहिं अंगं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ, मोयावित्ता सत्थणिवेसं करेइ, करित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वे चरक यावत् गृहस्थ धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर यावत् प्रधान उद्यान में उसकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे। तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने शुभ तिथि करण और नक्षत्र में, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनवाया। बनवा कर मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमंत्रित करके उन्हें भोजन जिमाया। जिमा कर उनसे अनुमति ली। अनुमति लेकर गाड़ी-गाड़े जुतवाये। जुतवा कर चम्पा नगरी से बाहर निकला। निकल कर बहुत दूर-दूर पर पड़ाव न करता हुआ अर्थात् थोड़ी-थोड़ी दूरी पर मार्ग में बसता-बसता, सुखजनक वसति और प्रातराश (प्रातःकालीन भोजन) करता हुआ अंग देश के बीचोंबीच होकर देश की सीमा पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर गाड़ी-गाड़े खोले। पड़ाव डाला। फिर कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार कहा:—

'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम सत्थनिवेसंसि महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वदह—'एवं खलु देवाणुप्पिया! इमीसे आगामियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए बहुमज्झदेसभाए बहवे

णंदिफला नामं रुक्खा पन्नत्ता किण्हा जाव पत्तिया पुप्फिया फलिया हरिया रेरिज्जमाणा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति, मणुण्णा वन्नेणं जाव मणुण्णा फासेणं, मणुण्णा छायाए, तं जो णं देवाणुप्पिया ! तेसिं नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ, छायाए वा वीसमइ, तस्स णं आवाए भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणा परिणममाणा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति । तं मा णं देवाणुप्पिया ! केइ तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए वा वीसमउ । मा णं सेऽवि अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सइ । तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अन्नेसि रुक्खाणं मूलाणि य जाव हरियाणि य आहारेह, छायासु वीसमह, त्ति घोसणं घोसेह' । जाव पच्चप्पिणंति ।

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग मेरे साथ के पड़ाव में, ऊँचे ऊँचे शब्द से बार-बार उद्घोषणा करते हुए ऐसा कहो कि-'हे देवानुप्रियो ! आगे आने वाली अटवी मे मनुष्यो का आवागमन नहीं होता और वह बहुत लम्बी है। उस अटवी के मध्य भाग में नन्दीफल नामक वृक्ष हैं। वे गहरे हरे (काले) वर्ण वाले, यावत् पत्तों वाले, पुष्पों वाले, फलों वाले, हरे, शोभायमान और सौन्दर्य से अतीव-अतीव शोभित हैं। उनका रूप-रंग मनोज्ञ है यावत् स्पर्श मनोहर है और छाया भी मनोहर है। किन्तु हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी मनुष्य उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प, फल बीज या हरित का भक्षण करेगा, अथवा उनकी छाया में भी बैठेगा, उसे आपाततः (थोड़ी-सी देर-क्षण भर) तो अच्छा लगेगा, मगर बाद में उसका परिणमन होने पर अकाल में वह मृत्यु को प्राप्त होगा। अतएव हे देवानुप्रियो ! कोई उन नंदीफलों के मूल आदि का सेवन न करे यावत् उनकी छाया में विश्राम भी न करे, जिससे अकाल में ही जीवन का नाश न हो। हे देवानुप्रियो ! तुम दूसरे वृक्षों के मूल यावत् हरित का भक्षण करना और उनकी छाया मे विश्राम लेना।' इस प्रकार की आघोषणा कर दो और मेरी आज्ञा वापिस लौटा दो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने आज्ञानुसार घोषणा करके आज्ञा वापिस लौटा दी।

तए णं धण्णे सत्थवाहे सगडीसागडं जोएइ, जोइत्ता जेणेव नंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थनिवेसं करेइ, करित्ता दोच्चं पि तच्चं पि कोडुंबिय पुरिसे

सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयह—'एए णं देवाणुप्पिया ! ते णंदिफला किण्हा जाव मणुण्णा छायाए, तं जो णं देवाणुप्पिया ! एएसिं णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा पुप्फाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा फलाणि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति तं मा णं तुब्भे जाव दूरं दूरेणं परिहरमाणा वीसमह, मा णं अकाले जीवियाओ ववरोविस्संति। अन्नेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमह त्ति कट्टु घोसणं' पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने गाड़ी-गाड़े जुतवाए। जुतवाकर जहाँ नंदीफल नामक वृक्ष थे, वहाँ आ पहुंचा। उन नदीफल वृक्षों से न बहुत दूर न समीप मे पड़ाव डाला। फिर दूसरी बार और तीसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग मेरे पडाव मे ऊँची-ऊँची ध्वनि से पुनः पुनः घोषणा करते हुए कहो कि-'हे देवानुप्रियो ! वे नंदीफल वृक्ष यह हैं, जो कृष्ण वर्ण वाले, मनोज्ञ वर्ण गंध रस, स्पर्श वाले और मनोहर छाया वाले हैं। अतएव हे देवानुप्रियो ! इन नदीफल वृक्षों के मूल, कंद, पुष्प, त्वचा, पत्र या फल आदि का सेवन मत करना; क्योंकि ये यावत् अकाल मे ही जीवन से रहित कर देते हैं। अतएव कहीं ऐसा न हो कि इनका सेवन करके जीवन का नाश कर लो। इनसे दूर ही रह कर विश्राम करना, जिससे ये जीवन का नाश न करें। हाँ, दूसरे वृक्षों के मूल आदि का भले सेवन करना और उनकी छाया में विश्राम करना।' कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार घोषणा करके आज्ञा वापिस सौंपी।

तत्थ णं अत्थेगइया पुरिसा धन्नस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सद्दहंति, जाव रोयंति, एयमट्ठं सद्दहमाणा तेसिं नंदिफलाणं दूरं दूरेणं परिहरमाणा अन्नेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमंति तेसि णं आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा परिणममाणा सुहरूवत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

उनमें से किन्हीं-किन्हीं पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा की, यावत् रुचि की। वे इस बात पर श्रद्धा करते हुए, उन नन्दीफलों का दूर ही दूर से त्याग करते हुए, दूसरे वृक्षों के मूल आदि का सेवन करते थे और उन्हीं की छाया मे विश्राम करते थे। उन्हे तात्कालिक भद्र (सुख) तो प्राप्त न

हुआ, किन्तु उसके पश्चात् ज्यों-ज्यो उनका परिणमन होता चला, त्यों-त्यों वे बार-बार सुख रूप ही परिणत होते चले गये।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पंचसु कामगुणेसु नो सज्जेइ, नो रज्जेइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं सावयाणं सावियाणं अच्चणिज्जे, परलोए नो आगच्छइ जाव वीईवइस्सइ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् पाँच इन्द्रियों के कामभोगों में आसक्त नहीं होता और अनुरक्त नहीं होता, वह इसी भव में बहुत-से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं का पूजनीय होता है और परलोक में दुःख नहीं पाता है, यावत् अनुक्रम से संसार-कान्तार को पार कर जाता है।

तत्थ णं जे से अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति जाव नो रोयंति, धन्नस्स एयमट्ठं असद्दहमाणा जेणेव ते णंदिफला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि य जाव वीसमंति, तेसिं णं आवाए भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणा जाव ववरोवेंति।

उनमें से जिन कितनेक पुरुषो ने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा नहीं की, रुचि नही की; वे धन्य सार्थवाह की बात पर श्रद्धा न करते हुए जहाँ नन्दीफल वृक्ष थे, वहाँ आये। आकर उन्होंने उन नन्दीफल वृक्षो के मूल आदि का भक्षण किया और उनकी छाया मे विश्राम किया। उन्हे तात्कालिक सुख प्राप्त हुआ, किन्तु बाद में उनका परिणमन होने पर यावत् जीवन से मुक्त होना पड़ा।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा पव्वइए पंचसु कामगुणेसु सज्जेइ, जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व ते पुरिसा।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर पाँच इन्द्रियो के विषय-भोगों में आसक्त होता है, वह उन पुरुषों की तरह यावत चतुर्गतिरूप ससार मे परिभ्रमण करता है।

तए णं से धण्णे सगडीसागडं जोयावेइ, जोयावित्ता जेणेव

सोलहवाँ अमरकंका अध्ययन

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सोलमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

श्री जम्बू स्वामी ने श्रीसुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया–'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पन्द्रहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो सोलहवे अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं चंपा णामं णयरी होत्था। तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए सुभूमिभागे णामं उज्जाणे होत्था।

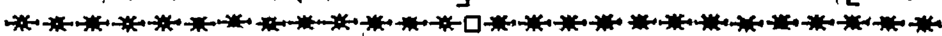
श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा– 'हे जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पा नगरी से बाहर उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा के भाग में सुभूमिभाग नामक उद्यान था।

तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति, तंजहा–सोमे, सोमदत्ते, सोमभूई, अड्ढा जाव रिउव्वेय जाव सुपरिनिट्ठिया।

तेसि णं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था, तंजहा-नागसिरी, भूयसिरी, जक्खसिरी, सुकुमाल जाव तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ, विपुले माणुस्सए जाव विहरंति।

उस चम्पा नगरी में तीन ब्राह्मणबन्धु निवास करते थे। वे इस प्रकार– सोम सोमदत्त और सोमभूति वे धनाढ्य थे यावत् ऋग्वेद आदि ब्राह्मणशास्त्रों में यावत अत्यन्त प्रवीण थे।

उन तीन ब्राह्मणों की तीन पत्नियाँ थी। वे इस प्रकार-नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री। वे सुकुमार हाथ-पैर आदि अवयवों वाली यावत् उन ब्राह्मणों की



इष्ट थीं। वे मनुष्य संबंधी विपुल यावत् कमभोग भोगती हुई रहती थीं।

तए णं तेसिं माहणाणं अन्नया कयाई एगयओ समुवागयाणं जाव इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था–'एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमे विपुले धणे जाव सावतेज्जे अलाहि जाव आसत्तमाओ कुल-वंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं, पकामं परिभाएउं, तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेउं उवक्खडेउं परिभुंजमाणाणं विहरित्तए।

तत्पश्चात् किसी समय एक बार एक साथ मिले हुए उन तीनों ब्राह्मणों में इस प्रकार का कथासमुल्लाप (वार्त्तालाप) उत्पन्न हुआ-'हे देवानुप्रियो! हमारे पास यह प्रभूत धन यावत् स्वापतेय-स्वर्ण आदि विद्यमान है। सात पीढ़ियों तक खूब दिया जाय, खूब भोगा जाय, और खूब बाँटा जाय तो भी पर्याप्त है। अतएव हे देवानुप्रियो! हम लोगों का एक-दूसरे के घरों में, प्रतिदिन, बारी-बारी से, विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम-यह चार प्रकार का आहार बनवा-बनवा कर एक साथ बैठ कर भोजन करना अच्छा रहेगा।'

अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, कल्लाकल्लिं अन्नमन्नस्स गिहेसु विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावित्ता परि-भुंजमाणा विहरंति।

तीनों ब्राह्मण बन्धुओं ने आपस की यह बात स्वीकार की। वे प्रतिदिन एक-दूसरे के घरों में प्रचुर अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बनवाने लगे और बनवा कर साथ-साथ भोजन करने लगे।'

तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोयणवारए जाए यावि होत्था। तए णं सा नागसिरी विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेइ, उवक्खडित्ता एगं महं सालइयं तित्तालाउअं बहुसंभार-संजुत्तं णेहावगाढं उवक्खडावेइ, एगं बिंदुयं करयलंसि आसाइए तं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसब्भूयं जाणित्ता एवं वयासी-'धिरत्थु णं मम नागसिरीए अहन्नाए अपुन्नाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभग-णिबोलियाए, जीए णं मए सालइए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उवक्ख-डिए सुबहुदव्वक्खएणं, नेहक्खए य कए।

की। यावत् वे चम्पा नगरी में उच्च, नीच और मध्यम कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए नागश्री ब्राह्मणी के घर में प्रविष्ट हुए।

तए णं सा नागसिरी माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहुसंभारसंजुत्तं णेहावगाढं निसिरण-ट्ठयाए हट्ठतुट्ठा उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुनेहं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निसिरइ।

तत्पश्चात् नागश्री ब्राह्मणी ने धर्मरुचि अनगार को आता देखा। देख कर वह उस शरद् ऋतु संबंधी, बहुत से मसालों वाले और तेल से युक्त तू बे के शाक को निकाल देने के लिए हृष्ट-तुष्ट हुई और खड़ी हुई। खड़ी होकर भोजनगृह में गई। वहाँ जाकर उसने वह शरद्ऋतु संबधी तिक्त और कडुवा बहुत तेल वाला सब का सब शाक धर्मरुचि अनगार के पात्र में डाल दिया।

तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु णागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चंपाए नगरीए मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामंते इरिया-वहियं पडिक्कमियं अन्नपाणं पडिलेहेइ अन्नपाणं करयलंसि पडिदंसेइ।

तत्पश्चात् धर्मरुचि अनगार 'आहार पर्याप्त है' ऐसा जानकर नागश्री ब्राह्मणी के घर से बहार निकले। निकल कर चम्पा नगरी के बीचों बीच होकर निकले। निकल कर सुभूमि भाग उद्यान में आये। आकर उन्होंने धर्मघोष स्थविर के समीप ईर्यापथ का प्रतिक्रमण करके अन्न-पानी का प्रतिलेखन किया। प्रति-लेखन करके, हाथ मे अन्न-पानी लेकर गुरु को दिखलाया।

तए णं ते धम्मघोसा थेरा तस्स सालइयस्स नेहावगाढस्स गंधेण अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ नेहावगाढाओ एगं बिंदुगं गहाय करयलंसि आसाएइ, तित्तगं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइं अणगारं एवं वयासी—'जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! एयं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवि-याओ ववरोविज्जसि, तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं सालइयं जाव

आहारेसि, मा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं सालइयं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिले परिट्ठवेहि, परिट्ठवित्ता अन्नं फासुयं एसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि।'

तत्पश्चात धर्मघोष स्थविर ने उस शरदृऋतु संबंधी, तेल से व्याप्त शाक की गंध से पराभव को प्राप्त होकर, उस शरदृऋतु संबंधी एवं तेल से व्याप्त शाक में से एक बूंद हाथ मे लेकर चखा। तब उसे तिक्त, खारा, कड़वा, अखाद्य, अभोज्य और विष के समान जान कर धर्मरुचि अनगार से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिय। यदि तुम यह शरदृऋतु संबंधी यावत् तेल वाला तूंबे का शाक खाओगे तो तुम असमय में ही जीव से रहित हो जाओगे, अतएव हे देवानुप्रिय! तुम इस शरद् संबंधी शाक को यावत् मत खाना। ऐसा न हो कि असमय में ही तुम्हारे प्राण चले जाएँ। अतएव हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और यह शरद् संबंधी तूंबे का शाक एकन्त, आवागमन से रहित, अचित्त भूमि में परठ दो। इसे परठ कर दूसरा प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ग्रहण करके उसका आहार करो।

तए णं से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभाग-उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिल्लं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता तओ सालइयाओ एगं बिंदुगं गहेइ, गहित्ता थंडलंसि निसिरइ।

तत्पश्चात धर्मघोष स्थविर के ऐसा कहने पर धर्मरुचि अनगार धर्मघोष स्थविर के पास से निकले। निकल कर सुभूमिभाग उद्यान से अधिक दूर न अधिक समीप अर्थात् कुछ दूर पर उन्होंने स्थंडिल (भूभाग) की प्रति-लेखना करके उस शरद् संबंधी तूंबे के शाक की एक बूंद ली और उस भूभाग में डाली।

तए णं तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहुनेहावगाढस्स गंधेणं बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूयाइं। जा जहा य णं पिपीलिगा आहारेइ सा तहा अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ।

तए णं तस्स धम्मरुइस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-'जइ ताव इमस्स सालइयस्स जाव एगंमि बिंदुगंमि-

पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपीलिगासहस्साइं ववरोविज्जंति, तं जइ णं अहं एयं सालइयं थंडिल्लंसि सव्वं निसिरामि, तए णं बहूणं पाणाणं भूआणं जीवाणं सत्ताणं वहकरणं भविस्सइ। तं सेयं खलु ममेयं सालइयं जाव गाढं सयमेव आहारेत्तए, मम चेव एएणं सरीरेणं णिज्जाउ' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता मुहपोत्तियं, पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ, पमज्जित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं बहुनेहावगाढं विलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्ठंसि पक्खिवइ।

तत्पश्चात् उस शरद् संबन्धी तिक्त कटुक और तेल से व्याप्त शाक की गंध से बहुत हजारों कीड़ियाँ वहाँ आ गईं। उनमें से जिस कीड़ी ने जैसे ही वह शाक खाया, वैसे ही वह असमय मे ही मृत्यु को प्राप्त हुई।

तत्पश्चात् धर्मरुचि अनगार के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ-यदि इस शरद् संबंधी यावत् शाक का एक बिन्दु डालने पर अनेक हजार कीड़ियाँ मर गईं, तो यदि मैं सब का सब यह शाक भूमि पर डाल दूंगा तो यह बहुत-से प्राणियो, भूतो, जीवों और सत्वों के वध का कारण होगा। अतएव इस शरद् संबन्धी यावत् तेल वाले शाक को स्वयं ही खा जाना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। यह शाक इसी (मेरे) शरीर से ही समाप्त हो जाय-झर जाय। अनगार ने ऐसा विचार करके मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके मस्तक सहित ऊपर के शरीर का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन करके वह शरद् संबन्धी तूंबे का तिक्त, कटुक और बहुत तेल से व्याप्त शाक स्वयं ही, बिल मे साँप की भाँति, अपने शरीर के कोठे में डाल लिया।

तए णं तस्स धम्मरुइस्स तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा।

उस शरद् संबंधी तूंबे का यावत् तेल वाला शाक खाने पर धर्मरुचि अनगार के शरीर में, एक मुहूर्त्त में (थोडी सी देर मे) ही वेदना उत्पन्न हो गई। वह वेदना उत्कृष्ट थी, यावत् दुस्सह थी।

तए णं धम्मरुई अणगारे अथामे अवले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु आयारभंडगं एगंते ठवेइ, ठवित्ता

थंडिल्लं पडिलेहइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथारेइ, संथारित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

शाक पेट में डाल लेने के पश्चात् धर्मरुचि अनगार स्थाम (उठने-बैठने की शक्ति) से रहित, बलहीन वीर्य से रहित, तथा पुरुषकार और पराक्रम से हीन हो गये। अब यह शरीर धारण नहीं किया जा सकता, ऐसा जानकर उन्होंने आचार के भाण्ड-पात्र एक जगह रख दिये। उन्हें रख कर स्थंडिल का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दर्भ का संथारा बिछाया और वह उस पर आसीन हो गये। पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंक आसन से बैठ कर, दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर आवर्त्तन करके, अंजलि करके इस प्रकार कहा—

नमोऽत्थु णं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽत्थु णं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसगाणं, पुव्विं पि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव परिग्गहे, इयाणिं पि णं अहं तेसिं चेव भगवंताणं अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव परिग्गहियं पच्चक्खामि जावजीवाए, जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए।

'अरिहंतों यावत् सिद्धिगति को प्राप्त भगवन्तों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक धर्मघोष स्थविर को नमस्कार हो। पहले भी मैं ने धर्मघोष स्थविर के पास सम्पूर्ण प्राणातिपात का जीवन पर्यन्त के लिए प्रत्याख्यान किया था, यावत् परिग्रह का भी; इस समय भी मैं उन्हीं भगवंतों के समीप सम्पूर्ण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ यावत् परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ, जीवन पर्यन्त के लिए। जैसे स्कंदक मुनि ने किया, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए। यावत् अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ अपने इस शरीर का भी परित्याग करता हूँ।' इस प्रकार कह कर आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुए।

तए णं ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइं अणगारं चिरं गयं जाणित्ता समणे निग्गंथे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स मासखमणपारणगंसि सालाइयस्स

जाव गाढस्स णिसिरणट्ठयाए बहिया निग्गए चिराइ, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! धम्मरुइस्स अणगारस्स, सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेह ।'

तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर ने धर्मरुचि अनगार को चिरकाल से गया जान कर निर्ग्रंथ श्रमणो को बुलाया। बुला कर उनसे कहा-'हे देवानुप्रियो ! धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणक मे शरद् संबंधी यावत् तेल वाला कटुक तूंबे का शाक मिला था। उसे परठने के लिए वह बाहर गये थे। बहुत समय हो चुका है। अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और धर्मरुचि अनगार को सब ओर मार्गणा-गवेषणा (तलाश) करो।'

तए णं ते समणा निग्गंथा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता धम्म-घोसाणं थेराण अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिल्ले तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति, पासित्ता 'हा हा ! अहो अकज्ज' मिति कट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, करित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स आयारभंडगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता गमणागमणं पडिक्कमंति, पडिक्कमित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् श्रमण निर्ग्रन्थों ने अपने गुरु का आदेश अंगीकार किया। अंगीकार करके वे धर्मघोष स्थविर के पास से बाहर निकले। बाहर निकल कर सब ओर धर्मरुचि अनगार की मार्गणा-गवेषणा करते हुए जहाँ स्थंडिल भूमि थी, वहाँ आये। आकर देखा-धर्मरुचि अनगार का शरीर निष्प्राण, निश्चेष्ट और निर्जीव पड़ा है ! उसे देख कर उनके मुख से सहसा निकल पड़ा-'हा हा ! अहो ! यह अकार्य हुआ-बुरा हुआ !' इस प्रकार कह कर उन्होने धर्मरुचि अनगार के काल धर्म के निमित्त कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके धर्म-रुचि अनगार के आचार भांडक (पात्र) ग्रहण किये और जहाँ धर्मघोष नामक स्थविर थे, वहाँ पहुँचे। पहुंच कर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। प्रतिक्रमण करके बोले:—

एवं खलु अम्हे तुब्भं अंतियाओ पडिनिक्खमामो पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वं जाव करेमाणे जेणेव थंडिल्ले तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता जाव इहं हव्वमागया। तं कालगए णं भंते! धम्मरुई अणगारे, इमे से आयारभंडए।'

'आपका आदेश पा करके हम आपके पास से निकले थे। निकल कर सुभूमिभाग उद्यान के चारों तरफ धर्मरुचि अनगार की यावत् सब प्रकार मार्गणा–गवेषणा करते हुए स्थंडिल भूमि मे गये। जाकर यावत् जल्दी ही यहाँ लौट आये हैं। सो हे भगवन्! धर्मरुचि अनगार कालधर्म को प्राप्त हुए हैं। यह उनके आचार भांड हैं। (इस प्रकार कह कर पात्र आदि उपकरण गुरु महाराज के सामने रख दिये।)

तए णं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति, गच्छित्ता समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी–'एवं खलु अज्जो! मम अंतेवासी धम्मरुई नाम अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठे, तए णं सा नागसिरी माहणी जाव निसिरइ।

तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु जाव कालं अणवकंखेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् स्थविर धर्मघोष ने पूर्व दिशा में उपयोग लगाया। उपयोग लगा कर श्रमण निर्ग्रन्थों को और निर्ग्रन्थियों को बुलाया। बुला कर उनसे कहा–'हे आर्यो! इस प्रकार मेरा अन्तेवासी धर्मरुचि नामक अनगार स्वभाव से भद्र यावत् विनीत था। वह मासखमण की तपस्या कर रहा था। यावत् वह नागश्री ब्राह्मणी के घर पारणक के लिए गया। तब नागश्री ब्राह्मणी ने उसके पात्र में यावत् सब का सब कटुक विष–सदृश तूंबे का शाक उंडेल दिया।

तब धर्मरुचि अनगार अपने लिए पर्याप्त आहार जान कर यावत् काल की आकांक्षा न करते हुए विचरने लगे। (अर्थात् स्थविर ने पिछला समग्र वृत्तान्त अपने शिष्यों को सुना दिया)।

से णं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणित्ता

आलोइयपडिक्कंते, समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं सोहम्म जाव सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अजहण्णमणुक्कोसं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ धम्मरुइस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं धम्मरुई देवे ताओ देवलोगाओ जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

धर्मरुचि अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय पाल कर, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि में लीन होकर काल-मास में काल करके, उपर सौधर्म आदि देवलोको को लांघ कर; यावत् सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान में देवरूप से उत्पन्न हुए हैं। वहाँ जघन्य-उत्कृष्ट भेद से रहित-एक ही समान तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। वह धर्मरुचि देव उस सर्वार्थसिद्ध देवलोक से च्युत होकर यावत् महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

'तं धिरत्थु णं अज्जो! णागसिरीए माहणीए अधन्नाए अपुन्नाए जाव णिंबोलियाए, जाए णं तहारूवे साहू धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं जाव गाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।'

'तो हे आर्यो! उस अधन्य, अपुण्य यावत् निंबोली के समान कटुक नागश्री ब्राह्मणी को धिक्कार है, जिसने उस प्रकार के साधु धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणक में-शरद् संबंधी यावत् तेल से व्याप्त कटुक तूंबे का शाक देकर असमय में ही मार डाला।'

तए णं ते समणा निग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म चंपाए सिंघाडगतिग जाव बहुजणस्स एवमाइक्खंति—'धिरत्थु णं देवाणुप्पिया! नागसिरीए माहणीए जाव णिंबोलियाए, जाए ण तहारूवे साहू साहुरूवे सालइएणं जीवियाओ ववरोविए।'

तत्पश्चात् उन निर्ग्रन्थ श्रमणों ने; धर्मघोष स्थविर के पास से यह वृत्तान्त सुन कर और समझ कर चम्पा नगरी के शृङ्गाटक, त्रिक आदि मार्गों में जाकर यावत् बहुत लोगो से इस प्रकार कहा-'धिक्कार है उस नागश्री ब्राह्मणी यावत् निंबोली के समान कटुक को! जिसने उस प्रकार के, साधु और साधु रूप धारी मासखमण का तप करने वाले धर्मरुचि नामक अनगार को शरद् संबंधी यावत् विष सदृश कटुक शाक देकर मार डाला!'

तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ–'धिरत्थु णं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए।'

तब उन श्रमणों से इस वृत्तान्त को सुन कर और समझ कर बहुत–से लोग आपस में इस प्रकार कहने और बातचीत करने लगे–'धिक्कार है उस नागश्री ब्राह्मणी को, यावत् जिसने मुनि को मार डाला।'

तए णं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ता जाव मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता णागसिरीं माहणीं एवं वयासी—

'हं भो नागसिरी! अपत्थियपत्थिए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्ण-चाउद्दसे धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुन्नाए जाव णिंबोलियाए, जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहुरूवे मासखमणपारणगंसि सालइएणं जाव ववरोविए।' उच्चावएहिं अक्कोसणाहिं अक्कोसंति, उच्चावयाहिं उद्धं-सणाहिं उद्धंसेंति, उच्चावयाहिं णिब्भत्थणाहिं णिब्भत्थंति, उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं णिच्छोडेंति, तज्जेंति, तालेंति, तज्जेत्ता तालेत्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति।

तत्पश्चात् वे ब्राह्मण, चम्पा नगरी में, बहुत–से लोगों से यह वृत्तान्त सुनकर और समझ कर कुपित हुए यावत् क्रोध से मिसमिसाने (जलने) लगे। वे वहीं जा पहुँचे जहाँ नागश्री थी। उन्होंने वहाँ जाकर नागश्री से इस प्रकार कहा—

'अरी नागश्री! अप्रार्थित (मरण) की प्रार्थना करने वाली! दुष्ट और अशुभ लक्षणों वाली! निकृष्ट कृष्ण-चतुर्दशी में जन्मी हुई! तुझ अधन्य, अपुण्य यावत् निंबोली के समान कटुक को धिक्कार है; जिस ने तथा रूप साधु और साधु रूप धारी को मासखमण के पारणक मे शरद् संबंधी यावत् शाक वहरा कर मार डाला!'

इस प्रकार कह कर उन ब्राह्मणों ने ऊँचे–नीचे आक्रोश (तू मरजा आदि) वचन कह कर आक्रोश किया अर्थात् गालियाँ दीं, ऊँचे–नीचे उद्धंसना

(तू नीच कुल की है, आदि) वचन कह कर उद्घसना की, ऊँचे-नीचे भर्त्सना (निकल जा हमारे घर से, आदि) वचन कह कर भर्त्सना की, तथा ऊँचे-नीचे निश्छोटन (हमारे गहने, कपड़े उतार दे, इत्यादि) वचन कह कर निश्छोटना की, 'हे पापिनी तुझे पाप का फल भुगतना पड़ेगा' इत्यादि वचनों से तर्जना की. और थप्पड़ आदि मार-मार कर ताड़ना की। इस प्रकार तर्जना और ताड़ना करके उसे घर से निकाल दिया।

तए णं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नयरीए सिंघाडगतियचउक्कचच्चरचउम्मुह बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी निंदिज्जमाणी गरहिज्जमाणी तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी अलभमाणी दंडीखंडनिवसना खंडमल्लगखंडघडगहत्थगया फुट्टहडाहडसीसा मच्छियाचडगरेणं अन्निज्जमाणमग्गा गेहं गेहेणं देहं वलियाए वित्तिं कप्पेमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् वह नागश्री अपने घर से निकाली हुई चंपा नगरी में, शृंगाटक (सिंघाडे के आकार के मार्ग) में, त्रिक (तीन रास्ते जहाँ मिलते हों ऐसे मार्ग) में, चतुष्क (चौक) में, चत्वर (चबूतरे), तथा चतुर्मुख (चारद्वार वाले देव कुल आदि) में, बहुत जनों द्वारा अवहेलना की पात्र होती हुई, कुत्सा (बुराई) की जाती हुई, निन्दा और गर्हा की जाती हुई, उंगली दिखा-दिखा कर तर्जना की जाती हुई, डंडों आदि की मार से व्यथित की जाती हुई, धिक्कारी जाती हुई तथा थूकी जाती हुई न कहीं भी ठिकाना पा सकी और न कहीं रहने की जगह पा सकी। टुकड़े-टुकड़े साँधे हुए वस्त्र पहने, भोजन के लिए सिकोरे का टुकड़ा लिये, पानी पीने के लिए घड़ा का टुकड़ा हाथ में लिये, मस्तक पर अत्यन्त बिखरे बालों को धारण किये, जिसके पीछे मक्खियों के झुंड भिनभिना रहे थे ऐसी वह नागश्री घर-घर देहवलि (अपने-अपने घरों पर फैंकी हुई बलि) के द्वारा अपनी जीविका चलाती हुई भटकने लगी।

तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए तब्भवंसि चेव सोलस रोगायंका पाउब्भूया, तंजहा—सासे कासे जोणिसूले जाव कोढे। तए णं नागसिरी माहणी सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरोवमट्ठिईएसु नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ना।

तत्पश्चात् उस नागश्री ब्राह्मणी को उसी भव में सोलह रोगातंक उत्पन्न हुए। वे इस प्रकार—श्वास, कास, योनिशूल यावत् कोढ*। तत्पश्चात् नागश्री ब्राह्मणी सोलह रोगातंकों से पीड़ित होकर, अतीव दुःख के वशीभूत होकर, कालमास में काल करके, छठी पृथ्वी (नरकभूमि) मे उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

सा णं तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववन्ना, तत्थ णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तित्तीससागरोवमठिईएसु नेरइएसु उववन्ना।

तत्पश्चात् नरक से सीधी निकल कर वह नागश्री मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई। वहाँ वह शस्त्र से वध करने योग्य हुई—उसका शस्त्र से वध किया गया। अतएव दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल करके, नीचे सातवीं पृथ्वी (नरकभूमि) मे उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

सा णं तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि मच्छेसु उववज्जइ, तत्थ वि य णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए दोच्चं पि अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीस सागरोवमठिईएसु नेरइएसु उववज्जइ।

तत्पश्चात् नागश्री सातवीं पृथ्वी से निकल कर सीधी दूसरी बार मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई। वहाँ भी उसका शस्त्र से वध किया गया और दाह की उत्पत्ति होने से मृत्यु को प्राप्त होकर पुनः नीचे सातवीं पृथ्वी मे उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की आयु वाले नारकों मे उत्पन्न हुई।

सा णं तओहिंतो जाव उव्वट्टित्ता तच्चं पि मच्छेसु उववन्ना, तत्थ वि य णं सत्थवज्झा जाव कालं किच्चा दोच्चं पि छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरोवमठिईएसु नरएसु उववन्ना।

सातवीं पृथ्वी से निकल कर तीसरी बार भी मत्स्य योनि मे उत्पन्न हुई। वहाँ भी वह शस्त्र से वध करने योग्य हुई। यावत् काल करके दूसरी बार छठी पृथ्वी में बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट आयु वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

---

* देखो नन्दन मणियार अध्ययन

तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता उरएसु एवं जहा गोसाले तहा नेयव्वं जाव रयणप्पहाए सत्तसु उववन्ना। तओ उव्वट्टित्ता जाव इमाइं खहयरविहाणाइं जाव अदुत्तरं च णं खरबायरपुढविकाइयत्ताए तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो।

वहाँ से निकल कर उरगयोनि में उत्पन्न हुई, इस प्रकार जैसे गोशालक के विषय में कहा है, वही सब वृत्तान्त समझना चाहिए, यावत् रत्नप्रभा आदि सातों नरकभूमियों मे उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर यावत् यह जो खेचर की योनियां हैं, उनमें उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् खर (कठिन) बादर पृथ्वीकाय के रूप में अनेक लाख बार उत्पन्न हुई।

सा णं तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, चंपाए नयरीए, सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिसि दारियत्ताए पच्चायाया। तए णं सा भद्दा सत्थवाही णवण्हं मासाणं दारियं पयाया सुकुमालकोमलियं गयतालुयसमाणं।

तत्पश्चात् वह पृथ्वीकाय से निकल कर इसी जम्बूद्वीप में, भारत वर्ष में, चम्पा नगरी में, सागरदत्त सार्थवाह की भद्रा भार्या की कूंख में बालिका के रूप में उत्पन्न हुई। तब भद्रा सार्थवाही ने नौ मास पूर्ण होने पर बालिका का प्रसव किया। वह बालिका हाथी के तालु के समान अत्यन्त सुकुमार और कोमल थी।

तीसे दारियाए निव्वत्ते बारसाहियाए अम्मापियरो इमं एयारूवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति,—'जम्हा णं अम्हं एसा दारिया सुकुमाला गयतालुयसमाणा तं होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे सुकुमालिया।' तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति सुमालिय त्ति।

उस बालिका के बारह दिन व्यतीत हो जाने पर माता-पिता ने उसका यह गुण वाला और गुण से बना हुआ नाम रक्खा—'क्योंकि हमारी यह बालिका हाथी के तालु के समान अत्यन्त कोमल है, अतएव हमारी इस पुत्री का नाम सुकुमालिका रहे।' तब उस बालिका के माता-पिता ने उसका 'सुकुमालिका' ऐसा नाम रख दिया।

तए णं सा सूमालिया दारिया पंचधाईपरिग्गहिया, तंजहा—खीरधाईए (मज्जणधाई य, मंडणधाई य, अंकधाई य, कीलावणधाई य) जाव गिरिकंदरमल्लीणा इव चंपकलया निव्वाए निव्वाघायंसि जाव परिवड्ढइ। तए णं सा सूमालिया दारिया उम्मुक्कबालभावा जाव रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

तदनन्तर सुकुमालिका बालिका को पाँच धायों ने ग्रहण किया अर्थात् पांच धायें उसका पालन-पोषण करने लगीं। वे इस प्रकार थीं-(१) दूध पिलाने वाली धाय (२) स्नान कराने वाली धाय (३) आभूषण पहनाने वाली धाय (४) गोद में लेने वाली धाय और (५) खेलाने वाली धाय। यावत् पर्वत की गुफा में रही हुई चंपकलता जैसे वायुविहीन प्रदेश में व्याघात रहित बढ़ती है, उसी प्रकार वह भी बढ़ने लगी। तत्पश्चात् सुकुमालिका बाल्यावस्था से मुक्त हुई, यावत् रूप से और यौवन से लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई।

तत्थ णं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अड्ढे, तस्स णं जिणदत्तस्स भद्दा भारिया सूमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पच्चणुब्भवमाणा विहरइ। तस्स णं जिणदत्तस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सागरए नामं दारए सुकुमाले जाव सुरूवे।

चम्पा नगरी में जिनदत्त नामक एक धनिक सार्थवाह निवास करता था। उस जिनदत्त की भद्रा नामक पत्नी थी। वह सुकुमारी थी, जिनदास को प्रिय थी यावत् मनुष्य संबंधी कामभोगों का आस्वादन करती हुई रहती थी। उस जिनदत्त सार्थवाह का पुत्र और भद्रा भार्या का उदर जात सागर नामक लड़का था। वह भी सुकुमार यावत् सुन्दर रूप से सम्पन्न था।

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाई साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ, इमं च णं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडियासंघपरिवुडा उप्पिं आगासतलगंसि कणगतेंदूसएणं कीलमाणी कीलमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय जिनदत्त सार्थवाह अपने घर से निकला। निकल कर सागरदत्त के घर के कुछ पास से जा रहा था। इधर सुकुमालिका

लड़की नहा-धोकर, दासियों के समूह से घिरी हुई, भवन के ऊपर छत पर सुवर्ण की गेंद से क्रीड़ा करती-करती विचर रही थी।

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ, पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'एस णं देवाणुप्पिया! कस्स दारिया? किं वा णामधेज्जं से?'

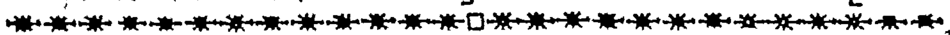
तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव एवं वयासी-'एस णं देवाणुप्पिया! सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया सूमालिया नाम दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव उक्किट्ठे।'

तब जिनदत्त सार्थवाह ने सुकुमालिका लड़की को देखा। देख कर सुकुमालिका लड़की के रूप पर, यौवन पर और लावण्य पर उसे आश्चर्य हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुला कर पूछा-'देवानुप्रियो! वह किसकी लड़की है? उसका नाम क्या है?'

जिनदत्त सार्थवाह के ऐसा कहने पर वे कौटुम्बिक पुरुष हर्षित और सन्तुष्ट हुए। उन्होंने हाथ जोड़ कर इस प्रकार उत्तर दिया-'देवानुप्रिय! यह सागरदत्त सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा सुकुमालिका नामक लड़की है। सुकुमार हाथ-पैर आदि अवयवों वाली यावत् उत्कृष्ट है।'

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कोडुंबियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए जाव मित्तनाइपरिवुडे चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सायरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ। तए णं सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, एज्जमाणं पासइत्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता आसणेणं उवणिमंतेइ, उवणिमंतित्ता आसत्थं वीसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी-'भण देवाणुप्पिया! किमागमणपओयणं?'

जिनदत्त सार्थवाह उन कौटुम्बिक पुरुषों के पास से इस अर्थ को सुन कर अपने घर चला गया। फिर नहा-धो कर तथा मित्रजनों एवं ज्ञातिजनों से



परिवृत्त होकर चम्पा नगरी के मध्यभाग में होकर वहाँ आया जहां सागरदत्त का घर था। तब सागरदत्त सार्थवाह ने जिनदत्त सार्थवाह को आता देखा। आता देख कर वह आसन से उठ खड़ा हुआ। उठ कर उसने जिनदत्त को आसन ग्रहण करने के लिए निमंत्रित किया। निमंत्रित करके विश्रान्त एवं विश्वस्त हुए तथा सुखद आसन पर आसीन हुए जिनदत्त से पूछा—'कहिए देवानुप्रिय! आपके आगमन का क्या प्रयोजन है?'

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—'एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! तव धूयं भद्दाए अत्तियं सूमालियं सागरदत्तस्स भारियत्ताए वरेमि। जइ णं जाणह देवाणुप्पिया! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो, ता दिज्जउ णं सूमालिया सागरस्स। तए णं देवाणुप्पिया! किं दलयामो सुंकं सूमालियाए?'

तब जिनदत्त सार्थवाह ने सागरदत्त सार्थवाह से कहा—'देवानुप्रिय! मैं आपकी पुत्री, भद्रा सार्थवाही की आत्मजा सुकुमालिका की सागरदत्त की पत्नी के रूप में मँगनी करता हूँ। देवानुप्रिय! अगर आप यह युक्त समझें, पात्र समझें, श्लाघनीय समझें और यह समझें कि यह संयोग समान है, तो सुकुमालिका सागरदत्त को दीजिए। अगर आप यह संयोग इष्ट समझते हैं तो देवानुप्रिय! सुकुमालिका के लिए क्या शुल्क देवें?'

तए णं से सागरदत्ते तं जिणदत्तं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! सूमालिया दारिया मम एगा एगजाया इट्ठा जाव किमंग पुण पासणयाए? तं नो खलु अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं। तं जइ णं देवाणुप्पिया! सागरदारए मम घरजामाउए भवइ, तो णं अहं सागरस्स दारगस्स सूमालियं दलयामि।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने जिनदत्त से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! सुकुमालिका पुत्री हमारी एकलौती सन्तति है, एक ही उत्पन्न हुई है, हमें प्रिय है। उसका नाम सुनने से भी हमें हर्ष होता है तो देखने की तो बात ही क्या है? अतएव हे देवानुप्रिय! मैं क्षण भर के लिए भी सुकुमालिका का वियोग नहीं चाहता। देवानुप्रिय! यदि सागर पुत्र हमारा गृह-जामाता (घर-जमाई) बन जाय तो मैं सागर दारक को सुकुमालिका दे दूं।'

लड़कं
सुवएं

सूमां
कोडुं
कस्स

र

समाए
सागरद
सुकुमाल

त

मालिका ल
उसने कौटुि
लड़की है ?

जिनद
हुए। उन्होंने ह
सार्थवाह की पु
हाथ-पैर आदि

तए णं से
सोच्चा जेणेव सए
मित्तनाइपरिवुडे चंपा
तेणेव उवागच्छइ । तए
एज्जमाणं पासइ, एज्जमाणं
आसणेणं उवणिमंतेइ, उवणि
एवं वयासी—'भण देवाणुप्पिय

जिनदत्त सार्थवाह उन कौटुम्बि
कर अपने घर चला गया। फिर नहा-धो

तए णं
समाणे जेणेव
सद्दावेइ, सद्दावि
एवं वयासी
न्द, नं जइ सां
णं से सागरए दा
संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् जिन
अपने घर गया। घर
कहा-'हे पुत्र ! सागरद
सुकुमालिका लड़की मेरा
सो यदि सागर पुत्र मेरा
दत्त सार्थवाह के ऐसा का
स्वीकृति प्रकट की।)।

तए णं जिणदत्ते स
[redacted] असणं पाणं खाइमं
[redacted] आमंतेइ, जाव संमाणि
[redacted] करेइ, करित्ता पुरिस
[redacted] जाव संपरिवुडे
चंपानगरिं मज्झं मज्
सीयाओ
उवणि

समय शुभ
खादिम और स्व
आमंत्रित किय
नहा-धुला प
पर आरू
बाजार पूरे
[redacted] में होक

[redacted] ने सागर पुत्र के मित्र-ज्ञाति आदि को तथा [redacted] आदि को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन [redacted] आदि से यावत् सम्मानित करके विदा किया।

[redacted] पुत्र, सुकुमालिका के साथ जहाँ वासगृह (शयनागार) [redacted] सुकुमालिका पुत्री के साथ शय्या पर सोया।

[redacted] सुमालियाए दारियाए इमं एयारूवं [redacted] अभिपत्ते इ त्ता जाव अमणाम- [redacted] विहरइ। तए णं से सागरए [redacted] सुहपसुत्तं संचिट्ठइ। तए [redacted] उट्ठेत्ता सूमालियाए दारि [redacted] आगच्छ

[redacted]

तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता वासघरस्स दारं विहाडेइ, विहाडित्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् सागर दारक ने दूसरी बार भी सुकुमालिका दारिका के इस प्रकार के इस अंगस्पर्श को अनुभव किया। यावत् वह विना इच्छा के पराधीन होकर थोड़ी देर तक वहाँ रहा।

तत्पश्चात् सागर दारक, सुकुमालिका दारिका को सुखपूर्वक सोई जान कर शय्या से उठा। उसने अपने वासगृह (शयनागार) का द्वारा उघाड़ा। द्वार उघाड़ कर वह मरण से अथवा मारने वाले पुरुष से छुटकारा पाये काक की तरह-शीघ्रता के साथ-जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

तए णं सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पइंवया जाव अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेइ, सागरस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'गए से सागरे' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

तत्पश्चात् सुकुमालिका दारिका थोड़ी देर मे जागी। वह पतिव्रता यावत् पति को अपने पास न देखती हुई शय्या से उठी। उसने सागर दारक की सब तरफ मार्गणा-गवेषणा की। गवेषणा करते-करते शयनागार का द्वार खुला देखा तो कहा—'वह सागर तो चल दिया!' उसके मन का संकल्प मारा गया, अतएव वह चिन्ता करने लगी।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही कल्लं पाउप्पभाए दासचेडियं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! वहुवरस्स मुह-सोहणियं उवणेहि।' तए णं सा दासचेडी भद्दाए एवं वुत्ता समाणी एयमट्ठं तह त्ति पडिसुणेइ, मुहधोवणियं गेण्हित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'किं णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा झियाहि?'

तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह ने सागर पुत्र के माता-पिता को तथा मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन से तथा पुष्प वस्त्र आदि से यावत् सम्मानित करके विदा किया।

तत्पश्चात सागर पुत्र, सुकुमालिका के साथ जहाँ वासगृह (शयनागार) था, वहाँ आया। आकर सुकुमालिका पुत्री के साथ शय्या पर सोया।

तए णं से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, से जहानामए असिपत्ते इ वा जाव अमणामयरागं चेव अंगफासं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ। तए णं से सागरए दारए अंगफासं असहमाणे अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ। तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए पासाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणीयंसि निवज्जइ।

तत्पश्चात सागर पुत्र ने सुकुमालिका पुत्री के इस प्रकार के अंगस्पर्श को ऐसा अनुभव किया जैसे कोई तलवार हो, यावत् वह अत्यन्त ही अमनोज्ञ अंगस्पर्श को अनुभव करता रहा। तत्पश्चात् वह सागर पुत्र उस अंगस्पर्श को सहन न कर सकता हुआ विवश होकर मुहूर्त्त मात्र-कुछ समय तक-वहाँ रहा। तत्पश्चात वह सागर पुत्र सुकुमालिका दारिका को सुखपूर्वक सोई जान कर उसके पास से उठा और जहाँ अपनी शय्या थी, वहाँ आ गया। आकर अपनी शय्या पर सो गया।

तए णं सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइंवया पइमणुरत्ता पतिं पासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरस्स पासे णिवज्जइ।

तदनन्तर सुकुमालिका पुत्री एक मुहूर्त्त में-थोड़ी देर में जाग उठी। वह पतिव्रता थी और पति मे अनुराग वाली थी, अतएव पति को अपने पास में न देखती हुई शय्या से उठ बैठी। उठ कर वहाँ गई जहाँ उसके पति की शय्या थी। वहाँ पहुँच कर वह सागर के पास सो गई।

तए णं सागरदारए सूमालियाए दारियाए दुच्चं पि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, जाव अकामए अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् दास चेटी से यह वृत्तान्त सुन-समझ कर सागरदत्त कुपित होकर जहाँ जिनदत्त सार्थवाह का घर था, वहाँ आया। आकर उसने जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! क्या यह योग्य है? प्राप्त-उचित है? यह कुल के अनुरूप और कुल के सदृश है, कि सागरदारक, सुकुमालिका दारिका को, जिस का कोई दोष नहीं देखा गया और जो पतिव्रता है, छोडकर यहाँ आ गया है? यह कहकर बहुत-सी खेद युक्त क्रियाएँ करके तथा रुदन की चेष्टाएँ करके उसने उलहना दिया।

तए णं जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरे दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरयं दारयं एवं वयासी—'दुट्ठु णं पुत्ता! तुमे कयं सागरदत्तस्स गिहाओ इहं हव्वमागए। तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता! एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे।'

तब जिनदत्त, सागरदत्त के इस अर्थ को सुनकर जहाँ सागरदारक था, वहाँ आया। आकर सागरदारक से बोला—'हे पुत्र! तुमने बुरा किया जो सागरदत्त के घर से यहाँ एकदम चले आये। अतएव हे पुत्र! ऐसा होने पर भी अब तुम सागरदत्त के घर चले जाओ।

तए णं से सागरए जिणदत्तं एवं वयासी—'अवि याइं अहं ताओ! गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवेसं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा वेहाणसं वा सत्थोवाडणं वा गिद्धपिट्ठं वा पव्वज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छिज्जामि, नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा।'

तब सागर पुत्र ने जिनदत्त से इस प्रकार कहा—'हे तात! मुझे पर्वत से गिरना स्वीकार है, वृक्ष से गिरना स्वीकार है, मरु प्रदेश (रेगिस्तान) में पड़ना स्वीकार है, जल में डूब जाना, आग में प्रवेश करना, विष भक्षण करना, अपने शरीर को श्मशान में या जंगल में छोड़ देना कि जिससे जानवर या प्रेत खाजाएँ, गृध्रपृष्ठ मरण (हाथी आदि के मुर्दे में प्रवेश कर जाना कि जिससे गीध आदि खा जाएँ), इसी प्रकार दीक्षा ले लेना या परदेश में चला जाना स्वीकार है, परन्तु निश्चय ही मैं सागरदत्त के घर नहीं जाऊँगा।

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुड्डंतरिए सागरस्स एयमट्ठं निसामेइ, निसामित्ता लज्जिए विलेपविट्ठे जिणदत्तस्स गिहाओ पडि-

तत्पश्चात भद्रा सार्थवाही ने कल (दूसरे दिन) प्रभात प्रकट होने पर दासचेटी (दासी) को बुलाया और उससे कहा-'हे देवानुप्रिये ! तू जा और वधू-वर के लिए मुख-शोधनिका (दातौन-पानी) लेजा ।' तत्पश्चात् उस दासचेटी ने भद्रा सार्थवाही के इस प्रकार कहने पर, इस अर्थ को 'बहुत अच्छा' कह कर अंगीकार किया । उसने मुखशोधनिका ग्रहण की । ग्रहण करके जहाँ वासगृह था, वहाँ पहुँची । वहां पहुँच कर सुकुमालिका दारिका को चिन्ता करती देख कर पूछा- देवानुप्रिये ! तुम भग्नमनोरथ होकर चिन्ता क्यों कर रही हो ?'

तए णं सा सूमालिया दारिया तं दासचेडीयं एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिए ! सागरए दारए मम सुहसुत्तं जाणित्ता मम पासाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता वासघरदुवारं अवगुंडइ, जाव पडिगए । ततो अहं मुहुत्तंतरस्स जाव विहाडियं पासामि, गए से सागरए त्ति कट्टु, ओहयमणसंकप्पा जाव झियायामि ।'

तत्पश्चात् उस सुकुमालिका दारिका ने दासचेटी से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिये ! सागर दारक मुझे सुख से सोया जान कर मेरे पास से उठा और वासगृह का द्वार उघाड़ कर यावत् वापिस चला गया । तदनन्तर मैं थोड़ी देर बाद उठी, यावत् द्वार उघाड़ा देखा तो मैंने सोचा-सागर चला गया । 'इसी कारण भग्नमनोरथ होकर मैं चिन्ता कर रही हूँ ।'

तए णं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेएइ ।

तत्पश्चात् वह दासचेटी सुकुमालिका दारिका के इस अर्थ (वृत्तान्त) को सुन कर वहाँ गई जहां सागरदत्त था वहां जाकर उसने सागरदत्त सार्थवाह से यह वृत्तान्त निवेदन किया ।

तए णं से सागरदत्ते दासचेडीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जेणेव जिणदत्तसत्थवाहगिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी-'किं णं देवाणुप्पिया ! एवं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरूवं वा कुलसरिसं वा, जं णं सागरदारए सूमालियं दारियं अदिट्ठदोसं पइवयं विप्पजहाय इहमागओ ?' बहूहिं खिज्जणियाहि य रुंटणियाहि य उवालभइ ।

धूया इट्ठा, एयं च णं अहं तवं भारियत्ताए दलामि, भद्दियाए भद्दओ भविज्जासि ।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने सुकुमालिका दारिका को स्नान करा कर यावत् समस्त अलंकारों से अलंकृत करके, उस भिखारी पुरुष से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिय ! यह मेरी पुत्री मुझे इष्ट है । इसे मैं तुम्हारी भार्या के रूप मे देता हूँ । तुम इस कल्याकारिणी के लिए कल्याणकारी होना ।'

तए णं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ, सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ ।

तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, सेसं जहा सागरस्स, जाव सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता वासघराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता खंडमल्लगं खंडघडं च गहाय माराग्मुक्के विव काए जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

तए णं सा सूमालिया जाव 'गए णं से दमगपुरिसे' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ ।

तत्पश्चात् उस द्रमक (भिखारी) पुरुष ने सागरदत्त की बात स्वीकार की । स्वीकार करके सुकुमालिका दारिका के साथ वासगृह में प्रविष्ट हुआ और सुकुमालिका दारिका के साथ एक शय्या में सोया ।

उस समय उस द्रमक पुरुष ने सुकुमालिका के उस प्रकार के अंगस्पर्श का अनुभव किया । शेष वृत्तान्त सागर दारक के समान समझना चाहिए । यावत् वह शय्या से उठा । उठ कर शयनागार से बाहर निकला । बाहर निकल कर अपना वही सिकोरे का टुकड़ा और घड़े का टुकड़ा ग्रहण करके जिधर से आया था, उधर ही ऐसा चला गया मानों किसी कसाईखाने से मुक्त हुआ हो या मारने वाले पुरुष से छुटकारा पाकर भागा हो !

'वह द्रमक पुरुष चल दिया' यह सोच कर सुकुमालिका भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता करने लगी ।

तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभाए दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी,-जाव सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ, । तए णं से सागर-

से सागरदत्ते सत्थवाहे ते कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी–'मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयस्स दमगस्स तं खंडं जाव एडेह, पासे ठवेह, जहा णं पत्तियं भवइ, ।' ते वि तहेव ठविंति ।

तत्पश्चात् सागरदत्त ने उस भिखारी पुरुष के ऊँचे स्वर से रोने–चिल्लाने का शब्द सुन कर और समझ कर कौटुम्बिक पुरुषों को कहा–'देवानुप्रियो ! यह भिखारी पुरुष क्यों जोर–जोर से चिल्ला रहा है ?' तब कौटुम्बिक पुरुषों ने इस प्रकार कहा–'स्वामिन् ! उस सिकोरे के टुकड़े और घट के ठीकरे को एक ओर डाल देने पर वह जोर–जोर से चिल्ला रहा है ।' तब सागरदत्त सार्थवाह ने उन कौटुम्बिक पुरुषो से कहा–'देवानुप्रियो ! तुम उस भिखारी के उस सिकोरे के खंड को यावत् एक ओर मत डालो, उसके पास रख दो, जिससे उसे प्रतीति हो ।' यह सुन कर उन्होंने उसी प्रकार वे टुकड़े उसके पास रख दिये ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेंति, करित्ता, सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वट्टणेणं गायं उव्वट्टिंति, उव्वट्टित्ता उसिणोदगगंधोदएणं सीतोदगेणं ण्हाणेंति, ण्हाणित्ता पम्हलसुकुमालगंधकासाईए गायाइं लूहंति, लूहित्ता हंसलक्खणं पट्टसाडगं परिहंति, परिहित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं भोयावंति भोयावित्ता सागरदत्तस्स उवणेंति ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उस भिखारी का अलंकारकर्म (हजामत आदि) कराया । फिर शतपाक और सहस्रपाक (सौ या हजार मोहरे खर्च करके या सौ या हजार औषध डालकर बनाये गये) तेल से अभ्यंगन (मर्दन) किया । अभ्यंगन हो जाने पर सुवासित गंधद्रव्य के उबटन से उसके शरीर का उबटन किया । फिर उष्णोदक, गंधोदक और शीतोदक से स्नान कराया । स्नान करवा कर बारीक और सुकोमल गंधकाषाय वस्त्रसे शरीर पोंछा । फिर हंसलक्षण (श्वेत) वस्त्र पहनाया । वस्त्र पहनाकर सर्व अलंकारों से विभूषित किया । विपुल अशन, पान खादिम और स्वादिम भोजन कराया । भोजन के बाद उसे सागरदत्तके समीप ले गये ।

तए णं सागरदत्ते सूमालियं दारियं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करित्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी–'एस णं देवाणुप्पिया ! मम

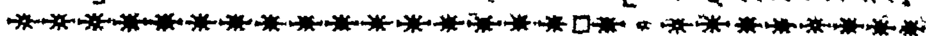
उस काल और उस समय में गोपालिका नामक बहुश्रुत आर्या, जैसे तेतलीज्ञात नामक अध्ययन में सुव्रता साध्वी के विषय में कहा है, उसी प्रकार पधारीं। उसी प्रकार उनके संघाड़े ने यावत् सुकुमालिका के घर में प्रवेश किया। उसी प्रकार सुकुमालिका ने यावत् आहार वहरा कर इस प्रकार कहा-'हे आर्याओ ! मैं सागर के लिए अनिष्ट हूँ यावत् अमनोज्ञ हूँ। सागर मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहता, यावत् परिभोग भी नहीं चाहता। जिस-जिस को भी मैं दी गई, उसी-उसी को भी अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ होती हूँ। आर्याओ ! आप तो बहुत ज्ञान वाली हो। इस प्रकार पोट्टिला ने जो कहा था, वह यहां भी जानना चाहिए। यावत् आपने कोई मंत्र-तंत्र आदि प्राप्त किया है, जिससे मैं सागर दारक की इष्ट, कान्त यावत् प्रिय हो जाऊँ ?'

अज्जाओ तहेव भणंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता, तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपुच्छइ, जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया। तए णं सा सूमालिया अज्जा जाया ईरियासमिया जाव बंभयारिणी बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव विहरइ।

आर्याओं ने उसी प्रकार-सुव्रता की आर्याओं के समान-उत्तर दिया। अर्थात् उन्होंने कहा कि ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता, तो फिर उपदेश करने-इष्ट होने का उपाय बताने की तो बात ही दूर रही। तब वह उसी प्रकार (पोट्टिला की भांति) श्राविका हो गई। उसने उसी प्रकार चिन्ता की और उसी प्रकार सागरदत्त सार्थवाह से आज्ञा ली। यावत् वह गोपालिका आर्या के निकट दीक्षित हुई। तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या हो गई। ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हुई और बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि की तपस्या करती हुई विचरने लगी।

तए णं सा सूमालिया अज्जा अन्नया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-'इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी चंपाओ बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणी विहरित्तए।

तत्पश्चात् सुकुमालिका आर्या किसी समय एक बार, गोपालिका आर्या के पास गई। जाकर उन्हें वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा-'हे आर्या (गुरुणीजी)! आपकी आज्ञा पाकर मैं चंपा नगरी



दत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासहरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी—'अहो णं तुमं पुत्ता ! पुरापोराणाणं जाव पच्चणुब्भवमाणी विहरसि, तं मा णं तुमं पुत्ता ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि, तुमं णं पुत्ता ! मम महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जहा पोट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि ।'

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने दूसरे दिन प्रभात होने पर दासचेटी को बुलाया । बुला कर इस प्रकार कहा;—इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए; यावत् दासचेटी ने सागरदत्त सार्थवाह को यह अर्थ निवेदन किया । तब सागरदत्त उसी प्रकार संभ्रान्त होकर वासगृह मे आया । आकर सुकुमालिका को गोद मे बिठलाकर कहने लगा—'हे पुत्री ! तू पूर्वकृत यावत् पापकर्मों को भोग रही है। अतएव बेटी ! भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता मत कर । हे पुत्री ! तू मेरी भोजनशाला मे तैयार हुए विपुल अशन, पान खाद्य और स्वाद्य आहार को—पोट्टिला की तरह कहना चाहिए यावत् श्रमणों आदि को देती हुई रहना ।'

तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव दलमाणी विहरइ ।

ते णं काले णं ते णं समए णं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ तहेव समोसड्ढाओ, तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे, तहेव जाव सूमालिया पडिलाभित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अज्जाओ अहं सागरस्स अणिट्ठा जाव अमणामा, नेच्छइ णं सागरए मम नामं वा जाव परिभोगं वा, जस्स जस्स वि य णं दिज्जामि तस्स तस्स वि य णं अणिट्ठा जाव अमणामा भवामि, तुब्भे य णं अज्जाओ ! बहुनायाओ, एवं जहा पोट्टिला जाव उवलद्धे जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता जाव भवेज्जामि ।'

तब सुकुमालिका दारिका ने यह बात स्वीकार की । स्वीकार करके भोजनशाला मे विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार दान देती हुई रहने लगी ।

उस काल और उस समय में गोपालिका नामक बहुश्रुत आर्या, जैसे तेतलीज्ञात नामक अध्ययन में सुव्रता साध्वी के विषय में कहा है, उसी प्रकार पधारीं। उसी प्रकार उनके संघाड़े ने यावत् सुकुमालिका के घर में प्रवेश किया। उसी प्रकार सुकुमालिका ने यावत् आहार वहरा कर इस प्रकार कहा-'हे आर्याओ! मैं सागर के लिए अनिष्ट हूँ यावत् अमनोज्ञ हूँ। सागर मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहता, यावत् परिभोग भी नहीं चाहता। जिस-जिस को भी मैं दी गई, उसी-उसी को भी अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ होती हूँ। आर्याओ! आप तो बहुत ज्ञान वाली हो। इस प्रकार पोट्टिला ने जो कहा था, वह यहां भी जानना चाहिए। यावत् आपने कोई मंत्र-तंत्र आदि प्राप्त किया है, जिससे मैं सागर दारक की इष्ट, कान्त यावत् प्रिय हो जाऊँ?'

अज्जाओ तहेव भणंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता, तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपुच्छइ, जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया। तए णं सा सूमालिया अज्जा जाया ईरियासमिया जाव बंभयारिणी बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव विहरइ।

आर्याओं ने उसी प्रकार-सुव्रता की आर्याओं के समान-उत्तर दिया। अर्थात् उन्होंने कहा कि ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता, तो फिर उपदेश करने-इष्ट होने का उपाय बताने की तो बात ही दूर रही। तब वह उसी प्रकार (पोट्टिला की भांति) श्राविका हो गई। उसने उसी प्रकार चिन्ता की और उसी प्रकार सागरदत्त सार्थवाह से आज्ञा ली। यावत् वह गोपालिका आर्या के निकट दीक्षित हुई। तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या हो गई। ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हुई और बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि की तपस्या करती हुई विचरने लगी।

तए णं सा सूमालिया अज्जा अन्नया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-'इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी चंपाओ बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणी विहरित्तए।

तत्पश्चात् सुकुमालिका आर्या किसी समय एक बार, गोपालिका आर्या के पास गई। जाकर उन्हें वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा-'हे आर्या (गुरुणीजी)! आपकी आज्ञा पाकर मैं चंपा नगरी

दत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासहरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी—'अहो णं तुमं पुत्ता ! पुरापोराणाणं जाव पच्चणुब्भवमाणी विहरसि, तं मा णं तुमं पुत्ता ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि, तुमं णं पुत्ता ! मम महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जहा पोट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि ।'

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही ने दूसरे दिन प्रभात होने पर दासचेटी को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा;—इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए; यावत् दासचेटी ने सागरदत्त सार्थवाह को यह अर्थ निवेदन किया। तब सागरदत्त उसी प्रकार संभ्रान्त होकर वासगृह में आया। आकर सुकुमालिका को गोद में बिठलाकर कहने लगा—'हे पुत्री ! तू पूर्वकृत यावत् पापकर्मों को भोग रही है। अतएव बेटी ! भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता मत कर। हे पुत्री ! तू मेरी भोजनशाला में तैयार हुए विपुल अशन, पान खाद्य और स्वाद्य आहार को—पोट्टिला की तरह कहना चाहिए यावत् श्रमणों आदि को देती हुई रहना।

तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता महाणसंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव दलमाणी विहरइ।

ते णं काले णं ते णं समए णं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ तहेव समोसढाओ, तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे, तहेव जाव सूमालिया पडिलाभित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अज्जाओ अहं सागरस्स अणिट्ठा जाव अमणामा, नेच्छइ णं सागरए मम नामं वा जाव परिभोगं वा, जस्स जस्स वि य णं दिज्जामि तस्स तस्स वि य णं अणिट्ठा जाव अमणामा भवामि, तुब्भे य णं अज्जाओ ! बहुनायाओ, एवं जहा पोट्टिला जाव उवलद्धे जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता जाव भवेज्जामि।'

तब सुकुमालिका दारिका ने यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके भोजनशाला में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार दान देती हुई रहने लगी।

उस काल और उस समय मे गोपालिका नामक बहुश्रुत आर्या, जैसे तेतलीज्ञात-नामक अध्ययन में सुव्रता साध्वी के विषय में कहा है, उसी प्रकार पधारी। उसी प्रकार उनके संघाड़े ने यावत् सुकुमालिका के घर में प्रवेश किया। उसी प्रकार सुकुमालिका ने यावत् आहार वहरा कर इस प्रकार कहा-'हे आर्याओ! मैं सागर के लिए अनिष्ट हूँ यावत अमनोज्ञ हूँ। सागर मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहता, यावत परिभोग भी नहीं चाहता। जिस-जिस को भी मैं दी गई, उसी-उसी को भी अनिष्ट यावत अमनोज्ञ होती हूँ। आर्याओ! आप तो बहुत ज्ञान वाली हो। इस प्रकार पोट्टिला ने जो कहा था, वह यहां भी जानना चाहिए। यावत् आपने कोई मंत्र-तंत्र आदि प्राप्त किया है, जिससे मैं सागर दारक की इष्ट, कान्त यावत् प्रिय हो जाऊँ?'

अज्जाओ तहेव भणंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता, तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपुच्छइ, जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया। तए णं सा सूमालिया अज्जा जाया ईरियासमिया जाव बंभयारिणी बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव विहरइ।

आर्याओ ने उसी प्रकार-सुव्रता की आर्याओ के समान-उत्तर दिया। अर्थात् उन्होंने कहा कि ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता, तो फिर उपदेश करने-इष्ट होने का उपाय बताने की तो बात ही दूर रही। तब वह उसी प्रकार (पोट्टिला की भांति) श्राविका हो गई। उसने उसी प्रकार चिन्ता की और उसी प्रकार सागरदत्त सार्थवाह से आज्ञा ली। यावत् वह गोपालिका आर्या के निकट दीक्षित हुई। तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या हो गई। ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हुई और बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि की तपस्या करती हुई विचरने लगी।

तए णं सा सूमालिया अज्जा अन्नया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-'इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी चंपाओ बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणी विहरित्तए।

तत्पश्चात् सुकुमालिका आर्या किसी समय एक बार, गोपालिका आर्या के पास गई। जाकर उन्हें वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा-'हे आर्या (गुरुणीजी)! आपकी आज्ञा पाकर मैं चंपा नगरी

से बाहर, सुभूमिभाग उद्यान से न बहुत दूर और न बहुत समीप के भाग में, बेले-बेले का निरन्तर तप करके, सूर्य के सन्मुख आतापना लेती हुई विचरना चाहती हूं।

तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं एवं वयासी–'अम्हे णं अज्जे! समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव गुत्त-बंभचारिणीओ, नो खलु अम्हं कप्पइ बहिया गामस्स सन्निवेसस्स वा छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरित्तए। कप्पइ णं अम्हं अंतो उवस्सयस्स वइपरिक्खित्तस्स संघाडिपडिबद्धियाए णं समतलपइयाए आयावित्तए।'

तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा-'हे आर्ये! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ हैं, ईर्यासमिति वाली यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं। अतएव हमको गांव यावत् सन्निवेश से बाहर जाकर बेले-बेले की तपस्या करके विचरना नहीं कल्पता। किन्तु वाड़ से घिरे हुए उपाश्रय के अन्दर ही, संघाटी (वस्त्र) से शरीर को आच्छादित करके या साध्वियों के परिवार के साथ रहकर तथा पृथ्वी पर पद-तल समान रख कर आतापना लेना कल्पता है।

तए णं सा सूमालिया गोवालियाए अज्जाए एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरइ।

तब सुकुमालिका को गोपालिका आर्या की इस बात पर श्रद्धा नहीं हुई प्रतीति नहीं हुई, रुचि नहीं हुई। वह सुभूमिभाग उद्यान से कुछ समीप में निरंतर बेले-बेले का तप करती हुई यावत् विचरने लगी।

तत्थ णं चंपाए नयरीए ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ नरवइ-दिण्णवि (प) यारा, अम्मापिइनियगनिप्पिवासा, वेसविहारकयनिकेया, नाणाविहअविणयप्पहाणा अड्ढा जाव अपरिभूया।

चम्पा नगरी में ललिता (क्रीड़ा मे संलग्न रहने वाली) एक गोष्ठी (टोली) निवास करती थी। राजा ने उसे इच्छानुसार विचरण करने की छूट दे रक्खी थी। वह टोली माता-पिता आदि स्वजनों की परवाह नहीं करती थी। वेश्या का घर ही उसका घर था। वह नाना प्रकार का अविनय (अनाचार) करने में उद्धत थी। धनाढ्य थी और यावत किसी से दबती नहीं थी, अर्थात कोई उसका पराभव नहीं कर सकता था।

तत्थ णं चंपाए नयरीए देवदत्ता नामं गणिया होत्था सुकुमाला जहा अंडणाए।

तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए अन्नया पंच गोट्ठिल्लपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति। तत्थ णं एगे गोट्ठिल्लगपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरइ, एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुप्फपूरयं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेइ।

वहाँ चम्पा नगरी में देवदत्ता नाम की गणिका रहती थी। वह सुकुमाल थी। अंडक अध्ययन के अनुसार उसका वर्णन समझना चाहिए।

एक बार उस ललिता गोष्ठी के पाँच गोष्ठिक पुरुष देवदत्त गणिका के साथ, सुभूमिभाग उद्यान की लक्ष्मी (शोभा) का अनुभव करते हुए विचर रहे थे। उनमे से एक गोष्ठिक पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोद में बिठलाया, एक ने पीछे से छत्र धारण किया, एक ने उसके मस्तक पर पुष्पों का शेखर रचा, एक उसके पैर (महावर से) रंगने लगा और एक उस पर चामर ढोरने लगा।

तए णं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं पंचहिं गोट्ठिल्लपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणिं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था—'अहो णं इमा इत्थिया पुरा पोराणाणं कम्माणं जाव विहरइ, तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तवनियमबंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरालाइं जाव विहरिज्जामि' त्ति कट्टु नियाणं करेइ, करित्ता आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ।

तत्पश्चात् उस सुकुमालिका आर्या ने देवदत्ता गणिका को पाँच गोष्ठिक पुरुषों के साथ उदार मनुष्य संबंधी कामभोग भोगते देखा। देख कर उसे इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ—'अहा! यह स्त्री पूर्व मे आचरण किये हुए शुभ कर्मों का अनुभव कर रही है। सो यदि अच्छी तरह से आचरण किये गये इस तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कुछ भी कल्याणकारी फल-विशेष हो, तो मैं भी आगामी भव में इसी प्रकार के कामभोग को भोगती हुई विचरूँ।' उसने इस प्रकार निदान किया। निदान करके आतापनाभूमि से वापिस लौटी।

तए णं सा सूमालिया अज्जा सरीरबउसा जाया यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराइं धोवेइ, कक्खंतराइं धोवेइ, गोज्झंतराइं धोवेइ, जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा चेएइ।

तत्पश्चात वह सुकुमालिका आर्या शरीर बकुश हो गई, अर्थात् शरीर की शोभा करने मे आसक्त हो गई। वह बार-बार हाथ धोती, पैर धोती, मस्तक धोती, मुँह धोती, स्तनान्तर (छाती) धोती बगले धोती तथा गुप्त अंग धोती थी। जिस स्थान पर वह खड़ी होती या कायोत्सर्ग करती, सोती, स्वाध्याय करती, वहाँ भी पहले ही जमीन पर जल छिड़कती थी और फिर खड़ी होती कायोत्सर्ग करती, सोती या स्वाध्याय करती थी।

तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिए! अज्जे! अम्हं समणीओ निग्गंथाओ ईरियासमियाओ जाव बंभचेरधारिणीओ. नो खलु कप्पइ अम्हं सरीर-बाउसियाए होत्तए; तुमं च णं अज्जे! सरीरबाउसिया अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवसि जाव चेएसि, तं तुमं णं देवाणुप्पिए! तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।

तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रिये! आर्ये! हम निर्ग्रन्थ साध्वियाँ हैं, ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् ब्रह्मचारिणी हैं। हमें शरीर बकुश होना नहीं कल्पता, किन्तु हे आर्ये! तुम शरीरबकुश हो गई हो, बार-बार हाथ धोती हो, यावत् फिर स्वाध्याय आदि करती हो। अतएव देवानुप्रिये! तुम बकुशचारित्र रूप स्थान की आलोचना करो, यावत् प्रायश्चित्त अंगीकार करो।

तए णं सूमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ। तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं अभिक्खणं अभिक्खणं अभिहीलंति जाव परिभवंति, अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति।

तब सुकुमालिका आर्या ने गोपालिका आर्या के इस अर्थ (कथन) का आदर नहीं किया, उसे अंगीकार नहीं किया। वरन् अनादर करती हुई और

अस्वीकार करती हुई विचरने लगी। तत्पश्चात् दूसरी आर्याएँ सुकुमालिका आर्या की बार-बार अवहेलना करने लगीं, यावत् अनादर करने लगीं और बार-बार इस अर्थ (अनाचार) के लिए रोकने लगीं।

तए णं तीसे सूमालियाए समणीहिं निग्गंथीहिं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'जया णं अहं अगारवासमज्झे वसामि, तया णं अहं अप्पवसा, जया णं अहं मुंडे भवित्ता पव्वइया, तया णं अहं परवसा, पुव्विं च णं ममं समणीओ आढायंति, इयाणिं नो आढायंति, तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए गोवालियाणं अंतियाओ पडिणिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सगं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सगं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

निर्ग्रन्थ श्रमणियों द्वारा अवहेलना की गई और रोकी गई उस सुकुमालिका के मन में इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ—'जब मैं गृहस्थवास में वसती थी, तब मैं स्वाधीन थी। जब मैं मुंडित होकर दीक्षित हुई तब मैं पराधीन हो गई। पहले यह श्रमणियाँ मेरा आदर करती थीं किन्तु अब आदर नहीं करती हैं। अतएव कल प्रभात होने पर गोपालिका के पास से निकल कर, अलग उपाश्रय में जा करके रहना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके कल (दूसरे दिन) प्रभात होने पर गोपालिका आर्या के पास से निकल गई। निकल कर अलग उपाश्रय में जाकर रहने लगी।

तए णं सा सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, जाव चेएइ, तत्थ वि य णं पासत्था, पासत्थविहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला, कुसीलविहारी, संसत्ता, संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए तस्स ठाणस्स अणालोइयअपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरंसि विमाणंसि देवगणियत्ताए उववण्णा। तत्थेगइयाणं देवीणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं सूमालियाए देवीए नव पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता।

वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि, तए णं ममं जावज्जीवाए हिययडाहे भविस्सइ, तं णं अहं तव पुत्ता ! अज्जयाए सयंवरं विरयामि, अज्जयाए णं तुमं दिण्णं सयंवरा जे णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि, से णं तव भत्तारे भविस्सइ,' त्ति कट्टु ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, आसासित्ता पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने द्रौपदी दारिका को अपनी गोद में बिठलाया। फिर राजवर कन्या द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य को देखकर उसे विस्मय हुआ। उसने राजवरकन्या द्रौपदी से कहा–'हे पुत्री ! मैं स्वयं किसी राजा अथवा युवराज की भार्या के रूप में तुझे दूंगा और वहाँ तू सुखी या दुःखी होगी तो मुझे जिंदगी भर हृदय में दाह होगा। अतएव हे पुत्री ! मैं आज से तेरा स्वयंवर रचता हूं। आज से मैं ने तुझे स्वयंवर में दी। अतएव तू अपनी इच्छा से जिस किसी राजा या युवराज का वरण करेगी, वही तेरा भर्त्तार होगा। इस प्रकार कहकर वाणी से यावत् द्रौपदी को आश्वासन दिया। आश्वासन देकर विदा कर दिया।

तए णं से दुवए राया दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! बारवइं नयरिं, तत्थ णं तुमं कण्हं वासुदेवं, समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे बलदेवपामुक्खे पंच महावीरे, उग्गसेणपामोक्खे सोलस रायसहस्से, पज्जुण्णपामुक्खाओ अद्धट्ठाओ कुमारकोडीओ, संबपामोक्खाओ सट्ठिं दुद्दन्तसाहस्सीओ, वीरसेणपामुक्खाओ इक्कवीसं वीरपुरिससाहस्सीओ, महसेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ अन्ने य बहवे राईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियइब्भसेट्ठिसेणावइसत्थवाहपभिइओ करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं अंजलिं मत्थए कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि, वद्धावित्ता एवं वयाहि–

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने दूत बुलवाया। बुलवा कर उससे कहा–'देवानुप्रिय ! तुम द्वारवती (द्वारिका) नगरी जाओ। वहाँ तुम कृष्ण वासुदेव को, समुद्रविजय आदि दस दसारों को, बलदेव आदि पाँच महावीरों को, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं को, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों को, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्तों (उद्धत-बलवानों) को, वीरसेन आदि इक्कीस

हजार वीर पुरुषो को महसेन आदि छप्पन हजार बलवान् वर्ग को, तथा अन्य बहुत-से राजाओं, युवराजों, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह प्रभृति को दोनों हाथ जोड़ कर, दसों नख मिला कर मस्तक पर आवर्त्तन करके, अंजलि करके और 'जय-विजय' शब्द कह कर बधाना-अभिनन्दन करना। अभिनन्दन करके इस प्रकार कहना:—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए अत्तयाए धट्ठज्जुण्ण-कुमारस्स भगिणीए दोवईए रायवर-कण्णाए सयंवरे भविस्सइ, तं णं तुब्भे देवाणुप्पिया! दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।'

'इस प्रकार हे देवानुप्रियो! काम्पिल्य पुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा और धृष्टद्युम्न कुमार की भगिनी श्रेष्ठ राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है। अतएव हे देवानुप्रियो! तुम सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए, काल का विलम्ब किये बिना-उचित समय पर-कांपिल्यपुर नगर मे पधारना।'

तए णं से दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह।' जाव उवट्ठवेंति।

तत्पश्चात् दूत ने दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके द्रुपद राजा का यह अर्थ (कथन) विनय के साथ स्वीकार किया। स्वीकार करके अपने घर आया। घर आकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुला कर इस प्रकार कहा 'देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घंटाओं वाला अश्वरथ जोत कर उपस्थित करो।' कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् रथ उपस्थित किया।

तए णं से दूए ण्हाए जाव अलंकारविभूसियसरीरे चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता बहूहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव गहियाऽऽउह-पहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पंचालजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव बारवई

नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं नगरिं मज्झंमज्झेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पाय-विहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हं वासुदेवं समुद्दविजयपामुक्खे य दस दसारे जाव बलवगसाहस्सीओ करयल तं चेव जाव समोसरह।

तत्पश्चात् स्नान किये हुए और अलंकारों से विभूषित शरीर वाले उस दूत ने चार घंटाओं वाले अश्वरथ पर आरोहण किया। आरोहण करके, कवच आदि धारण करके तैयार हुए और अस्त्रशस्त्रधारी बहुत-से पुरुषों के साथ कांपिल्यपुर नगर के मध्यभाग मे होकर निकला। वहाँ से निकल कर पंचाल देश के मध्यभाग में होकर देश की सीमा पर आया फिर सुराष्ट्र जनपद के बीच में होकर जिधर द्वारवती नगरी थी,उधर चला। चल कर द्वारवती नगरी के मध्य में प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ कृष्ण वासुदेव की बाहरी सभा थी, वहाँ आया। चार घंटाओं वाले अश्वरथ को रोका। रथ से नीचे उतरा। फिर मनुष्यों के समूह से परिवृत होकर पैदल चलता हुआ कृष्ण वासुदेव के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर कृष्ण वासुदेव को, समुद्रविजय आदि दस दसारों को यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् वर्ग को दोनों हाथ जोड़ कर द्रुपद राजा के कथनानुसार अभिनन्दन करने यावत् स्वयंवर में पधारने का निमन्त्रण दिया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए तं दूयं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव उस दूत से यह वृत्तान्त सुन कर और समझ कर प्रसन्न हुए यावत् उनके हृदय में संतोष हुआ। उन्होंने उस दूत का सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करने के पश्चात् उसे विदा किया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि।

तए णं से कोडुंबियपुरिसे करयल जाव कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं महया महया सद्देणं तालेइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुष को बुलाया। बुला कर उससे कहा—'देवानुप्रिय! तुम जाओ और सुधर्मा सभा में रक्खी हुई सामुदानिक भेरी बजाओ।'

तब उस कौटुम्बिक पुरुष ने दोनों हाथ जोड़ कर यावत् कृष्ण वासुदेव के इस अर्थ को अंगीकार किया। अंगीकार करके जहाँ सुधर्मा सभा में सामुदानिक भेरी थी, वहाँ आया। आकर जोर-जोर के शब्द से उसे ताड़न किया।

तए णं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसार जाव महसेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ ण्हाया जाव विभूसिया जहाविभवइड्ढिसक्कारसमुदएणं अप्पेगइया जाव पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति।

तत्पश्चात् उस सामुदानिक भेरी के ताड़न करने पर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् नहा-धोकर यावत् विभूषित होकर अपने-अपने वैभव के अनुसार ठाठ एवं सत्कार के समुदाय के अनुसार कोई-कोई रथ पर तथा कोई-कोई अश्व आदि पर आरूढ़ होकर और कोई-कोई पैदल चल कर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर दोनों हाथ जोड़ कर सब ने कृष्ण वासुदेव का जय-विजय के शब्दों से अभिनन्दन किया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, हयगय०' जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही पट्टाभिषेक किये हुए हस्तीरत्न (सर्वोत्तम हाथी) को तैयार करो तथा घोड़ों, हाथियों, रथों और पदातियों की चतुरंगी

सेना सज्जित करके मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।' यह आज्ञा सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने तदनुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी।

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे जाव अंजणगिरिकूडसंनिभं गयवइं नरवई दुरूढे।

तए णं से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामुक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव अणंगसेणापामुक्खेहिं अणेगाहिं गणियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं बारवइनयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचालजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव मज्जनगृह (स्नानागार) मे गये। मोतियों के गुच्छों से मनोहर उस मज्जनगृह मे स्नान करके, विभूषित होकर तथा भोजन करके यावत् अंजनगिरि के शिखर के समान (श्याम और ऊँचे) गजपति पर वह नरपति आरूढ़ हुए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव समुद्रविजय आदि दस दसारों के साथ यावत् अनंगसेना आदि कई हजार गणिकाओं के साथ परिवृत होकर पूरे ठाठ के साथ यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ द्वारवती नगरी के मध्य में होकर निकले। निकल कर सुराष्ट्र जनपद के मध्य में होकर देश की सीमा पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पंचाल जनपद के मध्य में होकर जिस ओर कांपिल्यपुर नगर था, उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुए।

तए णं से दुवए राया दोच्चं दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरं नगरं, तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिट्ठिलं भीमसेणं अज्जुणं नउलं सहदेवं दुज्जोहणं भाइसयसमग्गं गंगेयं विदुरं दोणं जयद्दहं सउणीं कीवं आसत्थामं करयल जाव कट्टु तहेव समोसरह।'

तत्पश्चात् (प्रथम दूत को द्वारिका भेजने के तुरन्त बाद में) द्रुपद राजा ने दूसरे दूत को बुलाया। बुला कर उससे कहा—'देवानुप्रिय! तुम हस्तिनापुर

नगर जाओ। वहाँ तुम पुत्रों सहित पाण्डु राजा को, उनके पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल और सहदेव को, सौ भाइयों समेत दुर्योधन को, गांगेय, विदुर, द्रोण, जयद्रथ, शकुनि, क्लीव (कर्ण) और अश्वत्थामा को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके, उसी प्रकार (पहले के समान) कहना यावत् समय पर स्वयंवर में पधारिए।

तए णं से दूए एवं वयासी, जहा वासुदेवे, नवरं भेरी नत्थि, जाव जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् दूत ने हस्तिनापुर जाकर उसी प्रकार कहा। तब जैसा कृष्ण वासुदेव ने किया, वैसा ही पाण्डु राजा ने किया। विशेषता यह है कि हस्तिनापुर में भेरी नहीं थी। (अतएव दूसरे उपाय से सब को सूचना देकर और साथ लेकर पाण्डु राजा भी) कांपिल्यपुर नगर की ओर गमन करने को उद्यत हुए।

एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपानयरिं, तत्थ णं तुमं कण्हं अंगरायं, सेल्लं, नंदिरायं, करयल तहेव जाव समोसरह।

इसी क्रम से तीसरे दूत को चम्पा नगरी भेजा और उससे कहा-'तुम वहाँ जाकर अंगराज कृष्ण को, सेल्लक राजा को और नंदिराज को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् कहना कि स्वयंवर में पधारिए।'

चउत्थं दूयं सुत्तिमई नयरिं, तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंचभाइसयसंपरिवुडं करयल तहेव जाव समोसरह।

चौथा दूत शुक्तिमती नगरी भेजा और उसे आदेश दिया-'तुम दमघोष के पुत्र और पाँच सौ भाइयों से परिवृत्त शिशुपाल राजा को हाथ जोड़ कर, उसी प्रकार कहना, यावत् पधारिए।'

पंचमगं दूयं हत्थिसीसनगरं, तत्थ णं तुमं दमदंतं नाम रायं करयल तहेव जाव समोसरह।

पाँचवाँ दूत हस्तीशीर्ष नगर भेजा और कहा-'तुम दमदत राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना यावत् पधारिए।'

छट्ठं दूयं महुरं नयरिं, तत्थ णं तुमं धरं रायं करयल तहेव जाव समोसरह।

छठा दूत मथुरा नगरी भेजा। उससे कहा–'तुम धर नामक राजा को हाथ जोड़ कर यावत् कहना–स्वयंवर में पधारिए।

सत्तमं दूयं रायगिहं नगरं, तत्थ णं तुमं सहदेवं जरासिंधुसुयं करयल तहेव जाव समोसरह।

सातवाँ दूत राजगृह नगर भेजा। उससे कहा–'तुम जरासिन्धु के पुत्र सहदेव राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना–'यावत् स्वयंवर मे पधारिए।'

अट्ठमं दूयं कोडिण्णं नयरं, तत्थ णं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समोसरह।

आठवाँ दूत कौडिन्य नगर भेजा। उससे कहा–'तुम भीष्मक के पुत्र रुक्मि राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो।'

नवमं दूयं विराडनगरं, तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसयसमग्गं करयल तहेव जाव समोसरह।

नौवाँ दूत विराट नगर भेजा। उससे कहा–'तुम सौ भाइयो सहित कीचक राजा को हाथ जोड़ कर उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो।'

दसमं दूयं अवसेसेसु य गामागरनगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं जाव समोसरह।

दसवाँ दूत शेष ग्राम, आकर और नगर आदि मे भेजा। उससे कहा–'तुम वहाँ के अनेक सहस्र राजाओं को उसी प्रकार कहना, यावत् स्वयंवर में पधारो।'

तए णं से दूए तहेव निग्गच्छइ, जेणेव गामागर जाव समोसरह।

तत्पश्चात् वह दूत उसी प्रकार निकला, और जहाँ ग्राम, आकर नगर आदि थे, वहाँ जाकर सब राजाओं को उसी प्रकार कहा–यावत् 'स्वयंबर में पधारो।'

तए णं ताइं अणेगाइं रायसहस्साइं तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ तं दूयं सक्कारेंति संमाणेंति, सक्कारित्ता संमाणित्ता पडिविसज्जिंति।

तत्पश्चात् अनेक हजार राजाओं ने उस दूत से यह अर्थ सुनकर और समझ कर हृष्ट-तुष्ट होकर उस दूत का सत्कार-सन्मान करके उसे विदा किया।

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया संनद्ध हत्थिखंधवरगया हयगयरह० महया भडचडगररहपहगर० सएहिं सएहिं नगरेहिंतो अभिनिग्गच्छंति, अभिनिग्गच्छित्ता जेणेव पंचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् आमंत्रित किये हुए वासुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजाओं में से प्रत्येक-प्रत्येक ने स्नान किया। वे सजाये हुए श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। फिर घोड़ों, हाथियों, रथों और बड़े-बड़े भटों के समूह के समूह रूप चतुरंगिणी सेना के साथ अपने-अपने नगरों से निकले। निकल कर पंचाल जनपद की ओर गमन करने के लिए उद्यत हुए।

तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे बहिया गंगाए महानदीए अदूरसामंते एगं महं सयंवरमंडवं करेह अणेगखंभसयसन्निविट्ठं लीलट्ठियसालभंजियागं' जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा-'देवानुप्रियो! तुम जाओ और कांपिलयपुर नगर के बाहर, गंगा नदी से न अधिक दूर और न अधिक समीप में, एक विशाल स्वयंवरमंडप बनाओ, जो अनेक सैकड़ों स्तंभों से बना हो और जिसमें लीला करती हुई पुतलियाँ हों, यावत् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने मंडप तैयार करके आज्ञा वापिस सौंपी।

तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह।' ते वि करित्ता पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा-'देवानुप्रियो! शीघ्र ही वासुदेव वगैरह बहुसंख्यक सहस्रों राजाओं के लिए आवास तैयार करो।' उन्होंने उसी प्रकार करके आज्ञा वापिस लौटाई।

तए णं दुवए राया वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमं जाणेत्ता पत्तेयं पत्तेयं हत्थिखंध जाव परिवुडे अग्घं च पज्जं च गहाय

सव्विड्ढीए कंपिल्लपुराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव ते वासुदेव पामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपामुक्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं पत्तेयं पत्तेयं आवासे वियरइ।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा वासुदेव प्रभृति बहुत से हजारों राजाओं का आगमन जान कर, प्रत्येक राजा के स्वागत करने के लिए, हाथी के स्कंध पर आरूढ़ होकर यावत् सुभटों के परिवार से परिवृत होकर अर्घ्य (पूजा की सामग्री) और पाद्य (पैर धोने के लिए पानी) लेकर, सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ, कांपिल्यपुर से बाहर निकला। निकल कर जिधर वासुदेव आदि बहुसंख्यक हजारों राजा थे, उधर गया। वहाँ जाकर उन वासुदेव प्रभृति का अर्घ्य और पाद्य से सत्कार-सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन वासुदेव आदि को अलग-अलग आवास दिये।

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा जेणेव सया सया आवासा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता पत्तेयं खंधावारनिवेसं करेंति, करित्ता सए सए आवासे अणुपविसंति, अणुपविसित्ता सएसु सएसु आवासेसु आसणेसु य सयणेसु य सन्निसन्ना य संतुयट्टा य बहूहिं गंधव्वेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य उवणच्चिज्जमाणा य विहरंति।

तत्पश्चात् वे वासुदेव प्रभृति नृपति अपने-अपने आवासों में पहुँचे। पहुँच कर हाथियों के स्कंध से नीचे उतरे। उतर कर सब ने अपने-अपने पड़ाव डाले और अपने-अपने आवासों में प्रविष्ट हुए। आवासों में प्रवेश करके अपने-अपने आवासों में, आसनों पर बैठे और शय्याओं पर सोये हुए, बहुत-से गंधर्वों से गान कराते हुए और नटों से नाटक करवाते हुए विचरण करने लगे।

तए णं से दुवए राया कंपिल्लपुरं नगरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च मज्जं च मंसं

च सीधुं च पसण्णं च सुबहुपुप्फवत्थगंधमल्लालंकारं च वासुदेव-पामोक्खाणं रायसहस्साणं आवासेसु साहरह।' ते वि साहरंति।

तत्पश्चात् अर्थात् सब आगन्तुक अतिथि राजाओ को यथास्थान ठहरा कर द्रुपद राजा ने कांपिल्यपुर नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करके विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाया। फिर कौटुंबिक पुरुषो को बुला कर कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और वह विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, [1]सुरा, मद्य, मांस, सीधु और प्रसन्ना तथा प्रचुर पुष्प, वस्त्र, गंध, मालाएँ एवं अलंकार वासुदेव आदि हजारों राजाओं के आवासो मे ले जाओ।' यह सुन कर वे वह सब वस्तुएँ ले गये।

तए णं ते वासुदेवपामुक्खा तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव पसन्नं च आसाएमाणा आसाएमाणा विहरंति, जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता जाव सुहासणवरगया बहूहिं गंधव्वेहिं जाव विहरंति।

तत्पश्चात् वासुदेव आदि राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, यावत् प्रसन्ना का पुनः पुनः आस्वादन करते हुए विचरने लगे। भोजन करने के पश्चात् आचमन करके यावत् सुखद आसनों पर आसीन होकर बहुत-से गंधर्वो से संगीत कराते हुए यावत् विचरने लगे।

तए णं से दुवए राया पुव्वावरण्हकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुमे देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे संघाडग जाव पहे वासुदेवपामुक्खाण य रायसहस्साणं आवासेसु हत्थिखंधवरगया महया महया सद्देणं जाव उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वदह—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! कल्लं पाउप्पभाए दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए देवीए अत्तयाए धट्ठज्जुण्णस्स भगिणीए दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया !

१-सुरा, मद्य, सीधु और प्रसन्ना, यह मदिरा की ही जातियाँ हैं। स्वयवर में सभी प्रकार के राजा और उनके सैनिक आदि आये थे। द्रुपद राजा ने उन सबका उनकी आवश्यक वस्तुओं से सत्कार किया। इससे यह नही समझना चाहिए कि कृष्णजी मदिरा का सेवन करते थे। यह वर्णन सामान्य रूप से है।

तए णं सा दोवई रायवरकन्ना कल्लं पाउप्पभाए जेणेव मज्जण-घरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता ण्हाया जाव सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया जिण-पडिमाणं अच्चणं करेइ, करित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ।*

तत्पश्चात् वह राजवरकन्या द्रौपदी दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर स्नान-गृह की ओर गई। वहां जाकर स्नानगृह में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर उसने स्नान किया यावत् शुद्ध और सभा में प्रवेश करने योग्य मांगलिक उत्तम वस्त्र धारण किये। जिन प्रतिमाओं का पूजन किया। पूजन करके अन्तःपुर में चली गई।*

---

*इस पाठ के विषय में मतभेद पाया जाता है। किन्ही किन्ही प्रतियों में उप-लब्ध होने वाला पाठ ऊपर दिया गया है। यह पाठ शीलांकाचार्यकृत टीका में भी वाच-नान्तर के रूप में ग्रहण किया गया है। किन्तु कुछ अर्वाचीन प्रतियों में जो पाठान्तर पाया जाता है, वह इस प्रकार है:—

तए णं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख-मित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेइ, करित्ता लोमहत्थयं परामु-सइ, एवं जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चित्ता तहेव भाणियव्वं जाव धूवं डहइ, डहित्ता वामं जाणुं अंचेइ, दाहिणं धरणियलंसि णिवेसेइ, णिवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि नमेइ, नमइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, करयल जाव कट्टु एवं वयासी—'नमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संप-त्ताणं' वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जिणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणि-क्खमित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ।

तत्पश्चात् द्रौपदी राजवरकन्या स्नानगृह में गई। वहाँ जाकर उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, मसी तिलक आदि कौतुक, दूर्वादिक मंगल और अशुभ की निवृत्ति के अर्थ प्रायश्चित्त किया। शुद्ध और शोभा देने वाले मांगलिक वस्त्र धारण किये। फिर वह स्नानगृह से बाहर निकली। निकल कर जिनगृह-जिन चैत्य में गई और उसके भीतर प्रविष्ट हुई। वहाँ जिन प्रतिमाओं पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम करके मयूरपिच्छी ग्रहण की। फिर सूर्याभ देव की भाँति जिनप्रतिमाओं की पूजा की। पूजा करके उसी प्रकार (सूर्याभ देव की तरह) यावत् धूप जलाई। धूप जला कर बायें

तए णं तं दोवइं रायवरकन्नं अंतेउरियाओ सव्वालंकारविभूसियं करेंति, किं ते ? वरपायपत्तणेउरा जाव चेडियाचक्कवालमयहरगविंद-परिक्खित्ता अंतेउराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ।

तत्पश्चात् अन्तःपुर की स्त्रियों ने राजवर कन्या द्रौपदी को सब अलंकारों से विभूषित किया। किस प्रकार ? पैरों में श्रेष्ठ नूपुर पहनाये, (इसी प्रकार सब अंगों में भिन्न-भिन्न आभूषण पहनाये) यावत् वह दासियों के समूह से परिवृत होकर अन्तःपुर से बाहर निकली। बाहर निकल कर जहाँ बाह्य उपस्थान शाला (सभा) थी और जहाँ चार घंटाओं वाला अश्वरथ था, वहाँ आई। आकर क्रीड़ा कराने वाली धाय और लेखिका (लिखने वाली) दासी के साथ उस चार घंटा वाले रथ पर आरूढ़ हुई।

तए णं धट्ठज्जुणे कुमारे दोवईए कण्णाए सारत्थं करेइ। तए णं सा दोवई रायवरकण्णा कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सयंवर-मंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्डावियाए लेहियाए य सद्धिं सयंवरमंडवं अणुपविसइ, करयल तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायवरसहस्साणं पणामं करेइ।

उस समय धृष्टद्युम्न कुमार ने द्रौपदी कुमारी का सारथ्य किया, अर्थात् सारथी का कार्य किया। तत्पश्चात राजवर कन्या द्रौपदी कपिल्यपुर नगर के मध्य में होकर जिधर स्वयंवर-मंडप था, उधर गई। वहाँ पहुँच कर रथ रोका गया और वह रथ से नीचे उतरी। नीचे उतर कर क्रीड़ा करने वाली धाय और लेखिका दासी के साथ उसने स्वयंवर मण्डप में प्रवेश किया। प्रवेश करके दोनों हाथ जोड कर वासुदेव प्रभृति बहुसंख्यक हजारों राजाओं को प्रणाम किया।

घुटने को ऊँचा रक्खा और दाहिने घुटने को पृथ्वीतल पर स्थापित किया। फिर तीन बार पृथ्वीतल पर मस्तक नमाया। नमाने के बाद मस्तक थोड़ा ऊपर उठाया। फिर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—'अरिहन्त भगवन्तों को यावत् सिद्धपद को प्राप्त जिनेश्वरों को नमस्कार हो।' ऐसा कह कर वन्दन-नमस्कार किया। वन्द-नमस्कार करके जिनगृह से बाहर निकली। बाहर निकल कर जहाँ अन्त पुर था, वहाँ आ गई।

तए णं सा दोवई रायवरकन्ना एगं महं सिरिदामगंडं, किं ते ? पाडल-मल्लिय-चंपय जाव सत्तच्छयाईहिं गंधद्धणिं मुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं गिण्हइ।

तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी ने एक बड़ा श्रीदामकाण्ड (सुशोभित मालाओं का समूह) ग्रहण किया। वह कैसा था ? पाटल, मल्लिका, चम्पक आदि यावत् सप्तपर्ण आदि के फूलों से गूंथा हुआ था। गंध की तृप्ति को फैला रहा था। अत्यन्त सुखद स्पर्श वाला था और दर्शनीय था।

तए णं सा किड्डाविया जाव सुरूवा जाव वामहत्थेणं चिल्लगं दप्पणं गहेऊण सललियं दप्पणसंकेतबिंबसंदंसिए य से दाहिणेणं हत्थेणं दरिसिए पवररायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीरमहुरभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिऊणं वंससत्तसामत्थगोत्तविक्कंतिकंति-बहुविहआगममाहप्परूवजोव्वणगुणलावण्णकुलसीलजाणिया कित्तणं करेइ।

तत्पश्चात् उस क्रीड़ा कराने वाली यावत् सुन्दर रूप वाली धाय ने बाएँ हाथ में चिलचिलाता हुआ दर्पण लिया। उस दर्पण में जिस-जिस राजा का प्रतिबिम्ब पड़ता था, उस प्रतिबिम्ब द्वारा दिखाई देने वाले श्रेष्ठ सिंह के समान राजा को अपने दाहिने हाथ से द्रौपदी को दिखलाती थी। वह धाय स्फुट (प्रकट अर्थ वाले) विशद (निर्मल अक्षरों वाले), विशुद्ध (शब्द एवं अर्थ के दोषों से रहित), रिभित (स्वर की घोलना सहित), मेघ की गर्जना के समान गंभीर और मधुर (कानों को सुखदायी) वचन बोलती हुई, उन सब राजाओं के माता-पिता के वंश, सत्त्व (दृढ़ता एवं धीरता), सामर्थ्य (शारीरिक बल), गोत्र, पराक्रम, कान्ति, नाना प्रकार के ज्ञान, महात्म्य, रूप, यौवन, गुण, लावण्य, कुल और शील को जानने वाली होने के कारण उनका बखान करने लगी।

पढमं जाव वण्हिपुंगवाणं दसदसारवीरपुरिसाणं तेलोक्कबलव-गाणं सत्तुसयसहस्समाणावमद्दगाणं भवसिद्धिपवरपुंडरीयाणं चिल्लगाणं बलवीरियरूवजोव्वणगुणलावण्णकित्तियाकित्तणं करेइ, ततो पुणो उग्गसेणमाईणं जायवाणं, भणइ य—'सोहग्गरूवकलिए वरेहि वरपुरिस-गंधहत्थीणं जो हु ते होई हिययदइओ।'

उनमें से सर्वप्रथम वृष्णि (यादवों) में प्रधान समुद्रविजय आदि दस दसारो अथवा दसार-के श्रेष्ठ वीर पुरुषों के, जो तीन लोकों में बलवान् थे, लाखों शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले थे, भव्य जीवों में श्रेष्ठ श्वेत कमल के समान प्रधान थे, तेज से देदीप्यमान थे, बल, वीर्य, रूप, यौवन, गुण और लावण्य का कीर्त्तन करने वाली उस धाय ने कीर्त्तन किया। और फिर कहा-'यह यादव सौभाग्य और रूप से सुशोभित हैं और श्रेष्ठ पुरुषों में गंधहस्ती के समान हैं। इनमें से कोई तेरे हृदय को प्रिय हो तो उसे वरण कर।

तए णं सा दोवई रायवरकन्नगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झंमज्झेणं समतिच्छमाणी समतिच्छमाणी पुव्वकयनियाणेणं चोइज्जमाणी चोइज्जमाणी जेणव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते पंच पंडवे तेणं दसद्धवण्णेणं कुसुमदामेणं आवेढियपरिवेढियं करेइ, करित्ता एवं वयासी-'एए णं मए पंच पंडवा वरिया।'

तत्पश्चात् राजवरकन्या द्रौपदी बहुत हजार श्रेष्ठ राजाओं के मध्य में होकर, उनका अतिक्रमण करती-करती, पूर्वकृत निदान से प्रेरित होती-होती जहाँ पाँच पाण्डव थे, वहाँ आई। वहाँ आकर उसने उन पाँचों पाण्डवों को, पँचरंगे कुसुमदाम-फूलों की माला-श्रीदामकाण्ड-से चारों तरफ से वेष्टित कर दिया। वेष्टित करके कहा-'मैं ने इन पाँचों पाण्डवों का वरण किया।'

तए णं तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणि रायसहस्साणि महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयंति-'सुवरियं खलु भो! दोवइए रायवरकन्नाए' त्ति कट्टु सयंवरमंडवाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सया सया आवासा तेणेव उवागच्छंति।

तत्पश्चात् उन वासुदेव प्रभृति बहुत हजार राजाओं ने ऊँचे-ऊँचे शब्दों से बार-बार उद्घोषणा करते हुए कहा-अहो राजवर कन्या द्रौपदी ने अच्छा वरण किया।' इस प्रकार कह कर वे स्वयंवर मंडप से बाहर निकले। निकल कर अपने-अपने आवासों में चले गये।

तए णं धट्ठज्जुणे कुमारे पंच पंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता कंपिल्लपुरं मज्झंमज्झेणं जाव सयं भवणं अणुपविसइ।

तत्पश्चात धृष्टद्युम्न कुमार ने पाँचों पाण्डवों को और राजवर कन्या द्रौपदी को चार घंटाओं वाले अश्वरथ पर आरूढ किया और कांपिल्यपुर के मध्य में होकर यावत् अपने भवन मे प्रवेश किया।

तए णं दुवए राया पंच पंडवे दोवइं रायवरकण्णं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्गिहोमं कारवेइ, पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य पाणिग्गहणं करावेइ।

तत्पश्चात द्रुपद राजा ने पाँचों पाण्डवों को तथा राजवर कन्या द्रौपदी को पट्ट पर आसीन किया। आसीन करके श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोने के कलशों से स्नान कराया। स्नान करवा कर अग्नि-होम करवाया। फिर पाँचों पाण्डवों का द्रौपदी के साथ पाणिग्रहण कराया।

तए णं से दुवए राया दोवईए रायवरकण्णयाए इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तंजहा—अट्ठ हिरण्णकोडीओ जाव अट्ठ पेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्णं च विपुलं धणकणग जाव दलयइ।

तए णं से दुवए राया ताइं वासुदेवपामोक्खाइं विपुलेणं असणपाण-खाइमसाइमेणं वत्थगंध जाव पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात द्रुपद राजा ने राजवर कन्या द्रौपदी को यह इस प्रकार का प्रीतिदान (दहेज) दिया—आठ करोड, हिरण्य आदि यावत् आठ प्रेषण कारिणी (इधर-उधर जाने-आने का काम करने वाली) दास चेटियाँ। इनके अतिरिक्त अन्य भी वहुत—सा धन, कनक आदि यावत् प्रदान किया।

तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने उन वासुदेव प्रभृति राजाओं को, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा वस्त्र, गंध और अलंकार आदि से सत्कार करके विदा किया।

तए णं से पंडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं वहूणं रायसहस्साणं करयल जाव एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य देवीए कल्लाणकरे भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ममं अणुगिण्हमाणा अकालपरिहीणं समोसरह।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने उन वासुदेव प्रभृति वहुत हजार राजाओं से हाथ जोड़ कर यावत इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! हस्तिनापुर नगर मे पाँच

पाण्डवों और द्रौपदी देवी का कल्याणकारण महोत्सव (मांगलिक क्रिया) होगा। अतएव देवानुप्रियो ! तुम सब मुझ पर अनुग्रह करके यथा समय-विलंब किये बिना पधारना।'

तए णं वासुदेवपामोक्खा पत्तेयं पत्तेयं जाव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् वे वासुदेव आदि नृपतिगण अलग-अलग यावत् गमन करने के लिए उद्यत हुए।

तए णं पंडुराया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिंसए कारेह, अब्भुग्गयमूसिय वण्णओ जाव पडिरूवे।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा पडिसुणेंति जाव करावेंति। तए णं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं दोवईए देवीए सद्धिं हयगयसंपरिवुडे कंपिल्लपुराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार आदेश दिया–'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर में पाँच पाण्डवों के लिए उत्तम प्रासाद बनवाओ, वे प्रासाद खूब ऊँचे हों और सात भूमि (मंजिल) के हों, इत्यादि वर्णन यहाँ कहना चाहिए, यावत् अत्यन्त मनोहर हों।

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने यह आदेश अंगीकार किया, यावत् उसी प्रकार के प्रासाद बनवाये। तब पाण्डु राजा पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी देवी के साथ अश्वसेना, गजसेना आदि से परिवृत होकर कांपिल्यपुर नगर से निकला। निकल कर जहाँ हस्तिनापुर था, वहाँ आ पहुँचा।

तए णं पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे कारेह अणेगखंभसय०' तहेव जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात पाण्डु राजा ने उन वासुदेव आदि राजाओं का आगमन जान कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा 'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहर वासुदेव आदि बहुत हजार राजाओं के लिए आवास तैयार कराओ जो अनेक सैकड़ों स्तंभों आदि से युक्त हों, इत्यादि वे

कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार आज्ञा का पालन करके यावत् आज्ञा वापिस करते हैं।

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छंति। तए णं से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जहा दुपए जाव जहारिहं आवासे दलयइ। तए णं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव सयाइं सयाइं आवासाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तहेव जाव विहरंति।

तत्पश्चात् वे वासुदेव वगैरह बहुत हजार राजा नगर में आये। तब पाण्डु राजा उन वासुदेव आदि राजाओं का आगमन जान कर हर्षित और संतुष्ट हुआ। उसने स्नान किया, बलिकर्म किया और द्रुपद राजा के समान उनके सामने जाकर सत्कार किया, यावत् उन्हें यथायोग्य आवास दिये। तब वे वासुदेव आदि बहुत हजारों राजा जहाँ अपने-अपने आवास थे, वहाँ गये और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार संगीत-नाटक आदि से मनोविनोद करते हुए) यावत् विचरने लगे।

तए णं से पंडुराया हत्थिणाउरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं' तहेव जाव उवणेंति।

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे राया ण्हाया कयबलिकम्मा तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं तहेव जाव विहरंति।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा-'हे देवानुप्रियो! तुम विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराओ।' उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार किया यावत् वे भोजन तैयार करवा कर ले गये। तब उन वासुदेव आदि बहुत-से राजाओं ने स्नान एवं बलिकार्य करके उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार किया और उसी प्रकार (पहले कहे अनुसार) विचरने लगे।

तए णं से पंडुराया पंच पंडवे दोवइं च देविं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेंति, ण्हावित्ता कल्लाणकरं करेइ,

करित्ता ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से विपुलेणं असणपाण-खाइमसाइमेणं पुप्फवत्थेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता जाव पडिविसज्जेइ। तए णं ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूहिं जाव पडिगयाइं।

तत्पश्चात् पांडु राजा ने पांच पाण्डवों को तथा द्रौपदी देवी को पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत कलशों से उनका अभिषेक किया—उन्हें नहलाया। फिर कल्याणकर उत्सव किया। उत्सव करके उन वासुदेव आदि बहुत हजार राजाओं का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से तथा पुष्पों और वस्त्रों से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके यावत् उन्हें विदा किया। तब वे वासुदेव वगैरह बहुत-से राजा यावत् अपने-अपने नगरों को लौट गये।

तए णं ते पंच पंडवा दोवईए देवीए सद्धिं अंतो अंतेउरपरियाल सद्धिं कल्लाकल्लिं वारं वारेणं ओरालाइं भोगभोगाइं जाव विहरइ।

तत्पश्चात् वे पाँच पाण्डव, द्रौपदी देवी के साथ, अन्तःपुर के परिवार सहित, एक-एक दिन वारी के अनुसार, उदार काम भोग भोगते हुए यावत् रहने लगे।

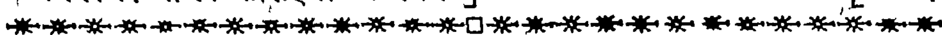
तए णं ते पंडुराया अन्नया कयाई पंचहिं पंडवेहिं कोंतीए देवीए दोवईए देवीए य सद्धिं अंतो अंतेउरपरियाल सद्धिं संपरिवुडे सीहासण-वरगए यावि होत्था।

उस समय पाण्डु राजा एक बार किसी समय पाँच पाण्डवों, कुन्ती देवी और द्रौपदी देवी के साथ तथा अन्तःपुर के अन्दर के परिवार के साथ परिवृत होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन होकर विचर रहे थे।

इमं च णं कच्छुल्लणारए दंसणेणं इअभद्दए विणीए अंतो अंतो य कलुसहियए मज्झत्थोवत्थिए य अल्लीणसोमपियदंसणे सुरूवे अमइल-सगलपरिहिए कालमियचम्मउत्तरासंगरइयवत्थे दंडकमंडलुहत्थे जडाम-उडदित्तसिरए जन्नोवइयगणेत्तियमुंजमेहलवागलधरे हत्थकयकच्छभीए पियगंधव्वे धरणिगोयरप्पहाणे संचरणावरणओवयणउप्पयणिलेसणीसु य संकामणिअभिओगपण्णत्तिगमणीथंभणीसु य बहुसु विज्जाहरीसु

विज्जासु विस्सुयजसे इट्ठे रामस्स य केसवस्स य पज्जुन्न-पईव-संब-अनिरुद्ध-निसढ-उम्मुय-सारण-गयसुहुम-दुम्मुहाईण जायवाणं अद्धुट्ठाण कुमारकोडीणं हिययदइए संथवए कलहजुद्धकोलाहलप्पिए भंडणाभिलासी बहुसु य समरेसु य संपराएसु य दंसणरए समंतओ कलहं सदक्खिणं अणुगवेसमाणे असमाहिकरे दसारवरवीरपुरिसतिलोक्कबलवगाणं आमंतेऊण तं भगवतीं ए (प) क्कमणिं गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागरनगरखेडकब्बडमडंबदोहमुहपट्टणसंवाहसहस्समंडियं थिमियमेइणीतलं वसुहं ओलोइंतो रम्मं हत्थिणाउरं उवागए पंडुरायभवणंसि अइवेगेण समोवइए।

इधर कच्छुल्ल नामक नारद वहाँ आ पहुँचे। वे देखने में अत्यन्त भद्र और विनीत जान पडते थे, परन्तु भीतर से उनका हृदय कलुषित था। ब्रह्मचर्य व्रत के धारक होने से वे मध्यस्थता को प्राप्त थे। आश्रित जनों को उनका दर्शन प्रिय लगता था। उनका रूप मनोहर था। उन्होंने उज्ज्वल एव सकल (अखंड अथवा शकल अर्थात् वस्त्र खंड) पहन रक्खा था। काला मृगचर्म उत्तरासंग के रूप मे वक्षस्थल में धारण किया था। हाथ में दंड और कमण्डलु था। जटा रूपी मुकुट से उनका मस्तक देदीप्यमान था। उन्होने यज्ञोपवीत एव रुद्राक्ष की माला के आभरण, मूंज की कटि मेखला और वल्कल वस्त्र धारण किये थे। उनके हाथ में कच्छपी नामकी वीणा थी। उन्हें संगीत से प्रीति थी। आकाश में गमन करने की शक्ति होने से वे पृथ्वी पर बहुत कम गमन करते थे। संचरणी (चलने की), आवरणी (ढँकने की), अवतरणी (नीचे उतरने की), उत्पतनी (ऊँचे उड़ने की), श्लेषणी (चिपट जाने की), संक्रामणी (दूसरे के शरीर मे प्रवेश करने की), अभियोगिनी (सोना चांदी आदि बनाने की), प्रज्ञप्ति (परोक्ष वृत्तान्त को बतला देने की), गमनी (दुर्गम स्थान में भी जा सकने की) और स्तभिनी (स्तब्ध कर देने की) आदि बहुत-सी विद्याधरों सबंधी विद्याओं में प्रवीण होने से उनकी कीर्त्ति फैली हुई थी। वे बलदेव और वासुदेव के प्रेमपात्र थे। प्रद्युम्न, प्रदीप, सांब, अनिरुद्ध, निषध, उन्मुख, सारण, गजसुकुमाल, सुमुख और दुर्मुख आदि यादवों के साढ़े तीन करोड़ कुमारों के हृदय के प्रिय थे और उनके द्वारा प्रशंसनीय थे। कलह (वाग्युद्ध), युद्ध (शस्त्रों का समर) और कोलाहल उन्हें प्रिय था। वे भांड के समान वचन बोलने के अभिलाषी थे। अनेक समर और सम्पराय (युद्ध विशेष) देखने के रसिया थे। चारों ओर दक्षिणा देकर (दान देकर) भी कलह की खोज किया करते थे, अर्थात् कलह



कराने मे उन्हे बड़ा आनन्द आता था। कलह करा कर दूसरो के चित्त से असमाधि उत्पन्न करते थे। ऐसे वह नारद तीन लोक में बलवान् श्रेष्ठ दसारवंश के वीर पुरुषो से वार्त्तालाप करके, उस भगवती (पूज्य) प्राकाम्य नामक विद्या का, जो आकाश में गमन करने मे दत्त थी, स्मरण करके, उड़े और आकाश को लांघते हुए हजारों ग्राम, आकर (खान) नगर, खेट, कर्बट, मडंब द्रोणमुख, पट्टन, और संबाध से शोभित और भरपूर देशों से व्याप्त पृथ्वी का अवलोकन करते-करते रमणीय हस्तिनापुर मे आये और बड़े वेग के साथ पाण्डु राजा के महल में उतरे।

तए णं से पंडुराया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता पंचहिं पंडवेहिं कुंतीए य देवीए सद्धिं आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता कच्छुल्लनारयं सत्तट्ठपयाइं पच्चुग्गच्छइ, पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ।

उस समय पाण्डु राजा ने कच्छुल्ल नारद को आता देखा। देख कर पाँच पाण्डवों तथा कुन्ती देवी सहित वे आसन से उठ खड़े हुए। खड़े होकर सात-आठ पैर कच्छुल्ल नारद के सामने गये। सामने जाकर तीन वार दक्षिण दिशा से आरंभ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वंदन किया, नमस्कार किया। वन्दन- नमस्कार करके महान् पुरुष के योग्य अथवा बहुमूल्य आसन ग्रहण करने के लिए आमंत्रण किया।

तए णं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसीयइ, णिसीइत्ता पंडुरायं रज्जे जाव अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ।—

तए णं से पंडुराया कोंती देवी पंच य पंडवा कच्छुल्लणारयं आढंति-जाव पज्जुवासंति।

तत्पश्चात् उन कच्छुल्ल नारद ने जल छिड़क कर और दर्भ बिछाकर उस पर अपना आसन बिछाया और वे उस पर बैठे। बैठ कर पांडु राजा, राज्य यावत् अन्तःपुर के कुशल-समाचार पूछे। उस समय पाण्डु राजा ने, कुन्ती देवी ने और पाँचो पाण्डवों ने कच्छुल्ल नारद का आदर-सत्कार किया। यावत् वे उनको पर्युपासना (सेवा) करने लगे।

तए णं सा दोवई देवी कच्छुल्लनारयं अस्संजयं अविरयं अप्पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मं ति कट्टु नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ, नो पज्जुवासइ।

उस समय द्रौपदी देवी ने कच्छुल्ल नारद को असंयमी, अविरत तथा पूर्वकृत पाप कर्म का निन्दादि द्वारा नाश न करने वाला तथा आगे के पापों का प्रत्याख्यान न करने वाला जान कर उनका आदर नहीं किया, उन्हें आया भी न जाना, उनके आने पर वह खड़ी नहीं हुई और उनसे उनकी उपासना भी नहीं की।

तए णं तस्स कच्छुल्लणारयस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–'अहो णं दोवई देवी रूवेणं जाव लावण्णेण य पंचर्हि पंडवेहिं अणुबद्धा समाणी ममं नो आढाइ, जाव नो पज्जुवासइ, तं सेयं खलु मम दोवईए देवीए विप्पियं करित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता पंडुयरायं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव विज्जाहरगईए लवण-समुद्दं मज्झंमज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते यावि होत्था।

तत्पश्चात् उन कच्छुल्ल नारद को इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तित (विचार), प्रार्थित (इष्ट), मनोगत (मन में स्थित) संकल्प उत्पन्न हुआ कि–अहो! यह द्रौपदी देवी अपने रूप, लावण्य और पाँच पांडवों के कारण अभिमानिनी हो गई है, अतएव मेरा आदर नहीं करती यावत् मेरी उपासना नहीं करती। अतएव द्रौपदी देवी का अनिष्ट करना मेरे लिए श्रेयस्कर है।' इस प्रकार नारद ने विचार किया। विचार करके पाण्डु राजा से जाने की आज्ञा ली। फिर उत्पतनी (उड़ने की) विद्या का आह्वान किया आह्वान करके उस उत्कृष्ट यावत् विद्याधरगति से, लवणसमुद्र के मध्यभाग में होकर, पूर्व दिशा के सन्मुख, चलने के लिए प्रयत्नशील हुए।

ते णं काले णं ते णं समए णं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धदाहिणड्ढ-भरहवासे अमरकंका नाम रायहाणी होत्था। तए णं अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभे णामं राया होत्था, महया हिमवंत वण्णओ। तस्स णं पउमणाभस्स रण्णो सत्त देवीसयाइं ओरोहे होत्था। तस्स णं

पउमणाभस्स रण्णो सुनाभे नाम पुत्ते जुवराया यावि होत्था। तए णं से पउमनाभे राया अंतो अंतेउरंसि ओरोहसंपरिवुडे सिंहासणवरगए विहरइ।

उस काल और उस समय में, धातकीखण्ड नामक द्वीप में, पूर्व* दिशा की तरफ के दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र मे अमरकंका नामक राजधानी थी। उस अमरकंका राजधानी में पद्मनाम नामक राजा था। वह महान् हिमवन्त पर्वत के समान सार वाला था, इत्यादि पूर्ववत् वर्णन समझना चाहिए। उस पद्मनाभ राजा के अन्तःपुर में सात सौ रानियाँ थीं। उसके पुत्र का नाम सुनाभ था। वह युवराज भी था। (जिस समय का यह वर्णन है) उस समय पद्मनाभ राजा अन्तःपुर में अपनी रानियों के साथ उत्तम सिंहासन पर बैठा था।

तए णं से कच्छुल्लणारए जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव पउमनाभस्स भवणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमनाभस्स रन्नो भवणंसि झत्ति वेगेणं समोवइए।

तए णं से पउमणाभे राया कच्छुल्लं नारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद जहाँ अमरकंका राजधानी थी और जहाँ पद्म-नाभ का भवन था, वहाँ आये। आकर पद्मनभ राजा के भवन मे, वेगपूर्वक, शीघ्रता के साथ उतरे।

उस समय पद्मनाभ राजा ने कच्छुल्ल नारद को आता देखा। देख कर वह आसन से उठा। उठ कर अर्घ्य से उनकी पूजा की, यावत् आसन पर बैठने के लिए आमंत्रित किया।

तए णं से कच्छुल्लणारए उदयपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद ने जल से छिड़काव किया, फिर दर्भ बिछा कर उस पर आसन बिछाया और फिर वे उस आसन पर बैठे। बैठने के बाद यावत् कुशल-समाचार पूछे।

---

* धातकी खण्ड द्वीप में भरत आदि क्षेत्र दो-दो की संख्या में हैं। उनमें से पूर्व दिशा के भरतक्षेत्र के दक्षिणी भाग में अमरकंका राजधानी थी।

तए णं से पउमनाभे राया णियगओरोहे जायविम्हए कच्छु णारयं एवं वयासी–'तुब्भं देवाणुप्पिया ! वहूणि गामाणि जाव गे अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिंचि देवाणुप्पिया ! एरि ओरोहे दिट्ठपुव्वे जारिसए णं मम ओरोहे ?'

इसके बाद पद्मनाभ राजा ने अपनी रानियो (के सौन्दर्य आदि) विस्मित होकर कच्छुल्ल नारद से प्रश्न किया 'हे देवानुप्रिय ! आप वहुत ग्रामो यावत् गृहो में प्रवेश करते हो, तो देवानुप्रिय ! जैसा मेरा अन्तःपुर वैसा अन्तपुर आपने पहले कभी कहीं देखा है ?'

तए णं से कच्छुल्लनारए पउमनाभेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे ई विहसियं करेइ, करित्ता एवं वयासी–'सरिसे णं तुमं पउमणाभा ! त अगडदद्दुरस्स ।'

'के णं देवाणुप्पिया ! से अगडदद्दुरे ?'

एवं जहा मल्लिणाए ।

एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंवुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणा दुपयस्स रण्णो धूया, चुलणीए देवीए अत्तया, पंडुस्स सुण्हा पंच पंडवाणं भारिया दोवई देवी रूवेण य जाव उक्किट्ठसरीरा । दोवईए देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्ठयस्स अयं तव ओरोहे सइमं पि कलं अग्घइ त्ति कट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जाव पडिगए ।

तत्पश्चात् राजा पद्मनाभ के इस प्रकार कहने पर कच्छुल्ल नारद थो मुस्किराये । मुस्किरा कर वोले–'हे पद्मनाभ ! तुम कुए के उस मेंढक के सदृश हो

(पद्मनाभ ने पूछा–) देवानुप्रिय ! कौन–सा वह कुए का मेंढक ?'

जैसा मल्ली ज्ञात (अध्ययन) में कहा है, वही यहाँ कहना ।

(नारद कहते हैं–) 'हे देवानुप्रिय ! जम्बू द्वीप में, भारत वर्ष मे, हस्तिन पुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की आत्मजा, पाण्डु राजा पुत्रवधू और पाँच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी देवी रूप से यावत् लावण्य से उत्कृ शरीर वाली है । तुम्हारा यह सारा अन्तःपुर द्रौपदी देवी के कटे हुए पैर

कह कर नारद ने पद्मनाभ से जाने की अनुमति ली। अनुमति पाकर वह यावत् चल दिये।

तए णं से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म दोवईए देवीए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिए ४, (गढिए, लुद्धे, अज्झोववन्ने) जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं जाव पुव्वसंगतियं देवं एवं वयासी–'एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नयरे जाव उक्किट्ठसरीरा, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! दोवइं देविं इहमाणियं।'

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा, कच्छुल्ल नारद से यह अर्थ सुन कर और समझ कर द्रौपदी देवी के रूप, यौवन और लावण्य में मुग्ध हो गया गृद्ध हो गया, लुब्ध हो गया और आग्रहवान हो गया। वह पौषधशाला में पहुँचा। पौषधशाला को पूंज कर, अपने पूर्व के साथी देव का मन मे ध्यान करके, तेला करके बैठ गया। देव आया। तब राजा ने उस पहले के साथी देव से कहा–'हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारत वर्ष में, हस्तिनापुर नगर में, यावत् द्रौपदी देवी उत्कृष्ट शरीर वाली है। हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूँ कि द्रौपदी देवी यहाँ ले आई जाय।'

तए णं पुव्वसंगतिए देवे पउमनाभं एवं वयासी–'नो खलु देवाणुप्पिया ! एयं भूयं, भव्वं वा, भविस्सं वा, जं णं दोवई देवी पंच पंडवे मोत्तूण अन्नेणं पुरिसेणं सद्धिं ओरालाइं जाव विहरिस्सइ, तहावि य णं अहं तव पियट्ठयाए दोवइं देविं इहं हव्वमाणेमि' त्ति कट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् पूर्वसंगतिक (पहले के साथी) देव ने पद्मनाभ से कहा–'देवानुप्रिय ! यह कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि द्रौपदी देवी पाँच पाण्डवों को छोड़ कर दूसरे पुरुष के साथ उदार कामभोग भोगती हुई विचरेगी। तथापि मैं तुम्हारा प्रिय (इष्ट) करने के लिए द्रौपदी देवी को अभी यहाँ ले आता हूँ।' इस प्रकार कह कर देव ने पद्मनाभ से आज्ञा ली। आज्ञा लेकर वह उत्कृष्ट देवगति से लवणसमुद्र के मध्य में होकर जिधर हस्तिनापुर नगर था, उधर ही गमन करने के लिए उद्यत हुआ।

ते णं काले णं ते णं समए णं हत्थिणाउरे जुहिट्ठिले राया दोवईए देवीए सद्धिं आगासतलंसि सुहपसुत्ते यावि होत्था।

उस काल और उस समय में, हस्तिनापुर नगर में, युधिष्ठिर राजा द्रौपदी देवी के साथ महल की छत पर सुख से सोया हुआ था।

तए णं से पुव्वसंगतिए देवे जेणेव जुहिट्ठिले राया, जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ, दलइत्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव अमरकंका, जेणेव पउमणाभस्स भवणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवइं देविं ठावेइ, ठावित्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—'एस णं देवाणुप्पिया मए हत्थिणाउराओ दोवई देवी इह हव्वमाणीय तव असोगवणियाए चिट्ठइ, अतो परं तुमं जाणासि' त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तब वह पूर्वसंगतिक देव जहाँ राजा युधिष्ठिर था और जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर उसने द्रौपदी देवी को अवस्वापिनी निद्रा दी अवस्वापिनी निद्रा मे सुला दिया। फिर द्रौपदी देवी को ग्रहण करके उत्कृष्ट देवगति से अमरकका राजधानी में पद्मनाभ के भवन मे आ पहुँचा। आकर पद्मनाभ के भवन में, अशोकवाटिका में, द्रौपदी देवी को रख दिया। रख कर अवस्वापिनी निद्रा का संहरण किया। संहरण करके जहाँ पद्मनाभ था, वहाँ आया। आकर इस प्रकार बोला—'देवानुप्रिय! मैं हस्तिनापुर से द्रौपदी देवी को शीघ्र ही यहाँ ले आया हूँ। वह तुम्हारी अशोकवाटिका में है। इससे आगे तुम जानो।' इतना कह कर वह देव जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

तए णं सा दोवई देवी तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी तं भवणं असोगवणियं च अपच्चभिजाणमाणी एवं वयासी—नो खलु अम्हं एसे सए भवणे, णो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ णं अहं केणई देवेण वा, दाणवेण वा, किंपुरिसेण वा, किन्नरेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वेण वा, अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरिय' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

तत्पश्चात् थोड़ी देर में द्रौपदी देवी की निद्रा भंग हुई। वह उस अशोकवाटिका को पहचान न सकी। तब मन ही मन कहने लगी—यह भवन मेरा अपना नहीं है, यह अशोकवाटिका मेरी अपनी नहीं है। न जाने किसी देव ने, दानव ने, किं पुरुष ने, किन्नर ने, महोरग ने या गंधर्व ने किसी दूसरे राजा की अशोकवाटिका में मेरा संहरण किया है! इस प्रकार विचार करके वह भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता करने लगी।

तए णं से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए अंतेउरपरियालसंपरिवुडे जेणेव असोगवणिया, जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता दोवइं देवीं ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणीं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'किं णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि? एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! मम पुव्वसंगतिएणं देवेणं जंबुद्दीवाओ दीवाओ, भारहाओ वासाओ, हत्थिणाउराओ नयराओ, जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहरिया, तं मा णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि। तुमं मए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं जाव विहराहि।'

तत्पश्चात् राजा पद्मनाभ स्नान करके, यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित होकर तथा अन्तःपुर के परिवार से परिवृत्त होकर, जहाँ अशोकवाटिका थी और जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ आया। आकर उसने द्रौपदी देवी को भग्नमनोरथ एवं चिन्ता करती देख कर कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम भग्नमनोरथ होकर चिन्ता क्यों कर रही हो? देवानुप्रिये! मेरा पूर्वसंगतिक देव तुम्हें जम्बूद्वीप से, भारत वर्ष से, हस्तिनापुर नगर से और युधिष्ठिर राजा के भवन से संहरण करके ले आया है। अतएव देवानुप्रिये! तुम हतमनःसंकल्प होकर चिन्ता मत करो। तुम मेरे साथ विपुल भोगोपभोग भोगती हुई रहो।

तए णं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वारवइए नयरीए कण्हे णामं वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, तं जइ णं से छण्हं मासाणं ममं कूवं नो हव्वमागच्छइ, तए णं अहं देवाणुप्पिया! जं तुमं वदसि तस्स आणा ओवायवयणणिद्देसे चिट्ठिस्सामि।'

ते णं काले णं ते णं समए णं हत्थिणाउरे जुहिट्ठिले राया दोवईए देवीए सद्धिं आगासतलंसि सुहपसुत्ते यावि होत्था।

उस काल और उस समय में, हस्तिनापुर नगर में, युधिष्ठिर राजा द्रौपदी देवी के साथ महल की छत पर सुख से सोया हुआ था।

तए णं से पुव्वसंगतिए देवे जेणेव जुहिट्ठिले राया, जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ, दलइत्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव अमरकंका, जेणेव पउमणाभस्स भवणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवइं देविं ठावेइ, ठावित्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—'एस णं देवाणुप्पिया मए हत्थिणाउराओ दोवई देवी इह हव्वमाणीय तव असोगवणियाए चिट्ठइ, अतो परं तुमं जाणसि' त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तब वह पूर्वसंगतिक देव जहाँ राजा युधिष्ठिर था और जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर उसने द्रौपदी देवी को अवस्वापिनी निद्रा दी अवस्वापिनी निद्रा में सुला दिया। फिर द्रौपदी देवी को ग्रहण करके उत्कृष्ट देवगति से अमरकंका राजधानी में पद्मनाभ के भवन में आ पहुँचा। आकर पद्मनाभ के भवन में, अशोकवाटिका में, द्रौपदी देवी को रख दिया। रख कर अवस्वापिनी निद्रा का संहरण किया। संहरण करके जहाँ पद्मनाभ था, वहाँ आया। आकर इस प्रकार बोला—'देवानुप्रिय! मैं हस्तिनापुर से द्रौपदी देवी को शीघ्र ही यहाँ ले आया हूँ। वह तुम्हारी अशोकवाटिका में है। इससे आगे तुम जानो।' इतना कह कर वह देव जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

तए णं सा दोवई देवी तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी तं भवणं असोगवणियं च अपच्चभिजाणमाणी एवं वयासी—नो खलु अम्हं एसे सए भवणे, णो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ णं अहं केणाई देवेण वा, दाणवेण वा, किंपुरिसेण वा, किन्नरेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वेण वा, अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरिय' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

कर गया, ले गया या खींच ले गया ? तो हे तात ! मै चाहता हूँ कि द्रौप
देवी की सब तरफ मार्गणा-गवेषणा की जाय ।'

तए णं से पंडुराया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-
'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरे नयरे सिंघाडग-तिय
चउक्क-चच्चर-महापह-पहेसु महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसे
माणा एवं वदह-'एवं खलु देवाणुप्पिया ! जुहिट्ठिल्लस्स रण्णो आगा
सतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न णज्जइ केणइ देवेण वा
दाणवेण वा, किंपुरिसेण वा, किन्नरेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वे
वा हिया वा नीया वा अवक्खित्ता वा ? तं जो णं देवाणुप्पिया
दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवित्तिं वा परिकहेइ तस्स णं पंडुराय
विउलं अत्थसंपयाणं दाणं दलयइ' त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह, घोसा
वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।' तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जा
पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् पाण्डु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुला क
यह आदेश दिया-'देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर में शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्
चत्वर, महापथ और पथ आदि में जोर-जोर के शब्दों से घोषणा करते-कर
इस प्रकार कहो-'इस प्रकार निश्चय ही हे देवानुप्रियो (लोगो) आकाशत
(अगासी) पर सुख से सोये हुए युधिष्ठिर राजा के पास से द्रौपदी देवी को
जाने किस देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर, महोरग या गंधर्व देवता ने हरण कि
है, ले गया है या खींच गया है ? तो हे देवानुप्रियो ! जो कोई द्रौपदी देवी व
श्रुति, क्षुति या प्रवृत्ति बतलाएगा, उस मनुष्य को पाण्डु राजा विपुल सम्प
का दान देंगे-इनाम देंगे ।' इस प्रकार की घोषणा करो । घोषणा करके मेरी य
आज्ञा वापिस लौटाओ ।' तब कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार घोषणा कर
यावत् आज्ञा वापिस लौटाई ।

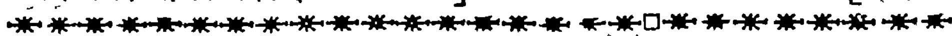
तए णं से पंडू राया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभ
माणे कोंतीं देविं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुमं देवा
णुप्पिये ! बारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं णिवेदेहि । कण्ह
णं परं वासुदेवे दोवईए देवीए मग्गणगवेसणं करेज्जा, अन्नहा न नज्ज
दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवित्तिं वा उवलभेज्जा ।'

पूर्वोक्त घोषणा कराने के पश्चात भी पाण्डु राजा द्रौपदी देवी की कहीं भी श्रुति यावत् समाचार न पा सके तो कुन्ती देवी को बुला कर इस प्रकार बोले- हे देवानुप्रिये ! तुम द्वारवती (द्वारिका) नगरी जाओ और कृष्ण वासुदेव को यह अर्थ निवेदन करो। कृष्ण वासुदेव ही द्रौपदी देवी की मार्गणा-गवेषणा करेंगे, अन्यथा द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुति या प्रवृत्ति अपने को ज्ञात हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। अर्थात् हम लोग द्रौपदी का पता नहीं पा सकते, केवल कृष्ण ही उसका पता लगा सकते हैं।

तए णं कोंती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणइ, पडिसुणित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं नयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता कुरुजणवयं मज्झंमज्झेणं जेणव सुरट्ठजणवए, जेणेव बारवई णयरी, जेणेव अग्गुज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! जेणव बारवई णयरी, बारवइं णयरिं अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयल एवं वयह-'एवं खलु सामी ! तुब्भं पिउच्छा कोंती देवी हत्थिणाउराओ नयराओ इह हव्वमागया तुब्भं दंसणं कंखति।'

पाण्डु राजा के द्वारिका जाने के लिए कहने पर कुन्ती देवी ने उनकी बात यावत् स्वीकार करके नहा-धोकर बलिकर्म करके वह हाथी के स्कंध पर आरूढ़ होकर हस्तिनापुर नगर के मध्य मे होकर निकली। निकल कर कुरु देश के बीचोंबीच होकर जहाँ सौराष्ट्र जनपद था, जहाँ द्वारवती नगरी थी और नगर के बाहर श्रेष्ठ उद्यान था, वहां आई। आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरी। उतर कर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा- 'देवानुप्रियो! तुम जहां द्वारिका नगरी है वहां जाओ। द्वारिका नगरी के भीतर प्रवेश करो। प्रवेश करके कृष्ण वासुदेव को दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहना-'हे स्वामिन् ! आपके पिता की बहिन (भुआ) कुन्ती देवी हस्तिनापुर नगर से यहां शीघ्र आई हैं और तुम्हारे दर्शन की इच्छा करती है-तुमसे मिलना चाहती हैं।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव कहेंति। तए णं कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसाणं अंतिए सोच्चा णिसम्म हत्थिखंधवरगए हयगय बारवईए य मज्झंमज्झेणं जेणेव कोंती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता



हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोंतीए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता कोंतीए देवीए सद्धिं हत्थिखंधं दुरूहइ, दुरूहित्ता बारवईए नगरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं गिहं अणुपविसइ ।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् कृष्ण वासुदेव के पास जाकर कुन्ती देवी का आगमन कहा । तब कृष्ण वासुदेव कौटुम्बिक पुरुषों के पास से कुन्ती देवी के आगमन का समाचार सुन कर, हाथी के स्कंध पर आरूढ़ होकर घोड़ों–हाथियों आदि की सेना के साथ यावत् द्वारवती नगरी के मध्यभाग में होकर जहाँ कुन्ती देवी थी, वहाँ आये । आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरे । नीचे उतर कर उन्होंने कुन्ती देवी के चरण ग्रहण किये–पैर छुए । फिर कुन्ती देवी के साथ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए । आरूढ़ होकर द्वारवती नगरी के मध्य भाग में होकर जहाँ अपना महल था, वहाँ आये । आकर अपने महल में प्रवेश किया ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतीं देवीं ण्हायं कयबलिकम्मं जिमियभुत्तुत्तरागयं जाव सुहासणवरगयं एवं वयासी–'संदिसउ णं पिउच्छा ! किमागमणपओयणं ?'

कुन्ती देवी जब स्नान करके, बलिकर्म करके और भोजन कर चुकने के पश्चात् यावत् सुखासन पर बैठी, तब कृष्ण वासुदेव ने इस प्रकार कहा–'हे पितृभगिनी ! कहिए, आपके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?'

तए णं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–'एवं खलु पुत्ता ! हत्थिणाउरे णयरे जुहिट्ठिल्लस्स आगासतले सुहपसुत्तस्स दोवई देवी पासाओ ण णज्जइ केणइ अवहिया जाव अवक्खित्ता वा, तं इच्छामि णं पुत्ता ! दोवईए देवीए मग्गणगवेसणं कयं ।'

तत्पश्चात् कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा–'हे पुत्र ! हस्तिनापुर नगर में, युधिष्ठिर आकाशतल (अगासी) पर सुख से सो रहा था । उसके पास से द्रौपदी देवी को न जाने कौन अपहरण कर ले गया अथवा यावत् खींच ले गया । अतएव हे पुत्र ! मैं चाहती हूँ कि द्रौपदी देवी की मार्गणा–गवेषणा करो ।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं पिउच्छिं एवं वयासी—'जं नवरं पिउच्छा ! दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ वा अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइं साहत्थिं उवणेमि' त्ति कट्टु कोंतीं पिउच्छिं सक्कारेइ, सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अपनी पितृभागिनी कुन्ती से कहा—'विशेष बात यह है भुआजी ! अगर मैं कहीं भी द्रौपदी देवी की श्रुति (शब्द) आदि पाऊँ, तो मैं पाताल से, भवन मे से या अर्धभरत में से, सभी जगह से, अपने हाथ से ले आऊँगा ।' इस प्रकार कह कर उन्होंने कुन्ती भुआ का सत्कार किया, सन्मान किया, यावत् उन्हे विदा किया ।

तए णं सा कोंती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिसं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया ।

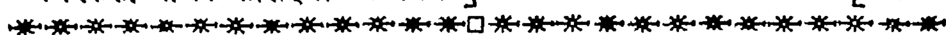
कृष्ण वासुदेव से यह आश्वासन पाने के पश्चात् कुन्ती देवी, उनसे विदा होकर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवइं नयरिं' एवं जहा पंडू तहा घोसणं घोसावेइ, जाव पच्चप्पिणंति, पंडुस्स जहा ।

कुन्ती देवी के लौट जाने पर कृष्ण वासुदेव ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुला कर उसने कहा—'देवानुप्रियो ! तुम द्वारिका नगरी मे जाओ' इस प्रकार जैसे पाण्डु राजा ने घोषणा करवाई थी, उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव ने भी करवाई । यावत् उनकी आज्ञा कौटुम्बिक पुरुषों ने वापिस की । सब वृत्तान्त पाण्डु राजा के समान कहना चाहिए ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अन्नया अंतो अंतेउरगए ओरोहे जाव विहरइ । इमं च णं कच्छुल्लए जाव समोवइए जाव णिसीइत्ता कण्हं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ ।

तत्पश्चात् किसी समय कृष्ण वासुदेव अन्तःपुर के अन्दर अपनी रानियों के साथ रहे हुए थे । उसी समय वह कच्छुल्ल नारद यावत् उतरे । यावत् आसन पर बैठ कर कृष्ण वासुदेव से कुशल वृत्तान्त पूछा ।



तए णं से कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं णारयं एवं वयासी–'तुमं णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर जाव अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिं वि दोवईए देवीए सुई वा जाव उवलद्धा ?' तए णं से कच्छुल्ले णारए कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अन्नया धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्धं दाहिणद्धभरहवासं अमरकंकारायहाणिं गए, तत्थ णं मए पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि दोवई देवी जारिसिया दिट्ठ-पुव्वा यावि होत्था ।'

तए णं कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं णारयं एवं वयासी–'तुब्भं चेव णं देवाणुप्पिया ! एवं पुव्वकम्मं ।'

तए णं से कच्छुल्लनारए कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से इस प्रकार कहा–'देवानुप्रिय ! तुम बहुत-से ग्रामों, आकरों, नगरों आदि में प्रवेश करते हो । तो किसी जगह द्रौपदी देवी की श्रुति आदि कुछ मिली है ? तब कच्छुल्ल नारद ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रिय ! एक बार मैं धातकी खण्ड द्वीप में, पूर्व दिशा के दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र मे, अमरकंका नामक राजधानी मे गया था । वहाँ मैंने पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी जैसी देखी थी ।'

तब कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से इस प्रकार कहा–'देवानुप्रिय ! यह तुम्हारी ही करतूत जान पड़ती है ।'

कृष्ण वासुदेव के द्वारा इस प्रकार कहने पर कच्छुल्ल नारद ने उत्पतनी विद्या का स्मरण किया । स्मरण करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं, पंडुस्स रण्णो एयमट्ठं निवेदेहि–'एवं खलु देवाणुप्पिया ! धायइसंडे दीवे पुरच्छिमद्धे अमरकंकाए रायहाणीए पउमनाभभवणंसि दोवईए देवीए पउत्ती उवलद्धा ।

तं गच्छंतु पंच पंडवा चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरच्छिम-वेयालीए ममं पडिवालेमाणा चिट्ठंतु ।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने दूत को बुलाया। बुला कर उससे कहा-'देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर जाओ और पाण्डु राजा को यह अर्थ निवेदन करो कि-'हे देवानुप्रिय ! धातकी खण्ड द्वीप मे, पूर्वार्ध भाग में, अमरकंका राजधानी में, पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी का पता लगा है। अतएव पाँचो पाण्डव चतुरंगिणी सेना के साथ परिवृत होकर रवाना हों और पूर्व दिशा के वेतालिक* (लवणसमुद्र के किनारे) पर मेरी प्रतीक्षा करें।'

तए णं दूए जाव भणइ-'पडिवालेमाणा चिट्ठह ।' ते वि जाव चिट्ठंति ।

तत्पश्चात दूत ने जाकर यावत् उसी प्रकार कहा कि-'प्रतीक्षा करते रहे ।' तब पांचो पाण्डव वहां जाकर यावत् कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करने लगे।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सन्नाहियं भेरिं ताडेह ।' ते वि तालेंति ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर कहा-'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और सान्नाहिक (सामरिक) भेरी बजाओ।' यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने भेरी बजाई।

तए णं तीसे सण्णाहियाए भेरीए सद्दं सोच्चा समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव छप्पण्णं बलवयसाहस्सीओ सन्नद्धबद्ध जाव गहिया-उहपहरणा अप्पेगइया हयगया जाव वग्गुरापरिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेंति ।

तत्पश्चात् सान्नाहिक भेरी की ध्वनि सुन कर समुद्रविजय आदि दस दसार यावत् छप्पन हजार बलवान् योद्धा, कवच पहन कर, तैयार होकर, आयुध और प्रहरण ग्रहण करके, कोई-कोई घोड़ा पर सवार होकर, कोई हाथी आदि पर सवार होकर, सुभटों के समूह के साथ जहां कृष्ण वासुदेव की सुधर्मा सभा थी और जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहा आये। आकर हाथ जोड़ कर यावत् उनका अभिनन्दन किया।

*जहाँ समुद्र की वेल चढ़ कर गंगा नदी में मिलती है, वह स्थान।

तए णं कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धारिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं महया हयगयभडचडगर-पहकरेणं बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुरच्छिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावारणिवेसं करेइ, करित्ता पोस-हसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुत्थियं देवं मणसि करेमाणे करे-माणे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। कोरंट वृक्ष के फूलों की मालाओं से युक्त छत्र उनके मस्तक के ऊपर धारण किया गया। दोनों पार्श्वों में उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। वे बड़े-बड़े अश्वों, गजों, भटों और सुभटों के समूहों से परिवृत होकर द्वारिका नगरी के मध्य भाग मे होकर निकले। निकल कर जहाँ पूर्व दिशा का वेतालिक था, वहाँ आये। वहाँ आकर पाँच पाण्डवों के साथ इकट्ठे हुए (मिले) फिर पड़ाव डाल कर पौषध-शाला में प्रवेश किया। प्रवेश करके सुस्थित देव का मनमें पुनः चिन्तन करते हुए स्थित हुए।

तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्ठिओ जाव आगओ-'भण देवाणुप्पिया! जं मए कायव्वं।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी-'एवं खलु देवाणु-प्पिया! दोवई देवी जाव पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि साहरिया, तं णं तुमं देवाणुप्पिया! मम पंचहि पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरेहि। जं णं अहं अमरकंकारायहाणिं दोव-ईए देवीए कूवं गच्छामि।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव का अष्टमभक्त पूरा होने पर सुस्थित देव यावत् उनके समीप आया। उसने कहा-'देवानुप्रिय! कहिए, मुझे क्या करना है?'

तब कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिय! द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभ राजा के भवन मे हरण की गई है, अतएव तुम हे देवानुप्रिय! पाँच पाण्डवों सहित छठे मेरे छह रथों को लवणसमुद्र में मार्ग दो, जिससे मैं (पाण्डवों सहित) अमरकंका राजधानी में द्रौपदी देवी को वापिस छीनने के लिए जाऊँ।'

तए णं से सुत्थिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'किएणं देवाणुप्पिया ! जहा चेव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगतिएणं देवेणं दोवई देवी जाव संहरिया, तहा चेव दोवइं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणाउरं साहरामि ? उदाहु पउमनामं रायं सपुरबलवाहणं लवणसमुद्दे पक्खिवामि ?'

तत्पश्चात् सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! जैसे पद्मनाभ राजा के पूर्व संगतिक देव ने द्रौपदी देवी का संहरण किया, उसी प्रकार क्या मैं द्रौपदी देवी को धातकी खंड द्वीप के भरत क्षेत्र से यावत् हस्तिनापुर ले आऊँ ? अथवा पद्मनाभ राजा को उसके नगर, सैन्य और वाहनों के साथ लवणसमुद्र में फेंक दूँ ?'

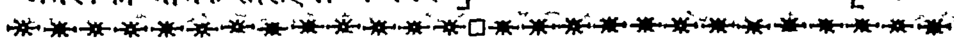
तए णं कण्हे वासुदेवे सुत्थियं देवं एवं वयासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुमं णं देवाणुप्पिया लवणसमुद्दे अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं मग्गं वियराहि, सयमेव णं अहं दोवईए देवीए कूवं गच्छामि ।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रिय ! तुम यावत सहरण मत करो । देवानुप्रिय ! तुम तो पाँच पाँण्डवों सहित छठे हमारे छह रथों को लवणसमुद्र में जाने का मार्ग दे दो । मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को वापिस लाने के लिए जाऊँगा ।'

तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं होउ ।' पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरइ ।

तब सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'ऐसा ही हो—तथास्तु ।' ऐसा कह कर उसने पाँच पाण्डवों सहित छठे वासुदेव के छह रथों को लवणसमुद्र में मार्ग प्रदान किया ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणी सेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ, वीईवइत्ता जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव अमरकंकाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेई, ठवित्ता दारुयं सारहिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

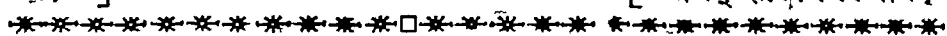


तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने चतुरंगिणी सेना को विदा करके पाँच पाण्डवों के साथ छठे आप स्वयं छह रथों में बैठ कर, लवणसमुद्र के मध्यभाग में होकर जाने लगे। जाते-जाते जहाँ अमरकंका राजधानी थी और जहाँ अमरकंका का प्रधान उद्यान था, वहाँ पहुँचे। पहुँचने के बाद रथ रोका और दारुक नामक सारथी को बुलाया। उसे बुलाकर कहा:-

'गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! अमरकंकारायहाणिं अणुपविसाहि, अणुपविसित्ता पउमणाभस्स रण्णो वामेणं पाएणं पायपीढं अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामेहि; तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु आसुरुत्ते रुट्ठे कुद्धे, कुविए, चंडिक्किए एवं वदह-'हं भो पउमणाहा ! अपत्थिय-पत्थिया ! दुरंतपंतलक्खणा ! हीणपुण्ण चाउद्दसा ! सिरिहिरिधीपरि-वज्जिया ! अज्ज ण भवसि, किं णं तुमं ण याणासि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वं आणमाणे ? तं एयमवि गए पच्चप्पिणाहि णं तुमं दोवइं देविं कण्हस्स, वासुदेवस्स, अहवा णं जुद्धसज्जे णिग्ग-च्छाहि, एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं अप्पछट्ठे दोवई देवीए कूवं हव्वमागए।'

'हे देवानुप्रिय ! तू जा और अमरकंका राजधानी में प्रवेश कर। प्रवेश करके पद्मनाभ राजा के समीप जाकर उसके पादपीठ को अपने बायें पैर से आक्रान्त करके, भाले की नौंक के द्वारा लेख देना। फिर कपाल पर तीन बल वाली भ्रकुटि चढ़ा कर, आँखें लाल करके, रुष्ट होकर, क्रोध करके, कुपित होकर और प्रचण्ड होकर ऐसा कहना -'अरे पद्मनाभ ! मौत की कामना करने वाले ! अनन्त कुलक्षणों वाले ! पुण्यहीन ! चतुर्दशी के दिन जन्मे हुए (अथवा हीनपुण्य वाली चतुर्दशी अर्थात कृष्ण पक्ष की चौदस को जन्मे हुए।) श्री, लज्जा और बुद्धि से हीन ! आज तू नहीं बचेगा। क्या तू नहीं जानता कि तू कृष्ण वासुदेव की भगिनी द्रौपदी देवी को यहाँ ले आया है ? खैर, जो हुआ सो हुआ, अब भी तू द्रौपदी देवी कृष्ण वासुदेव को लौटा दे अथवा युद्ध के लिए तैयार होकर बाहर निकल। वह कृष्ण वासुदेव पाँच पाण्डवों के साथ छठे आप, द्रौपदी देवी को वापिस छीनने के लिए शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचे हैं।'

तए णं से दारुए सारही कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे जाव पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता अमरकंकारायहाणिं अणुपविसइ,



अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी–'एस णं सामी ! मम विणयपडिवत्ती, इमा अन्ना मम सामियस्स समुहाणत्ति' त्ति कट्टु आसुरत्ते वामपाएणं पायपीढं अणुक्कमति, अणुक्कमित्ता कोंतग्गेणं लेहं पणामइ, पणामित्ता जाव कूवं हव्वमागए ।

तत्पश्चात् वह दारुक सारथी कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर हर्षित और संतुष्ट हुआ। यावत उसने यह आदेश अंगीकार किया। अंगीकार करके अमरकका राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश करके पद्मनाभ के पास गया। वहाँ जाकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् अभिनन्दन किया और कहा–'स्वामिन् ! यह मेरी अपनी विनयप्रतिपत्ति (शिष्टाचार) है। मेरे स्वामी के मुख से कही हुई आज्ञा दूसरी है। वह यह है' इस प्रकार कह कर उसने नेत्र लाल करके और क्रुद्ध होकर अपने वाम पैर से उसके पादपीठ को आक्रान्त किया–दबाया। भाले की नोक से लेख दिया। फिर कृष्ण वासुदेव का समस्त आदेश कह सुनाया, यावत् वे स्वयं द्रौपदी देवी को वापिस लेने के लिए आ पहुँचे हैं।

तए णं से पउमणाभे दारुएणं सारहिणा एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते तिवलिं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी–'णो अप्पणामि णं अहं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं, एस णं अहं सयमेव जुज्झसज्जो निग्गच्छामि' त्ति कट्टु दारुयं सारहिं एवं वयासी–'केवलं भो ! रायसत्थेसु दूए अवज्झे' त्ति कट्टु असक्कारिय असम्माणिय अवद्दारेणं णिच्छुभावेइ ।

तत्पश्चात् पद्मनाभ ने दारुक सारथी के इस प्रकार कहने पर नेत्र रक्त करके और क्रोध से कपाल पर तीन सल वाली भ्रकुटि चढ़ा कर कहा–'हे देवानुप्रिय ! मैं कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी वापिस नहीं दूंगा। मैं स्वयं ही युद्ध करने के लिए सज्ज होकर निकलता हूँ।' इस प्रकार कह कर फिर दारुक सारथी से कहा–'हे दूत ! राजनीति में दूत अवध्य है' (केवल इसी कारण मैं तुझे नहीं मारता)।' इस प्रकार कह कर उसका सत्कार-सन्मान न करके-अपमान करके, पिछले द्वार से निकाल दिया।

तए णं से दारुए सारही पउमनाभेणं असक्कारिय जाव निच्छूढे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल

कण्हं जाव एवं वयासी–'एवं खलु अहं सामी ! तुब्भं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ ।'

तत्पश्चात् वह दारुक सारथी, पद्मनाभ राजा के द्वारा असत्कारित हुआ, यावत् निकाल दिया गया, तब कृष्ण वासुदेव के पास पहुँचा। पहुँच कर दोनों हाथ जोड़ कर कृष्ण वासुदेव से यावत् बोला 'इस प्रकार हे स्वामिन्! मैं आपके वचन (कहने) से राजा पद्मनाभ के पास गया था, इत्यादि पूर्ववत्; यावत् उसने मुझे पिछले द्वार से निकाल दिया है।

तए णं से पउमणाभे बलवाउयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह।' तयाणंतरं च णं छेयायरियउवदेसमइविकप्पणाविगप्पेहिं जाव उवणेइ। तए णं से पउमनाहे सन्नद्ध जाव अभिसेयं दुरूहइ, दुरूहित्ता हयगय जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

कृष्ण वासुदेव के दूत को निकलवा देने के पश्चात इधर पद्मनाभ राजा ने सेनापति को बुलाया और उससे कहा–'देवानुप्रिय! अभिषेक किये हुए हस्तीरत्न को तैयार करके लाओ।' यह आदेश सुनकर कुशल आचार्य के उपदेश से उत्पन्न हुई बुद्धि की कल्पना के विकल्पो (प्रकारो) से निपुण पुरुषों (महावतो) ने अभिषेक किया हुआ हस्ती उपस्थित किया। तत्पश्चात पद्मनाभ राजा कवच आदि धारण करके सज्जित हुआ, यावत् अभिषेक किये हाथी पर सवार हुआ। सवार होकर अश्वों, हाथियों आदि की चतुरंगिणी सेना के साथ, वहाँ जाने को उद्यत हुआ जहाँ वासुदेव कृष्ण थे।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमनाभं रायाणं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी–'हं भो दारगा! किं णं तुब्भे पउमनाभेणं सद्धिं जुज्झिहिह उदाहु पेच्छिहिह?' तए णं पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–'अम्हे णं सामी! जुज्झामो, तुब्भे पेच्छह।'

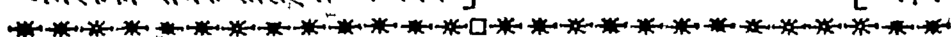
तए णं पंच पंडवे सन्नद्ध जाव पहरणा रहे दुरूहंति, दुरूहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी–'अम्हे पउमणाभे वा राय' त्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

नामक धनुष हाथ मे लिया। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। प्रत्यंचा चढ़ा कर टंकार की। तब पद्मनाभ की सेना का दूसरा तिहाई भाग उस धनुष की टंकार से हत-मथित हो गया यावत् इधर-उधर भाग छूटा। तब पद्मनाभ की सेना का एक तिहाई भाग ही शेष रह गया। अतएव वह सामर्थ्यहीन, बलहीन, वीर्यहीन और पुरुषार्थ-पराक्रम से हीन हो गया। वह कृष्ण के प्रहार को सहन करने या निवारण करने में असमर्थ होकर शीघ्रता पूर्वक, त्वरा के साथ अमरकंका राजधानी में जा पहुँचा। उसने अमरकंका राजधानी मे प्रवेश किया और द्वार बंद कर लिये। द्वार बंद करके वह नगररोध के लिए सज्ज होकर स्थित हो गया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता एगं महं णरसीहरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता महया महया सद्देणं पाददद्दरियं करेइ। तए णं से कण्हेणं वासुदेवेणं महया महया सद्देणं पाददद्दरएणं कएणं समाणेणं अमरकंका रायहाणी संभग्गपागारगोपुराट्टालयचरियतोरणपल्हत्थियपवरभवणसिरिघरा सरस्सरस्स धरणियले सन्निवइया।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां अमरकंका राजधानी थी, वहां गये। वहां जाकर रथ ठहराया। रथ से नीचे उतरे। वैक्रियसमुद्घात से समुद्घात किया। समुद्घात करके एक महान् नरसिंह का रूप धारण किया। फिर जोर-जोर के शब्द करके पैरों का आस्फालन किया-पैर पछाड़े। कृष्ण वासुदेव के जोर-जोर की गर्जना के साथ पैर पछाड़ने से अमरकंका राजधानी के प्राकार (परकोटा) गोपुर (फाटक) अट्टालिका (झरोखे), चारिय (परकोटा और नगर के बीच का मार्ग) और तोरण (द्वार काऊपरी भाग) गिर गये और श्रेष्ठ महल तथा श्रीगृह (भंडार) चारों ओर से तहसनहस होकर सरसराट् करके धरती पर आ पड़े।

तए णं से पउमणाभे राया अमरकंकं रायहाणिं संभग्ग जाव पासित्ता भीए दोवइं देविं सरणं उवेइ। तए णं सा दोवई देवी पउमनाभं रायं एवं वयासी-'किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! न जाणसि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स विप्पियं करेमाणे ममं इह हव्वमाणेसि? तं एवमवि गए गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! ण्हाए उल्लपडसाडए अवचूलगवत्थ-



णियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय मम पुरतो काउं कण्हं वासुदेवं करयल पायपडिए सरणं उवेहि, पणिवइय-वच्छला णं देवाणुप्पिया ! उत्तमपुरिसा ।

तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा अमरकंका राजधानी को बुरी तरह भग्न हुई यावत् जान कर, भयभीत होकर द्रौपदी देवी की शरण में गया । तब द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ राजा से कहा- देवानुप्रिय ! क्या तुम नहीं जानते थे कि पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव का विप्रिय करते हुए तुम मुझे यहाँ लाये हो ? जो हुआ सो हुआ । अब हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ । स्नान करो । पहनने और ओढ़ने के वस्त्र गीले (पानी नितरते हुए) धारण करो । पहने हुए वस्त्र का छोर नीचा रक्खो अर्थात् कांछ खुली रक्खो । अन्तःपुर की रानियों आदि परिवार को साथ में ले लो । प्रधान और श्रेष्ठ रत्न भेट के लिए लो । मुझे आगे कर लो । इस प्रकार जाकर कृष्ण वासुदेव को दोनो हाथ जोड़ कर उनके पैरों में गिरो और उनकी शरण में जाओ । देवानुप्रिय ! उत्तम पुरुष प्रणिपतितवत्सल होते हैं-अर्थात् जो उनके सामने नम्र होते हैं, उन पर दया और प्रसन्नता प्रकट करते हैं । (ऐसा करने से ही तुम्हारी नगरी आदि की रक्षा होगी । अन्यथा नहीं) ।

तए णं से पउमणाभे दोवईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता ण्हाए जाव सरणं उवेइ, उवइत्ता करयल एवं वयासी—'दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जाव परक्कमे, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! जाव खमंतु णं जाव णाहं भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए' त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ ।

उस समय पद्मनाभ ने द्रौपदी देवी के इस अर्थ को अंगीकार किया । अंगीकार करके द्रौपदी देवी के कथनानुसार स्नान आदि करके कृष्ण वासुदेव की शरण में गया । वहाँ जाकर दोनो हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगा-'मैं ने आप देवानुप्रिय की ऋद्धि देख ली, पराक्रम देख लिया । हे देवानुप्रिय ! मैं खमाता हूँ, आप यावत् क्षमा करें । यावत् मैं पुनः पुनः ऐसा नहीं करूँगा ।' इस प्रकार कह कर उसने हाथ जोड़े । पैरों मे गिरा । उसने अपने हाथों द्रौपदी देवी सौंपी ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी—'हं भो पउमणाभा ! अप्पत्थियपत्थिया ! किण्णं तुमं ण जाणसि मम भगिणिं

दोवइं देविं इह हव्वमाणमाणे ? तं एवमवि गए णत्थि ते ममाहिंतो इयाणिं भयमत्थि' त्ति कट्टु पउमणाभं पडिविसज्जेइ पडिविसज्जित्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता रहं दुरूहेइ, दुरूहित्ता जेणेव पंच पंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचण्हं पंडवाणं दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा-'अरे पद्मनाभ ! अप्रार्थित (मृत्यु) की प्रार्थना करने वाले ! क्या तू नहीं जानता कि तू मेरी भगिनी द्रौपदी देवी को जल्दी से यहां ले आया है ? तो ऐसा होने पर भी, अब ऐसा नहीं कि तुझे मुझसे भय हो ।' इस प्रकार कह कर पद्मनाभ को छुट्टी दी । उसे छुटकारा देकर द्रौपदी देवी को ग्रहण किया और रथ पर आरूढ़ हुए । रथ पर आरूढ़ होकर पांच पाण्डवों के समीप आये । वहां आकर द्रौपदी देवी अपने हाथ से पांचों पाण्डवों को सौंप दी ।

तए णं से कण्हे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवण-समुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् पांच पाण्डवो के साथ, छठे आप स्वयं कृष्ण वासुदेव छह रथो मे बैठ कर, लवणसमुद्र के बीचों बीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था और जिधर भारतवर्ष था, उधर जाने को उद्यत हुए ।

ते णं काले णं ते णं समए णं धायइसंडे दीवे पुरच्छिमद्धे भारहे वासे चंपा णामं णयरी होत्था । पुण्णभद्दे चेइए । तत्थ णं चंपाए णय-रीए कविले णामं वासुदेवे राया होत्था, महया हिमवंत, वण्णओ ।

उस काल और उस समय में, धात की खंड द्वीप में, पूर्वार्ध भाग में, चम्पा नामक नगरी थी । पूर्णभद्र नामक चैत्य था । उस चम्पा नगरी में कपिल नामक वासुदेव राजा था । वह महान् हिमवान् पर्वत के समान था । यहां राजा का वर्णन कह लेना चाहिए ।

ते णं काले णं ते णं समए णं मुणिसुव्वए अरहा चंपाए पुण्ण-भद्दे समोसढे । कपिले वासुदेवे धम्मं सुणेइ । तए णं से कविले वासु-देवे मुणिसुव्वयस्स अरहओ धम्मं सुणमाणे कण्हस्स वासुदेवस्स

संखसद्दं सुणेइ। तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—'किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे, जस्स णं अयं संखसद्दे ममं पिव मुहवायपूरिए वियंभइ ?' कविले वासुदेवे सद्दाइं सुणेइ।

उस काल और उस समय में मुनिसुव्रत नामक अरिहन्त चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य मे पधारे। कपिल वासुदेव ने उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया। उसी समय मुनिसुव्रत अरिहन्त से धर्मश्रवण करते-करते कपिल वासुदेव ने कृष्ण वासुदेव के पांचजन्य शंख का शब्द सुना। तब कपिल वासुदेव के चित्त मे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'क्या धातकीखंड द्वीप के भारत वर्ष में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है ? जिसके शंख का शब्द ऐसा फैल रहा है, जैसे मेरे मुख की वायु से पूरित हुआ हो—मैं ने बजाया हो।' कपिल वासुदेव ने शंख का ऐसा शब्द सुना।

मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—'से णूणं ते कविला ! वासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं णिसामेमाणस्स संखसद्दं आकण्णित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पण्णे—'कि मण्णे जाव वियंभइ, से नूणं कविला ! वासुदेवा ! अयमट्ठे समट्ठे ?' 'हंता अत्थि।'

मुनिसुव्रत अरिहंत ने कपिल वासुदेव से कहा—'हे कपिल वासुदेव ! मेरे पास धर्म-श्रवण करते हुए तुम्हें यह विचार आया है कि—क्या इस भरतक्षेत्र में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है, जिसके शंख का यह शब्द फैल रहा है, आदि; तो हे कपिल वासुदेव ! मेरा यह अर्थ (कथन) सत्य है ?' (कपिल वासुदेव ने उत्तर दिया—) 'हाँ, सत्य है।'

'नो खलु कपिला ! वासुदेवा ! एवं भूयं वा, भवइ वा, भविस्सइ वा जण्णं एगे खेत्ते, एगे जुगे, एगे समए दुवे अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जिंति वा उप्पज्जिस्संति वा। एवं खलु वासुदेवा ! जंबूदीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउरनयराओ पंडुस्स रण्णो सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी तव पउमणाभस्स रण्णो पुव्वसंगतिएणं देवेणं अमरकंकाणयरिं साहरिया। तए णं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे

छहिं रहेहिं अमरकंकं रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए। तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स पउमनाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं संगामेमाणस्स अयं संखसद्दे तव मुहवायपूरिते इव इट्ठे कंते इहेव वियंभइ।'

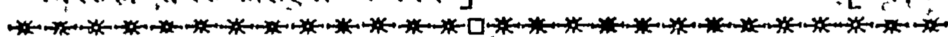
मुनिसुव्रत अरिहंत ने पुनः कहा-'कपिल वासुदेव! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं कि एक क्षेत्र में, एक ही युग में और एक ही समय में दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्त्ती, दो बलदेव अथवा दो वासुदेव उत्पन्न हुए हों, उत्पन्न होते हो या उत्पन्न होंगे। इस प्रकार हे वासुदेव! जम्बू द्वीप नामक द्वीप से, भरतक्षेत्र से, हस्तिनापुर नगर से पाण्डु राजा की पुत्र-वधू और पाँच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी देवी को तुम्हारे पद्मनाभ राजा का पहले का साथी देव हरण करके ले आया था। तब कृष्ण वासुदेव पाँच पाण्डवों समेत आप स्वयं छठे द्रौपदी देवी को वापिस छीनने के लिए शीघ्र आये हैं। वह पद्मनाभ राजा के साथ सग्राम कर रहे हैं। अतः कृष्ण वासुदेव के शंख का यह शब्द है, जो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे मुख की वायु से पूरित किया गया हो और जो इष्ट है, कान्त है और यहाँ तुम्हें सुनाई दिया है।

तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-'गच्छामि णं अहं भंते! कण्हं वासुदेवं उत्तमपुरिसं पासामि।

तए णं मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी-'नो खलु देवाणुप्पिया! एवं भूयं वा, भवइ वा, भविस्सइ वा जण्णं अरिहंता वा अरिहंतं पासंति, चक्कवट्टी वा चक्कवट्टिं पासंति, बलदेवा वा बलदेवं पासंति, वासुदेवा वा वासुदेवं पासंति। तह वि य णं तुमं कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासिहिसि।'

तत्पश्चात् कपिल वासदेव ने मुनिसुव्रत तीर्थंकर को वन्दना की, नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार करके कहा-'भगवन्! मैं जाऊँ और पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव को देखूँ-उनके दर्शन करूँ।'

तब मुनिसुव्रत अरिहन्त ने कपिल वासुदेव से कहा-'हे देवानुप्रिय! ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं कि एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को देखे, एक चक्रवर्त्ती दूसरे चक्रवर्त्ती को देखें, एक बलदेव दूसरे बलदेव को देखें



और एक वासुदेव दूसरे वासुदेव को देखें। तब भी तुम लवणसमुद्र के मध्य भाग में होकर जाते हुए कृष्ण वासुदेव के श्वेत एवं पीत ध्वजा के अग्रभाग देख सकोगे।'

तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता हत्थिखंधं दुरूहइ, दुरूहित्ता सिग्घं सिग्घं जेणेव वेलाउले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणस्स सेयापीयाहिं धयग्गाइं पासइ, पासित्ता एवं वयइ—'एस णं मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कण्हे वासुदेवे लवण-समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ' त्ति कट्टु पंचयन्नं संखं परामुसइ मुह-वायपूरियं करेइ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसद्दं आय-न्नेइ, आयन्नित्ता पंचयन्नं जाव पूरियं करेइ। तए णं दो वि वासुदेवा संखसद्दसामायारिं करेंति।

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत तीर्थंकर को वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वह हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर जल्दी-जल्दी जहाँ वेलाकूल (लवण समुद्र का किनारा) था, वहाँ आये। वहाँ आकर लवणसमुद्र के मध्य में होकर जाते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत पीत ध्वजा का अग्रभाग देखा। देख कर वह कहने लगे—'यह मेरे समान पुरुष है, यह पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव हैं जो लवणसमुद्र के मध्य में होकर जा रहे हैं।' ऐसा कह कर कपिल वासुदेव ने अपना पाञ्चजन्य शंख हाथ में लिया और उसे अपने मुख की वायु से पूरित किया—फूँका।

तब कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंख का शब्द सुना। सुन कर उन्होंने भी अपने पाञ्चजन्य को यावत् मुख की वायु से पूरित किया। उस समय दोनों वासुदेवों ने शंख शब्द की समाचारी की, अर्थात् शंख के शब्द द्वारा मिलाप किया।

तए णं से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अमरकंकं रायहाणिं संभग्गतोरणं जाव पासइ, पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी—'किण्णं देवाणुप्पिया! एसा अमरकंका राय-हाणी संभग्ग जाव सन्निवइया?'

तए णं से पउमनाभे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! जंबुदीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुब्भे परिभूय अमरकंका जाव सन्निवाइया।'

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव जहाँ अमरकंका राजधानी थी, वहाँ आये। आकर उन्होने देखा कि अमरकंका के तोरण आदि टूट-फूट गये हैं। यह देख कर उन्होने पद्मनाभ से कहा—'देवानुप्रिय! यह अमरकंका भग्न तोरण आदि वाला होकर यावत् क्यों पड़ गई है?'

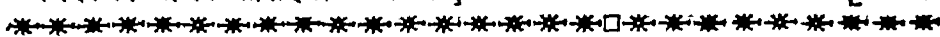
तब पद्मनाभ ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप से, भारत वर्ष से, यहाँ जल्दी से आकर कृष्ण वासुदेव ने, आपका पराभव करके आपका अपमान करके, अमरकका को यावत् गिरा दिया है—अर्थात् इस भग्नावस्था मे पहुँचा दिया है।'

तए णं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी—'हं भो पउमणाभा! अपत्थियपत्थिया! किं णं तुमं न जाणसि मम सरिसपुरिसस्स कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे?' आसुरुत्ते जाव पउमणाहं णिव्विसयं आणवेइ, पउमणाहस्स पुत्तं अमरकंकारायहाणीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, जाव पडिगए।

तत्पश्चात् वह कपिल वासदेव, पद्मनाभ से यह उत्तर सुनकर पद्मनाभ से बोले—'अरे पद्मनाभ! अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले! क्या तू नहीं जानता कि तू ने मेरे समान पुरुष कृष्ण वासुदेव का अनिष्ट किया है? इस प्रकार कह कर वह क्रुद्ध हुए, यावत पद्मनाभ को देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी। पद्मनाभ के पुत्र को अमरकंका राजधानी में महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। यावत् कपिल वासुदेव वापिस चले गये।

तए णं से कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीइवयइ, गंगं उवागए, ते पंच पंडवे एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! मह न , उत्तरह जाव ताव अहं सुट्ठियं देवं लवणाहिवइं पासामि।'

तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए णावाए



मग्गणगवेसणं करेंति, करित्ता एगट्ठियाए नावाए गंगामहानदिं उत्तरंति, उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं वयंति–'पहू णं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगामहाणदिं बाहाहिं उत्तरित्तए ? उदाहु णो पभू उत्तरित्तए ?' त्ति कट्टु एगट्ठियाओ नावाओ णूमेंति, णूमित्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठंति ।

इधर वासुदेव लवणसमुद्र के मध्य भाग से जाते हुए गंगा नदी के पास आये । तब उन्होने पांच पाण्डवों से कहा–'देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ । जब तक गंगा महानदी को उतरो, तब तक मैं लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिल लेता हूँ।'

तब वे पाँचों पाण्डव, कृष्ण वासुदेव के ऐसा कहने पर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये । आकर एक नौका की खोज की । खोज कर उस नौका से गंगा महानदी उतरे । उतर कर परस्पर इस प्रकार कहने लगे–'देवानुप्रिय ! कृष्ण वासुदेव गंगा महानदी को अपनी भुजाओं से पार करने मे समर्थ हैं अथवा समर्थ नही हैं ? (चलो, इस बात की परीक्षा करे) ऐसा कह कर उन्होंने वह नौका छिपा दी । छिपा कर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते हुए स्थित रहे ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं पासइ, पासित्ता जेणेव गंगा महाणदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ, करित्ता एगट्ठियं णावं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेण्हइ, एगाए बाहाए गंगं महाणदिं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिन्नं उत्तरिउं पयत्ते यावि होत्था, तए णं से कण्हे वासुदेवे गंगामहाणईए बहुमज्झदेसभागं संपत्ते समाणे संते तंते परितंते बद्धसेए जाए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव, लवणाधिपति सुस्थित देव से मिले । मिल कर जहाँ गगा महानदी थी, वहाँ आये । वहाँ आकर उन्होंने सब तरफ नौका की खोज की पर खोज करने पर भी नौका दिखाई नही दी । तब उन्होंने अपनी एक भुजा से अश्व और सारथी सहित रथ ग्रहण किया और दूसरी भुजा से बासठ योजन और आधा योजन अर्थात् साढे बासठ योसन विस्तार वाली गंगा महानदी को उतरने के लिए उद्यत हुए । तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जब गंगा महानदी के बीचों बीच पहुँचे तो थक गये, नौका की इच्छा वाले हुए और बहुत खेदयुक्त हो गये । उन्हें पसीना आ गया । इस प्रकार वे थक गये ।

तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–'अहो णं पंच पंडवा महाबलवग्गा, जेहिं गंगा महाणदी बासट्ठि जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिन्ना बाहाहिं उत्तिण्णा। इच्छंतएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमणाभे राया जाव णो पडिसेहिए।'

तए णं गंगा देवी कण्हस्स इमं एयारूवं अब्भत्थियं जाव जाणित्ता थाहं वियरइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे मुहुत्तंतरं समासासइ, समासासित्ता गंगामहाणदिं बासट्ठिं जाव उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी–अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया! महाबलवगा, जेणं तुब्भेहिं गंगा महाणदी बासट्ठि जाव उत्तिण्णा, इच्छंतएहि तुब्भेहिं पउम जाव णो पडिसेहिए।

उस समय कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार का यह विचार आया कि-'अहा, पाँच पाण्डव बड़े बलवान् हैं, जिन्होंने साढ़े बासठ योजन विस्तार (पाट) वाली गगा महनदी अपनी बाहुओं से पार करली। पाँच पाण्डवो ने इच्छा करके अर्थात् चाह कर या जान-बूझ कर पद्मनाभ राजा को पराजित नहीं किया।'

तब गंगा देवी ने कृष्ण वासुदेव का ऐसा अध्यवसाय यावत जानकर थाह दे दी-जल का थल कर दिया। उस समय कृष्ण वासुव ने थोड़ी देर विश्राम दे लिया। विश्राम लेने के बाद साढ़े बासठ योजन विस्तृत गंगा महानदी पार की। पार करके पाँच पाण्डवो के पास पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पाँच पाण्डवों से बोले-'अहों देवानुप्रियो! तुम लोग महाबलवान् हो, क्योकि तुमने साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी यावत बाहुबल से पार की है। तुम लोगों ने चाह कर पद्मनाभ को यावत पराजित नहीं किया!'

तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–'एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणदी तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए मग्गणगवेसणं तं चेव जाव णूमेमो, तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्ठामो।'

तब कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर पाँच पाण्डवों ने कृष्ण वासुदेव से कहा–'देवानुप्रिय ! आपके द्वारा विसर्जित होकर अर्थात् आज्ञा पाकर हम लोग जहाँ गगा महानदी थी, वहां आये। वहां आकर हमने नौका की खोज की। यावत् उस नौका से पार उतर कर आपके बल की परीक्षा करने के लिए हमने नौका छिपा दी। फिर आपकी प्रतीक्षा करते हुए हम यहाँ ठहरे हैं।'

तए णं कण्हे वासुदेवे तेसिं पंचण्हं पंडवाणं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरत्ते जाव तिवलियं एवं वयासी–'अहो णं जया मए लवणसमुद्दं दुवे जोयणसयसहस्सा विच्छिन्नं वीईवइत्ता पउमणाभं हयमहिय जाव पडिसेहित्ता अमरकंका संभग्ग दोवई साहत्थि उवणीया, तया णं तुब्भेहिं मम माहप्पं ण विण्णायं, इयाणिं जाणिस्सह !' त्ति कट्टु लोहदंडं परामुसइ, पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ, आणवित्ता तत्थ णं रहमद्दणे नामं कोड्डे णिविट्ठे।

पाँच पाण्डवों का यह अर्थ (उत्तर) सुन कर और समझ कर कृष्ण वासुदेव कुपित हो उठे। उनकी तीन बल वाली भ्रकुटि ललाट पर चढ़ गई। वह बोले–'ओह, जब मैं ने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्र को पार करके पद्मनाभ को हत और मथित करके, यावत् पराजित करके अमरकंका राजधानी को तहसनहस किया और अपने हाथों द्रौपदी लाकर तुम्हें सौंपी, तब तुम्हे मेरा माहात्म्य नहीं मालूम हुआ ! अब तुम मेरा माहात्म्य जान लोगे ! इस प्रकार कह कर उन्होंने हाथ में एक लोहदण्ड लिया और पाण्डवों के रथों को चूर–चूर कर दिया। रथ चूर–चूर करके उन्हे देशनिर्वासन की आज्ञा दी। फिर उस स्थान पर रथमर्दन नाम कोट स्थापित किया–रथमर्दन तीर्थ की स्थापना की।

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धिं अभिसमन्नागए यावि होत्था। तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं णयरिं अणुपविसइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां अपनी सेना का पड़ाव (छावनी) था, वहां आये। आकर अपनी सेना के साथ मिल गये। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां द्वारिका नगरी थी, वहां आये। आकर द्वारिका नगरी मे प्रविष्ट हुए।

तए णं ते पंच पंडवा जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव उवागच्छंति,

तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'अहो णं पंच पंडवा महाबलवग्गा, जेहिं गंगा महाणदी बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिन्ना बाहाहिं उत्तिण्णा। इच्छंतएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमणाभे राया जाव णो पडिसेहिए।'

तए णं गंगा देवी कण्हस्स इमं एयारूवं अब्भत्थियं जाव जाणित्ता थाहं वियरइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे मुहुत्तंतरं समासासइ, समासासित्ता गंगामहाणदिं बासट्ठिं जाव उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी—अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया! महाबलवगा, जेणं तुब्भेहिं गंगा महाणदी बासट्ठिं जाव उत्तिण्णा, इच्छंतएहिं तुब्भेहिं पउम जाव णो पडिसेहिए।

उस समय कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार का यह विचार आया कि-'अहा, पाँच पाण्डव बड़े बलवान् हैं, जिन्होंने साढ़े बासठ योजन विस्तार (पाट) वाली गगा महनदी अपनी बाहुओं से पार करली! पाँच पाण्डवों ने इच्छा करके अर्थात् चाह कर या जान-बूझ कर पद्मनाभ राजा को पराजित नहीं किया।'

तब गंगा देवी ने कृष्ण वासुदेव का ऐसा अध्यवसाय यावत् जानकर थाह दे दी-जल का थल कर दिया। उस समय कृष्ण वासुव ने थोड़ी देर विश्राम दे लिया। विश्राम लेने के बाद साढ़े बासठ योजन विस्तृत गंगा महानदी पार की। पार करके पाँच पाण्डवों के पास पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पाँच पाण्डवों से बोले-'अहो देवानुप्रियो! तुम लोग महाबलवान् हो, क्योंकि तुमने साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी यावत् बाहुबल से पार की है। तुम लोगों ने चाह कर पद्मनाभ को यावत् पराजित नहीं किया!'

तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणदी तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए मग्गणगवेसणं तं चेव जाव णूमेमो, तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्ठामो।'

तब कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर पाँच पाण्डवों ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'देवानुप्रिय! आपके द्वारा विसर्जित होकर अर्थात् आज्ञा पाकर हम लोग जहाँ गंगा महानदी थी, वहां आये। वहां आकर हमने नौका की खोज की। यावत् उस नौका से पार उतर कर आपके बल की परीक्षा करने के लिए हमने नौका छिपा दी। फिर आपकी प्रतीक्षा करते हुए हम यहाँ ठहरे हैं।'

तए णं कण्हे वासुदेवे तेसिं पंचण्हं पंडवाणं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरत्ते जाव तिवलियं एवं वयासी—'अहो णं जया मए लवणसमुद्दं दुवे जोयणसयसहस्सा विच्छिन्नं वीईवइत्ता पउमणाभं हयमहिय जाव पडिसेहित्ता अमरकंका संभग्ग दोवई साहत्थि उवणीया, तया णं तुब्भेहिं मम माहप्पं ण विण्णायं इयाणिं जाणिस्सह!' त्ति कट्टु लोहदंडं परामुसइ, पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ, आणवित्ता तत्थ णं रहमद्दणे नामं कोड्डे णिविट्ठे।

पाँच पाण्डवो का यह अर्थ (उत्तर) सुन कर और समझ कर कृष्ण वासुदेव कुपित हो उठे। उनकी तीन बल वाली भ्रकुटि ललाट पर चढ़ गई। वह बोले—'ओह, जब मै ने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्र को पार करके पद्मनाभ को हत और मथित करके, यावत् पराजित करके अमरकंका राजधानी को तहसनहस किया और अपने हाथों द्रौपदी लाकर तुम्हें सौंपी, तब तुम्हे मेरा माहात्म्य नहीं मालूम हुआ! अब तुम मेरा माहात्म्य जान लोगे! इस प्रकार कह कर उन्होने हाथ में एक लोहदण्ड लिया और पाण्डवों के रथों को चूर-चूर कर दिया। रथ चूर-चूर करके उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दी। फिर उस स्थान पर रथमर्दन नाम कोट स्थापित किया—रथमर्दन तीर्थ की स्थापना की।

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धिं अभिसमन्नागए यावि होत्था। तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं णयरिं अणुपविसइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां अपनी सेना का पड़ाव (छावनी) था, वहां आये। आकर अपनी सेना के साथ मिल गये। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहां द्वारिका नगरी थी, वहां आये। आकर द्वारिका नगरी में प्रविष्ट हुए।

तए णं ते पंच पंडवा जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव उवागच्छंति,

तब कृष्ण वासुदेव ने कुन्ती देवी से कहा-'पितृभगिनी ! उत्तम पुरुष वासुदेव, बलदेव और चक्रवर्ती अपूतिवचन होते हैं-उनके वचन मिथ्या नहीं होते। (वे कह कर बदलते नहीं हैं, अतः मैं देशनिर्वासन की आज्ञा वापिस लेने मे असमर्थ हूं)। अतएव हे देवानुप्रिये ! पाँचों पाण्डव दक्षिण दिशा के वेलातट (समुद्र किनारे) जाएँ और वहाँ पाण्डु-मथुरा नामक नयी नगरी बसावें और मेरे अदृष्ट सेवक होकर रहें अर्थात् मेरे सामने न आवें।' इस प्रकार कह कर उन्होंने कुन्ती देवी का सत्कार-सन्मान किया, यावत् उन्हें विदा दी।

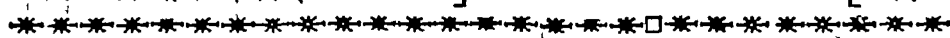
तए णं सा कोंती देवी जाव पंडुस्स एयमट्ठं णिवेदेइ। तए णं पंडू राया पंच पंडवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'गच्छह णं तुब्भे पुत्ता ! दाहिणिल्लं वेयालिं, तत्थ णं तुब्भे पंडुमहुरं णिवेसेह।'

तए णं पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो जाव तह त्ति पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सबलवाहणा हयगय हत्थिणाउराओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पंडुमहुरं नगरिं निवेसइ, निवेसित्ता तत्थ णं ते विपुलभोगसमितिसमण्णागया यावि होत्था।

तत्पश्चात् कुन्ती देवी ने द्वारवती नगरी से आकर यावत् पाण्डु राजा को यह अर्थ (वृत्तान्त) निवेदन किया। तब पाण्डु राजा ने पाँचो पाण्डवों को बुला कर कहा-'हे पुत्रो ! तुम दक्षिणी वेलातट (समुद्र के किनारे) जाओ और वहाँ पाण्डुमथुरा नगरी बसा कर रहो।'

तब पाँचो पाण्डवों ने पाण्डु राजा की बात यावत् 'तथा-अच्छी बात है' कह कर स्वीकार की। स्वीकार करके बल और वाहनो के साथ तथा घोड़े और हाथी साथ लेकर हस्तिनापुर से बाहर निकले। निकल कर दक्षिणी वेलातट पर पहुँचे। पाण्डुमथुरा नगरी को स्थापना की। नगरी की स्थापना करके वे वहाँ विपुल भोगो के समूह से युक्त हो गये-सुखपूर्वक निवास करने लगे।

तए णं सा दोवई देवी अन्नया कयाइ आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था। तए णं दोवई देवी णवण्हं मासाणं जाव सुरूवं दारगं पयाया सूमालं, णिव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूवं जम्हा णं अम्हं एस दारए पंचण्हं पंडवाणं पुत्ते दोवईए देवीए अत्तए, तं होउ अम्हं इमस्स दार-



गस्स णामधेज्जं पंडुसेणे। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्जं करेइ पंडुसेण त्ति।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय द्रौपदी देवी गर्भवती हुई। तत्पश्चात् द्रौपदी देवी ने नौ मास यावत् पूर्ण होने पर सुन्दर रूप वाले और सुकुमार बालक को जन्म दिया। बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालक के माता-पिता को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि-क्योंकि हमारा यह बालक पाँच पाण्डवों का पुत्र है और द्रौपदी देवी का आत्मज है, अतः इस बालक का नाम 'पाण्डुसेन' होना चाहिए। तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने उसका 'पाण्डुसेन' नाम रक्खा।

ते णं काले णं ते णं समए णं धम्मघोसा थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। पंडवा निग्गया, धम्मं सोच्चा एवं वयासी-'जं णवरं देवाणुप्पिया! दोवइं देविं आपुच्छामो, पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो, तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामो।' 'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर पधारे। उन्हे वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। पाण्डव भी निकले। धर्म श्रवण करके उन्होंने स्थविर से कहा-'देवानुप्रिय! हमें संसार से विरक्ति हुई है, अतएव हम दीक्षित होना चाहते हैं; केवल द्रौपदी देवी से अनुमति ले लें और पाण्डुसेन कुमार को राज्य पर स्थापित कर दें। तत्पश्चात् देवानुप्रिय के निकट मुण्डित होकर यावत् प्रवज्या ग्रहण करेंगे।' तब स्थविर धर्मघोष ने कहा-'देवानुप्रियो! जैसे तुम्हे सुख उपजे, वैसा करो।'

तए णं ते पंच पंडवा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दोवइं देविं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मे णिसंते जाव पव्वयामो, तुमं देवाणुप्पिये! किं करेसि?'

तए णं सा दोवई देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी-'जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा पव्वयह, ममं के अण्णे आलंबे वा जाव भविस्सइ? अहं पि य णं संसारभउव्विग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वइस्सामि।'

तत्पश्चात् पाँचों पाण्डव जहाँ अपना घर था, वहाँ आये। आकर उन्होंने द्रौपदी देवी को बुलाया और उससे कहा-'देवानुप्रिये! हमने स्थविर साधु से धर्म सुना है, यावत् हम प्रव्रज्या ग्रहण कर रहे हैं। देवानुप्रिये! तुम्हे क्या करना है?'

तब द्रौपदी देवी ने पाँच पाण्डवों से कहा- देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न होकर प्रव्रजित होते हो तो मेरा दूसरा कौन अवलम्बन यावत् होगा? अतएव मैं भी ससार के भय से उद्विग्न होकर देवानुप्रियां के साथ दीक्षा अंगीकार करूँगी।'

तए णं पंच पंडवा पंडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए जाव रज्जं पसाहेमाणे विहरइ। तए णं ते पंच पंडवा दोवई य देवी अन्नया कयाइं पंडुसेणं रायाणं आपुच्छंति।

तए णं से पंडुसेणे राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! निक्खमणाभिसेयं जाव उवट्ठवेह। पुरिससहस्सवाहिणीओ सिबियाओ उवट्ठवेह।' जाव पच्चोरुहंति। जेणेव थेरा तेणेव, आलित्ते णं जाव समणा जाया। चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जंति, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं, मासद्ध-मासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् पाँच पाण्डवों ने पाण्डुसेन का राज्याभिषेक किया। यावत् पांडुसेन राजा हो गया, यावत् राज्य का पालन करने लगा। तब किसी समय एक बार पाँच पांडवों ने और द्रौपदी देवी ने पांडुसेन राजा से दीक्षा की अनुमति मांगी।

तब पांडुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-'देवानुप्रियो! शीघ्र ही दीक्षा-महोत्सव की यावत् तैयारी करो और हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिबिकाएँ तैयार करो। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वे शिबिकाओं पर आरूढ़ होकर चले और स्थविर मुनि के स्थान के पास पहुँच कर शिबिकाओं से नीचे उतरे। उतर कर स्थविर मुनि के निकट पहुँचे। वहां जाकर स्थविर से निवेदन किया-'भगवन्! यह संसार जल रहा है आदि, यावत् पांचो पांडव श्रमण बन गये। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक बेला, तेला, चौला, पचोला तथा अर्द्धमासखमण, मासखमण आदि तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तए णं सा दोवई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ, जाव पव्वइया सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयति, इक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ।

तत्पश्चात् द्रौपदी देवी शिबिका से उतरी, यावत् दीक्षित हुई। वह सुव्रता आर्या को शिष्या के रूप में सौंप दी गई। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक वह षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादशभक्त आदि तप करती हुई विचरने लगी।

तए णं थेरा भगवंतो अन्नया कयाई पंडुमहुराओ णयरीओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्थविर भगवंत पाण्डु मथुरा नगरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकले। निकल कर, बाहर जनपद में विचरण करने लगे।

ते णं काले णं ते णं समए णं अरिहा अरिट्ठनेमी जेणेव सुरट्ठाजणवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ—'एवं खलु देवाणुप्पिया! अरिहा अरिट्ठनेमी सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ। तए णं से जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासीः—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्विं जाव विहरइ, तं सेयं खलु अम्हं थेरा आपुच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदणाए गमित्तए। अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं जाव गमित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

उस काल और उस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि जहाँ सुराष्ट्र जनपद था, वहाँ आये। आकर सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय बहुत जन परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि–'हे देवानुप्रियो! तीर्थंकर अरिष्टनेमि सुराष्ट्र जनपद में यावत् विचर रहे हैं।' तब युधिष्ठिर प्रभृति पाँचों अनगारों ने बहुत जनों से यह वृत्तान्त सुन कर एक दूसरे को बुलाया और कहा–'देवानुप्रियो! अरिहन्त अरिष्टनेमि अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुराष्ट्र जनपद में पधारे हैं, अतएव स्थविर भगवंत से पूछ कर तीर्थंकर अरिष्टनेमि को वन्दना करने के लिए जाना हमारे लिए श्रेयस्कर है।' परस्पर की यह बात सब ने स्वीकार की। स्वीकार करके वे जहां स्थविर भगवंत थे, वहां गये। जाकर स्थविर भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उनसे कहा–'भगवन्! आपकी आज्ञा पाकर हम अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दना करने के हेतु जाने की इच्छा करते हैं।

स्थविर ने अनुज्ञा दी–'देवानुप्रियो! जैसे सुख हो, वैसा करो।'

तए णं ते जहुट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा थेरेहिं अब्भणुन्नाया समाणा थेरे भगवंते वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं गामाणुगामं दूइज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिकप्पस्स बहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव विहरंति।

तत्पश्चात उन युधिष्ठिर आदि पांचों अनगारों ने स्थविर भगवान् से अनुज्ञा पाकर उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वे स्थविर के पास से निकले। निकल कर निरन्तर मासखमण का तपश्चरण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए, यावत् जहां हस्तीकल्प नगर था, वहा पहुँचे। पहुँच कर हस्तीकल्प नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में यावत् ठहरे।

तए णं ते जुहिट्ठिल्लवज्जा चत्तारि अणगारा मासक्खमणपारणए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, बीयाए एवं जहा गोयमसामी, णवरं जुहिट्ठिलं आपुच्छंति, जाव अडमाणा बहुजणसद्दं णिसामेंति–'एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी उज्जितसेलसिहरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए जाव पहीणे।'

ब्रह्मलोक नामक पाँचवें देवलोक में कितनेक देवो की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। उनमें द्रौपदी देव की भी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

से णं भंते! दुवए देवे तओ जाव महाविदेहे वासे जाव अंतं काहिइ।

गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रश्न किया–'भगवन्! वह द्रौपदी देव वहाँ से चय कर कहाँ जन्म लेगा?' तब भगवान् ने उत्तर दिया–'वहां से चय कर यावत् महाविदेह वर्ष मे उत्पन्न हो कर यावत् कर्मों का अन्त करेगा।'

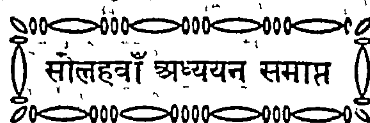
एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

प्रकृत अध्ययन का उपसंहार करते हुए श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा–इस प्रकार निश्चय ही, हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने सोलहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। जैसा सुना वैसा मैं ने तुम्हे कहा है।

उपनय

अत्यन्त क्लेश सहन करके कितना ही कठिन तप क्यों न किया हो, अगर उसे निदान के दोष से दूषित बना लिया जाय तो वह मोक्ष का कारण नही होता। जैसे सुकुमालिका के भव मे द्रौपदी के जीव ने किया।

इसके अतिरिक्त, भक्तिभाव से रहित होकर सुपात्र को भी यदि अमनोहर-अयोग्य दान दिया जाय, तो वह भी अनर्थ का हेतु होता है। इस विषय में नागश्री का दान ज्वलंत उदाहरण है।



हुए हैं। अतः हे देवानुप्रिय ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि भगवान् के निर्वाण का वृत्तान्त सुनने से पहले ग्रहण किये हुए आहार-पानी को परठ कर धीरे-धीरे शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हों तथा संलेखना करके झोषणा (कर्म-शोषणा की क्रिया) का सेवन करके और मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचरें-रहें" इस प्रकार कह कर सब ने परस्पर के इस अर्थ (विचार) को अंगीकार किया। अंगीकार करके वह पहले ग्रहण किया आहार-पानी एक जगह परठ दिया। परठ कर जहाँ शत्रुंजय पर्वत था, वहां गये। शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ हो कर यावत् मृत्यु की अपेक्षा न करते हुए विचरने लगे।

तए णं ते जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेंति। आराहित्ता अणंते जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे जाव सिद्धा।

तत्पश्चात् उन युधिष्ठिर आदि पाँचों अनगारों ने सामायिक से लेकर चौदह पूर्वों का अभ्यास करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन करके, दो मास की संलेखना से आत्मा का झोषण करके, जिस प्रयोजन के लिए नग्नता, मुंडता आदि अंगीकार कीजाती है, यावत उस प्रयोजन को सिद्ध किया। उन्हे अनन्त यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ। यावत वे सिद्ध हो गये।

तए णं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए आलोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए उववन्ना।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् द्रौपदी आर्या ने सुव्रता आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया। अन्त मे एक मास की संलेखना करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, तथा कालमास में काल करके ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में जन्म लिया।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं दोवइस्स देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।



ब्रह्मलोक नामक पाँचवें देवलोक में कितनेक देवों की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। उनमें द्रौपदी देव की भी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

से णं भंते ! दुवए देवे तओ जाव महाविदेहे वासे जाव अंतं काहिइ।

गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रश्न किया–'भगवन् ! वह द्रौपदी देव वहाँ से चय कर कहाँ जन्म लेगा ?' तब भगवान् ने उत्तर दिया–'वहां से चय कर यावत् महाविदेह वर्ष में उत्पन्न हो कर यावत् कर्मों का अन्त करेगा।'

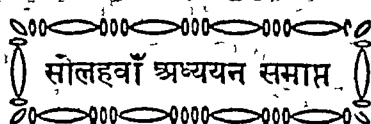
एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

प्रकृत अध्ययन का उपसंहार करते हुए श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा–इस प्रकार निश्चय ही, हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने सोलहवें ज्ञात–अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। जैसा सुना वैसा मैं ने तुम्हें कहा है।

उपनय

अत्यन्त क्लेश सहन करके कितना ही कठिन तप क्यों न किया हो, अगर उसे निदान के दोष से दूषित बना लिया जाय तो वह मोक्ष का कारण नहीं होता। जैसे सुकुमालिका के भव में द्रौपदी के जीव ने किया।

इसके अतिरिक्त, भक्तिभाव से रहित होकर सुपात्र को भी यदि अमनोहर–अयोग्य दान दिया जाय, तो वह भी अनर्थ का हेतु होता है। इस विषय में नागश्री का दान ज्वलंत उदाहरण है।



च एगट्टियाहिं पोयवहणाओ संचारेंति, संचारित्ता सगडीसागडं संजोइंति, संजोइत्ता जेणेव हत्थिसीसए नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स वहिया अग्गुज्जाणे सत्थणिवेसं करेंति, करित्ता सगडीसागडं मोएंति, मोइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति, गेण्हित्ता हत्थिसीसं च नयरं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जाव उवणेंति।

तब उन सांयात्रिक नौकावणिकों ने आपस में इस प्रकार कहा–'देवानुप्रियो ! हमें अश्वों से क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। यहां यह बहुत-सी चांदी की खाने, सोने की खाने, रत्नों की खाने और हीरों की खाने हैं। अतएव हम लोगों को चांदी-सोने से, रत्नों से और हीरों से जहाज भर लेना ही श्रेयस्कर है।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की बात अंगीकार की। अंगीकार करके उन्होंने हिरण्य से, सुवर्ण से, रत्नों से, हीरों से, घास से, अन्न से, काष्ठों से और मीठे पानी से अपना जहाज भर लिया। भर कर दक्षिण दिशा की अनुकूल वायु से जहाँ गंभीर पोतवहन पट्टन था, वहाँ आये। आकर जहाज को लंगर डाला। लंगर डाल कर गाड़ी–गाड़े तैयार किये। तैयार करके लाये हुए उस हिरण्य स्वर्ण यावत् हीरों का छोटी नौकाओं द्वारा संचार किया अर्थात् पोतवहन से गाड़ियों–गाड़ों में भरा।' फिर गाड़ी–गाड़े जोते। जोत कर जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था वहाँ पहुँचे। हस्तिशीर्ष नगर के बाहर अग्र उद्यान में सार्थ को ठहराया। गाड़ी–गाड़े खोले। फिर बहुमूल्य उपहार लेकर हस्तिशीर्ष नगर में प्रवेश किया। प्रवेश करके कनककेतु राजा के पास आये। वह उपहार राजा के समक्ष रख दिया।

तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजुत्ताणावावाणियगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ।

तब राजा कनककेतु ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों के उस बहुमूल्य उपहार को यावत् स्वीकार किया।

ते संजुत्ताणावावाणियगा एवं वयासी–'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! गामागर जाव आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं अभिक्खणं पोयवहणेणं ओगाहह, तं अत्थि याइं केइ भे कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे ?'

तए णं संजुत्ताणावावाणियगा कणगकेउं रायं एवं वयासी–

'एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नयरे परिवसामो, तं चेव जाव कालियदीवंतेणं संवूढा, तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव बहवे तत्थ आसे, किं ते हरिरेणुसोणिसुत्तगा जाव अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। तए णं सामी ! अम्हेहिं कालियदीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठा।

फिर राजा ने उन सांयात्रिक नौकावणिकों से इस प्रकार कहा-'देवानुप्रियो ! तुम लोग ग्रामों में यावत् आकरों में घूमते हो और बार-बार पोतवहन द्वारा लवणसमुद्र मे अवगाहन करते हो, तुमने कहीं कोई आश्चर्य जनक-अद्भुत-अनोखी वस्तु देखी है ?

तब सांयात्रिक नौकावणिकों ने राजा कनककेतु से कहा-'हे देवानुप्रिय ! हम लोग इसी हस्तिशीर्ष नगर के निवासी हैं; इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् हम कालिक द्वीप के समीप गये। उस द्वीप में बहुत-सी चाँदी की खाने, यावत् बहुत-से अश्व हैं। वे अश्व कैसे हैं ? नील वर्ण वाली रेणु के समान और श्रोणिसूत्रक के समान-श्याम वर्ण वाले हैं। यावत् वे अश्व हमारी गंध से कई योजन दूर चले गये। अतएव हे स्वामिन् ! हमने कालिक द्वीप में उन घोड़ों को आश्चर्यभूत (विस्मय की वस्तु) देखा है।'

तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजुत्तगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा ते संजुत्तए एवं वयासी-'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह।'

तए णं ते संजुत्ता कणगकेउं रायं एवं वयासी-'एवं सामी !' त्ति कट्टु आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति।

तत्पश्चात् कनक केतु राजा ने उन सांयात्रिकों के पास से यह अर्थ सुन कर उन सांयात्रिकों से कहा-'देवानुप्रियो ! तुम मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ जाओ और कालिक द्वीप से उन अश्वों को यहाँ ले आओ।'

तब सांयात्रिक वणिकों ने कनककेतु राजा से इस प्रकार कहा-'स्वामिन् ! बहुत अच्छा।' ऐसा कह कर उन्होंने राजा का वचन आज्ञा के रूप में विनय पूर्वक स्वीकार किया।

तए णं कणयकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं

वयासी–'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! संजुत्तएहिं सद्धिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह ।' ते वि पडिसुर्णेति। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सगडीसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तत्थ णं बहूणं वीणाण य, वल्लकीण य, भामरीण य, कच्छभीण य, भंभाण य, छब्भामरीण य, विचित्तवीणाण य, अन्नेसिं च बहूणं सोइंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा–'देवानुप्रियो ! तुम सांयात्रिक वणिकों के साथ जाओ और कालिक द्वीप से मेरे लिए अश्व ले आओ।' उन्होंने भी राजा का आदेश अंगीकार किया। तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने गाड़ी–गाड़े सजाये। सजा कर उनमें बहुत–सी वीणाएँ, वल्लकी, भ्रामरी, कच्छभी, भंभा, षट्भ्रमरी आदि विविध प्रकार की वीणाओं तथा विचित्र वीणाओं से और श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य अन्य बहुत–सी वस्तुओं से गाड़ी–गाड़े भर लिये।

भरित्ता बहूणं किण्हाण य जाव सुक्किलाण य कट्ठकम्माण य ४ गंथिमाण य ४ जाव संघाइमाण य अन्नेसिं च बहूणं चक्खिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति। भरित्ता बहूणं कोट्ठपुडाण य केयइपुडाण य जाव अन्नेसिं च बहूणं घाणिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति। भरित्ता बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य मच्छंडियाए य पुप्फुत्तरपउमुत्तर अन्नेसिं च जिब्भिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेंति। भरित्ता बहूणं कोयवयाण य कंबलाण य पावरणाण य नवतयाण य मलयाण य मसूराण य सिलावट्टाण य जाव हंसगब्भाण य अन्नेसिं च फासिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं जाव भरेंति।

श्रोत्रेन्द्रिय के योग्य (प्रिय) वस्तुएँ भर कर बहुत–से कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठ कर्म ४ (लकड़ी के पाटिये पर चित्रित चित्र), ग्रंथिम ४ (गूंथी हुई माला आदि), यावत् संघातिम (समूह रूप करके तैयार किये गये पदार्थ) तथा अन्य चक्षु इन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी–गाड़ों में भरे। वह भर कर बहुत–से कोष्टपुट तथा केतकीपुट आदि यावत् अन्य बहुतेरे घ्राणेन्द्रिय के योग्य पदार्थों से गाड़ी–गाड़े भरे। वह भर कर बहुत–से खांड, गुड़ शक्कर, मत्संडिका, पुष्पोत्तर (एक प्रकार की शक्कर) तथा पद्मोत्तर

(शक्कर-विशेष) आदि अन्य अनेक जिह्वा-इन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में भरे। वह भर कर बहुत-से कोयवक-रुई के बने वस्त्र, कंबल-रत्नकंबल; प्रावरण-ओढ़ने के वस्त्र, नवत-जीन, मलय-आसन विशेष अथवा मलय देश में बने वस्त्र, मसूरक-आसनविशेष, शिलापट्टक (कोमल शिलाएँ) यावत् हंसगर्भ-श्वेत वस्त्र तथा दूसरे स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य द्रव्य यावत् गाड़ी-गाड़ों में भरे।

भरित्ता सगडीसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव गंभीरपोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोएंति, मोइत्ता पोयवहणं सज्जेंति, सज्जित्ता तेसिं उक्किट्ठाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं कट्ठस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य जाव अन्नेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति।

उक्त सब द्रव्य भर कर उन्होंने गाड़ी-गाड़े जोते। जोत कर जहाँ गंभीर पोतपट्टन था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर गाड़ी-गाड़े खोले। खोल कर पोतवहन तैयार किया। तैयार करके उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के द्रव्य तथा काष्ठ, तृण, जल चावल, आटा, गोरस, यावत् अन्य बहुत-से पोतवहन के योग्य पदार्थ पोतवहन में भरे।

भरित्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबित्ता ताइं उक्किट्ठाइं सद्दफरिसरसरूवगंधाइं एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तारेंति, उत्तारित्ता जहिं जहिं च णं ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तहि तहि च णं ते कोडुंबियपुरिसा ताओ वीणाओ य जाव विचित्तवीणाओ य अन्नाणि बहूणि सोइंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि समुदीरेमाणा चिट्ठंति, तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवित्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति।

वे उपर्युक्त सब सामान पोतवहन में भर कर दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन से जहाँ कालिक द्वीप था, वहाँ आये। आकर लंगर डाला। लंगर डाल कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के पदार्थों को छोटी-छोटी नौकाओं द्वारा कालिक द्वीप में उतारा। उतार कर वे घोड़े जहाँ-जहाँ बैठते थे, सोते थे और लोटते थे, वहाँ वहां वे कौटुम्बिक पुरुष वह वीणा, विचित्र वीणा

आदि श्रोत्रेन्द्रिय को प्रिय वाद्य बजाते रहने लगे तथाउनके पास चारों ओर जाल स्थापित कर दी। स्थापित करके वे निश्चल, निस्पंद और मूक होकर रहे।

जत्थ जत्थ ते आसा आसयंति वा जाव तुयट्टंति वा, तत्थ तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा बहूणि किण्हाणि य ५ कट्ठकम्माणि य जाव संघाइमाणि य अन्नाणि य बहूणि चक्खिदियपाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेंति, तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवित्ता णिच्चला णिप्फंदा० चिट्ठंति।

जहां-जहां वे अश्व बैठते थे, यावत् लोटते थे, वहां-वहां उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुतेरे कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले काष्ठकर्म यावत् संघातिम तथा अन्य बहुत-से चक्षु-इन्द्रिय के योग्य पदार्थ रख दिये। तथा उन अश्वों के पास चारो ओर जाल रख दी। रख कर वे निश्चल, निस्पंद और मूक होकर रह गये।

जत्थ जत्थ ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तत्थ-तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा तेसिं बहूणं कोट्ठपुडाण य अन्नेसिं च घाणिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेंति, करित्ता तेसिं परिपेरंते जाव चिट्ठंति।

जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहाँ-वहाँ उन कौटुम्बिक पुरुषो ने बहुत-से कोष्ठपुट यावत् दूसरे घ्राणेन्द्रिय के प्रिय पदार्थों का पुञ्ज (ढेर) और निकर (बिखरा हुआ समूह) कर दिया। करके उनके पास चारो ओर पुञ्ज करके यावत् वे मूक रह गये।

जत्थ जत्थ णं ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तत्थ तत्थ गुलस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं जिब्भिदियपाउग्गाण दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेंति, करित्ता वियरए खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स पोरपाणगस्स अन्नेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेंति, भरित्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति जाव चिट्ठंति।

जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहाँ कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड़ के यावत् अन्य बहुत-से जिह्वेन्द्रिय के योग्य

पदार्थों के पुञ्ज और निकर कर दिये। करके उन जगहों पर गड़हे खोदे। खोद कर उनमें गुड़ का पानी, खांड का पानी, पोर (ईख) का पानी तथा दूसरा बहुत तरह का पानी उन गड़हों में भर दिया। भर कर उनके पास चारों ओर स्थापित करके यावत् मूक हो रहे।

जहिं जहिं च णं ते आसा आसयंति वा, सयंति वा, चिट्ठंति वा, तुयट्टंति वा, तहिं तहिं च णं ते बहवे कोयवया य जाव सिलावट्टया अण्णाणि य फासिंदियपाउग्गाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं ठवेंति, ठवित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिट्ठंति।

जहां-जहां वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे यावत् लोटते थे, वहां-वहां कोयवक (रुई के वस्त्र) यावत शिलापट्टक (कोमल शिला) तथा अन्य स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य आस्तरण-प्रत्यास्तरण (एक दूसरे के ऊपर बिछाये हुए वस्त्र) रख दिये। रख कर उनके पास चारों ओर यावत् मूक होकर रह गए।

तए णं ते आसा जेणेव एए उक्किट्ठा सद्दफरिसरसरूवगंधा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तत्थ णं अत्थेगइया आसा 'अपुव्वा णं इमे सद्दफरिसरसरूवगंधा' इति कट्टु तेसु उक्किट्ठेसु सद्दफरिसरसरूवगंधेसु अमुच्छिया ४, तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द जाव गंधाणं दूरंदूरेणं अवक्कमंति, ते णं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।

तत्पश्चात वे अश्व वहां आये, जहां यह उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध रक्खे थे। वहा आकर उनमे से कोई-कोई अश्व 'यह शब्द, स्पर्श रस, रूप और गंध अपूर्व है अर्थात पहले कभी इसका अनुभव नहीं किया है,' ऐसा बिचार कर, उस उत्कृष्ट शब्द स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूर्छित (आसक्त) न होकर उस उत्कृष्ट शब्द यावत् गंध से दूर ही दूर चले गये। वे अश्व वहां जाकर बहुत गोचर (चरागाह) प्राप्त करके तथा प्रचुर घास-पानी पाकर निर्भय हुए, उद्वेगरहित हुए और सुखे-सुखे विचरने लगे।

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा सद्दफरिसरसरूवगंधेसु णो सज्जइ, से णं इहलोगे चेव बहूणं समणाणं समणीणं सावयाणं सावियाणं अच्चणिज्जे जाव वीइवयइ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी स्पर्श, रस, रूप और गंध में आसक्त नहीं होता वह इस लोक में बहुत स साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं का पूजनीय होता है; यावत् संस तर जाता है।

तत्थ णं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठसद्दफरिसरसरू तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेसु उक्किट्ठेसु सद्दफरिसरसरूव मुच्छिया जाव अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता यावि होत्था। तए आसा एए उक्किट्ठसद्दफरिसरसरूवगंधा आसेवमाणा तेहिं बहूहिं य पासेहि य गलएसु य पाएसु य वज्झंति।

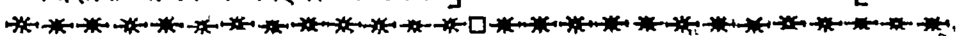
उन घोड़ो में से कितनेक घोड़े जहां वह उत्कृष्ट शब्द स्पर्श रस रू गंध थे, वहां पहुँचे। वहां पहुँच कर वे उस उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रू गंध में मूर्छित हुए यावत् अति आसक्त हो गये और उनका सेवन व प्रवृत्त हो गए। तत्पश्चात् उस उत्कृष्ट शब्द स्पर्श रस रूप और गंध का करने वाले वे अश्व कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बहुत से कूट पाशों (कपट से गये बंधनों) से गले में यावत् पैरों मे बांधे गये—बंधनों में बांधे गए।

तए णं ते कोडुंबिया एए आसे गिण्हंति, गिण्हित्ता एगट्ठि पोयवहणे संचारेंति, संचारित्ता तणस्स कट्ठस्स जाव भरेंति।

तए णं ते संजुत्ताणावावाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं ल लंबित्ता ते आसे उत्तारेंति, उत्तारित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे, कणगकेऊ राया, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वेंति, वद्धावित्ता ते आसे उवणेंति।

तए णं से कणगकेऊ राया तेसिं संजुत्ताणावावाणियगाणं उ वियरइ, वियरित्ता सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारित्ता संमाणित्ता विसज्जेइ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन अश्वों को पकड़ लिया कर वे नौकाओं द्वारा पोतवहन में ले आये। लाकर पोतवहन को तृ आदि आवश्यक पदार्थों से यावत् भर लिया।



तत्पश्चात् वे सांयात्रिक नौकावणिक् दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन द्वारा जहां गंभीर पोतपट्टन था, वहां आये। आकर पोतवहन का लंगर डाला। लगर डाल कर उन घोड़ों को उतारा। उतार कर जहां हस्तिशीर्ष नगर था और जहां कनककेतु राजा था, वहां पहुँचे। पहुँच कर दोनों हाथ जोड़ कर राजा का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन करके वह अश्व उपस्थित किये।

तत्पश्चात् राजा कनककेतु ने उन सांयात्रिक वणिकों का शुल्क माफ कर दिया। उनका सत्कार--सन्मान किया और उन्हें विदा किया।

तए णं से कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दाविता सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारित्ता संमाणित्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने कालिक द्वीप भेजे हुए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर उनका भी सत्कार-सन्मान किया और फिर विदा कर दिया।

तए णं कणगकेऊ राया आसमदए सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम आसे विणएह।' तए णं ते आसमद्दगा तह त्ति पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ते आसे बहूहिं मुहबंधेहि य, कण्णबंधेहि य, णासाबंधेहि य, वालबंधेहि य, खुरबंधेहि य, कडगबंधेहि य, खलिणबंधेहि य, अहिलाणेहि य, पडियाणेहि य, अंकणाहि य, वेलप्पहारेहि य, चित्तप्पहारेहि य, लयप्पहारेहि य, कसप्पहारेहि य, छिवप्पहारेहि य विणयंति, विणइत्ता कणगकेउस्स रण्णो उवणेंति।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने अश्वमर्दकों (अश्वपालों) को बुलाया और उनसे कहा-'देवानुप्रियो! तुम मेरे अश्वों को विनीत करो-शिक्षित करो।' तब अश्वमर्दकों ने 'बहुत अच्छा' कह कर राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके उन्होंने उन अश्वों को मुख बांध कर, कान बांध कर, नाक बाँध कर, झौंरा (पूछ के वालों का अग्रभाग) बाँध कर, खुर बाँध कर, कटक बाँध कर, चौकड़ी चढ़ा कर, तोबरा चढ़ा कर, पटतानक (पलान के नीचे का पट्टा) लगा कर, खस्सी करके, वेलाप्रहार करके, बेतों का प्रहार करके, लताओं का प्रहार करके, चाबुकों का प्रहार करके तथा चमड़े के कोड़ों का प्रहार करके विनीत किया। विनीत करके वे राजा कनककेतु के पास ले आये।

तए णं से कणगकेऊ ते आसमद्दए सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारित्ता संमाणित्ता पडिविसज्जेइ। तए णं ते आसा बहूहिं मुहबंधेहि य जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि सारीरमाणसाणि दुक्खाइं पावेंति।

तत्पश्चात् कनककेतु ने उन अश्वमर्दकों का सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उन्हें विदा किया। उसके बाद वे अश्व मुखबंधन से यावत् चमड़े के चाबुकों के प्रहार से बहुत शारीरिक और मानसिक दुःखों को प्राप्त हुए।

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा पव्वइए समाणे इट्ठेसु सद्दफरिसरसरूवगंधेसु सज्जंति, रज्जंति, गिज्झंति, मुज्झंति, अज्झोववज्जंति, से णं इह लोगे चेव बहूणं समणाण य जाव सावियाण य हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टिस्सइ।

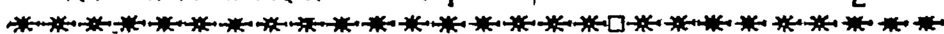
इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारा जो निर्ग्रंथ या निर्ग्रंथी दीक्षित होकर प्रिय शब्द स्पर्श रस रूप और गंध में गृद्ध होता है, मुग्ध होता है और आसक्त होता है, वह इसी लोक में बहुत श्रमणों यावत् श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र होता है, यावत् भवभ्रमण करता है।

कलरिभियमहुरतंती-तलतालवंसकउहाभिरामेसु।
सद्देसु रज्जमाणा, रमंति सोइंदियवसट्टा॥ १॥

कल अर्थात् श्रुतिसुखद और हृदयहारी, रिभित अर्थात् स्वरघोलना के प्रकार वाले, मधुर वीणा, तलताल (हाथ की ताली-करताल) और बाँसुरी के श्रेष्ठ और मनोहर वाद्यों के शब्दों में अनुरक्त होने वाले और श्रोत्रेन्द्रिय के वशवर्त्ती बने हुए प्राणी आनन्द मानते हैं॥ १॥

सोइंदियदुद्दन्त-त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
दीविगरुयमसहंतो, वहबंधं तित्तिरो पत्तो॥ २॥

किन्तु श्रोत्रेन्द्रिय की दुर्दान्तता का अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय की उच्छृङ्खलता का इतना दोष होता है, जैसे-पारधि के पींजरे में रहे हुए तीतुर के शब्द को सहन न करता हुआ तीतुर पक्षी वध और बंधन को प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि पारधि के पींजरे में फँसे हुए तीतुर का शब्द सुन कर वन का स्वाधीन तीतुर अपने स्थान से निकल आता है और पारधि उसे भी फँसा लेता है। श्रोत्रेन्द्रिय को न जीतने का दुष्परिणाम ऐसा होता है॥ २॥



थणजहणवयणकरचरणणयणगव्वियविलासियगईसु ।
रूवेसु रज्जमाणा, रमंति चक्खिदियवसट्टा ॥ ३ ॥

चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत और रूपों मे अनुरक्त होने वाले पुरुष, स्त्रियो के स्तन, जघन, वदन, हाथ, पैर और नेत्रो मे तथा गर्विष्ठ बनी हुई स्त्रियों की विलासयुक्त गति में रमण करते हैं-आनन्द मानते हैं ॥ ३ ॥

चक्खिदियदुद्दन्त-त्तणस्य अह एत्तिओ भवइ दोसो ।
जं जलणम्मि जलंते, पडइ पयंगो अबुद्धीओ ॥ ४ ॥

परन्तु चक्षु इन्द्रिय की दुर्दान्तता से इतना दोष होता है कि-जैसे बुद्धिहीन पतंगिया जलती हुई आग मे जा पड़ता है अर्थात चक्षु के वशीभूत हुआ पतंग जैसे प्राणो से हाथ धो बैठता है, उसी प्रकार मनुष्य भी वध-बंधन के घोर दुःख पाते हैं ॥ ४ ॥

अगुरुवरपवरधूवण,-उउयमल्लाणुलेवणविहीसु ।
गंधेसु रज्जमाणा, रमंति घाणिदियवसट्टा ॥५॥

सुगंध में अनुरक्त हुए और घ्राणेन्द्रिय के वश मे पड़े हुए प्राणी श्रेष्ठ अगर, श्रेष्ठ धूप विविध ऋतुओं मे वृद्धि को प्राप्त माल्य (जाई आदि के पुष्पों) तथा अनुलेपन (चन्दन आदि के लेप) की विधि मे रमण करते हैं, अर्थात् सुगंधित पदार्थों के सेवन में आनन्द का अनुभव करते हैं।

घाणिंदियदुद्दन्त-त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।
जं ओसहिगंधेणं, बिलाओ निद्धावई उरगो ॥ ६ ॥

परन्तु घ्राणेन्द्रिय (नासिका) की दुर्दान्तता से अर्थात् नासिका-इन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि ओषधि की गंध से सर्प अपने बिल में से बाहर निकल आता है। अर्थात् नासिका के विषय मे आसक्त हुआ सर्प सँपेरे के हाथों पकड़ा जाकर अनेक कष्ट भोगता है।

तित्तकडुयं कसायंब-महुरं बहुखज्जपेज्जलेज्झेसु ।
आसायंमि उ गिद्धा, रमंति जिब्भिदियवसट्टा ॥७॥

रस मे आसक्त और जिह्वा इन्द्रिय के वश वर्ती हुए प्राणी कड़वे, तीखे, कसैले, खट्टे एवं मधुर रस वाले बहुत खाद्य, पेय, लेह्य (चांटने योग्य) पदार्थों में आनन्द मानते हैं ॥ ७ ॥

जिब्भिदियदुद्दन्त-त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं गललग्गुक्खित्तो, फुरइ थलविरल्लिओ मच्छो ॥८॥

किन्तु जिह्वा इन्द्रिय को दमन न करने से इतना दोष उत्पन्न होता है कि गल (वडिश) में लग्न होकर जल से बाहर खींचा हुआ मत्स्य, स्थल में फैका जाकर तड़फता है। अभिप्राय यह है कि मच्छीमार मछली को पकड़ने के लिए मांस का टुकड़ा काँटे मे लगा कर जल में डालते है। मांस का लोभी मत्स्य उसे मुख मे लेता है और तत्काल उस का गला बिंध जाता है। मच्छीमार उसे जल से बाहर खींच लेते हैं और उसे मृत्यु का शिकार होना पड़ता है ॥८॥

उउभयमाणसुहेहि य, सविभवहियमणनिव्वुइकरेसु।
फासेसु रज्जमाणा, रमंति फासिंदियवसट्टा ॥ ९ ॥

स्पर्शों के सेवन में सुख समझने वाले और स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत हुए प्राणी विभिन्न ऋतुओं में सेवन करने से सुख मानने वाले तथा विभव (समृद्धि) सहित, हितकारक (अथवा वैभव वालों को हितकारक) तथा मन को सुख देने वाले माला, स्त्री आदि पदार्थों मे रमण करते हैं ॥ ९ ॥

फासिंदियदुद्दन्त-त्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहंकुसो तिक्खो ॥१०॥

किन्तु स्पर्शनेन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष होता है कि लोहे का तीखा अंकुश हाथी के मस्तक को पीड़ा पहुँचाता है। अर्थात् स्वच्छंद रूप से वन में विचरण करने वाला हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वश मे होकर पकड़ा जाता है और फिर पराधीन बन कर महावत की मार खाता है। आगे बतलाते है कि इन्द्रियों का सवर करने से क्या लाभ होता है ?॥ १० ॥

कलरिभियमहुरतंती-तलतालवंसककुहाभिरामेसु।
सद्देसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥११॥

कल, रिभित एवं मधुर तंत्री, तलताल तथा बाँसुरी के श्रेष्ठ और मनोहर वाद्यो के शब्दो में जो आसक्त नहीं होते, वे वशार्त्तमरण नही मरते।

अर्थात्-जो इन्द्रियो के वश होकर आर्त्त-पीड़ित होते हैं, उन्हे वशार्त्त कहते हैं। अथवा वश को अर्थात् इन्द्रियो की पराधीनता को जो ऋत-प्राप्त है, वशार्त्त कहलाते है। ऐसे प्राणियों का मरण वशार्त्तमरण है। अथवा इन्द्रियों

के वशीभूत होकर मरना, विषयों के लिए हाय हाय करते हुए प्राण त्यागना वशार्त्तमरण कहलाता है। इन्द्रियों का दमन करने वाले पुरुष ऐसा मरण नहीं मरते ॥ ११ ॥

थणजहणवयणकरचरणनयणगव्वियविलासियगईसु ।
रूवेसु जे न सत्ता, वसट्टमरणं न ते मरए ॥१२॥

स्त्रियों के स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर, नयन तथा गर्वयुक्त विलास वाली गति आदि समस्त रूपों में जो आसक्त नहीं होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते ॥ १२ ॥

अगरुवरपवरधूवण-उउयमल्लाणुलेवणविहीसु ।
गंधेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥ १३ ॥

उत्तम अगर, श्रेष्ठ धूप, विविध ऋतुओं में वृद्धि को प्राप्त होने वाले पुष्पों की मालाओं तथा श्रीखंड आदि के लेपन की गंध में जो आसक्त नहीं होते, उन्हें वशार्त्तमरण से नहीं मरना पड़ता ॥ १३ ॥

तित्तकडुयं कसायब-महुरं बहुखज्जपेज्जलेज्झेसु ।
आसाए जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥ १४ ॥

तिक्त, कटुक, कसैले, खट्टे और मीठे खाद्य, पेय और लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थों के आस्वादन में जो गृद्ध नहीं होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते ॥ १४ ॥

उउभयमाणसुहेसु य, सविभवहिययमणनिव्वुइकरेसु ।
फासेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥ १५ ॥

हेमन्त आदि विभिन्न ऋतुओं में सेवन करने से सुख देने वाले, वैभव (धन) सहित, हितकर (प्रकृति को अनुकूल) और मन को आनन्द देने वाले स्पर्शों में जो गृद्ध नहीं होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते ॥ १५ ॥

सद्देसु य भद्दपावएसु सोयविसयं उवगएसु ।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया ण होअव्वं ॥१६॥

साधु को भद्र (शुभ-मनोज्ञ) श्रोत्र के विषय शब्द प्राप्त होने पर कभी तुष्ट नहीं होना चाहिए और पापक (अशुभ-अमनोज्ञ) शब्द सुनने पर रुष्ट नहीं होना चाहिए ॥ १६ ॥

रूवेसु य भद्दगपावएसु चक्खुविसयं उवगएसु ।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया ण होअव्वं ॥१७॥

शुभ अथवा अशुभ रूप चक्षु के विषय होने पर साधु को कभी न तुष्ट होना चाहिए और न रुष्ट होना चाहिए ।

गंधेसु य भद्दगपावएसु घाणविसयमुवगएसु ।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया ण होअव्वं ॥१८॥

घ्राण इन्द्रिय को प्राप्त हुए शुभ अथवा अशुभ गंध में साधु को कभी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं होना चाहिए ।

रसेसु य भद्दयपावएसु जिब्भविसयं उवगएसु ।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होअव्वं ॥१९॥

जिह्वा इन्द्रिय के विषय को प्राप्त शुभ अथवा अशुभ रसों में साधु को कभी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं होना चाहिए ।

फासेसु य भद्दयपावएसु कायविसयमुवगएसु ।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होअव्वं ॥२०॥

स्पर्शेन्द्रिय के विषय बने हुए शुभ अथवा अशुभ स्पर्शों में साधु को कभी तुष्ट या रुष्ट नहीं होना चाहिए ।

अभिप्राय यह है कि पाँचो इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय का मनोज्ञ विषय प्राप्त होने पर अप्रसन्नता का अनुभव नहीं करना चाहिए, किन्तु समभाव धारण करना चाहिए ॥ २० ॥

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

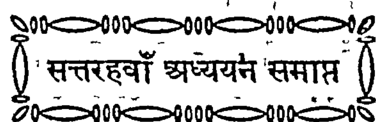
सुधर्मा स्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते हैं 'जम्बू ! निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर यावत् मुक्ति को प्राप्त ने सत्तरहवें ज्ञात- अध्ययन । यह अर्थ कहा है । उसी प्रकार मैं तुमसे कहता हूँ ।



उपनय

इस अध्ययन का उपनय स्पष्ट है। साधु धर्म कालिक द्वीप के समान है, जिसका आश्रय पाकर संसार-समुद्र में दुखी होने वाले जीव सान्त्वना और त्राण पाते हैं। साधु, अश्वों के स्थान पर समझना चाहिए। जो साधु पंचेन्द्रिय के विषयों में लुब्ध न होकर उनसे दूर रहते हैं, वे वध-बंधन के सांसारिक कष्टों से बच जाते हैं। जो विषय-लोलुप हो जाते हैं, वे दुःखों के कारणभूत कर्मबंधनों को प्राप्त होते हैं।

जैसे कालिक द्वीप से अन्यत्र ले जाये गये अश्व दुःखी हुए, उसी प्रकार साधु-धर्म से भ्रष्ट साधु अत्यन्त दुःख के पात्र होते हैं।



अठारहवाँ-सुंसुमाज्ञात-अध्ययन

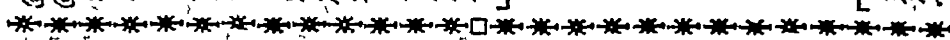
जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठारसमस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?।

जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया-'यदि भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने सत्तरहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो अठारहवें अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णामं नयरे होत्था, वण्णओ। तत्थ णं धण्णे णामं सत्थवाहे परिवसइ, तस्स णं भद्दा भारिया। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंच सत्थवाहदारगा होत्था, तंजहा-धणे, धणपाले, धणदेवे, धणगोवे, धणरक्खिए। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाईया सुंसुमा णामं दारिया होत्था सूमालपाणिपाया। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चिलाए नामं दासचेडए होत्था। अहीणपंचिंदियसरीरे मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।

श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं-'हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, उसका वर्णन समझ लेना चाहिए। वहाँ धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था। भद्रा नाम की उसकी पत्नी थी। उस धन्य सार्थवाह के पुत्र, भद्रा के आत्मज पाँच सार्थवाहदारक थे। इस प्रकार-धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। धन्य सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा और पाँचों पुत्रो के पश्चात् जन्मी हुई सुंसमा नामक बालिका थी। उसके हाथ-पैर आदि अंगोपांग सुकुमार थे। उस धन्य सार्थवाह का चिलात नामक दास-चेटक (दासपुत्र) था। उसकी पाँचों इन्द्रियाँ पूरी थीं और शरीर भी परिपूर्ण एवं मांस से उपचित था। वह बच्चों को खेलाने में कुशल भी था।

तए णं से दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालग्गाहे जाए यावि



होत्था । सुंसुमं दारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हित्ता बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहिं य कुमारियाहिं य सद्धिं अभिरममाणे अभिरममाणे विहरइ ।

अतएव वह दासचेट सुंसुमा बालिका का बालग्राहक (बालक को खेलाने वाला) नियत किया गया । वह सुंसुमा बालिका को कमर में ले लेता और बहुत-से लड़को, लड़कियों, बच्चों, बच्चियो, कुमारो और कुमारिकाओं के साथ खेलता-खेलता रहता था ।

तए णं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारयाण य दारियाण य डिंभयाण य डिंभियाण य कुमाराण य कुमारीण य अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, एवं वट्टए आडोलियाओ तेंदुसए पोत्तुल्लए साडोल्लए, अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइया आउस्सइ, एवं अवहसइ, निच्छोडेइ, निब्भच्छेइ, तज्जेइ, अप्पेगइया तालेइ ।

उस समय वह चिलात दासचेटक उन बहुत-से लड़को, लड़कियां, बच्चों, बच्चियों, कुमारों और कुमारियों में से किन्हीं की कौड़ियाँ हरण कर लेता-छीन लेता या चुरा लेता था । इसी प्रकार वर्तक (लाख के गोले) हर लेता, आलोडिया (गेंद) हर लेता, दड़ा (बड़ी गेंद) कपड़ा और साडोल्लक (उत्तरीय वस्त्र) हर लेता था । किन्हीं-किन्हीं के आभरण, माला और अलंकार हरण कर लेता था । किन्हीं पर आक्रोश करता, किसी की हँसी उड़ाता, किसी को ठग लेता, किसी की भर्त्सना करता, किसी की तर्जना करता और किसी को मारता-पीटता था ।

तए णं ते बहवे दारगा य दारिगा य डिंभया य डिंभिया य कुमारा य कुमारिगा य रोयमाणा य ५ साणं साणं अम्मापिऊणं णिवेदेंति ।

तए णं तेसिं बहूणं दारगाण य दारिगाण य डिंभाण य डिंभियाण य कुमाराण य कुमारियाण य अम्मापियरो जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं बहूहिं खेज्जणाहि य रुंटणाहि य उवलंभणाहि य खेज्जमाणा य रुंटमाणा य उवलंभेमाणा य धण्णस्स एयमट्ठं णिवेदेंति ।

अठारहवाँ [illegible]

[illegible] थी। [illegible] बांस की झाड़ियों [illegible] प्रपात (दो पर्वतों के [illegible] के लिए एक ही दरवाजा [illegible] आने-जाने [illegible] थे। जानकार ही उसमें से [illegible] थे। उसके भीतर ही पानी था। उस [illegible] में पानी मिलना अत्यन्त दुर्लभ था। चुराये हुए [illegible] के लिए आई हुई सेना भी उस पल्ली का कुछ नहीं बिगाड़ [illegible] थी। ऐसी थी वह चोरपल्ली!

जइ णं [illegible]
यणस्स [illegible]

सत्तर [illegible]
अर्थ [illegible]

तत्थ णं सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णामं चोरसेणावई परिवसइ अहम्मिए जाव अहम्मकेऊ समुट्ठिए बहुनगरणिग्गयजसे सूरे दढप्पहारी साहसिए सद्दवेही। से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहेवच्चं जाव विहरइ।

उस सिंहगुफा नामक पल्ली में विजय नामक चोरसेनापति रहता था। वह अधार्मिक यावत् अधर्म की ध्वजा था। बहुत नगरों में उसका (चोरी करने की बहादुरी का) यश फैला हुआ था। वह शूर था, दृढ़ प्रहार करने वाला, साहसी और शब्दवेधी था। वह उस सिंहगुफा में पाँच सौ चोरों का अधिपतित्व भोगता हुआ रहता था।

तए णं से विजए तक्करे चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण य बालघायगाण य वीसंभघायगाण य जूयकाराण य खंडरक्खाण य अन्नेसिं च बहूणं छिन्नभिन्नबहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था।

वह चोरों का सेनापति विजय तस्कर दूसरे बहुतेरे चोरों के लिए, जारों के लिए, गंठकटों के लिए सेंध लगाने वालों के लिए, खान खोदने वालों के लिए, राजा के अपकारियों के लिए, ऋणियों के लिए, बालघातकों के लिए, विश्वासघातियों के लिए, जुआरियों के लिए तथा खण्डरक्षकों (दंडपाशिकों) के लिए और मनुष्यों के हाथ-पैर आदि अवयवों को छेदन-भेदन करने वाले अन्य लोगों के लिए कुडंग (बांस की झाड़ी [illegible] था। अर्थात् जैसे अपराधी लोग राजभय से [illegible] हैं अतः

बांस की झाड़ी उनके लिए शरण रूप होती है, उसी प्रकार विजय चोर भी अन्यायी-अत्याचारी लोगों का आश्रयदाता था।

तए णं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्स नगरस्स दाहिण-पुरच्छिमं जणवयं बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग्गहणेहि य बंदिग्गहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खत्तखणणेहि य उवीलेमाणे उवीलेमाणे णित्थाणं णिद्धणं करेमाणे विहरइ।

उस समय वह चोरसेनापति विजय तस्कर राजगृह नगर के दक्षिणपूर्व (अग्नि कोण) में स्थित जनपद-प्रदेश को, ग्राम के घात द्वारा, नगरघात द्वारा, गायों का हरण करके, लोगों को कैद करके, पथिकों को मारकूट कर तथा सेंध लगा कर पुनःपुनः उत्पीड़ित करता हुआ, लोगो को स्थान हीन एवं धनहीन बनाता हुआ रह रहा था।

तए णं से चिलाए दासचेडे रायगिहे णयरे बहूहिं अत्थाभिसंकीहि य चोराभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य धणिएहि य जूइकरेहि य परब्भवमाणे परब्भवमाणे रायगिहाओ नयराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं चोरसेणावइं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तत्पश्चात् वह चिलात दास चेट राजगृह नगर में बहुत-से अर्थाभिशंकी (हमारा धन यह चुरा लेगा ऐसी शंका करने वालों), चौराभिशंकी (चोर समझने वाले) दाराभिशंकी (यह हमारी स्त्री को ले जायगा, ऐसी शंका करने वालो) धनिको और जुआरियों द्वारा पराभव पाया हुआ राजगृह नगर से बाहर निकला। निकल कर जहाँ सिंहगुफा नामक चोरपल्ली थी, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर चोर सेनापति विजय के पास पहुँच कर-उसकी शरण मे जा कर-रहने लगा।

तए णं से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणावइस्स अग्गे असिलट्ठिग्गाहे जाए यावि होत्था। जाहे वि य णं से विजए चोर-सेणावई गामघायं वा जाव पंथकोट्टिं वा काउं वच्चइ, ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुबहुं पि हु कूवियबलं हयमहियं जाव पडिसेहेइ, पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लिं हव्वमागच्छइ।

तत्पश्चात वह दासचेट चिलात, विजय नामक चोर सेनापति के आगे खड्ग और यष्टि का धारक हो गया। अतएव जब भी वह विजय चोर सेनापति ग्राम का घात करने के लिए यावत् पथिकों को मारने-कूटने के लिए जाता था, उस समय दासचेट चिलात बहुत-सी कूविय (चोरी का माल छीनने के लिए आने वाली) सेना को हत एवं मथित करके रोकता था-भगा देता था और फिर उस धन आदि अर्थ को लेकर, अपना कार्य करके, सिंह गुफा चोरपल्ली में सकुशल वापिस आ जाता था।

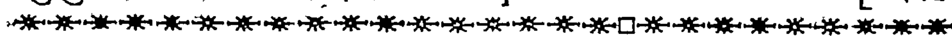
तए णं से विजए चोरसेणावई चिलायं तक्करं बहूइओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ।

तत्पश्चात् उस विजय चोर सेनापति ने चिलात तस्कर को बहुत-सी चोर विद्याएँ, चोरमंत्र, चोर मायाएँ और चोर निकृतियाँ (चोरों के योग्य छल-कपट) सिखला दीं।

तए णं से विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइं कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था। तए णं ताइं पंच चोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं णीहरणं करेंति, करित्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ, करित्ता जाव विगयसोया जाया यावि होत्था।

तत्पश्चत विजय चोर सेनापति किसी समय मृत्यु को प्राप्त हुआ-कालधर्म से युक्त हुआ। तब उन पाँच सौ चोरों ने बड़े ठाठ और सत्कार के समूह के साथ विजय नामक चोर सेनापति का नीहरण किया-श्मशान में ले जाने की क्रिया की। फिर बहुत-से लौकिक मृतक कृत्य किये। करके कुछ समय बीत जाने पर वे शोकरहित हो गये।

तए णं ताइं पंच चोरसयाइं अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! विजए चोरसेणावई कालधम्मुणा संजुत्ते, अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा बहूइओ चोरविज्जाओ य जाव सिक्खाविए, तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! चिलायं तक्करं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए।' त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता चिलायं तक्करं तीए सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचंति। तए णं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ।



तत्पश्चात् उन पाँच सौ चोरों ने एक दूसरे को बुलाया (सब इकट्ठे हुए)। तब उन्होंने आपस में कहा-'हे देवानुप्रियो ! हमारा चोर सेनापति विजय कालधर्म (मरण) से संयुक्त हो गया है। और विजय चोर सेनापति ने इस चिलात तस्कर को बहुत-सी चोर विद्याएँ यावत् सिखलाई हैं। अतएव हे देवानुप्रियो ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि चिलात तस्कर का सिंहगुफा नामक चोरपल्ली के चोर सेनापति के रूप में अभिषेक किया जाय।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एक दूसरे की यह बात स्वीकार की। चिलात तस्कर को उस सिंह गुफा नामक चोरपल्ली के चोर सेनापति के रूप में अभिषिक्त किया। तब वह चिलात चोरसेनापति हो गया, तथा अधार्मिक यावत् होकर विचरने लगा।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई चोरणायगे जाव कुडंगे यावि होत्था। से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाण य एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लं जणवयं जाव णिण्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह चिलात चोरसेनापति चोरों का नायक यावत् कुडंग (बांस की झाड़ी) के समान चोरों जारों आदि का आश्रयभूत हो गया। वह उस सिंह गुफा नामक चोरपल्ली में पाँच सौ चोरों का अधिपति हो गया, इत्यादि विजय के वर्णन समान समझना चाहिए। यावत् वह राजगृह नगर के दक्षिणपूर्व के जनपद को यावत् स्थानहीन और धनहीन बनाता हुआ विचरने लगा।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई अन्नया कयाइं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता पंच चोरसए आमंतेइ। तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे भोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च जाव पसण्णं च आसाएमाणे ४ विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए ते पंच चोरसए विपुलेणं धूवपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारित्ता संमाणित्ता एवं वयासीः—

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति ने एक बार किसी समय विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवा कर पाँच सौ चोरों को आमन्त्रित किया। तत्पश्चात् स्नान करके बलिकर्म करके, भोजन-मंडप में, उन पाँच सौ चोरों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का तथा सुरा यावत् प्रसन्ना नामक मदिराओं का आस्वादन करने लगा। भोजन कर चुकने के पश्चात् पाँच सौ चोरों का विपुल धूप, पुष्प, गंध, माला और अलंकार से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके उनसे इस प्रकार कहाः—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! रायगिहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे अड्ढे, तस्स णं धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा णामं दारिया यावि होत्था अहीणा जाव सुरूवा, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुंपामो। तुब्भं विपुले धणकणग जाव सिलप्पवाले, ममं सुंसुमा दारिया।'

तए णं ते पंच चोरसया चिलायस्स चोरसेणावइस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति।

(चिलात ने कहा—) 'हे देवानुप्रियो! राजगृह नगर में धन्य नामक धनाढ्य सार्थवाह है। उसकी पुत्री, भद्रा की आत्मजा और पांच पुत्रों के पश्चात् जन्मी हुई सुंसुमा नाम की लड़की है। वह परिपूर्ण इन्द्रियों वाली यावत् सुन्दर रूप वाली है। तो हे देवानुप्रियो! हम लोग चलें और धन्य सार्थवाह का घर लूटें। उस लूट में मिलने वाला विपुल धन, कनक यावत् शिला प्रवाल वगैरह तुम्हारा होगा और सुंसुमा लड़की मेरी होगी।'

तब उन पांच सौ चोरों ने चोरसेनापति चिलात की यह बात अंगीकार की।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं अल्लचम्मं दुरूहइ, पच्चावरण्हकालसमयंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणा माइयगोमुहिएहिं फलएहिं, णिक्कट्ठाहिं असिलट्ठीहिं, अंसगएहिं तोणेहिं, सजीवेहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं, समुल्लालियाहिं दीहाहिं, ओसारियाहिं उरुघंटियाहिं, छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहि महया महया उक्किट्ठसीहणायचोरकलकलरवं जाव समुद्दरवभूयं करेमाणा सीहगुहाओ चोरपल्लीओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहस्स अदूरसामंते एगं महं गहणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दिवसं खवेमाणो चिट्ठइ।

तत्पश्चात् चिलात चोरसेनापति उन पाँच सौ चोरों के साथ (मंगल के लिए) आर्द्र चर्म पर बैठा। फिर दिन के अन्तिम प्रहर में पाँच सौ चोरों के

साथ कवच धारण करके तैयार हुआ। उसने आयुध और प्रहरण ग्रहण किये। कोमल गोमुखित-गाय के मुख सरीखे किये हुए फलक (ढाल) धारण किये। तलवारें म्यानों से बाहर निकाल लीं। कंधों पर तर्कश धारण किये। धनुष जीवा युक्त कर लिये। बाण बाहर निकाल लिये। बर्छियां और भाले उछालने लगे। जंघाओं पर बांधी हुई घंटिकाएँ लटका दीं। शीघ्र ही बाजे बजने लगे। बड़े-बड़े उत्कृष्ट सिंहनाद और चोरों की कल-कल ध्वनि से ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे समुद्र का खल बल शब्द हो रहा हो! इस प्रकार-शोर करते हुए वे सिंह गुफा-नामक पल्ली से बहार निकले। निकल कर जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आये। आकर राजगृह नगर से कुछ दूर एक सघन वन मे घुस गये। वहाँ घुस कर शेष रहे दिन को समाप्त करने लगे-सूर्य के अस्त हो जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई अद्धरत्तकालसमयंसि निसंत-पडिनिसंतंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं माइयगोमुहिएहिं फलएहिं जाव मूइआहि उरुघंटियाहि जेणेव रायगिहे पुरच्छिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उदगवत्थिं परामुसइ, परामुसित्ता आयंते ३ तालुग्घाडणिविज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता रायगिहस्स दुवारकवाडे उदएणं अच्छोडेइ, अच्छोडित्ता कवाडं विहाडेइ, विहाडित्ता रायगिहं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासीः—

तत्पश्चात् चोर सेनापति चिलात आधी रात के समय, जब सब जगह शान्ति और सुनसान हो गई थी, पाँच सौ चोरों के साथ, रींछ आदि के बालों से सहित होने के कारण कोमल गोमुखित (ढालें) छाती से बाँध कर यावत् जांघों पर घूघरे लटका कर राजगृह नगर के पूर्व दिशा के दरवाजे पर पहुँचा। पहुँच कर उसने जल की मशक ली। उसमें से जल की एक अंजलि लेकर आचमन किया, स्वच्छ हुआ, पवित्र हुआ। फिर ताला खोलने की विद्या का आवाहन किया। विद्या का आवाहन (स्मरण) करके राजगृह के द्वार के किवाड़ों पर पानी छिड़का। पानी छिड़क कर किवाड़ उघाड़ लिये। तत्पश्चात् राजगृह के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके ऊँचे-ऊँचे शब्दों से आघोषणा करते-करते इस प्रकार बोलाः—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! चिलाए णामं चोरसेणावई पंचहिं चोर-सएहिं सद्धिं सीहगुफाओ चोरपल्लीओ इह हव्वमागए धण्णस्स सत्थ-

वाहस्स गिहं घाउकामे, तं जो णं णवियाए माउयाए दुद्धं पाउकामे, से णं निग्गच्छउ' त्ति कट्टु जेणेव धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णस्स गिहं विहाडेइ।

'हे देवानुप्रियो ! मैं चिलात नामक चोर सेनापति, पाँच सौ चोरों के साथ, सिंहगुफा नामक चोर-पल्ली से, धन्य सार्थवाह का घर लूटने के लिए यहाँ आया हूं। जो नवीन माता का दूध पीना चाहता हो, वह निकल कर मेरे सामने आवे।' इस प्रकार कह कर वह धन्य सार्थवाह के घर आया। आकर उसने धन्य सार्थवाह का घर (द्वार) उघाड़ा।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे चिलाएणं चोरसेणावइया पंचहिं चोर-सएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए, तत्थे, पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाइत्ता सुबहुं धणकणग जाव सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सीहगुफा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तब धन्य सार्थवाह ने देखा कि पांच सौ चोरों के साथ चिलात चोर सेनापति के द्वारा घर लूटा जा रहा है। यह देख कर वह भयभीत हो गया और घबरा गया और अपने पांचों पुत्रों के साथ एकान्त स्थान में चला गया छिप गया।

तत्पश्चात् चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह का घर लूटा। लूट कर बहुत सारा धन, कनक यावत् स्वापतेय (द्रव्य) तथा सुंसुमा दारिका लेकर वह राजगृह से बाहर निकल कर जिधर सिंहगुफा थी, उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुआ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं धणकणगं सुंसुमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं ३ पाहुडं गहाय जेणेव णगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं पाहुडं जाव उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! चिलाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ

इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता सुबहुं धण-कणगं सुंसुमं च दारियं गहाय जाव पडिगए, तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सुंसुमादारियाए कूवं गमित्तए। तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! से विपुले धणकणगे, ममं सुंसुमा दारिया।

चोरों के चले जाने के पश्चात् धन्य सार्थवाह अपने घर आया। आकर उसने जाना कि मेरा बहुत-सा धन कनक और सुंसुमा लड़की का अपहरण कर लिया गया है। यह जान कर वह बहुमूल्य भेंट लेकर नगर के रक्षकों के पास गया और उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! चिलात नामक चोर सेनापति सिंहगुफा नामक चोरपल्ली से यहाँ आकर पाँच सौ चोरों के साथ मेरा घर लूट कर और बहुत-सा धन कनक तथा सुंसुमा लड़की को लेकर यावत् चला गया है। अतएव हम, हे देवानुप्रियो ! सुंसुमा लड़की को वापिस लाने के लिए जाना चाहते हैं। देवानुप्रियो ! जो धन कनक वापिस मिले वह सब तुम्हारा और सुंसुमा दारिका मेरी रहेगी।'

तए णं ते णयरगुत्तिया धण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणा महया महया उक्किट्ठ जाव समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा रायगिहाओ निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

तब नगर के रक्षकों ने धन्य सार्थवाह की यह बात स्वीकार की। स्वीकार करके वे कवच धारण करके सन्नद्ध हुए। उन्होंने आयुध और प्रहरण लिये। फिर जोर-जोर के उत्कृष्ट सिंहनाद से समुद्र की खलभलाट जैसा शब्द करते हुए राजगृह से बाहर निकले। निकल कर जहाँ चिलात चोर था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर चिलात चोर सेनापति के साथ युद्ध करने लगे।

तए णं णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिया जाव पडिसेहंति। तए णं ते पंच चोरसया णगरगोत्तिएहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा तं विपुलं धणकणगं विच्छड्डेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था।

तए णं ते णयरगुत्तिया तं विपुलं धणकणगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छंति।

तब नगररक्षको ने चोरसेनापति चिलात को हत, मथित करके यावत् पराजित कर दिया। उस समय वे पाँच सौ चोर नगररक्षकों द्वारा हत, मथित और पराजित होकर उस विपुल धन और कनक आदि को छोड़ कर और फैंक कर चारों ओर-कोई किसी तरफ,कोई किसी तरफ भाग खड़े हुए।

तत्पश्चात् नगररक्षकों ने वह विपुल धन कनक आदि ग्रहण कर लिया। ग्रहण करके वे जिस ओर राजगृह नगर था, उसी ओर चल पड़े।

तए णं से चिलाए तं चोरसेण्णं तेहिं नगरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव भीते तत्थे सुंसुमं दारियं गहाय एगं महं अगामियं दीहमद्धं अडविं अणुपविट्ठे।

तए णं धण्णे सत्थवाहे सुंसुमं दारियं चिलाएणं अडविमुहिं अवहीरमाणिं पासित्ता णं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे सन्नद्धबद्ध चिलायस्स पदमग्गविहि अभिगच्छइ, अणुगच्छमाणे अणुगज्जेमाणे हक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे अभितासेमाणे पिट्ठओ अणुगच्छइ।

नगर रक्षको द्वारा चोरसैन्य को हत एवं मथित हुआ देख कर चिलात भयभीत और उद्विग्न हो गया। वह सुंसुमा दारिका को लेकर एक महान् अग्रामिक (जिसके बीच मे गाँव न आवे ऐसी) तथा लम्बे मार्ग वाली अटवी में घुस गया।

उस समय धन्य सार्थवाह सुंसुमा दारिका को अटवी के सन्मुख ले जाई जाती देख कर, पाँचो पुत्रो के साथ छठा आप कवच पहन कर, चिलात के पैरो के मार्ग पर चला। वह उसके पीछे-पीछे चलता हुआ, गर्जना करता हुआ, चुनौती देता हुआ, पुकारता हुआ, तर्जना करता हुआ और उसे त्रस्त करता हुआ उसके पीछे चलने लगा।

तए णं से चिलाए तं धण्णं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठं सन्नद्धबद्धं समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अबले अपरक्कमे अवीरिए जाहे णो संचाएइ सुंसुमं दारियं णिव्वाहित्तए, ताहे संते तंते परितंते नीलुप्पलं असिं परामुसइ, परामुसित्ता सुंसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिंदइ, छिंदित्ता तं गहाय तं अगामियं अडविं अणुपविट्ठे।

चिलात ने देखा कि धन्य सार्थवाह पाँच पुत्रों के साथ आप स्वयं छठा सन्नद्ध हो कर मेरा पीछा कर रहा है। यह देख कर वह निस्तेज, निर्बल, पराक्रमहीन एवं वीर्यहीन हो गया। जब वह सुंसुमा दारिका का निर्वाह करने में (ले जाने में) समर्थ न हो सका, तब श्रान्त हो गया-थक गया, ग्लानि को प्राप्त हुआ और अत्यन्त श्रान्त हो गया। अतएव उसने नील कमल के समान तलवार हाथ मे ली और सुंसुमा दारिका का सिर काट लिया। कटे सिर को ले कर वह उस अग्रामिक अटवी में घुस गया।

तए णं चिलाए तीसे अगामियाए अडवीए तराहाए अभिभूए समाणे पम्हुट्ठदिसाभाए सीहगुहं चोरपल्लिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए।

तत्पश्चात चिलात उस अग्रामिक (ग्रामविहीन) अटवी में प्यास से पीड़ित होकर दिशा भूल गया। वह चोरपल्ली तक नहीं पहुँच सका और बीच ही मे मर गया।

एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स जाव विद्धंसणधम्मस्स वण्णहेउं जाव आहारं आहारेइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं समणीणं सावयाणं साविथाणं हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व से चिलाए तक्करे।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! हमारे जो साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर वमन को बहाने-भराने वाले यावत विनाशशील इस औदारिक शरीर के वर्ण (रूप-सौन्दर्य) के लिए यावत् आहार करते हैं, वे इसी लोक मे बहुतसे श्रमणो, श्रमणियो, श्रावकों और श्राविकाओ की अवहेलना के पात्र बनते हैं; यावत् दीर्घ ससार में पर्यटन करते है; जैसे चिलात चोर अन्त में दुःखी हुआ, (उसी प्रकार वे भी दुःखी होते हैं)।

तए णं से धरणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठे चिलायं परिधाडेमाणे परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य संते तंते परितंते नो संचाएइ चिलायं चोरसेणावइं साहत्थिं गिण्हित्तए। से णं तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसुमा दारिया चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुंसुमं दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ, पासित्ता परसुनियत्तेव चंपगपायवे।

तत्पश्चात धन्य सार्थवाह पाँच पुत्रों के साथ आप छठा चिलात के पीछे दौड़ता-दौड़ता प्यास से और भूख से श्रान्त हो गया, ग्लान हो गया और बहुत थक गया। वह चोरसेनापति चिलात को अपने हाथ से पकड़ने में समर्थ न हो सका। तब वह वहाँ से लौट पड़ा लौट कर वहां आया जहां सुंसुमा दारिका को चिलात ने जीवन से रहित कर दिया था। वहां आकर उसने देखा कि बालिका सुंसुमा चिलात के द्वारा मार डाली गई है। यह देख कर कुल्हाड़े से काटे हुए चम्पक वृक्ष के समान वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठे आसत्थे कूवमाणे कंदमाणे विलवमाणे महया महया सद्देणं कुहकुहसुपरुन्ने सुचिरं कालं वाहमोक्खं करेइ।

तत्पश्चात पांच पुत्रों सहित छठा आप धन्य सार्थवाह आश्वस्त हुआ तो आक्रंदन करने लगा, विलाप करने लगा, और जोर-जोर के शब्दों से कुह कुह (अस्पष्ट शब्द) करने लगा। वह बहुत देर तक आँसू बहाता रहा।

तए णं से धण्णे पंचहिं पुत्तेहिं अप्पछट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य पराभूए समाणे तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गणगवेसणं करेंति, करित्ता संते तंते परितंते णिव्विन्ने तीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणे नो चेव णं उदगं आसादेइ।

तत्पश्चात पांच पुत्रों सहित छठे आप धन्य सार्थवाह ने उस अग्रामिक अटवी में चिलात चोर के पीछे चारों ओर दौड़ने के कारण, प्यास और भूख से पीड़ित होकर, उस अग्रामिक अटवी में सब तरफ जल की मार्गणा-गवेषणा की। गवेषणा करके वह श्रान्त हो गया, ग्लान हो गया, बहुत थक गया और खिन्न हो गया। उस अग्रामिक अटवी मे जल की खोज करने पर भी वह कहीं जल न पा सका।

तए णं उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जेट्ठं पुत्तं धण्णे सत्थवाहे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं खलु पुत्ता! सुंसुमाए दारियाए अट्ठाए चिलायं तक्करं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा इमीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-

गवेसणं करेमाणा णो चेव णं उदगं आसादेमो। तए णं उदगं अणासाएमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए। तं णं तुम्हं ममं देवाणुप्पिया! जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, आहारित्ता तेणं आहारेणं अवहिट्ठा समाणा तओ पच्छा इमं अगामियं अडविं णित्थरिहिह, रायगिहं च संपाविहिह, मित्तणाइय अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।'

तत्पश्चात् कहीं भी जल न पाकर धन्य सार्थवाह, जहां सुंसुमा जीवन से रहित की गई थी, उस जगह आया। आकर उसने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया। बुला कर उससे कहा– हे पुत्र! सुंसुमा दारिका के लिए चिलात तस्कर के पीछे-पीछे चारों ओर दौड़ते हुए, प्यास और भूख से पीड़ित होकर हमने इस अग्रामिक अटवी में जल की तलाश की, मगर जल न पा सके। जल के बिना हम लोग राजगृह नहीं पा सकते। अतएव हे देवानुप्रिय! तुम मुझे जीवन से रहित कर दो और सब भाई मेरे मांस और रुधिर का आहार करो। आहार करके उस आहार से स्वस्थ होकर फिर इस अग्रामिक अटवी को पार कर जाना, राजगृह नगर पा लेना, मित्रों और ज्ञातिजनों से मिलना तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी होना।'

तए णं से जेट्ठपुत्ते धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी–'तुब्भे णं ताओ! अम्हं पिया, गुरू, जणया, देवयभूया, ठावका, पइट्ठावका, संरक्खगा, संगोवगा, तं कहं णं अम्हे ताओ! तुब्भे जीवियाओ ववरोवेमो? तुब्भं णं मंसं च सोणियं च आहारेमो? तं तुब्भे णं तातो! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अगामियं अडविं णित्थरह।' तं चेव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह।

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर ज्येष्ठ पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा–'तात! आप हमारे पिता हो, गुरु हो, जनक हो, देवतास्वरूप हो, स्थापक (विवाह आदि करके गृहस्थधर्म में स्थापित करने वाले) हो, प्रतिष्ठापक (अपने पद पर स्थापित करने वाले) हो, कष्ट से रक्षा करने वाले हो, दुःख से बचाने वाले हो, अतः हे तात! हम आपको कैसे जीवन से रहित करें? कैसे आपके मांस और रुधिर का आहार करें? हे तात! आप मुझे जीवन-हीन कर दो

और मेरे मांस तथा रुधिर का आहार करो और इस अग्रामिक अटवी को पार करो।' इत्यादि सब पूर्ववत् कहा, यावत अर्थ यावत पुण्य के भागी बनो।

तए णं धण्णं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी—'मा णं ताओ! अम्हे जेट्ठं भायरं गुरुं देवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भे णं ताओ! मम जीवियाओ ववरोवेह, जाव आभागी भविस्सह।' एवं जाव पंचमे पुत्ते।

तत्पश्चात दूसरे पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा—'हे तात! हम गुरु और देव के समान ज्येष्ठ बन्धु को जीवन से रहित नहीं करेंगे। हे तात! आप मुझको जीवन से रहित कीजिए; यावत आप सब पुण्य के भागी बनिए।' इसी प्रकार तीसरे, चौथे और पाँचवें पुत्र ने भी कहा।

तए णं धण्णे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता ते पंच पुत्ते एवं वयासी—'मा णं अम्हे पुत्ता! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो, एस णं सुंसमाए दारियाए णिप्पाणे जाव जीवविप्पजढे, तं सेयं खलु पुत्ता! अम्हं सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए। तए णं अम्हे तेणं आहारेणं अवत्थद्धा समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो।'

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने पाँचों पुत्रों के हृदय की इच्छा जान कर उन पाँचों पुत्रों से इस प्रकार कहा—'पुत्रो! हम में से एक को भी जीवन से रहित न करें। यह सुंसुमा का शरीर निष्प्राण यावत जीव से त्यक्त है, अतएव हे पुत्रो! सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार करना हमारे लिए उचित होगा। हम लोग उस आहार से स्वस्थ होकर राजगृह को पा लेंगे।

तए णं ते पंच पुत्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्ठं पडिसुणेंति। तए णं धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ, करित्ता सरगं च करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महइ, महित्ता अग्गिं पाडेइ, पाडित्ता अग्गिं संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं पक्खेवेइ पक्खेवित्ता अग्गिं पज्जालेइ, पज्जालित्ता सुंसुमाए दारियाए मंसं च पइत्ता सोणियं च आहारेइ।

धन्य सार्थवाह के इस प्रकार कहने पर उन पांचों पुत्रों ने यह बात स्वीकार की। तब धन्य सार्थवाह ने पांचों पुत्रों के साथ अरणि की (अरणि काष्ठ

में गड़हा किया) फिर शर किया (अरणि की लम्बी लकड़ी की) दोनों तैयार कर के शर से अरणि का मथन किया। मथन कर के अग्नि उत्पन्न की। फिर अग्नि धौंकी। उसमें लकड़ियां डाली। अग्नि प्रज्वलित की। प्रज्वलित करके सुंसुमा दारिका का मांस पका कर उस मांस का और रुधिर का आहार किया।

तए णं आहारेणं अवत्थद्धा समाणा रायगिहं नयरिं संपत्ता मित्त-णाई अभिसमण्णागया, तस्स य विउलस्स धणकणगरयण जाव आभागी जाया वि होत्था।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे सुंसुमाए दारियाए बहूइं लोइयाइं जाव विगयसोए जाए यावि होत्था।

उस आहार से स्वस्थ होकर वे राजगृह नगरी तक पहुँचे। अपने मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि से मिले और विपुल धन कनक रत्न आदि के तथा यावत् पुण्य के भागी हुए।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने सुंसुमा दारिका के बहुत-से लौकिक मृतक-कृत्य किये, यावत् कुछ काल बीत जाने पर वह शोक रहित हो गया।

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे गुणसीलए चेइए समोसढे। से णं धण्णे सत्थवाहे संपत्ते, धम्मं सोच्चा पव्वइए, एक्कारसंगवी, मासियाए संलेहणाए सोहम्मे उववण्णो, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर राजगृह के गुण-शील चैत्य में पधारे। उस समय धन्य सार्थवाह वन्दना करने के लिए भगवान् के निकट पहुँचा। धर्मोपदेश सुन कर दीक्षित हो गया। क्रमशः ग्यारह अंगो का वेत्ता मुनि हो गया। अन्तिम समय आने पर एक मास की संलेखना करके सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से चय कर महाविदेह क्षेत्र मे चारित्र धारण करके सिद्धि प्राप्त करेगा।

जहा वि य णं जंबू ! धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा, णो रूवहेउं वा, नो विसयहेउं वा, सुंसुमाए दारियाए मंससोणिए आहा-रिए नन्नत्थ एगाए रायगिहं संपावणट्ठाए।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणिया-

सवस्स जाव अवस्सं विप्पजहियव्वस्स नो वण्णहेउं वा, नो रूवहेउं वा, नो बलहेउं वा, नो विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, नन्नत्थ एगाए सिद्धिगमणसंपावणट्ठयाए, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे जाव वीईवइस्सइ।

'हे जम्बू ! जैसे उस धन्य सार्थवाह ने वर्ण के लिए, रूप के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार नही किया था, केवल राजगृह नगर को पाने के लिए ही आहार किया था—

इसी प्रकार हे आयुष्यमन् श्रमणो ! हमारा जो साधु या साध्वी वमन को झराने वाले, पित्त को झराने वाले, शुक्र को झराने वाले, शोणित को झराने वाले यावत् अवश्य ही त्यागने योग्य इस औदारिक शरीर के वर्ण के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए आहार नहीं करते हैं, केवल सिद्धिगति को प्राप्त करने के लिए आहार करते हैं, वे इसी भव मे बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं के अर्चनीय होते हैं, ससार-कान्तार को पार करते हैं।

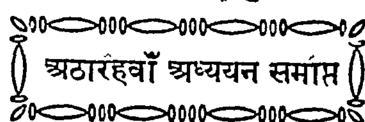
एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अठारहवें ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है। वैसा ही मैंने तुम्हे कहा है।

उपनय

जैसे सुंसुमा में आसक्त चिलात दुष्कर्मों में लीन होकर अटवी में गया, उसी प्रकार विपयासक्त जीव पापकर्म करके संसार-अटवी मे अनेक दुःखों का पात्र बनता है।

धन्य सार्थवाह के समान गुरु महाराज, पुत्रों के समान साधु, अटवी के समान ससार और पुत्री के मांस के समान आहार जानना चाहिए। राजगृह के समान मोक्ष समझना चाहिए। सिर्फ अटवी को पार करने के लिए धन्य आदि ने अनासक्त भाव से पुत्री का मांस खाया, उसी प्रकार गुरु की आज्ञा से अगृद्ध भाव से, मोक्षप्राप्ति के लिए ही साधुओं को आहार करना चाहिए।



उन्नीसवाँ पुण्डरीक-अध्ययन

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, एगूणवीसइमस्स णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं—'भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धि प्राप्त ने अठारहवे ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो उन्नीसवे ज्ञात-अध्ययन का श्रमण भगावन् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं इहेव जंबुद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे सीयाए महाणदीए उत्तरिल्ले कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरिल्लस्स सीतामुखवणसंडस्स पच्छिमेणं एगसेलगस्स वक्खारपव्वयस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते ।

तत्थ णं पुंडरिगिणी णामं रायहाणी पन्नत्ता णवजोयणवित्थिन्ना दुवालसजोयणायामा जाव पच्चक्खं देवलोयभूया पासाईया दंसणीया अभिरूवा पडिरूवा । तीसे णं पुंडरिगिणीए णयरीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए णलिणिवणे णामं उज्जाणे होत्था । वण्णओ ।

श्रीसुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—'हे जम्बू ! उस काल और उस समय में इसी जम्बू द्वीप नामक द्वीप मे, पूर्व विदेह क्षेत्र में, सीता नामक महानदी के उत्तरी किनारे, नीलवन्त पर्वत के दक्षिण मे, उत्तर तरफ के सीतामुख नामक वनखण्ड से पश्चिम में, और एकशैल नामक वक्षार पर्वत से पूर्व दिशा मे पुष्कलावती नामक विजय कहा है ।

उस पुष्कलावती विजय मे पुण्डरीकिणी नामक राजधानी कही गई है । वह नौ योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी यावत् साक्षात् देवलोक के समान है । मनोहर है, दर्शनीय है, सुन्दर रूप वाली है और दर्शकों को आनन्द प्रदान करने वाली है । उस पुंडरीकिणी नगरी में उत्तर पूर्व दिशा के भाग (ईशान कोण) मे नलिनीवन नामक उद्यान था । उसका वर्णन कहना चाहिए ।



तत्थ णं पुंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था। तस्स णं पउमावई देवी होत्था। तस्स णं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था, तं जहा-पुंडरीए य कंडरीए य सुकुमालपाणिपाया। पुंडरीए जुवराया।

उस पुंडरीकिणी राजधानी में महापद्म नामक राजा था। पद्मावती उसकी देवी-पटरानी थी। महापद्म राजा के पुत्र और पद्मावती देवी के आत्मज दो कुमार थे। वे इस प्रकार-पुंडरीक और कंडरीक। उनके हाथ-पैर बहुत कोमल थे। उनमे पुंडरीक युवराज था।

ते णं काले णं ते णं समए णं थेरागमणं (धम्मघोसा थेरा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा जाव णलिणिवणे उज्जाणे तेणेव समोसढे।)

उस काल और उस समय में स्थविर मुनि का आगमन हुआ (अर्थात् धर्मघोष स्थविर पाँच सौ अनगारों के साथ परिवृत होकर, अनुक्रम से चलते हुए, यावत् नलिनीवन नामक उद्यान मे पधारे)।

महापउमे राया णिग्गए। धम्मं सोच्चा पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए। पोंडरीए राया जाए। कंडरीए जुवराया। महापउमे अणगारे चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। तए णं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरइ। तए णं से महापउमे बहूणि वासाणि जाव सिद्धे।

महापद्म राजा स्थविर मुनि को वन्दना करने निकला। धर्म सुन कर उसने पुण्डरीक को राज्य पर स्थापित करके दीक्षा अंगीकार कर ली। अब पुण्डरीक राजा हो गया और कंडरीक युवराज हो गया। महापद्म अनगार ने चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। फिर स्थविर मुनि बाहर जा कर जनपदों में मे विहार करने लगे। तत्पश्चात् महापद्म ने बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय पाल कर यावत् सिद्धि प्राप्त की।

तए णं थेरा अन्नया कयाइं पुणरवि पुंडरिगिणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसढा। पोंडरीए राया णिग्गए। कंडरीए महाजणसद्दं सोच्चा जहा महब्बलो जाव पज्जुवासइ। थेरा धम्मं परिकहेंति। पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय पुनः स्थविर पुंडरीकिणी राजधानी के नलिनीवन उद्यान मे पधारे। पुण्डरीक राजा उन्हे वन्दना करने के लिए निकला। कंडरीक भी महाजनो (बहुत लोगों) के मुख से स्थविर के आने की बात सुन कर महाबल कुमार की तरह गया, यावत् स्थविर की उपासना करने लगा। स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया। धर्मोपदेश सुन कर पुण्डरीक श्रमणोपासक हो गया यावत् अपने घर लौट आया।

तए णं कंडरीए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जाव से जहेयं तुब्भे वदह, जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि, तए णं जाव पव्वयामि।

'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

तत्पश्चात् कंडरीक युवराज खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने इस प्रकार कहा—'भगवन् ! आपने जो कहा है, वह वैसा ही है—सत्य है'। मैं केवल पुंडरीक राजा से अनुमति ले लूँ, तत्पश्चात् यावत् दीक्षा ग्रहण करूँगा।

तब स्थविर ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो।'

तए णं से कंडरीए जाव थेरे वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तमेव चाउघंटं आसरहं दुरूहइ, जाव पच्चोरुहइ, जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव पुंडरीयं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए थेराणं अंतिए जाव धम्मे निसंते, से धम्मे अभिरुइए, तए णं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइत्तए।'

तत्पश्चात कंडरीक ने यावत् स्थविर मुनि को वन्दन किया। वन्दन-नमस्कार करके उनके पास से निकला। निकल कर उसी चार घंटा वाले घोड़ो के रथ पर आरूढ़ हुआ, यावत् राजभवन में आकर उतरा। रथ से उतर कर पुंडरीक राजा के पास गया। वहाँ जाकर हाथ जोड़ कर यावत् पुंडरीक से कहा 'हे देवानुप्रिय ! मैंने स्थविर मुनि से धर्म सुना है और वह धर्म मुझे रुचा है। अतएव हे देवानुप्रिय ! मै यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करने की इच्छा करता हूँ।

तए णं पुंडरीए राया कंडरीयं जुवरायं एवं वयासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इदाणिं मुंडे जाव पव्वयाहि, अहं णं तुमं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचयामि।'

तए णं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं णो आढ़ाइ, जाव तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं पुंडरीए राया कंडरीयं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

तब पुंडरीक राजा ने कण्डरीक युवराज से इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिय ! तुम इस समय मुंडित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण मत करो। मैं तुम्हें महान् महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त करने वाला हूँ।'

तब कंडरीक ने पुण्डरीक राजा के इस अर्थ का आदर नहीं किया-स्वीकार नहीं किया, वह यावत् मौन रहा। तब पुंडरीक राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार भी कण्डरीक से इसी प्रकार कहा; यावत् कण्डरीक फिर भी मौन ही बना रहा।

तए णं पुंडरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहिं पण्णवणाहि य ४ ताहे अकामए चेव एयमट्ठं अणुमण्णित्था जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव थेराणं सीसभिक्खं दलयइ। पव्वइए, अणगारे जाए, एक्कारसंगविऊ।

तए णं थेरा भगवंतो अन्नया कयाइं पुंडरीगिणीओ नयरीओ नलिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक राजा, कंडरीक कुमार को बहुत कह कर और समझा कर रोकने में समर्थ न हुआ, तब इच्छा न होने पर भी उसने यह बात मान ली, अर्थात दीक्षा की आज्ञा देदी, यावत् उसे निष्क्रमण-अभिषेक से अभिषिक्त किया, यावत् स्थविर मुनि को शिष्यभिक्षा प्रदान की। तब कंडरीक प्रव्रजित हो गया, अनगार हो गया, यावत् वह ग्यारह अंगों का वेत्ता हो गया।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् अन्यदा कदाचित् पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान से बाहर निकले। निकल कर बाहर जनपद-विहार करने लगे।

तए णं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य जहा सेलगस्स जाव दाहवक्कंतीए यावि विहरइ।

तत्पश्चात् कण्डरीक अनगार को अन्त-प्रान्त अर्थात् रूखे-सूखे आहार के कारण शैलक मुनि के समान शरीर में यावत् दाह ज्वर उत्पन्न हो गया। वे रूग्ण होकर रहने लगे।

तए णं थेरा अन्नया कयाई जेणेव पोंडरीगिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता णलिणिवणे समोसढा, पोंडरीए णिग्गए, धम्मं सुणेइ।

तए णं पुंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वाबाहं सरोयं पासइ, पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'अहं णं भंते! कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहिं ओसहभेसज्जेहिं जाव तेइच्छं आउट्टामि, तं तुब्भे णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह।'

तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्थविर भगवंत पुण्डरीकिणी नगरी मे पधारे और नलिनीवन उद्यान में ठहरे' तब राजा पुंडरीक राजमहल से निकला और उसने धर्म सुना।

तत्पश्चात् धर्म सुन कर पुंडरीक राजा कडरीक अनगार के पास गया। वहाँ जाकर कंडरीक मुनि को वन्दना की नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके उसने कंडरीक मुनि का शरीर सब प्रकार की बाधा वाला और सरोग देखा। यह देख कर राजा स्थविर भगवंत के पास गया। जाकर स्थविर भगवंत को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया- 'भगवन्! मैं कंडरीक अनगार की यथाप्रवृत (आपकी प्रवृत्ति-समाचारी के अनुकूल) औषध और भेषज से चिकित्सा कराता हूं (कराना चाहता हूँ) अतः भगवन्! आप मेरी यानशाला मे पधारिये।'

तए णं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जाव उवसंपज्जित्ता णं विहरंति। तए णं पुंडरीए राया जहा मंडुए सेलगस्स जाव बलियसरीरे जाए।

उस समय स्थविर भगवान् ने पुंडरीक राजा का यह निवेदन स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके यावत् यानशाला में रहने की आज्ञा लेकर विचरने लगे -वहाँ रहने लगे। तत्पश्चात् जैसे मंडुक राजा ने शैलक ऋषि की चिकित्सा करवाई। यावत् कंडरीक अनगार बलवान् शरीर वाले हो गए।

तए णं थेरा भगवंतो पोंडरीयं रायं पुच्छंति, पुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

तए णं से कंडरीए ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुण्णंसि असणपाणखाइमसाइमंसि मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने, णो संचाएइ पोंडरीयं आपुच्छित्ता बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारं विहरित्तए। तत्थेव ओसण्णे जाए।

तत्पश्चात स्थविर भगवान् ने पुंडरीक राजा से पूछा। पूछ कर वे बाहर जाकर जनपद-विहार विहरने लगे।

उस समय कंडरीक अनगार उस रोग-आतंक से मुक्त हो जाने पर भी उस मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार में मूर्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो गये। अतएव वे पुंडरीक राजा से पूछ कर अर्थात् कह कर बाहर जनपदों में उग्र विहार करने में समर्थ न हो सके। वहाँ शिथिलाचारी हो कर रहने लगे।

तए णं से पोंडरीए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए अंतेउर-परियालसंपरिवुडे जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं तिखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले, जे णं तुमं रज्जं च जाव अंतेउरं च छड्डइत्ता विगोवइत्ता जाव पव्वइए। अहं णं अहण्णे अकयपुण्णे रज्जे जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए जाव अज्झोववन्ने नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए। तं धन्नो सि णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव जीवियफले।'

तत्पश्चात् पुंडरीक राजा ने इस कथा का अर्थ जाना अर्थात् जब उसे यह बात विदित हुई, तब वह स्नान करके और विभूपित होकर तथा अन्तःपुर के परिवार से परिवृत होकर जहाँ कंडरीक अनगार थे, वहाँ आया। आकर उसने कंडरीक को तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। फिर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिय! आप धन्य है, कृतार्थ हैं, कृतपुण्य हैं और सुलक्षण वाले है। देवानुप्रिय! आप को मनुष्य के जन्म और जीवन का फल सुन्दर मिला है, जो आप राज्य को और अन्तःपुर को छोड़ कर और दुत्कार कर प्रव्रजित हुए हैं। और मैं अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, यावत् राज्य में, अन्तःपुर में और मानवीय कामभोगों

में मूर्छित यावत् तल्लीन हो रहा हूँ, यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पा रहा हूं। अतएव देवानुप्रिय! आप धन्य हैं, यावत् आपको जन्म और जीवन का फल सुन्दर प्राप्त हुआ है।

तए णं से कंडरीए अणगारे पुंडरीयस्स एयमट्ठं णो आढाइ जाव संचिट्ठइ। तए णं कंडरीए पोंडरीएणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अकामए अवस्सवसे लज्जाए गारवेण य पोंडरीयं रायं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ। तए णं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं किंचि कालं उग्गंउग्गेणं विहरइ। तओ पच्छा समणत्तणपरितंते समणत्तणणिव्विण्णे समणत्तणणिब्भत्थिए समणगुणमुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुंडरिगिणी णयरी, जेणेव पुंडरियस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता ओहयमणसंकप्पे जाव झियायमाणे संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् कंडरीक अनगार ने पुंडरीक राजा की इस बात का आदर नहीं किया। यावत् वह मौन बने रहे। तब पुण्डरीक ने दूसरी बार और तीसरी बार भी यही कहा। तत्पश्चात् इच्छा न होने पर भी; विवशता के कारण, लज्जा से और बड़े भाई के गौरव के कारण पुण्डरीक राजा से पूछा-अपने जाने के लिए कहा। पूछ कर वह स्थविर के साथ बाहर जनपदों में विचरने लगे। उस समय स्थविर के साथ-साथ कुछ समय तक उन्होंने उग्र-उग्र विहार किया। उसके बाद वह श्रमणत्व (साधुपन) से थक गये, श्रमणत्व से ऊब गये और श्रमणत्व से निर्भर्त्सना को प्राप्त हुए। साधुता के गुणों से मुक्त हो गये। अतएव धीरे-धीरे स्थविर के पास से (बिना आज्ञा प्राप्त किये) खिसक गये। खिसक कर जहाँ पुंडरीकिणी नगरी थी और जहाँ पुंडरीक राजा का भवन था, उसी तरफ आये। आकर अशोकवाटिका में, श्रेष्ठ अशोकवृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिला-पट्टक पर बैठ गये। बैठ कर भग्नमनोरथ चिन्तामग्न हो रहे।

तए णं तस्स पोंडरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता

जेणेव पोंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोंडरीयं रायं एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिया ! तव पिउभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ ।'

तत्पश्चात पुंडरीक राजा की धायमाता जहाँ अशोक वाटिका थी, वहाँ गई। वहाँ जाकर उसने कंडरीक अनगार को अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिला रूपी पट्ट पर, भग्न मनोरथ यावत् चिन्तामग्न देखा। यह देख कर वह पुंडरीक राजा के पास गई और उनसे कहने लगी-'देवानुप्रिय ! तुम्हारा प्रिय भाई कंडरीक अनगार अशोकवाटिका में, उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता मे डूबा हुआ है।'

तए णं पोंडरीए अम्मधाइए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तहेव संभंते समाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता अंतेउरपरियालसंपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जाव कंडरीयं तिक्खुत्तो एवं वयासी-'धण्णे सि तुमं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइए, अहं णं अधण्णे जाव पव्वइत्तए, तं धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले ।'

तब पुंडरीक राजा, धायमाता की यह बात सुन कर और समझ कर, उसी प्रकार संभ्रान्त होकर उठा। उठ कर अन्तःपुर के परिवार के साथ, अशोकवाटिका में गया। जाकर यावत् कंडरीक को तीन बार इस प्रकार कहा-'देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो कि यावत् दीक्षित हुए हो। मै अधन्य हूँ कि यावत् दीक्षित होने के लिए समर्थ नहीं हो पाता। अतएव देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, यावत् तुमने मानवीय जन्म और जीवन का सुन्दर फल पाया है।'

तए णं कंडरीए पुंडरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ, दोच्चं पि तच्चं पि जाव चिट्ठइ।

तत्पश्चात् पुंडरीक के द्वारा इस प्रकार कहने पर कंडरीक चुपचाप रहा। दूसरी बार और तीसरी बार कहने पर भी यावत् वह मौन ही बना रहा।

तए णं पुंडरीए कंडरीयं एवं वयासी-'अट्ठो भंते ! भोगेहिं ?'

'हंता अट्ठो ।'

तब पुंडरीक राजा ने कंडरीक राजा से पूछा–'भगवन्! क्या भोगों से प्रयोजन है ? अर्थात् क्या भोग भोगने की इच्छा है ?'

तब कंडरीक ने कहा–'हाँ, प्रयोजन है।'

तए णं से पोंडरीए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कंडरीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेयं उवट्ठवेह।' जाव रायाभिसेएणं अभिसिंचइ।

तत्पश्चात् पुंडरीक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुला कर इस प्रकार कहा–'देवानुप्रियो शीघ्र ही कंडरीक के महान् अर्थ व्यय वाले यावत् राज्याभिषेक की तैयारी करो।' यावत् कंडरीक का राज्याभिषेक से अभिषेक किया।

तए णं पुंडरीए स्वयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता कंडरीयस्स संतिअं आयारभंडयं गेण्हइ, गेण्हित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ–'कप्पइ मे थेरे वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं तओ पच्छा आहारं आहारित्तए' त्ति कट्टु इमं च एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हेत्ता णं पोंडरीगिणीए पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् पुंडरीक ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया और स्वयं ही चातुर्याम धर्म अंगीकार किया। अंगीकार करके कंडरीक के आचारभाण्ड (उपकरण) ग्रहण किये और इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया:—

'स्थविर भगवान् को वन्दन नमस्कार करने और उनके पास से चातुर्याम धर्म अंगीकार करने के पश्चात् ही मुझे आहार करना कल्पता है।' ऐसा कह कर और इस प्रकार का अभिग्रह धारण करके पुंडरीक पुंडरीकिणी नगरी से बाहर निकला। निकल कर अनुक्रम से चलता हुआ, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाता हुआ, जिस ओर स्थविर भगवान् थे, उसी ओर गमन करने को उद्यत हुआ।

तए णं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तं पणीयं पाणभोयणं आहारियस्स

अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव मिच्छादंसणसल्ले णं पच्चक्खाए' जाव आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे उववण्णे। ततोऽणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

तत्पश्चात् पुंडरीक अनगार निस्तेज, निर्बल, वीर्यहीन और पुरुषकार-पराक्रमहीन हो गये। उन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार कहा -

'यावत सिद्धि प्राप्त अरिहंतों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक स्थविर भगवान् को नमस्कार हो। स्थविर के निकट पहले भी मैं ने समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया, यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का (अठारहों पापस्थानों) का त्याग किया था. इत्यादि कहकर यावत् आलोचना प्रतिक्रमण करके, कालमास में काल करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से अनन्तर चय करके, अर्थात् बीच मे कहीं अन्यत्र जन्म न लेकर सीधे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेंगे, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

एवामेव समणाउसो! जाव पव्वइए समाणे माणुस्सएहिं कामभोगेहिं णो सज्जइ, णो रज्जइ, जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साविर्याणं अच्चणिज्जे वंदणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे त्ति कट्टु परलोए वि य णं णो आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणि य तज्जणाणि य तालणाणि य जाव चाउरंत-संसारकंतारं जाव वीईवइस्सइ, जहा व से पोंडरीए राया।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो हमारा साधु या साध्वी दीक्षित होकर मनुष्य संबंधी कामभोगों में आसक्त नहीं होता, यावत् प्रतिघात को प्राप्त नहीं होता, वह इसी भव में बहुत श्रमणो, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों और बहुत श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय, पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याणरूप, मंगलकारक, देव और चैत्य समान, उपासना करने योग्य होता है। इस के अतिरिक्त वह परलोक मे भी राजदण्ड, राजनिग्रह, तर्जना और ताड़ना को प्राप्त नहीं होता, यावत चतुर्गति रूप संसार-कान्तार को यावत् पार कर जाता है, जैसे पुंडरीक अनगार।

एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीसइमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते ।

'जम्बू ! धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् सिद्धि नामक स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञात-अध्ययन के उन्नीसवे अध्ययन का यह अर्थ कहा है ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

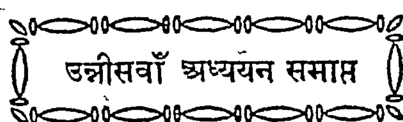
श्रीसुधर्मा स्वामी पुनः कहते हैं-'इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने यावत सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त जिनेश्वर देव ने इस छठे अंग के प्रथम श्रुतस्कंध का यह अर्थ कहा है । जैसा सुना वैसा मैंने कहा है । अपनी बुद्धि के अनुसार नहीं कहा ।

तस्स णं सुयक्खंधस्स एगूणवीसं अज्झयणाणि एक्कासरगाणि एगूणवीसाए दिवसेसु समप्पंति ॥ १४७ ॥

इस प्रथम श्रुतस्कंध के उन्नीस अध्ययन हैं । एक-एक अध्ययन एक-एक दिन में पढ़ने से उन्नीस दिनों मे यह अध्ययन पूर्ण होता है (इसके योगवहन में उन्नीस दिन लगते हैं) ।

उपनय

इस अध्ययन का उपनय स्पष्ट है । जो साधु चिरकाल पर्यन्त उग्र संयम का पालन करके अन्त में प्रतिपाती हो जाता है, संयम से भ्रष्ट हो जाता है, वह कंडरीक की तरह दुःख पाता है । इसके विपरोत जो महानुभाव साधु गृहीत संयम का अन्तिम श्वास तक यथावत् पालन करते है, वे पुंडरीक की भाँति अल्पकाल में ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ।



प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त



अग्रमहिषियों का सातवाँ वर्ग (८) सूर्य की अग्रमहिषियों का आठवाँ वर्ग (९) शक्र इन्द्र की अग्रमहिषियों का नौवा वर्ग और (१०) ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का दसवाँ वर्ग।'

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दस वग्गा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते।

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा–(१) काली (२) राई (३) रयणी (४) विज्जू (५) मेहा।

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं–'भगवन्! श्रमण भगवान् यावत् सिद्धिप्राप्त ने यदि धर्मकथा श्रुतस्कंध के दस वर्ग कहे हैं, तो भगवन्! प्रथम वर्ग का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है?

आर्य सुधर्मा उत्तर देते हैं–'हे जम्बू! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने प्रथम वर्ग के पाँच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं–(१) काली (२) राजी (३) रजनी (४) विद्युत् और (५) मेघा।'

जम्बू ने पुनः प्रश्न किया–'भगवन्! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने यदि प्रथम वर्ग के पाँच अध्ययन कहे हैं तो भगवन्! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है?'

'एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, सेणिए राया, चेलणा देवी। सामी समोसरिए। परिसा निग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ।

श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं–'हे जम्बू! उस काल और उस समय मे राजगृह नगर था, गुणशील चैत्य था, श्रेणिक राजा था, और चेलना रानी थी।

उस समय स्वामी (भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली, यावत् परिषद् भगवान की पर्युपासना करने लगी।

ते णं काले णं ते णं समए णं काली नामं देवी चमरचंचाए रायहाणीए कालवडिंसगभवणे कालंसि सीहासणंसि, चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं मयहरियाहिं, सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अण्णेहिं बहुएहि य कालवडिंसयभवणवासीहिं असुरकुमारेहि देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ।

उस काल और उस समय में, काली नामक देवी चमरचंचा राजधानी में, कालवतंसक भवन में, काल नामक सिंहासन पर आसीन थी। चार हजार सामानिक देवियों, चार महत्तरिका देवियो, परिवार सहित तीनों परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियो, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य कालावतंसक भवन के निवासी असुरकुमार देवो और देवियो के साथ परिवृत्त होकर जोर से बजने वाले वादिन्त्र आदि से मनोरंजन करती हुई यावत् विचरती थी।

इमं च णं केवलकप्पं जंबुदीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी पासइ। तत्थ णं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे गुणसीलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा हयहियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउया ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमइत्ता कडयतुडियथंभियाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी—

अग्रमहिषियों का सातवाँ वर्ग (८) सूर्य की अग्रमहिषियों का आठवाँ वर्ग (९) शक्र इन्द्र की अग्रमहिषियों का नौवा वर्ग और (१०) ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का दसवाँ वर्ग।'

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दस वग्गा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते।

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-(१) काली (२) राई (३) रयणी (४) विज्जू (५) मेहा।

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

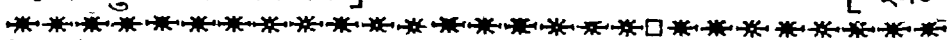
जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं-'भगवन्! श्रमण भगवान् यावत् सिद्धिप्राप्त ने यदि धर्मकथा श्रुतस्कंध के दस वर्ग कहे हैं, तो भगवन्! प्रथम वर्ग का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है?

आर्य सुधर्मा उत्तर देते हैं-'हे जम्बू! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने प्रथम वर्ग के पाँच अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) काली (२) राजी (३) रजनी (४) विद्युत् और (५) मेघा।'

जम्बू ने पुनः प्रश्न किया-'भगवन्! श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने यदि प्रथम वर्ग के पाँच अध्ययन कहे है तो भगवन्! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है?'

'एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, सेणिए राया, चेलणा देवी। सामी समोसरिए। परिसा निग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ।

श्रीसुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं-'हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था, गुणशील चैत्य था, श्रेणिक राजा था, और चेलना रानी थी।

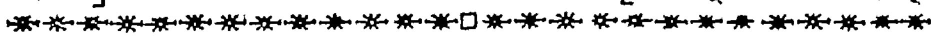


उस समय स्वामी (भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। वन्दना करने के लिए परिषद् निकली, यावत् परिषद् भगवान की पर्युपासना करने लगी।

ते णं काले णं ते णं समए णं काली नामं देवी चमरचंचाए रायहाणीए कालवडिंसगभवणे कालंसि सीहासणंसि, चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं मयहरियाहिं, सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अण्णेहिं बहुएहि य कालवडिंसयभवणवासीहिं असुरकुमारेहि देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ।

उस काल और उस समय में, काली नामक देवी चमरचंचा राजधानी में, कालवतंसक भवन में, काल नामक सिंहासन पर आसीन थी। चार हजार सामानिक देवियों, चार महत्तरिका देवियों, परिवार सहित तीनों परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य कालावतंसक भवन के निवासी असुरकुमार देवों और देवियों के साथ परिवृत होकर जोर से बजने वाले वादिन्त्र आदि से मनोरंजन करती हुई यावत् विचरती थी।

इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी पासइ। तत्थ णं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे गुणसीलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा हयहियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउया ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमइत्ता कडयतुडियथंभियाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी—



वह काली देवी इस केवल कल्प (सम्पूर्ण) जम्बूद्वीप को अपने विपुल अवधिज्ञान से उपयोग लगाती हुई देख रही थी। उसने जम्बू द्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में, राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में, यथाप्रतिरूप-साधु के लिए उचितस्थान की याचना करके, संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को देखा। देख कर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुई उसका चित्त आनन्दित हुआ। मन प्रीतियुक्त हो गया। वह अपहृत हृदय होकर सिंहासन से उठी। पादपीठ से नीचे उतरी। उसने पादुका (खडाऊँ) उतार दिये। फिर तीर्थंकर भगवान् के सन्मुख सात-आठ पैर आगे बढ़ी। बढ़ कर बाएँ घुटने को ऊपर रक्खा और दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेक दिया। फिर मस्तक कुछ ऊँचा किया। तत्पश्चात् कड़ों और बाजूबंदों से स्तंभित भुजाओं को मिलाया। मिलाकर, दोनो हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहने लगी :-

'णमोऽत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इह गए, पासउ णं मे समणे भगवं महावीरे तत्थ गए इह गयं' ति कट्टु वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा निसण्णा।

'यावत् सिद्धि को प्राप्त अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो। यावत् सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा वाले श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो यहाँ रही हुई मैं वहाँ स्थित भगवान को वन्दना करती हूं। वहाँ स्थित श्रमण भगवान् महावीर यहाँ रही हुई मुझको देखे।' इस प्रकार कह कर वंदना की, नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हो गई।

तए णं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था-'सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवासित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-'एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे एवं जहा सुरि-याभो तहेव आणत्तियं देइ, जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं करेह। करित्ता जाव पच्चप्पिणह।' ते वि तहेव करित्ता जाव पच्चप्पिणंति, णवरं जोयणसहस्सविच्छिन्नं जाणं, सेसं तहेव। तहेव णामगोयं साहेइ, तहेव नट्टविहिं उवदंसेइ, जाव पडिगया।

तत्पश्चात् काली देवी को इस प्रकार का यह अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ–'श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करके यावत उनकी पर्युपासना करना मेरे लिए श्रेयस्कर है।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके आभियोगिक देवों को बुलाया। बुला कर उन्हे इस प्रकार कहा–'देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में विराजमान हैं,' इत्यादि जैसे सूर्याभ देव ने अपने आभियोगिक देवों को आज्ञा दी थी, उसी प्रकार काली देवी ने भी आज्ञा दी कि यावत् 'दिव्य और श्रेष्ठ देवताओं के गमन के योग्य यान-विमान बना कर तैयार करो, यावत् मेरी आज्ञा वापिस सौंपो।' आभियोगिक देवों ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा लौटा दी। यहाँ विशेषता यही है कि हजार योजन विस्तार वाला विमान बनाया (जब कि सूर्याभ देव के लिए लाख योजन का विमान बनाया गया था।) शेष वर्णन सूर्याभ के वर्णन के समान ही समझना चाहिए। सूर्याभ की तरह ही भगवान् के पास जा कर अपना नाम-गोत्र कहा, उसी प्रकार नाटक दिखलाया। फिर वह काली देवी वापिस चली गई।

भंते त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–'कालिए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी कहिं गया? कूडागारसालादिट्ठंतो।

'अहो भगवन्!' इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार करके इस प्रकार कहा–'भगवन्! काली देवी की वह दिव्य ऋद्धि कहाँ चली गई?' भगवान् ने उत्तर मे कूटाकार शाला का दृष्टान्त दिया।*

अहो णं भंते! काली देवी महिड्ढिया। कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी किण्णा लद्धा? किण्णा पत्ता? किण्णा अभिसमण्णागया?' एवं जहा सूरियाभस्स जाव एवं खलु गोयमा! ते णं काले णं ते णं समए णं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा णाम णयरी होत्था। वण्णओ। अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया।

'अहो भगवन्! काली देवी महती ऋद्धि वाली है। भगवन्! काली देवी को वह मनोहर देवर्धि पूर्वभव मे क्या करने से मिली? देवभव मे कैसे प्राप्त हुई? और किस प्रकार उसके सामने आई, अर्थात् उपभोग मे आने योग्य

*दृष्टान्त पहले आ चुका है।

हुई ?' यहाँ सूर्याभ के समान ही कहना चाहिए । तब भगवान् ने कहा-'हे गौतम ! उस काल और उस समय में, इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारत वर्ष में, आमलकल्पा नामक नगरी थी । उसका वर्णन समझना चाहिए । उस नगरी के बाहर ईशान दिशा मे आम्रशालवन नामक चैत्य (वन) था । उस नगरी मे जितशत्रु नामक राजा था ।

तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी णामं भारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा । तस्स णं कालगस्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली णामं दारिया होत्था, वड्डा वड्डकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी णिव्विन्न-वरा वरपरिवज्जिया वि होत्था ।

उस आमलकल्पा नगरी मे काल नामक एक गाथापति (गृहस्थ) रहता था । वह धनाढ्य था और किसी से पराभूत होने वाला नहीं था । उस काल गाथापति की कालश्री पत्नी थी । वह सुकुमार हाथ पैर आदि अवयवो वाली यावत् मनोहर रूप वाली थी । उस काल गाथापति की पुत्री और कालश्री भार्या की आत्मजा काली नामक बालिका थी । वह (उम्र से) बड़ी थी और बड़ी होकर भी कुमारी (अविवाहिता) थी । वह जीर्णा (शरीर से जीर्ण होने के कारण वृद्धा) थी और जीर्णा होते हुए कुमारी थी । उसके स्तन नितंब प्रदेश तक लटक गये थे । वर (पति बनने वाले पुरुष) उससे विरक्त हो गये थे अर्थात् कोई उसे चाहता नहीं था, अतएव वह वररहित रह रही थी ।

ते णं काले णं ते णं समए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइ-गरे जहा वद्धमाणसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहि समणसाहस्सीहिं अट्ठत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे जाव अंबतालवणे समो-सढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ ।

उस काल और उस समय में पुरुषादानीय (पुरुषों में आदेय नाम कर्म वाले) एव धर्म की आदि करने वाले पार्श्व नाथ अरिहत थे । वे वर्धमान स्वामी के समान थे, केवल उनका शरीर नौ हाथ ऊँचा था), तथा वे सोलह हजार साधुओं और अड़तीस हजार साध्वियो से परिवृत थे । यावत् वे पुरुषादानीय पार्श्व तीर्थंकर आम्रशाल वन में पधारे । वन्दन करने के लिए परिषद् निकली, यावत् वह भगवान् की उपासना करने लगी ।

तए णं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—'एवं खलु अम्मयाओ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहि अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।'

तत्पश्चात् वह काली दारिका इस कथा का अर्थ प्राप्त करके अर्थात् भगवान् के पधारने का सामाचार जानकर हर्षित और संतुष्ट हृदय वाली हुई। जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गई। जाकर दोनो हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली—'हे माता-पिता! पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय, धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् यहाँ विचर रहे हैं। अतएव हे मातापिता! आपकी आज्ञा हो तो मैं पार्श्वनाथ अरिहन्त पुरुषादानीय के चरणों में वन्दना करने जाना चाहती हूँ।'

माता-पिता ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये! तुझे जैसे सुख उपजे, वैसा कर। धर्मकार्य में विलंब मत कर।'

तए णं सा कालिया दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुन्नाया समाणी हट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं दुरूढा।

तत्पश्चात् वह काली नामक दारिका माता-पिता की आज्ञा पाकर यावत् हर्षित हृदय हुई। उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया तथा साफ, सभा के योग्य, मांगलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को भूषित किया। फिर दासियों के समूह से परिवृत होकर अपने गृह से निकली निकल कर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला (सभा) थी, वहाँ आई। आकर धर्म संबंधी श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई।

तए णं सा काली दारिया धम्मियं जाणपवरं एवं जहा दोवई जाव पज्जुवासइ। तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालयाए परिसाए धम्मं कहेइ।

तत्पश्चात् काली नामक दारिका धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ होकर द्रौपदी के समान भगवान् को वन्दना करके उपासना करने लगी। उस समय पुरुषादानीय तीर्थंकर पार्श्व ने काली नामक दारिका को और उस विशाल जन-समूह को धर्म का उपदेश दिया।

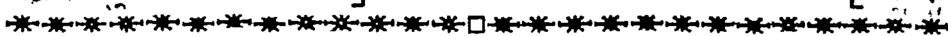
तए णं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिक्खुत्तो वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि।'

'अहासुहं देवाणुप्पिये!'

तत्पश्चात् उस काली नामक दारिका ने पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथ के पास से धर्म सुन कर उसे हृदय में धारण करके, हर्षित हृदय होकर यावत् पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्वनाथ को तीन बार वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया-'भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूं। यावत् आप जैसा कहते हैं, वह वैसा ही है। केवल, हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पिता से पूछ लेती हूँ, उसके बाद मैं आप देवानुप्रिय के निकट प्रव्रज्या ग्रहण करूँगी।'

भगवान् ने कहा-'देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख उपजे, करो।'

तए णं सा काली दारिया पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ जाव हियया पासं अरहं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी तेणेव उवा-



गच्छइ, उवागच्छित्ता आमलकप्पं णयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं ठवेइ, ठवित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मा-पियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी:—

तत्पश्चात् पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्व के द्वारा इस प्रकार कहने पर वह काली नामक दारिका हर्षित एव सतुष्ट हृदय वाली हुई। उसने पार्श्व अरहंत को वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वह उसी धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर पुरुषादानीय अरिहन्त पार्श्व के पास से, आम्रशालवन नामक चैत्य से बाहर निकली और आमलकल्पा नगरी की ओर चली। आमलकल्पा नगरी के मध्य भाग मे हो कर जहाँ बाहर की उपस्थान-शाला थी वहाँ पहुँची। धार्मिक एवं श्रेष्ठ यान को ठहराया और फिर उससे नीचे उतरी। फिर अपने माता-पिता के पास जाकर और दोनों हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार बोली:—

'एवं खलु अम्मयाओ! मए पासस्स अरहओ अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य णं धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए, तए णं अहं अम्मयाओ! संसारभउव्विग्गा भीया जम्मणमरणाणं, इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'

'हे माता-पिता! मैंने पार्श्वनाथ तीर्थंकर से धर्म सुना है। और उस धर्म की मैंने इच्छा की है, पुनः पुनः इच्छा की है। वह धर्म मुझे रुचा है। इस कारण हे मात-तात! मैं संसार के भय से उद्विग्न हो गई हूँ, जन्म-मरण से भयभीत हो गई हूँ। आपकी आज्ञा पाकर पार्श्व अरिहन्त के समीप मुंडित होकर, गृहत्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या धारण करना चाहती हूँ।'

माता-पिता ने कहा-'देवानुप्रिये! जैसे सुख उपजे, करो। धर्मकार्य में विलम्ब न करो।'

तए णं से काले गाहावई विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरियणं आमंतेइ, आमंतित्ता ततो पच्छा ण्हाए जाव विपुलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालं-

कारेणं सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरियणस्स पुरओ कालियं दारियं सेयापीएहिं कलसेहिं एहावेइ, एहावित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दुरूहेइ, दुरूहित्ता मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरियणेणं सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए, जाव रवेणं आमलकप्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव अंबसालवणे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताइए तित्थगराइसए पासइ, पासित्ता सीयं ठवेइ, ठवित्ता कालियं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासीः—

तत्पश्चात् काल नामक गाथापति ने विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रा, ज्ञातिजनों, निजक स्वजन संबंधी और परिजनों को आमंत्रण दिया। आमंत्रण देकर स्नान किया। फिर यावत् विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध, माल्य और अलंकार से उनका सत्कार-सन्मान करके, उन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों के सामने काली नामक दारिका को श्वेत एवं पीत अर्थात् चांदी और सोने के कलशों से स्नान करवाया। स्नान करवाने के पश्चात् उसे सर्व अलंकारों से विभूषित किया। फिर पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर आरूढ़ किया। आरूढ़ करके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी और परिजनों के साथ परिवृत होकर, सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ, यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ, आमलकल्पा नगरी के बीचों बीच होकर निकले। निकल कर आम्रशालवन की ओर चले चल कर छत्र आदि तीर्थंकर भगवान् के अतिशय देखे। अतिशयों पर दृष्टि पडते ही शिविका रोक दी गई। फिर माता-पिता काली नामक दारिका को आगे करके जिस ओर पुरुषादानीय तीर्थंकर पार्श्व थे, उसी ओर गये। जाकर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करने के पश्चात् इस प्रकार कहाः—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! काली दारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता जाव किमंग पुण पासणयाए? एस णं देवाणुप्पिया! संसार भउव्विग्गा इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता णं जाव पव्वइत्तए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणीभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणिभिक्खं।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।'

'इस प्रकार हे देवानुप्रिय ! काली नामक दारिका हमारी पुत्री है। हमें यह इष्ट है और प्रिय है, यावत् इसका दर्शन भी दुर्लभ है। देवानुप्रिय ! यह संसार भ्रमण के भय से उद्विग्न होकर आप देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर यावत् प्रव्रजित होने की इच्छा करती है। अतएव हम यह शिष्यनीभिक्षा देवानुप्रिय को प्रदान करते हैं। देवानुप्रिय शिष्यनीभिक्षा अंगीकार करें।'

तब भगवान् बोले–'देवानुप्रियो ! जैसे सुख उपजे, करो। धर्मकार्य में विलम्ब न करो।'

तए णं सा काली कुमारी पासं अरहं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसिभायं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव लोयं करेइ, करित्ता जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासं अरहं तिक्खुत्तो वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–आलित्ते णं भंते ! लोए' एवं जहा देवाणंदा, जाव सयमेव पव्वावेउं।

तत्पश्चात् काली कुमारी ने पार्श्व अरहंत को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके वह उत्तरपूर्व (ईशान) दिशा के भाग में गई। वहाँ जाकर उसने स्वयं ही आभूषण, माला और अलंकार उतारे और स्वयं ही लोच किया। फिर जहाँ पुरुषादानीय अरहन्त पार्श्व थे, वहाँ आई। आकर पार्श्व अरहन्त को तीन बार वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोली–'भगवन् ! यह लोक आदीप्त है अर्थात् जन्म-मरण आदि के संताप से जल रहा है, इत्यादि देवानन्दा के समान जानना चाहिए। यावत् मैं चाहती हूँ कि आप स्वयं ही मुझे दीक्षा प्रदान करें।

तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयति। तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं कुमारिं सयमेव पव्वावेइ, जाव उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तए णं सा काली अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी। तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाअज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूणि चउत्थ जाव विहरइ।

तत्पश्चात् पुरुषादानीय अरहन्त पार्श्व ने स्वयमेव काली कुमारी को, पुष्पचूला आर्या को शिष्यनी के रूप मे प्रदान किया। तब पुष्पचूला आर्या ने काली कुमारी को स्वयं ही दीक्षित किया। यावत वह काली प्रव्रज्या अगीकार करके विचरने लगी। तत्पश्चात् वह काली आर्या ईर्यासमिति से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई। तदनन्तर उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या के निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अंगो का अध्ययन किया तथा बहुत-से चतुर्थभक्त (उपवास) षष्टभक्त आदि तपश्चरण करती हुई विचरने लगी।

तए णं सा काली अज्जा अन्नया कयाइं सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवइ, पाए धोवइ, सीसं धोवइ, मुहं धोवइ, थणंतराइं धोवइ, कक्खंतराणि धोवइ, गुज्झंतराइं धोवइ, जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेएइ, तं पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता पच्छा आसयइ वा सयइ वा।

तत्पश्चात् किसी समय, एक बार वह काली आर्या शरीरबाकुशिका (शरीर को साफ-सुथरा रखने की वृत्ति वाली) हो गई। अतएव वह बार-बार हाथ धोने लगी, पैर धोने लगी, सिर धोने लगी, मुख धोने लगी, स्तनों के अन्तर धोने लगी, कांखों के अन्तर-प्रदेश धोने लगी और गुह्य स्थान धोने लगी। जहाँ-जहाँ वह कायोत्सर्ग, शय्या या स्वाध्याय करती थी, उस स्थान पर पहले जल छिड़क कर बाद में बैठती अथवा सोती थी।

तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं अज्जं एवं वयासी-'नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिए! समणीणं णिग्गंथीणं सरीरबाउसियाणं होत्तए, तुमं च णं देवाणुप्पिए, सरीरबाउसिया जाया अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवसि जाव आसयाहि वा सयाहि वा, तं तुमं देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।'

तब पुष्पचूला आर्या ने उस काली आर्या से कहा-'हे देवानुप्रिये! श्रमणी निर्ग्रंथियो को शरीरबकुशा होना नहीं कल्पता। और तुम देवानुप्रिये! शरीरबकुशा हो गई हो। बारंबार हाथ धोती हो, यावत् पानी छिड़क कर बैठती और सोती हो। अतएव देवानुप्रिये! तुम इस पापस्थान की आलोचना करो, यावत् प्रायश्चित्त अंगीकार करो।'

तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्ठं नो आढाइ जाव तुसिणीया संचिट्ठइ।

तब काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या की यह बात स्वीकार नहीं की। यावत् वह चुप बनी रही।

तए णं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्जं अभिक्खणं अभिक्खणं हीलेंति, णिंदंति, खिसंति, गरिहंति, अवमण्णंति, अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति।

तत्पश्चात् वे पुष्पचूला आदि आर्याएँ, काली आर्या की बार-बार अवहेलना करने लगीं, निन्दा करने लगीं, चिढ़ने लगी, गर्हा करने लगी, अवज्ञा करने लगी और बार-बार इस अर्थ (निषिद्ध कर्म) को रोकने लगीं।

तए णं तीसे कालीए अज्जाए समणीहिं णिग्गंथीहिं अभिक्खणं अभिक्खणं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'जया णं अहं अगारवासमज्झे वसित्था, तया णं अहं सयंवसा, जप्पभिइं च णं अहं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइया, तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया, तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते पाडिक्कियं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते पाडिएक्कं उवस्सयं गिण्हइ, तत्थ णं अणिवारिया अणोहट्टिया सच्छंदमई अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवइ, जाव आसयाइ वा सयइ वा।

निर्ग्रंथी श्रमणियों द्वारा बारंबार अवहेलना की गई यावत् रोकी गई उस काली आर्यिका के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ-'जब मैं गृहवास में वसती थी, तब मैं स्वाधीन थी, किन्तु जब से मैंने मुंडित होकर गृहत्याग कर अनगारिता की दीक्षा अंगीकार की है, तब से मैं पराधीन हो गई हूँ। अतएव कल रजनी के प्रभातयुक्त हो जाने पर यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर अलग उपाश्रय ग्रहण करके रहना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा।' उसने ऐसा विचार किया। विचार करके दूसरे दिन सूर्य के प्रकाशमान होने पर उसने पृथक् उपाश्रय ग्रहण कर लिया वहाँ कोई रोकने वाला नही रहा, हटकने (निषेध करने) वाला नहीं रहा, अतएव वह स्वच्छंदमति हो गई और बार-बार हाथ धोने लगी, यावत् जल छिड़क-छिड़क कर बैठने और सोने लगी।

तए णं सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला कुसीलविहारी, अहाछंदा, अहाछंदविहारी,

संसत्ता संसत्तविहारी, बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेदित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयअप्पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए कालवडिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिया अंगुलस्स असंखेज्जाइ-भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवीत्ताए उववन्ना ।

तत्पश्चात वह काली आर्या पासत्था (पार्श्वस्था-ज्ञान दर्शन चारित्र के पास रहने वाली), पासत्थ विहारिणी, अवसन्ना (धर्मक्रिया मे आलसी), अवसन्नविहारिणी, कुशीला, कुशीलविहारिणी, यथाछंदा (मनचाहा व्यवहार करने वाली), यथाछंदविहारिणी, संसक्ता (ज्ञानादि की विराधना करने वाली), तथा संसक्तविहारिणी होकर, बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय (चारित्र) का पालन करके, अर्द्धमास (एक पखवाड़े) की संलेखना द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके तीस बार के भोजन को अनशन से छेद कर, उस पाप-कर्म की आलोचना-प्रतिक्रमण न करके, कालमास में काल करके, चमरचंचा राजधानी मे, कालावतंसक नामक विमान में; उपपात (देवों के उत्पन्न होने की) सभा मे, देवशय्या में, देवदूष्य वस्त्र से अंतरित होकर (देवदूष्य वस्त्र के नीचे) अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना द्वारा, काली देवी के रूप में उत्पन्न हुई ।

तए णं सा काली देवी अहुणोववन्ना समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए जहा सूरियाभो जाव भासामणपज्जत्तीए ।

तत्पश्चात् काली देवी तत्काल उत्पन्न होकर सूर्याभ देव की तरह यावत् भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति आदि पांच प्रकार की पर्याप्तियो से युक्त हो गई ।

तए णं सा काली देवी चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव अण्णेसिं च बहूणं कालवडेंसगभवणवासीणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव विहरइ । एवं खलु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी ३ लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।

तत्पश्चात् वह काली देवी चार हजार सामानिक देवों तथा अन्य बहुतेरे कालावतंसक नामक भवन में निवास करने वाले असुरकुमार देवों और देवियों

का अधिपतित्व करती हुई यावत् विचरने लगी। इस प्रकार हे गौतम! काली देवी ने वह दिव्य देवऋद्धि आदि प्राप्त की है यावत् उपभोग मे आने योग्य बनाई है।

कालीए णं भंते! देवीए केवइयं कालं ठिई पएणत्ता?

गोयमा! अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पएणत्ता।

काली णं भंते! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उववट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया-'भगवन्! काली देवी की कितने काल की स्थिति कही गई है?'

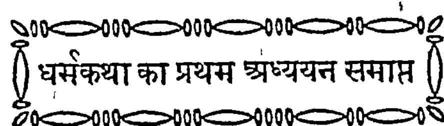
भगवान्—'हे गौतम! अढ़ाई पल्योपम की स्थिति कही है।

गौतम—'भगवन्! काली देवी उस देवलोक से अनन्तर चय कर (शरीर त्याग) कर कहाँ उत्पन्न होगी?'

भगवान्—'गौतम! महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर यावत् सिद्धि प्राप्त करेगी।

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमवग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पएणत्ते त्ति बेमि॥ १४८॥

श्रीसुधर्मा स्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए कहते है-'हे जम्बू! यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। वही मैने तुमसे कहा है।



प्रथम वर्ग-द्वितीय अध्ययन



जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, बिइयस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

जम्बू स्वामी ने अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा से प्रश्न किया–'भगवन् ! यदि यावत् सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो यावत् सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णगरे, गुणसीलए चेइए, सामी समोसढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ ।

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया– हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था तथा गुणशील नामक उद्यान था। स्वामी (भगवान् महावीर) पधारे। वन्दन करने के लिए परिषद् निकली यावत् भगवान् की उपासना करने लगी।

ते णं काले णं ते णं समए णं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा काली तहेव आगया, णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया । भंते त्ति भगवं गोयमे पुव्वभवपुच्छा ।

उस काल और उस समय मे राजी नामक देवी चमरचंचा राजधानी से, काली देवी के समान भगवान् की सेवा मे आई और नाट्यविधि दिखला कर चली गई। उस समय 'हे भगवन् ! इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी ने राजी देवी के पूर्वभव की पृच्छा की। (तब भगवान् ने आगे कहा जाने वाला वृत्तान्त कहा)।

एवं खलु गोयमा ! ते णं काले णं ते णं समए णं आमलकप्पा णयरी, अंबसालवणे चेइए, जियसत्तू राया, राई गाहावई, राईसिरी

भारिया, राई दारिया, पासस्स समोसरणं, राई दारिया जहेव काली तहेव णिक्खंता, तहेव सरीरबाउसिया, तं चेव सव्वं जाव अंतं काहिइ। (२)

'हे गौतम ! उस काल और उस समय में आमलकल्पा नगरी थी। आम्रशालवन नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। राजी नामक गाथापति था। राजी श्री उसकी भार्या थी। राजी उसकी पुत्री थी। किसी समय पार्श्व तीर्थंकर पधारे। काली की भाँति राजी दारिका भी भगवान् को वन्दना करने के लिए निकली। वह भी काली की तरह दीक्षित होकर शरीरबकुशा हो गई। शेष समस्त वृत्तान्त काली के समान ही समझना चाहिए, यावत् सिद्धि प्राप्त करेगी। (२)

एवं खलु जंबू ! बिइयज्झयणस्स निक्खेवओ।

इस प्रकार हे जम्बू ! द्वितीय अध्ययन का निक्षेप जानना चाहिए।

जइ णं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से कहा-'भगवन् ! यदि (दूसरे अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो) तीसरे अध्ययन का क्या उत्क्षेप (उपोद्घात या अर्थ) कहा है ?

एवं खलु जम्बू ! रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, एवं जहेव राई तहेव रयणी वि। णवरं-आमलकप्पा णयरी, रयणी गाहावई रयणसिरी भारिया, रयणी दारिया, सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ। (३)

'हे जम्बू ! राजगृह नगर और गुणशील चैत्य था। इस प्रकार जो राजी के विषय में कहा गया है, वही सब रजनी के विषय में भी नाट्यविधि आदि दिखलाने का वृत्तान्त कहना चाहिए। विशेषता यह है-आमलकल्पा नगरी मे रजनी नामक गाथापति था। रजनीश्री उसकी भार्या थी और रजनी नाम की उनकी पुत्री थी। शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् मुक्ति प्राप्त करेगी। (३)

एवं विज्जू वि, आमलकप्पा नयरी विज्जू गाहावई, विज्जुसिरी भारिया, विज्जू दारिया, सेसं तहेव। (४)

(उत्तर)-हे जम्बू उस काल और उस समय में राजगृह नगर था। गुणशील चैत्य था। भगवान् का पदार्पण हुआ। परिषद् निकली और भगवान् की उपासना करने लगी।

उस काल मे और उस समय में (भगवान् जब राजगृह में पधारे, उस समय) शुंभा नामक देवी बलिचंचा राजधानी मे, शुंभावतंसक भवन मे, शुंभ नामक सिंहासन पर आसीन थी। इत्यादि काली देवी के अध्ययन के अनुसार समस्त वृत्तान्त कहना चाहिए, यावत् वह नाट्यविधि दिखला कर वापिस चली गई।

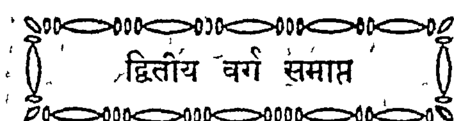
पुव्वभवपुच्छा। सावत्थी णयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तू राया, सुंभे गाहावई, सुंभसिरी भारिया, सुंभा दारिया, सेसं जहा कालिया, णवरं अद्धुट्ठाइं पलिओवमाइं ठिई। एवं खलु जंबू! निक्खेवओ अज्झयणस्स। (१)

(शुंभा देवी जब नाटक दिखला कर चली गई तो गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के विषय में पृच्छा की। भगवान् ने बतलाया-श्रावस्ती नगरी थी। कोष्ठक नामक चैत्य था। जितशत्रु राजा था। श्रावस्ती में शुंभ गाथापति था। शुंभश्री उसकी पत्नी थी। शुंभा नामक उनकी पुत्री थी। शेष सब वृत्तान्त काली के समान समझना चाहिए। विशेष यह है-शुंभा देवी की साढ़े तीन पल्योपम की स्थिति है। हे जम्बू! दूसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह निक्षेप (अर्थ) है। (१)

एवं सेसा वि चत्तारि अज्झयणा सावत्थीए। णवरं माया पिया सरिसनामया। (२-३-४-५)

एवं खलु जंबू! निक्खेवओ वितीयवग्गस्स॥ १५०॥

इसी प्रकार शेष चार अध्ययन कहने चाहिए। इन सब मे श्रावस्ती नगरी कहनी चाहिए और उन-उन देवियों (पूर्वभव की पुत्रियों) के समान उनके माता-पिता के नाम समझ लेने चाहिए।



तृतीय-वर्ग



उक्खेवओ तइयवग्गस्स । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तइअस्स वग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—पढमे अज्झयणे जाव चउपण्णइमे अज्झयणे ।

तीसरे वर्ग का उपोद्घात समझ लेना चाहिए, अर्थात् जम्बू स्वामी के प्रश्न से उसकी भूमिका जान लेनी चाहिए । श्रीसुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया-'हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर यावत् मुक्तिप्राप्त ने तीसरे वर्ग के चौपन अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार--प्रथम अध्ययन ....यावत् चौपनवाँ अध्ययन ।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स चउप्पन्नज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

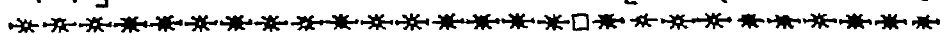
(प्रश्न)-भगवन् ! यदि श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् महावीर ने धर्मकथा के तीसरे वर्ग के चौपन अध्ययन कहे हैं, तो भगवन् ! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् सिद्धिप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए, सामी समोसढे, परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ ।

ते णं काले णं ते णं समए णं इला देवी धरणीए रायहाणीए इलावडंसए भवणे इलंसि सीहासणंसि, एवं कालीगमएणं जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया ।

(उत्तर)-हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे राजगृह नगर और गुणशील उद्यान था । भगवान् पधारे । परिषद् निकली और भगवान् की उपासना करने लगी ।

उस काल और उस समय इला देवी धरणी नामक राजधानी में, इलावतंसक भवन में, इला नामक सिंहासन पर आसीन थी । इस प्रकार काली देवी के समान इला देवी भी यावत् नाट्यविधि दिखला कर लौट गई ।



पुव्वभवपुच्छा। वाराणसीए णयरीए काममहावणे चेइए, इले गाहावई, इलसिरी भारिया, इला दारिया, सेसं जहा कालीए। णवरं धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ सातिरेगअद्धपलिओवमठिई, सेसं तहेव।

इला देवी के चले जाने पर गौतम स्वामी ने उसका पूर्वभव पूछा। भगवान् ने उत्तर दिया—वाराणसी (बनारस) नगरी थी। उसमें काम महावन नामक उद्यान था। इल नामक गाथापति था। इलश्री उसकी पत्नी थी। इला पुत्री थी। शेष सब काली के समान। विशेष यह है कि इला आर्या धरणेन्द्र की अग्रमहिषी के रूप मे उत्पन्न हुई है। स्थिति अर्ध पल्योपम से कुछ अधिक है। शेष वृत्तान्त पूर्ववत्

एवं खलु णिक्खेवओ पढमज्झयणस्स।

यहाँ पहले अध्ययन का निक्षेप कहना चाहिए।

एवं कमा सतेरा १, सोयामणी २, इंदा ३, घणा ४, विज्जुया वि ५, सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गमहिसीओ एव।

इसी प्रकार क्रम से (१) सतेरा (२) सौदामिनी (३) इन्द्रा (४) घना और विद्युता, इन पाँच देवियों के पाँच अध्ययन कहने चाहिए। यह सब धरणेन्द्र की अग्रमहिषियाँ ही है।

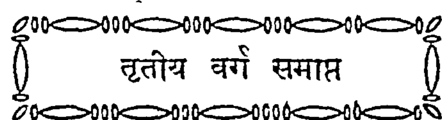
एते छ अज्झयणा वेणुदेवस्स वि अविसेसिया भाणियव्वा, एवं जाव घोसस्स वि एए चेव छ अज्झयणा।

इसी प्रकार के छह अध्ययन, बिना किसी विशेपता के, वेणुदेव के भी कहने चाहिए। और इसी प्रकार घोष इन्द्र तक के भी छह अध्ययन जानने चाहिए।

एवमेते दाहिणिल्लाणं इंदाणं चउप्पण्णं अज्झयणा भवंति, सव्वाओ वि वाणारसीए काममहावणे चेइए। तइयवग्गस्स णिक्खेवओ। (३) ॥ १५१ ॥

इस प्रकार दक्षिण दिशा के इन्द्रो के चौपन अध्ययन होते हैं। यह सब वाणारसी नगरी के काममहावन नामक चैत्य में कहने चाहिये।

यहाँ तीसरे वर्ग का निक्षेप कहना चाहिए



चौथा वर्ग

चउत्थस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं चउत्थवग्गस्स चउप्पण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा–पढमे अज्झयणे जाव चउप्पण्णइमे अज्झयणे।

प्रारंभ में चौथे वर्ग का उपोद्घात कह लेना चाहिए, अर्थात जंबू स्वामी का प्रश्न यहाँ समझ लेना चाहिए। उसका उत्तर सुधर्मा स्वामी देते हैं-'हे जम्बू! श्रमण यावत् सिद्धि को प्राप्त भगवान् महावीर ने धर्मकथा के चौथे वर्ग के चौपन अध्ययन कहे है। वे इस प्रकार-पहला अध्ययन यावत् चौपनवाँ अध्ययन।

पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कह लेना चाहिए। हे जम्बू! उस काल और उस समय मे राजगृह नगर (गुणशील उद्यान) में भगवान् पधारे। यावत् परिषद् आकर भगवान् की सेवा करने लगी।

ते णं काले णं ते णं समए णं रुया देवी रुयाणंदा रायहाणी रुयगवडिंसए भवणे रुयगंसि सिंहासणंसि जहा कालीए तहा, नवरं पुव्वभवे चंपाए पुण्णभद्दे चेइए रुयगगाहावई रुयगसिरी भारिया रुया दारिया, सेसं तहेव। णवरं भूयाणंद-अग्गमहिसित्ताए उववाओ देसूणं-पलिओवमं ठिई। णिक्खेवओ।

उस काल और उस समय मे रुचा देवी, रुचानन्दा नामक राजधानी में, रुचकावतंसक भवन मे, रुचक नामक सिंहासन पर आसीन थी। इत्यादि वृत्तान्त काली के समान समझना चाहिए। विशेपता यह है- पूर्वभव मे चंपा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। वहाँ रुचक नामक गाथापति था। रुचक श्री उसकी भार्या थी। रुचा नामक उनकी पुत्री थी, शेष वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेपता यह है-भूतानन्द नामक इन्द्र की अग्रमहिषी के रूप

उसका उपपात हुआ। स्थिति कुछ कम एक पल्योपम की है। यहाँ चौथे वर्ग के प्रथम अध्ययन का निक्षेप कहना चाहिए, अर्थात् यह कहना चाहिए कि श्रमण यावत् सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर ने चौथे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

एवं खलु सुरुया वि १, रुयंसा वि २, रुयगावई वि ३, रुयकंता वि ४, रुयप्पभा वि ५। एयाओ चेव उत्तरिल्लाणं इंदाणं भाणियव्वाओ जाव महाघोसस्स। निक्खेवओ चउत्थवग्गस्स। (४) ।१५२।

इसी प्रकार (१) सुरुचा (२) रुचांशा (३) रुचकावती (४) रुचकान्ता और (५) रुचप्रभा नामक पाँच देवियों के पाँच अध्ययन कहने चाहिए। इसी प्रकार छह छह देवियाँ नौवें महाघोष तक उत्तरदिशा के इन्द्रों की कहनी चाहिए। इस प्रकार छह-छह अध्ययन नौ इन्द्रों के कहने से चौपन अध्ययन होते हैं। यहाँ चौथे वर्ग का निक्षेप कह लेना चाहिए।

चौथा वर्ग समाप्त

पंचम-वर्ग



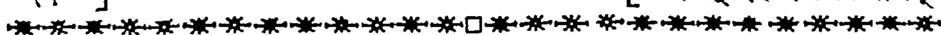
पंचमवग्गस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! जाव बत्तीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-

कमला कमलप्पभा चेव, उप्पला य सुदंसणा।
रूववई बहुरूवा, सुरूवा सुभगा वि य ॥ १ ॥
पुण्णा बहुपुत्तिया चेव, उत्तमा भारिया वि य।
पउमा वसुमती चेव, कणगा कणगप्पभा ॥ २ ॥
वडेंसा केउमई चेव, वइरसेणा रइप्पिया।
रोहिणी नवमिया चेव, हिरी पुप्फवती ति य ॥ ३ ॥
भुयगा भुयगवई चेव, महाकच्छाऽपराइया।
सुघोसा विमला चेव, सुस्सरा य सरस्सई ॥ ४ ॥

पंचम वर्ग का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू! पाँचवें वर्ग के बत्तीस अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार है (१) कमला देवी (२) कमलप्रभा देवी (३) उत्पला (४) सुदर्शना (५) रूपवती (६) बहुरूपा (७) सुरूपा (८) सुभगा (९) पूर्णा (१०) बहुपुत्रिका (११) उत्तमा (१२) भारिका (१३) पद्मा (१४) वसुमती (१५) कनका (१६) कनकप्रभा (१७) अवतसा (१८) केतुमती (१९) वज्रसेना (२०) रतिप्रिया (२१) रोहिणी (२२) नवमिका (२३) ह्री (२४) पुष्पवती (२५) भुजगा (२६) भुजगवती (२७) महाकच्छा (२८) अपराजिता (२९) सुघोषा (३०) विमला (३१) सुस्वरा (३२) और सरस्वती। अर्थात् इन बत्तीस देवियों के बत्तीस अध्ययन जानने चाहिए।

उक्खेवओ पढमज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था। स्वामी-भगवान् महावीर पधारे। यावत् परिषद् निकल कर भगवान् की उपासना करने लगी।

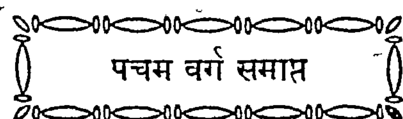


ते णं काले णं ते णं समए णं कमला देवी कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि, सेसं जहा कालीए तहेव। णवरं पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंववणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए कमला दारिया पासस्स अरहओ अंतिए निक्खंता, कालस्स पिसायकुमारिंदस्स अग्गमहिसी अद्धपलिओवमं ठिई।

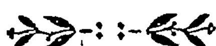
उस काल और उस समय में कमला देवी कमला नामक राजधानी में, कमलावतंसक भवन में, कमल नामक सिंहासन पर बैठी थी। शेष सब वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है-पूर्वभव मे नागपुर नगर था। सहस्राम्रवन उद्यान था। वहाँ कमल गाथापति था, कमल श्री उसकी भार्या थी और कमला नामक पुत्री थी। कमला पुत्री अरहन्त पार्श्व के निकट दीक्षित हो गई। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् जानना, यावत् वह काल नामक पिशाचेन्द्र की अग्रमहिषी हुई। उसकी स्थिति आधे पल्योपम की है।

एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाणं वाणमंतरिंदाणं भाणियव्वाओ, सव्वाओ नागपुरे सहसंववणे उज्जाणे, मायापिया धूयासरिसनामया, ठिई अद्धपलिओवमं। पंचमो वग्गो समत्तो ॥ १५३ ॥ (५)

इसी प्रकार शेष इकतीस अध्ययन भी दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर इन्द्रो के कहने चाहिए। कमलाप्रभा आदि इकतीसों कन्याओ ने नागपुर में सहस्राम्र वन उद्यान में दीक्षा ली। सब के माता-पिता के नाम कन्याओ के समान जानने चाहिए। स्थिति सब की आधे-आधे पल्योपम की कहनी चाहिए। इस प्रकार पाँचवाँ वर्ग समाप्त हुआ।

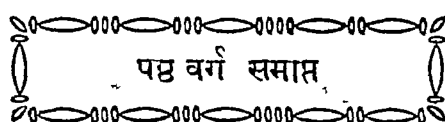


षष्ठ वर्ग



छट्ठो वि वग्गो पंचमवग्गसरिसो। णवरं महाकालिंदाणं उत्तरिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीओ। पुव्वभवे सागेयनयरे, उत्तरकुरुउज्जाणे, माया-पिया धूयासरिसणामया। सेसं तं चेव। छट्ठो वग्गो समत्तो।१५४। (६)

छठा वर्ग भी पाँचवे वर्ग के समान है। विशेषता यह है वह सब कुमा-रियाँ माहाकाल इन्द्र आदि उत्तर दिशा के आठ इन्द्रो की बत्तीस अग्रमहिषियाँ हुईं। पूर्व भव मे वे सब साकेत नगर मे उत्पन्न हुईं। उत्तरकुरु उद्यान में उनकी दीक्षा हुई। उन कुमारियों के नाम के समान ही उनके माता-पिता के नाम थे। शेष सब पूर्ववत्। यह छठा वर्ग समाप्त हुआ।



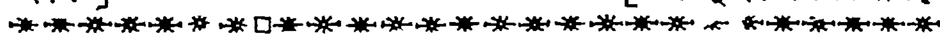
षष्ठ वर्ग समाप्त

सप्तम वर्ग



सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! जाव चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-सूरप्पभा १, आयवा २, अच्चिमाली ३, पभंकरा ४।

सातवें वर्ग का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू! यावत् भ० महा-वीर ने सातवें वर्ग के चार अध्ययन कहे है। वे इस प्रकार हैं-(१) सूर्यप्रभा (२) आतपा (३) अर्चिमाली और (४) प्रभंकरा।



पढमज्झयणस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

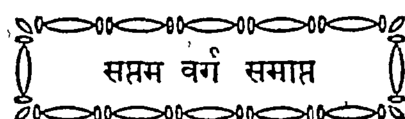
प्रथम अध्ययन का उत्क्षेप कहना चाहिए। हे जम्बू! उस काल और उस समय में राजगृह में स्वामी पधारे यावत् परिषद् उनकी उपासना करने लगी।

ते णं काले णं ते णं समए णं सूरप्पभा देवी सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहा, णवरं पुव्वभवो अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्पभा दारिया। सूरस्स अग्गमहिसी, ठिई अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं, सेसं जहा कालीए।

उस काल और उस समय में सूर्य (सूर) प्रभा देवी सूर्य विमान मे, सूर्यप्रभ सिंहासन पर आसीन थी। शेष सब वृत्तान्त काली देवी के समान। विशेषता यह है-पूर्वभव में अरक्खुरी नगरी में सूर्यप्रभ गाथापति की सूर्यश्री भार्या थी। उनकी सूर्यप्रभा नामक पुत्री थी। यावत् वह सूर्य नामक इन्द्र की अग्रमहिषी हुई। उस की पाँच सौ वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम की स्थिति कही गई है। शेष सब वृत्तान्त काली देवी के समान समझना चाहिये।

एवं सेसाओ वि सव्वाओ अरक्खुरीए णयरीए। सत्तमो वग्गो समत्तो॥ १५५ ॥ (७)

इसी प्रकार शेष सब-तीनों देवियों (सूर्य इन्द्र की अग्रमहिषियों) का वृत्तान्त जानना चाहिए। वे भी अरक्खुरी नगरी में उत्पन्न हुई थीं, इत्यादि। यह सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ। (७)



अष्टम-वर्ग



अट्ठमस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! जाव चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा–चंदप्पभा १, दोसिणाभा २, अच्चिमाली ३, पभंकरा ४।

अष्टम वर्ग का उपोद्घात कहना चाहिए। हे जम्बू! यावत् भगवान् महावीर ने आठवें वर्ग के चार अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं–(१) चन्द्रप्रभा (२) दोषीनाभा (३) अर्चिमालो और (४) प्रभकरा।

पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात। हे जम्बू! उस काल और उस समय मे राजगृह नगर में स्वामी पधारे। यावत् परिषद् उपासना करने लगी।

ते णं काले णं ते णं समए णं चंदप्पभा देवी चंदप्पभंसि विमाणंसि चंदप्पभंसि सीहासणंसि, सेसं जहा कालीए, णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए चंदवडेंसए उज्जाणे चंदप्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया, चंदप्पभा दारिया, चंदस्स अग्गमहिसी, ठिई अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं सेसं जहा कालीए।

उस काल और उस समय में चन्द्रप्रभा देवी, चन्द्रप्रभ नामक विमान मे, चन्द्रप्रभ सिंहासन पर बैठी थी। शेप वृत्तान्त काली देवी के समान समझना। विशेषता यह है–पूर्वभव में मथुरा नामक नगरी थी। चन्द्रावतसक उद्यान था। वहाँ चन्द्रप्रभ गाथापति रहता था। चन्द्रश्री उसकी पत्नी थी। चन्द्रप्रभा उनकी पुत्री थी। वह यावत् चन्द्र इन्द्र की अग्रमहिपी हुई। उसकी स्थिति पचास हजार वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम की कही गई है। शेप सब काली के समान।

एवं सेसाओ वि महुराए णयरीए, मायापियरो वि धूयासरिसणामा। अट्ठमो वग्गो समत्तो।

इसी प्रकार शेप तीन भी मथुरा नगरी मे उत्पन्न हुईं। उनके नाम के समान ही उनके माता–पिता के नाम थे। (वे भी चन्द्र नामक इन्द्र की अग्रमहिपियाँ हुईं। शेप सब पूर्ववत्)। आठवाँ वर्ग समाप्त।

नवम वर्ग

नवमस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! जाव अट्ठ अज्झयणा पन्नत्ता, तंजहा–पउमा १, सिवा २, सती ३, अंजू ४, रोहिणी ५, णवमिया ६, अचला ७, अच्छरा।

नौवे वर्ग का उपोद्घात। हे जम्बू! यावत श्रमण भगवान् ने नौवें वर्ग के आठ अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) पद्मा (२) शिवा (३) सती (४) अंजू (५) रोहिणी (६) नवमिका (७) अचला और (८) अप्सरा।

पढमज्झयणस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे समोसरणं, जाव परिसा पज्जुवासइ।

ते णं काले णं ते णं समए णं पउमावई देवी सोहम्मे कप्पे पउमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए पउमंसि सीहासणंसि, जहा कालीए।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात। हे जम्बू! उस काल और उस समय मे स्वामी राजगृह मे पधारे। यावत परिषद् उपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में पद्मावती देवी, सौधर्म कल्प मे, पद्मावतंसक विमान मे, सुधर्मा सभा मे पद्म नामक सिंहासन पर आसीन थी। शेष वृत्तान्त काली देवी के समान कहना चाहिए।

एवं अट्ठ वि अज्झयणा कालीगमएणं नायव्वा। नवरं-सावत्थीए दो जणीओ, हत्थिणाउरे दो जणीओ, कपिल्लपुरे दो जणीओ, सागेयनयरे दो जणीओ। पउमे पियरो, विजया मायराओ। सव्वाओ वि पासस्स अंतिए पव्वइयाओ, सक्कस्स अग्गमहिसीओ, ठिई सत्त पलिओवमाइं, महाविदेहे वासे अंतं काहिंति। णवमो वग्गो समत्तो।

इसी प्रकार काली देवी के गम के अनुसार आठों अध्ययन जानने चाहिये। विशेषता यह है- पूर्व भव मे, दो जनी श्रावस्ती मे, दो जनी हस्तिनापुर मे, दो जनी कापिल्यपुर मे और दो जनी साकेतनगर में उत्पन्न हुई। सब के पिता का नाम पद्म और सब की माता का नाम विजया था। सभी पार्श्व अरहंत के निकट प्रव्रजित हुई और शक्र इन्द्र की अग्रमहिषियाँ हुई। उनकी स्थिति सात पल्योपम की कही है। सब महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेगी। नौवाँ वर्ग समाप्त

दशम-वर्ग



दसमस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! जाव अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—

कण्हा य कण्हराई, रामा तह रामरक्खिया वसुया।
वसुगुत्ता वसुमित्ता, वसुंधरा चेव ईसाणे॥ १॥

दसवें वर्ग का उपोद्घात। हे जम्बू! यावत् श्रमण भगवान् ने दसवें वर्ग के आठ अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं— (१) कृष्णा (२) कृष्णराजी (३) रामा (४) रामरक्षिता (५) वसु (६) वसुगुप्ता (७) वसुमित्रा और (८) वसुन्धरा। यह आठ ईशान देवलोक की अग्रमहिषियाँ हैं।

पढमज्झयणस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे समोसरणं, जाव परिसा पज्जुवासइ।

ते णं काले णं ते णं समए णं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए कण्हंसि सीहासणंसि, सेसं जहा कालीए।

प्रथम अध्ययन का उपोद्घात। हे जम्बू! उस काल और उस समय राजगृह नगर में स्वामी पधारे। यावत् परिषद् उपासना करने लगी।

उस काल और उस समय कृष्णा देवी ईशान कल्प में, कृष्णावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में, कृष्ण नामक सिंहासन पर आसीन थी। शेष वृत्तान्त काली के समान।

एवं अट्ठ वि अज्झयणा कालीगमएणं णेयव्वा। णवरं पुव्वभवे वाणारसीए नयरीए दो जणीओ, रायगिहे नयरे दो जणीओ, सावत्थीए नयरीए दो जणीओ, कोसंबीए नयरीए दो जणीओ। रामे पिया, धम्मा माया। सव्वाओ वि पासस्स अरहओ अंतिए पव्वइ-

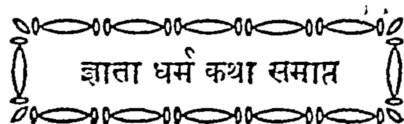
याश्रो । पुष्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए, ईसाणस्स अग्गमहिसीश्रो, ठिई णवपलिओवमाइं । महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति, वुज्झिहिंति, मुच्चिहिंति, सव्वदुक्खाणं अंतं काहिंति । एवं खलु जंवू ! णिक्खेवश्रो दसमवग्गस्स । दसमो वग्गो समत्तो ॥ १५८ ॥

इसी प्रकार काली के गम से आठों अध्ययन जानने चाहिए । विशेपता यह है-पूर्व भव मे दो जनी वनारस नगरी में, दो जनी राजगृह नगर मे, दो जनी श्रावस्ती में और दो जनी कौशाम्बी में उत्पन्न हुई । सब के पिता का नाम राम और माता का नाम धर्मा था । सभी पार्श्व अरहंत के निकट दीक्षित हुई । वे पुष्पचूला आर्या को शिष्यनी के रूप में दी गई । सब ईशान इन्द्र की अग्रमहिपियाँ हुई । सव की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है । सब महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होंगी, बुद्ध होगी, मुक्त होंगी और सव दु खो का अन्त करेगी । हे जम्बू ! यह दसम वर्ग का निक्षेप कहा है । दसवाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥ १५८ ॥

एवं खलु जंवू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंवुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं जाव संपत्तेणं । धम्मकहासुयक्खंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं । णायाधम्मकहाओ समत्ताओ ॥ १५९ ॥

हे जम्बू ! धर्म के आदिकर्त्ता, तीर्थ के संस्थापक, स्वयं वोध को प्राप्त, पुरुपोत्तम यावत सिद्धि को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने इस प्रकार कहा है। धर्मकथा नामक द्वितीय स्कंध दस वर्गों में समाप्त हुआ । ज्ञाताधर्म कथा समाप्त हुआ ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः



* परिशिष्ट *



श्रीमद्ज्ञातासूत्र के कथानक बहुत ही बोधप्रद और सुरुचि-उत्पादक हैं। उपनय द्वारा दृष्टांत-दार्ष्टान्तिक की संगति भली-भाँति समझ में आ जाती है। इसी लिये व्याख्याताओं ने प्रत्येक अध्याय के अन्तमें उपनयगाथाएँ उद्धृत की हुई है। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तकमे हिन्दी भावार्थरूप में बहुतांश उपनय दे दिये गये है, तथापि कुछ अवशिष्ट भी रह गये है और गाथाएँ भी ज्ञातव्य है। इसी दृष्टिसे यह परिशिष्ट प्रकाशित करना उपयुक्त प्रतीत हुवा है। जिस अध्ययनका उपनय भावार्थ रूपमें पुस्तकके अन्दर आ गया है, उसके पृष्ठका संकेत उपनय गाथा के पास कर दिया गया है। शेषके भावार्थ गाथाओंके साथ संलग्न है।

अध्ययन १ "महुरेहिं निउणेहि वयणेहि चोययति आयरिया।
सीसे कहिचि खलिए जह मेहमुणि महावीरो ॥ १ ॥"

भावार्थ—किसी प्रसग पर शिष्य स्खलित-साशक हो जाय तो आचार्य उसे मधुर और निपुण वचनोसे (सयमस्थैर्य के लिए) प्रेरित करे-नि शक करे। जैसे भगवान् महावीर ने मेघ मुनि को सयम मे स्थिर किया ॥१॥

अ० २ "सिवसाहणेसु आहारविरहिओ ज न वट्टए देहो।
भा. पृ. १५६ तम्हा धण्णोव्व विजय साहू त तेण पोसेज्जा ॥१॥"

अ० ३ "जिणवरभासियभावेसु भावसच्चेसु भावओ मइम।
नो कुज्जा सदेहं संदेहोऽणत्थहेउत्ति ॥ १ ॥
निस्सदेहत्त पुण गुणहेउ ज तओ तयं कज्ज।
एत्थ दो सिट्ठिसुया अंडयगाही उदाहरण ॥ २ ॥
कत्थइ मइदुब्बल्लेण तव्विहायरियविरहओ वा वि।
नेयगहणत्तणेण नाणावरणोदयेण च ॥ ३ ॥

हेऊदाहरणासंभवे य सइ सुट्ठु जं न बुज्झिज्जा ।
सव्वन्नुमयमवितहं तहावि इइ चिंतए मइमं ॥ ४ ॥
अणुवकयपराणुग्गहपरायणा जं जिणा जगप्पवरा ।
जियरागदोसमोहा य णन्नहावाइणो तेण ॥ ५ ॥

भावार्थ—सन्देह अनर्थ का कारण है, इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति जिनेश्वर भाषित भाव सत्य पदार्थों में भावत सन्देह न करे ॥१॥ सन्देह न करना गुण का कारण है, इसलिए वह (निःसन्देहत्व) करने योग्य है । इस विषय में मयूरी के अंडे को ग्रहण करनेवाले दो श्रेष्ठि पुत्र (जिनदत्त पुत्र और सागरदत्त पुत्र) उदाहरण हैं ॥२॥ किसी विषय मे बुद्धि की कमजोरी, उस विषय के आचार्य का संयोग न मिलना, ज्ञेय विषय की अति कठिनता या ज्ञानावरणीय कर्म का उदय अथवा हेतु-उदाहरण का अभाव होने से तत्त्व समझ मे न आवे तो भी सर्वज्ञ सम्मत (सिद्धान्त) अवितथ (विपरीत नही होनेवाले) है, समझदार को ऐसा चिन्तन करना चाहिए । क्योंकि जिनेश्वर भगवान् स्वय दूसरो से अनुपकृत परन्तु परोपकार परायण, रागद्वेष और मोह को जीते हुए हैं, इस कारण अन्यथावादी नही होते हैं ॥४-५॥

अ० ४ "विसएसु इंदिआइ रुंभता रागदोसनिम्मुक्का ।
पावंति निव्वुइसुहं कुम्मुव्व मयगदहसोक्ख ॥ १ ॥
अवरे उ अणत्थपरपराउ पावेंति पापकम्मवसा ।
ससारसागरगया गोमाउग्गसियकुम्मोव्व ॥ २ ॥"

भावार्थ—विषयो से इन्द्रियो को रोकते हुए रागद्वेषरहित प्राणी निर्वृति सुख प्राप्त करते हैं, जैसे कूर्म (कच्छप) मृतगगा ह्रद के सुखको प्राप्त किया ॥१॥ इससे विपरीत प्राणी पाप कर्म के वशीभूत होकर ससार सागर में गोते लगाते हुए गोमायुग्रस्त कूर्म के समान अनर्थ परम्पराओ को प्राप्त करते हैं ॥२॥

अ० ५ "सिढिलियसंजमकज्जा वि होइउ उज्जमति जइ पच्छा ।
सवेगाओ तो सेलउव्व आराहया होंति ॥ १ ॥"

भावार्थ—सयम कार्य में शिथिल होने पर भी यदि बाद में सवेग होने से संयमोद्यम करे तो शैलक ऋषि के समान वह आराधक होता है ।

अ० ६ "जह मिउलेवालित्त गरुयं तुवं अहो वयइ एवं ।
आसवकयकम्मगुरू जीवा वच्चति अहरगयं ॥१॥

तं चेव तव्विमुक्कं जलोवरिं ठाइ जायलहुभावं ।
जह तह कम्मविमुक्का लोयग्गपइट्ठिया होंति ।।२।।"

भावार्थ–जैसे मिट्टी के लेप से तुम्वा भारी होकर जल मे नीचे चला जाता है, इसी प्रकार आस्रव कृत कर्मो से गुरु (भारी) वन कर जीव अधोगति को प्राप्त होता है। ।।१।। जैसे वही तुम्बा मिट्टी के लेप से विमुक्त होने पर लघु होकर जल के ऊपर स्थित होता है वैसे ही कर्म से विमुक्त जीव लोक के अग्र भाग मे प्रतिष्ठित होते हैं। ।।२।।

अ० ७ 'जह सेट्ठी तह गुरुणो जह णाइजणो तहा समणसघो ।
जह वहुया तह भव्वा जह सालिकणा तह वयाइ ।।१।।
जह सा उज्झियनामा उज्झियसाली जहत्थमभिहणा ।
पेसणगारित्तेण असखदुक्खक्खणी जाया ।।
तह भव्वो जो कोई सघसमक्खं गुरुविदिन्नाइ ।
पडिवज्जिउं समुज्झइ महव्वयाइ महामोहा । ३।।
सो इह चेव भवमि जणाण धिक्कार-भायण होइ ।
परलोए उ दुहत्तो नाणा जोणीसु संचरइ ।।४।।
जह वा सा भोगवती जहत्थनामोवभुत्तसालिकणा ।
पेसणविसेसकारित्तणेण पत्ता दुह चेव ।।५।।
तह जो महव्वयाइं उवभुजइ जीवियत्ति पालितो ।
आहाराइसु सत्तो चत्तो सिवसाहणिच्छाए ।।६।।
सो एत्थ जहिच्छाए पावइ आहारमाइ लिगित्ति ।
विउसाण नाइपुज्जो परलोयम्मी दुही चेव ।।७।।
जह वा रक्खियवहुया रक्खियसालीकणा जहत्थक्खा ।
परिजणमण्णा जाया भोगसुहाइं च सपत्ता । ८।।
तह जो जीवो सम्म पडिवज्जित्ता महव्वए पच ।
पालेइ निरइयारे पमायलेसपि वज्जेतो ।।९।।
सो अप्पहिएक्करई इहलोय मिवि विऊहिं पणयपओ ।
एगतसुही जायइ परमि मोक्खपि पावेइ ।।१०।।
जह रोहिणी उ सुण्हा रोवियसाली जहत्थमभिहाणा ।

वड्ढित्ता सालिकणे पत्ता सव्वस्ससामित्तं ॥११॥
तह जो भव्वो पावियवयाइ पालेइ अप्पणा सम्म ।
अन्नेसिवि भव्वाण देइ अणेगेसिं हियहेउ ॥१२॥
सो इह सघपहाणो जुगप्पहाणेत्ति लहइ ससद्द ।
अप्पपरेसिं कल्लाणकारओ गोयमपहुव्व ॥१३॥
तित्थस्स वुड्ढिकारी अक्खेवणओ कुतित्थियाईण ।
विउसनरसेवियकमो कमेण सिद्धिपि पावेइ ॥ १४ ॥"

भावार्थ—श्रेष्ठी के स्थान पर गुरु, ज्ञातिजन के स्थान पर श्रमणसघ, वहुओ के स्थान पर भव्य प्राणी, शालि-कण के स्थान पर व्रत समझने चाहिए ॥१॥ जैसे वह उज्झिता नाम की वहू यथार्थ नामवाली थी और शालि के दानो को फेक देने के कारण दास्यकार्य करने से असख्य दु खो से दु खित हुई ॥२॥ वैसे ही जो कोई भव्य गुरुप्रदत्त महाव्रतो को सघ के समक्ष स्वीकृत करके महामोह से उन्हे त्याग देता है ॥३॥ वह इस भव मे जनो के धिक्कार का पात्र होता है और पर-लोक में भी दु खार्त्त होकर अनेक योनियो में भ्रमण करता है ॥४॥ जैसे वह भोगवती यथार्थनामवाली शालिकणो को खा गई, वह भी दास्यविशेष का कार्य करने के कारण दु ख को ही प्राप्त हुई ॥५॥ वैसे ही जो महाव्रतो को जीविका मानकर पालता एव उसका वैसा उपयोग करता है, आहारादि में आसक्त होता है और ये महाव्रत शिवसाधन मोक्ष साधन हैं इस भावना से रहित होता है ॥६॥ वह केवल साधुलिगधारी यथेष्ट आहारादि को प्राप्त करता है परन्तु विद्वानो से पूजनीय नही होता और परलोक में भी दु खी ही होता है ॥७॥ जैसे वह रक्षिता यथार्थ नामवाली वधू शालिकणो की रक्षा की और परिवार वालो की मान्या वनी तथा भोग सुखो को भी प्राप्त की ॥८॥ वैसे ही जो जीव महाव्रतो को स्वीकारकर लेश मात्र भी प्रमाद नही करता हुवा निरतिचार-निर्दोष पालन करता है ॥९॥ वह एक मात्र आत्महित मे आनद मानने वाला इस लोक में विद्वानो से पूजित तथा एकान्त सुखी होता है और परभवमें मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥१०॥ जैसे रोहिणी नामक पुत्र वधू यथार्थ नामवाली शालि के रोप द्वारा उनकी वृद्धि करके सर्व धन के स्वामित्व को प्राप्त हुई ॥११॥ उसी प्रकार जो भव्य प्राणी व्रतोको प्राप्त कर स्वय अच्छी प्रकार पालन करता है और दूसरे भी भव्य प्राणियो को उनके हित के लिये देता है । ॥१२॥ वह इस भव में गौतम प्रभु के समान सघ प्रधान होकर युगप्रधान इस पदवी को प्राप्त करता है । और अपने तथा दूसरोके कल्याण को करने वाला होता है ॥१३॥ अपने तीर्थ की वृद्धि करता है तथा कुतीर्थियो का निराकरण करता है, विद्वानो से पूजित होकर क्रमश सिद्धि को भी प्राप्त होता है ॥१४॥

अ० ८ "उग्गतवसजमवओ पगिट्ठफलसाहगस्सवि जियस्स ।
धम्मविसएवि सुहुमावि होइ माया अणत्थाय ॥ १ ॥
जह मल्लिस्स महाबलभवमि तित्थयरनामबधेऽवि ।
तव विसयथेवमाया जाया जुवइत्तहेउत्ति ॥ २ ॥"

भावार्थ—उग्र तप और सयमवान् तथा प्रकृष्ट फल के साधक जीवद्वारा की हुई धर्म के विषय में सूक्ष्म माया भी अनर्थ का कारण होती है ॥१॥ जैसे मल्लिका कुमार को महाबल के भव में तीर्थङ्कर नाम कर्म का बध होने पर भी तप के विषय में थोडी भी की हुई माया युवतित्व (स्त्रीत्व) का कारण बनी ॥ २ ॥

अ० ९ "जह रयणदीवदेवी तह एत्थ अविरई महापावा ।
भा० पृ० जह लाहत्थी वणिया तह सुहकामा इहं जीवा ॥ १ ॥
३५४ जह तेहिं भीएहिं दिट्ठो आघायमंडले पुरिसो ।
संसारदुक्खभीया पासति तहेव धम्मकह ॥ २ ॥
जह तेण तेसि कहिया देवी दुक्खाण कारण घोरं ।
तत्तो च्चिय नित्थारो सेलगजक्खाओ नन्नत्तो ॥ ३ ॥
तह धम्मकही भव्वाण साहए दिट्ठअविरइसहाओ ।
सयलदुहहेउभूओ विसया विरयति जीवाण ॥ ४ ॥
सत्ताण दुहत्ताण सरण चरण जिणिदपन्नत्त ।
आणदरूवनिव्वाणसाहण तहय देसेइ ॥ ५ ॥
जह तेसि तरियव्वो रुद्दसमुद्दो तहेव संसारो ।
जह तेसि सगिहगमण निव्वाणगमो तहा एत्थं ॥६॥
जह सेलगपिट्ठाओ भट्ठो देवीइ मोहियमईओ ।
सावयसहस्सपउरमि सायरे पाविओ निहण ॥ ७ ॥
तह अविरईइ नडिओ चरणचुओ दुक्खसावयाइण्णे ।
निवडइ अपारससारसायरे दारुणसरूवे ॥ ८ ॥
जह देवीए अक्खोहो पत्तो सट्ठाणं जीवियसुहाइं ।
तह चरणट्ठिओ साहू अक्खोहो जाइ निव्वाणं ॥ ९ ॥

अ० १० "जह चदो तह साहू राहुवरोहो जहा तह पमाओ ।
भा० पृ० वण्णाई गुणगणो जह तहा खमाई समणधम्मो ॥१॥
३५८ पुण्णोवि पइदिण जह हायतो सव्वहा ससी नस्से ।
तह पुण्णचरित्तोऽविहु कुसीलससग्गिमाईहिं ॥२॥
जणियपमाओ साहू हायतो पइदिण खमाईहिं ।
जायइ नट्ठचरित्तो तत्तो दुक्खाइं पावेइ ॥३॥
"हीणगुणोविहु होउ सुहगुरुजोगाइजणियसवेगो ।
पुण्णसरूवो जायइ विवड्ढमाणो ससहरोव्व ॥४॥

अ० ११ "जह दावद्दवतरुवणमेव साहू जहेव दीविच्चा ।
भा० पृ० वाया तह समणाइयसपक्खवयणाइ दुसहाइ ॥१॥
३६३ जह सामुद्दयवाया तहऽण्णतित्थाइकडुयवयणाइ ।
कुसुमाइसपया जह सिवमग्गाराहणा तह उ ॥२॥
जह कुसुमाइविणासो सिवमग्गविराहणा तहा नेया ।
जह दीववाउजोगे बहु इड्ढी ईसि य अणिड्ढी ॥३॥
तह साहम्मियवयणाण सहमाणाराहणा भवे बहुया ।
इयराणमसहणे पुण सिवमग्गविराहणा थोवा ॥४॥
जह जलहि वाउजोगे थेविड्ढी वहुयरा यऽणिड्ढी य ।
तह परपक्खक्खमणे आराहणमीसि वहुययर ॥५॥
जह उभयवाउविरहे सव्वा तरुसपया विणट्ठत्ति ।
अनिमित्तोभयमच्छररूवेह विराहणा तह य ॥ ६ ॥
जह उभयवाउजोगे सव्वसमिड्ढी वणस्स सजाया ।
तह उभयवयणसहणे सिवमग्गाराहणा वुत्ता ॥ ७ ॥
ता पुन्नसमणधम्माराहणचित्तो सया महासत्तो ।
सव्वेणवि कीरत सहेज्ज सव्वंपि पडिकूलं ॥८॥"

अ० १२ "मिच्छत्तमोहियमणा पावपसत्तावि पाणिणो विगुणा ।
भा. पृ. ३७९ फरिहोदगव गुणिणो हवति वरगुरुपसायाओ ॥१॥"

अ १३ "संपन्नगुणोवि जओ सुसाहुससग्गिवज्जिओ पायं ।
भा० पृ० पावइ गुणपरिहाणिं दद्दुरजीवोव्व मणियारो ॥१॥"
३९८

अ० १४ "जाव न दुक्खं पत्ता माणब्भस च पाणिणो पाय ।
भा० पृ० ताव न धम्मं गेण्हति भावओ तेयलीसुउव्व ॥ १ ॥"
४२६

अ० १५ "चंपा इव मणुयगती धणोव्व भयवं जिणो दएक्करसो ।
भा० पृ० अहिछत्तानयरिसम इह निव्वाण मुणेयव्व ॥ १ ॥
४३५ घोसणया इव तित्थंकरस्स सिवमग्गदेसणमहग्घ ।
चरगाइणोव्व इत्थं सिवसुहकामा जिया बहवे ॥२॥
नदिफलाइ व्व इह सिवपहपडिवण्णगाण विसया उ ।
तब्भवखणाओ मरण जह तह विसएहि संसारो ॥३॥
तव्वज्जणेण जह इट्ठपुरगमो विसयवज्जणेण तहा ।
परमानदनिबधणसिवपुरगमणं मुणेयव्व ॥ ४ ॥"

अ० १६ "सुबहुपि तवकिलेसो नियाणदोसेण दूसिओ सतो ।
भा० पृ० न सिवाय दोवतीए जह किल सुकुमालियाजम्मे ॥१॥
५३३ अथवा-'अमणुन्नमभत्तीए पत्ते दाणं भवे अणत्थाय ।
जह कडुयतुबदाणं नागसिरिभवमि दोवइए ॥ २ ॥"

अ० १७ "जह सो कालियदीवो अणुवमसोक्खो तहेव जइधम्मो ।
भा० पृ० जह आसा तह साहू वणियव्वऽणुकूलकारिजणा ॥१॥
५५१ जह सद्दाइअगिद्धा पत्ता नो पासबधण आसा ।
तह विसएसु अगिद्धा वज्झति न कम्मणा साहू ॥२॥
जह सच्छदविहारो आसाण तह य इह वरमुणीणं ।
जरमरणाइ विवज्जिय संपत्ताणदनिव्वाण ॥३॥
जह सद्दाइसु गिद्धा बद्धा आसा तहेव विसयरया ।
पावेति कम्मबध परमासुहकारण घोर ॥ ४ ॥
जह ते कालियदीवा णीया अन्नत्थ दुहगण पत्ता ।

तह धम्मपरिब्भट्ठा अधम्मपत्ता इह जीवा ॥ ५ ॥
पावेति कम्मनरवइवसया संसारवाहयालीए ।
आसप्पमद्दएहिं व नेरइयाइहिं दुक्खाइ ॥ ६ ॥"

अ० १८ "जह सो चिलाइपुत्तो सुसुमगिद्धो अकज्जपडिबद्धो ।
भा० पृ० धणपारद्धो पत्तो महाडवि वसणसयकलिय ॥ १ ॥
५७० तह जीवो विसयसुहे लुद्धो काऊण पावकिरियाओ ।
कम्मवसेण गावइ भवाडवीए महादुक्ख ॥ २ ॥
धणसेट्ठीविव गुरुणो पुत्ता इव साहवो भवो अडवी ।
सुयमसमिवाहारो रायगिह इह सिव नेय ॥ ३ ॥
जह अडविनयरनित्थरणपावणत्थ तहेहिं सुयमस ।
भुत्त तहेह साहू गुरूण आणाए आहार ॥ ४ ॥
भवलघणसिवपावणहेउ भुज्जति ण उण गेहीए ।
वण्णबलरूवहेउ च भावियप्पा महासत्ता ॥५॥"

अ० १९ "वाससहस्सपि जई काऊण सजम सुविउलंपि ।
भा० पृ० अते किलिट्ठभावो न विसुज्झइ कडरीउव्व ॥१॥
५८३ तथा-अप्पेणवि कालेण केइ जहा गहियसीलसामण्णा ।
साहिति निययकज्जं पुडरीयमहारिसिव्व जहा ॥२॥"

उपनयगाथाएँ सम्पूर्ण



